आधुनिक खड़ी बोली काव्य
में
ऐतिहासिक सन्दर्भों का अध्ययन
(१९०० – १९६०)

(A Study of Historical References in Modern Hindi Poetry)
1900—1960

*

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

*

निर्देशक
पद्मभूषण डा० रामकुमार वर्मा

*

लेखिका
(श्रीमती) निर्मल

*

हिन्दी – विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

१९६६

प्राक्कथन

इतिहास के अध्ययन में आरम्भ से ही मेरी विशेष रुचि रही है। काव्य एवं इतिहास के समन्वयात्मक अध्ययन का मनोनुकूल विषय मेरे लिए अत्यन्त रुचिर रहा। काव्य एवं साहित्य की अनेक परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के युगों में भी आख्यानप्रधान ऐतिहासिक काव्य की अखण्ड धारा आलोच्य-काल में प्रवहमान रही है। ऐतिहासिक महत्व को दृष्टिगत रखते हुए इस काव्य धारा की समीक्षा प्रस्तुत करने की चेष्टा ही शोध प्रबन्ध में की गई है। कतिपय अध्यायों में ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों से जो उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं, सम्भव है, कुछ अधिक प्रतीत हों, परन्तु खड़ी बोली काव्य तथा इतिहास की विचार सरणियों से साम्य दिखलाने की दृष्टि से वे आवश्यक प्रतीत हुए। इन उद्धरणों से जहां एक ओर खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य-रूप का निदर्शन हुआ है, वहां दूसरी ओर इनके द्वारा ऐतिहासिक तथ्य को यथा संभव प्रस्तुत करने का प्रयास भी ~~दृष्टिगत हुआ~~ किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध श्रद्धेय गुरुवर डा० रामकुमार वर्मा भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग तथा वर्तमान यू०जी०सी० प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, प्रयाग-विश्वविद्यालय के निर्देशन में लिखा गया है। पंजाब से एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त ३ वर्ष पूर्व प्रयाग में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तभी से डाक्टर साहब के निर्देशन में कार्य करने की उत्कट अभिलाषा हुई और डा० साहब से मैंने अपनी इच्छा प्रकट की। मेरे आग्रह का परिणाम यह हुआ कि डा०साहब ने मुझे अपने निर्देशन में लेकर कार्य करने की अनुमति सहर्ष प्रदान की। गुरुवर के स्नेहसिक्त प्रोत्साहन एवं निर्देशन में शोध-कार्य करने में वह सम्बल प्रदान किया जिससे आज मैं यह शोध-कार्य प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकी। वस्तुतः डा० साहब के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना कठिन ही नहीं मेरे लिए असम्भव भी है।

मैं श्री उमाशंकर जी शुक्ल, वर्तमान अध्यक्ष, हिन्दी विभाग के प्रति हृदय

से आभारी हूं, जिनसे मुझे प्रारम्भ में विषय-चयन की दृष्टि से अनेक सुझाव प्राप्त होते रहे । इस सन्दर्भ में डा० आशा गुप्ता तथा डा० शैल-कुमारी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं, जिनसे समय-समय पर मुझे अनेक सुझाव प्राप्त हुए । गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व का वहन करते हुए भी मैं इस अध्ययन को पूर्ण कर सकी, इसका अधिकांश श्रेय मेरी छोटी बहिन उर्मिल तथा अनुज उमेश को है, जिनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा ।

शोध-सामग्री प्रस्तुत करने में विश्वविद्यालय -पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी, भारती भवन तथा हिन्दीसाहित्य सम्मेलन, प्रयाग से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं उन पुस्तकालयों के कर्मचारियों के प्रति कृतज्ञ हूं। विषय-प्रस्तुत करने में जिन विभिन्न ग्रन्थों तथा ग्रन्थ-लेखकों से मुझे सहायता मिली है उनके प्रति भी मैं आभारी हूं । श्री रामलखन द्विवेदी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने परिश्रमपूर्वक इस शोध-प्रबन्ध की पाण्डुलिपि टंकित की ।

अन्त में अपने सभी सहयोगियों एवं शुभचिन्तकों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करती हूं ।

निर्मल

(श्रीमती) निर्मल

दीपावली,

१२ नवम्बर,१९६६

सामग्री चयन तथा शोध का दृष्टिकोण

सामग्री चयन तथा शोध का दृष्टिकोण :-

आधुनिक युग की खड़ी बोली हिन्दी की कविता के विषय में विद्वज्जनों द्वारा अब तक जितने अध्ययन-अनुशीलन प्रस्तुत हुए हैं उनमें बीसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों के नामोल्लेख के साथ सामान्य समीक्षा भी हुई है । उसे एक संगठित एवं सुनियोजित दृष्टि प्रदान करने की चेष्टा नहीं हुई । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इस दिशा में सम्भवतः प्रथम प्रयास है ।

प्रस्तुत विषय की सामग्री एकत्र करने में स्वाभाविक रूप से अनेक भ्रान्तियां हो सकती हैं । भारतीय साहित्य पौराणिक रूढ़ियों से इतना अधिक आक्रान्त है कि उस पौराणिकता में ही ऐतिहासिक सन्दर्भ दृष्टिगत होने लगते हैं । दूसरे शब्दों में पौराणिकता इतनी प्रखर हो गई है कि उसे अनेक विद्वान् ऐतिहासिकता की सीमा तक खींच कर ले जाते हैं । उदाहरण के लिए महाभारत के अनेक पात्र ऐतिहासिकता की तर्कमयी भावभूमि पर खड़े हो जाते हैं तथा भौगोलिक परिवेश में उनका आख्यान होने लगता है । अनेक पौराणिक पात्र प्रतीक रूप से या इतिहास में समाविष्ट हो गए हैं । किसी भी व्यवस्थित राज्य को राम राज्य की कल्पना से सम्बद्ध कर देना तथा किसी भी आववाहित ऐतिहासिक पुरुष को ईश्वर की संज्ञा दे देना सहज और स्वाभाविक हो गया है । इस भाँति पुराण और इतिहास की सीमा परिधियां कभी-कभी एक दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं और तब केवल ऐतिहासिक सन्दर्भों को काव्य में खोज निकालना कठिन हो जाता है । सामग्री चयन में इसबात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इतिहास और पुराण अपनी-अपनी सीमाओं में सम्बद्ध रहें । विशुद्ध ऐतिहासिक सन्दर्भों का मूल्यांकन केवल मात्र इतिहास को ही आधार मान कर किया गया है । इसीलिए ऐतिहासिक काव्यों की समीक्षा में अनेक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता पद-पद पर अनिवार्य हो गई है ।

आलोच्यकालीन ऐतिहासिक काव्य की सामग्री का संकलन करते समय मुख्यतया निम्न दृष्टि अपनाई गई है :-

(१) पौराणिक सामग्री और ऐतिहासिक सामग्री में एक विभाजक रेखा खींची जाय तथा सामग्री का स्पष्टीकरण उन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हो जो आधुनिक युग में खड़ी बोली के कवियों द्वारा नवीन परिप्रेक्ष्य में युग प्रेरणा से लिखे गए हैं।

(२) न केवल काव्य ग्रन्थों से ही सामग्री संकलन की है वरन् आलोच्यकाल में प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में जो ऐतिहासिक कवितायें, मुक्तक अथवा प्रबन्ध रूप से प्रकाशित हुई हैं उन्हें भी लिया गया है।

(३) जो रचनायें विषय निरूपण के लिए आवश्यक समझी गई हैं उन रचनाओं के आधार भूत इतिहास-ग्रन्थों का भी अनुशीलन किया गया है।

(४) जिन ऐतिहासिक सन्दर्भों का उल्लेख हुआ है उनसे सम्बन्ध रखने वाली आलोचनात्मक दृष्टियों को सामने रखने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है तथा अनेक स्थलों पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष भी उपस्थित किए गये हैं। द्विवेदी युग में तथा उसके उपरान्त लिखे हुए कतिपय ऐसे भी ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ हैं जिनकी व्याख्यात्मक समीक्षा प्रस्तुत नहीं हुई। ऐसे ग्रन्थों का मूल्यांकन करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में शैलियों के विकास की दृष्टि से आलोच्यकाल के ऐतिहासिक काव्य के लिए कोई नवीन विभाजक रेखा खींचने की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई। अपनी सम्यक् आलोचनात्मक दृष्टि से 'आधुनिक काव्यधारा' में डाक्टर केसरीनारायण शुक्ल ने सन् १९०० से १९४० तक के काव्य-साहित्य को द्वितीय एवं तृतीय उत्थान में विभक्त किया है। इससे काव्य के विकास की विभिन्न स्थितियां अत्यन्त स्पष्टता के साथ परिलक्षित हुई हैं। इस विभाजन में उनकी मौलिक तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का भी परिचय प्राप्त होता है। इसी आधार पर खड़ी बोली के सन् १९०० से १९६० तक के ऐतिहासिक काव्य को प्रथम एवं द्वितीय उत्थान में विभक्त किया जा सकता है। सन् १९०० से १९३० तक का ऐतिहासिक काव्य प्रथम उत्थान, एवं आगे का काव्य द्वितीय उत्थान के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक काव्यों की समीक्षा,

इस उत्थान प्रक्रिया को दृष्टि में रखते हुए तथा रचनाओं की स्वतंत्र ऐतिहासिक विकासोन्मुख दृष्टि को भी सामने रखते हुए मूल्यांकन करने की चेष्टा की गई है । ऐतिहासिक काव्य में भावाभिव्यंजना की दृष्टि से जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं वे काव्यगत पूर्व मान्यताओं के अनुसार ही विकसित एवं परिवर्तित हुए हैं । द्विवेदी युग में भी ऐसी ऐतिहासिक रचनाएं हुई जो काव्य-कला की दृष्टि से छायावादी काव्यशैली के स्तर की कही जा सकती हैं एवं छायावादी युग में भी ऐसी रचनाएं प्राप्त होती हैं जो बहुधा इतिवृत्तात्मक शैली की हैं ।

ऐतिहासिक सन्दर्भों के विषय में एक और बात उल्लेखनीय है । राजस्थान सम्बन्धी काव्य सन्दर्भों के लिए कवियों की प्रेरणा का मुख्य स्रोत टाड 'राजस्थान' रहा है । चारणों की गाथाओं के आधार पर लिखे जाने के कारण इस इतिहास ग्रन्थ में ऐसी सामग्री की भरमार है जो आधुनिक शोधों के द्वारा अप्रामाणिक सिद्ध हो चुकी है । अत: ऐतिहासिक काव्य सन्दर्भों की यथार्थता के सम्बन्ध में प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों के आधार को अपनाने का ही यथासंभव प्रयत्न किया गया है ।

इन सब दृष्टियों से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि इस समीक्षा को ऐसी एकरूपता प्रदान की जाय जिससे आलोच्यकाल का एक ऐतिहासिक रेखा-चित्र उपस्थित हो और युग की ऐतिहासिक धारणा को एक सम्यक् रूपाकार प्राप्त हो ।

विषय सूची

प्राक्कथन :

सामग्री चयन तथा शोध का दृष्टिकोण :

विषय प्रवेश तथा पृष्ठभूमि :- (पृ० १ से ४८ तक)

(क) साहित्य की विधाओं में काव्य की विशिष्टता :

(ख) ब्रज भाषा और खड़ी बोली :-- ब्रजभाषा- ब्रजभाषा का प्रचार तथा प्रसार— ब्रजभाषा और उसकी अवनति—खड़ी बोली- खड़ी बोली शब्द का प्रयोग—खड़ी बोली की उत्पत्ति के विषय में भ्रमात्मक विचार—खड़ी बोली की प्राचीनता - बीसवीं शताब्दी तथा खड़ी बोली ।

(ग) आधुनिक युग में खड़ी बोली की मान्यता :

(घ) प्राचीन काव्य में ऐतिहासिक वृत्त :— (आदि काल से रीति काल तक) वीर गाथा काल के ऐतिहासिक वृत्त —प्रबन्ध काव्य—खुमाण रासो, पृथ्वीराज रासो— वीर गीत—बीसलदेव रासो, आल्हा खण्ड—मध्यकाल में ऐतिहासिक वृत्त — वीर सिंह देव चरित, राजविलास, शिवराज भूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, छत्र-प्रकाश, जंगनामा, सुजानचरित, हम्मीररासो, हिम्मतबहादुर विरुदावली, आदि ।

(ङ०) खड़ी बोली काव्य और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :- सात कोटियां- १-धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि, २-चरित्रोत्कर्ष और पौरुष ३- आत्मगौरव और मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग, ४-मुगल-कालीन वैभव और जातिगत संघर्ष ५-सांस्कृतिक और जातिगत जागरण ६- अतीत गौरव की झलक और जीवन की नश्वरता ७- राष्ट्रीयता तथा उसके उन्नायकों की जीवन गाथा ।

(च) खड़ी बोली काव्य और ऐतिहासिक परम्परा

(छ) इतिहास में पौराणिक सन्दर्भ

प्रथम अध्याय :- काव्य तथा इतिहास (पृ० ४६ से ७८)

(क) काव्य का स्वरूप — काव्यगत सत्य

(ख) इतिहास से तात्पर्य - भारतीय एवं पाश्चात्य इतिहासकारों के विचार

(ग) साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा —

१- भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक काव्य-परम्परा— पुराण—पुराणों का स्वरूप

२- विदेशी साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा— इलियड,ओडेसी

(घ) ऐतिहासिक काव्य से तात्पर्य

(ङ०)ऐतिहासिक काव्य और कल्पना

(च) खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में कल्पना एवं तथ्य का संयोजन

द्वितीय अध्याय :- काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों का प्रयोग (पृ० ७६से १५२)

(क) प्रसंगों के उल्लेख में —सतीत्व धर्म व्यंजक —जौहर के प्रसंग-

१-स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता की रक्षा के आदर्श व्यंजक

२-प्राचीन तथा मध्ययुगीन शूरवीरों के प्रसंग

३- जीवन गत आदर्शों की तथा धार्मिकता की व्यंजना करने वाले — महात्मा बुद्ध,वर्द्धमान अशोक तथा कुणाल इत्यादि महान् विभूतियों के जीवन के प्रसंग

४-वीरत्व की अभिव्यक्ति करने वाले—राजपूत वीरों के बलिदानों के प्रसंग

५- राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति से पूर्ण वर्तमान कालीन राष्ट्र वीरों के प्रसंग।

६- ऐतिहासिक प्रेम कथाओं के प्रसंग ।

(ख) परिस्थितियों के चित्रण में --(१) सामाजिक परिस्थिति--
प्राचीन काल से आधुनिक काल तक।(२) धार्मिक
परिस्थिति-- प्राचीन काल से आधुनिक काल तक।
(३) राजनैतिक अवस्था--प्राचीनकाल से आधुनिक
काल तक।

(ग) प्रतीकों के रूप में -- ऐतिहासिक काव्यों में प्रतीकों का प्रयोग।

(घ) अलंकारों के निरूपण में--ऐतिहासिक काव्यों में अलंकारों के निरूपण की दृष्टि।

तृतीय अध्याय :- काव्य में ऐतिहासिक आख्यान (पृ० १५३ से २५८)

ऐतिहासिक काव्य तथा विभिन्न काव्यरूप --

प्रबन्ध काव्य--चम्पू -- गीत --मुक्तक।

आलोच्य काल में शैलियां -- क्रमानुसार

(क) प्रबन्ध काव्य -- (१) पद्य प्रबन्ध
(२) खंड काव्य

(ख) मुक्तक काव्य -- (१) मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य
(२) भाव परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

(ग) गीति काव्य (१) स्फुट गीत
(२) अभिनयात्मक गीत

(घ) चम्पू काव्य

प्रबन्धकाव्य शैली की पुनरावृत्ति :-

(१) काव्य प्रबन्ध

ऐतिहासिक महाकाव्य--आलोच्यकाल से पूर्व ऐतिहासिक महाकाव्यों
की स्थिति-- महाकाव्य शैली की महत्ता--आलोच्य
कालीन ऐतिहासिक महाकाव्य-- चार कोटियों में विभाजित-
(१)प्राचीन ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित महाकाव्य-
सप्तमृग,सिद्धार्थ,वर्द्धमान,विक्रमादित्य।

(२) मध्यकालीन ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित महाकाव्य— आर्यावर्त, जौहर, हल्दीघाटी

(३) आधुनिक ऐतिहासिक राष्ट्रवीरों के जीवन पर आधारित महाकाव्य— झांसी की रानी (१९५५) झांसी की रानी (१९५६) तांत्यातोपे

(४) समसामयिक राष्ट्रवीरों पर आधारित महाकाव्य— महामानव, जननायक, जगदालोक।

चतुर्थ अध्याय :- ऐतिहासिक सन्दर्भगत दृष्टिकोण (पृ० २५६-३०५)

ऐतिहासिक काव्यों में प्रतिपादित विभिन्न दृष्टिकोण—

(क) अतीत गौरव

(ख) आदर्श निरूपण

(ग) वीर पूजा

(घ) प्रशंसात्मक

(ङ) राष्ट्रीयता — राष्ट्रीय चेतना के विकास की पीठिका— युग बोध से ऐतिहासिक काव्यों में राष्ट्रीयता— विकास

(१) प्राचीन युग (२) मध्ययुग (३) आधुनिक युग

(च) प्रेमोपाख्यान

पंचम अध्याय :- चरित्र सौन्दर्य तथा उसके विविध पार्श्व (पृ० ३०६- ३७७)

(क) चरित्र सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा चरित्र के प्रकार— मध्ययुग का चरित्र सम्बन्धी दृष्टिकोण— कवियों के के ऐतिहासिक काव्य में लौकिक व्यक्तित्व— चरित्र चित्रण की दो कोटियां— आदर्शवादी, यथार्थवादी— ऐतिहासिक काव्यों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि।

(ख) आदिकालीन ऐतिहासिक काव्य में चरित्र चित्रण की दृष्टि— पृथ्वीराज रासो —गुण कथन प्रधान

(ग) खड़ी बोली के ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य और चरित्र-चित्रण— खंड काव्यों में पात्र रूप में चरित्र-चित्रण—महाकाव्यों में चरित्र के विविध पार्श्व—(१) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के नायक पात्र— सिद्धार्थ, महाराणा प्रताप, चन्दबरदाई, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, वर्द्धमान महावीर कौणक, महात्मा गांधी (२) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के अन्य पुरुष पात्र ।

(घ) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में नारी पात्र—आधुनिक युग में नारी का महत्व— काव्य ग्रन्थों में नारी— ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में नायिका पात्र—मुरला यशोधरा, महारानी (हल्दीघाटी काव्य में) संयोगिता, पद्मिनी, ध्रुवदेवी, महारानी कुर्ला, महारानी लक्ष्मी बाई— ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के अन्य नारी-पात्र ।

षष्ठ अध्याय :- ऐतिहासिक सन्दर्भों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (पृ०३७८-४१६)

(क) भावना तथा कल्पना —ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में पात्रगत भावना के विश्लेषण द्वारा चरित्रोत्कर्ष ।

(ख) अन्तर्द्वन्द्व —मन की तीन स्थितियाँ— चेतन, अवचेतन, अर्द्धचेतन, खड़ी बोली के काव्यग्रन्थों में पात्रों का मनोविश्लेषण— पात्रों के विविध भावानुभावों की मनोविश्लेषण में सफलता ।

(ग) उत्सर्ग तथा आत्मबलिदान—विभिन्न ऐतिहासिक युगों की आत्म-बलिदान की भावना में दृष्टिकोण की विभिन्नता

(घ) संघर्ष —मानवीय क्रिया उसके मूल में मानसिक विचारों से उद्भूत प्रतिक्रिया का महत्व—युद्ध संघर्षों में पात्रों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि ।

सप्तम अध्याय (पृ० ४१७- ५०४)

(क) रसात्मक सौंदर्य — काव्य में रस की स्थिति —आचार्य भरत मुनि के विचार — विभाव, अनुभाव, संचारीभाव— आचार्य पंडितराज जगन्नाथ के विचार—निष्कर्ष— खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में रस सौंदर्य—वीर, करुणा, श्रृंगार, शांत प्रमुख रस— रस निष्पत्ति सम्बन्धी नवीनता— रस निष्पत्ति की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्यों में प्रकृति चित्रण — आलम्बन उद्दीपन के अतिरिक्त प्रकृति की अन्य अवलम्ब रूपों में अभिव्यक्ति —निष्कर्ष

(ख) अलंकारगत सौन्दर्य— काव्य में अलंकारों का महत्व—शब्दालंकार-अर्थालंकार—द्विवेदी युगीन काव्यों में प्रतीकात्मक उपमानों की प्रचुरता— शब्दालंकारों में अनुप्रास वीप्सा, श्लेष यमक आदि अर्थालंकारों में उपमाओं उत्प्रेक्षाओं आदि की प्रचुरता—उल्लेख अलंकार, संदेहालंकार आदि का सामान्य प्रयोग—अलंकार भावाभिव्यंजना के साधन निष्कर्ष ।

(ग) छन्दगत सौन्दर्य —काव्य में छन्दों की विशिष्टता — दोनों शताब्दी के खड़ी बोली काव्यों में छन्द वैविध्य — द्विवेदी युग के ऐतिहासिक काव्यों में वर्णिक छन्दों की प्रधानता —बाद के काव्यों में मात्रिक छन्दों का प्राधान्य— मुक्त छन्द ऐतिहासिक काव्य में मुक्तछन्द के सफल प्रयोगकर्ता— सियारामशरण गुप्त, मोहनलाल महतो (वियोगी) आदि— ऐतिहासिक काव्य में गीतिछन्द-

(घ) भाषा सौन्दर्य -- बीसवीं शताब्दी भाषा की दृष्टि से क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन का युग-- खड़ी बोली की प्रतिष्ठा-- ऐतिहासिक काव्य तथा खड़ी बोली-- द्विवेदीयुगीन ऐतिहासिक काव्यों की भाषा के दो रूप -- क शुद्ध,सुबोध तथा व्याकरण सम्मत खड़ी बोली--ब्रजभाषा तथा उर्दू मिश्रित खड़ी बोली-- ।

अष्टम अध्याय :- ऐतिहासिक सन्दर्भों का सांस्कृतिक मूल्यांकन- (५०५-५२४)

(क) संस्कृति से तात्पर्य--मूलतत्व--अहिंसा,सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

(ख) सांस्कृतिक पीठिका--प्राचीन युग से आधुनिक युग तक विभिन्न विदेशी जातियों का आगमन --भारतीय संस्कृति पर प्रभाव।

(ग) आलोच्यकाल तथा उससे पूर्व के सांस्कृतिक धार्मिक आन्दोलन।

(१) राजाराममोहन राय- ब्रह्म समाज की स्थापना

(२) स्वामी दयानन्द- आर्य समाज की स्थापना

(३) स्वामी विवेकानन्द -वेदान्त दर्शन की नवप्रतिष्ठा

(४) महात्मा गांधी- जीवन तथा राजनीति में सत्य अहिंसा की प्रतिष्ठा

(घ) खड़ी बोली के ऐतिहासिक सन्दर्भ -- सांस्कृतिक मूल्य -- ऐतिहासिक सन्दर्भों में सांस्कृतिक विचारधारा --पात्रों के जीवनादर्शों का सांस्कृतिक महत्व--निष्कर्ष ।

नवम अध्याय :- ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धियां(उपसंहार) (पृ० ५२५-५३२)

ऐतिहासिक काव्य-- विश्लेषण और निष्कर्ष --खड़ी बोली हिन्दी के ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में कतिपय नवीनताएं --

(क) कथानक--कथावस्तु के नियोजन में मनोवैज्ञानिक दृष्टि

(ग) चरित्र-चित्रण — आधुनिक बौद्धिक विचारधारा के अनुकूल चरित्रों का पुनर्मूल्यांकन --नायक प्रतिष्ठा में पात्रों के जीवन की कर्मशीलता एवं कर्मवीरता का महत्व-- नारी पात्रों की महत्ता।

(घ) रस निरूपण-- रस के उपकरण संयोजित करने की अपेक्षा संवेदनाजन्य भावों को सर्वाधिक करने की दृष्टि ।

(ङ) ऐतिहासिक यथार्थता--ऐतिहासिक तथ्यों की सुरक्षा--तथ्य की प्रखरता के लिए कल्पना का संयोजन ।--रस, भाव, कला के अतिरिक्त मानव जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धियाँ --निष्कर्ष ।

(पृ० ५३३ से ५५३ तक)

परिशिष्ट

सहायक पुस्तक सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची



विषय प्रवेश तथा पृष्ठभूमि

बीसवीं शताब्दी का खड़ी बोली काव्य देश की स्वाधीन चेतना का काव्य है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाट्य-साहित्य में ऐसे अनेक संदर्भों का उल्लेख मिलता है जिसमें भारत के प्राचीन इतिहास ने अनेक दृष्टिकोणों से उभार लिया है। उसमें अतीत के ऐसे महापुरुषों का उल्लेख भी है जिनके गौरवपूर्ण कार्यों एवं जीवन के उच्चादर्शों से भारतीय जनता को प्रेरणा प्राप्त हो सकी है। किसी भी देश एवं जाति की समस्याएं ऐतिहासिक महत्व ग्रहण करती रही हैं तथा कालान्तर में उनका उल्लेख परवर्ती परम्परा के लिए सदैव प्रेरणा का मूल मन्त्र रहा है। यह सामान्य रूप से कहा जाता है कि इतिहास अपना आवर्तन करता है। जो घटनाएं शताब्दियों पूर्व घटित हो चुकी हैं वे ही विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में अथवा परिवर्तित संदर्भों में घटित होती रहती हैं। अतएव किसी कालविशेष का ऐतिहासिक परि-ज्ञान भविष्य की घटनाओं के लिए ज्योति स्तम्भ हो सकता है। पूर्व अनुभवों के आधार पर हम वर्तमान समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास कर सकते हैं। साहित्य-सृजन में इतिहास का आधार इसी कारण लिया जाता है। दूसरे शब्दों में यही साहित्य और इतिहास का सन्धि-बिन्दु है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में काव्य का विशिष्ट स्थान है। काव्य ने इतिहास को औज्ज्वल्य एवं प्रेरणापूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। अतः काव्य की जो रागात्मक विशिष्टता है उसके सम्बन्ध में विचार करना यहां उपयुक्त ही नहीं वरन् आवश्यक भी है।

(क) साहित्य की विधाओं में काव्य की विशिष्टता :

साहित्य का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है । सामान्यत: हितकारी भावों के वर्णन को साहित्य कहा जा सकता है किन्तु जब समस्त रागात्मक वृत्तियों से प्रेरित होकर साहित्य मानव जीवन का विश्लेषण करता है तब वह मनुष्य के समस्त व्यापारों में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करता है । इस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नाट्य-साहित्य कथा-साहित्य तथा निबन्धादि अनेक शैलियों में प्रस्तुत होती है । इन सब शैलियों में काव्य शैली सर्वाधिक प्रभावपूर्ण तथा आकर्षक कही जा सकती है । प्राचीन संस्कृत साहित्याचार्यों ने काव्य शब्द का अर्थ बड़े ही व्यापक रूप में लिया । समस्त साहित्य को उन्होंने काव्य की संज्ञा दी किन्तु काव्य कहने मात्र से ही `कविता` अर्थात् रसपूर्ण पद्यरचना का बोध होता है, अत: यहां हम काव्य को कविता के सन्दर्भ में ही देखेंगे ।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में काव्य को विशिष्टता प्रदान की गई है । लालित्य की दृष्टि से अन्य विधाएं भी साहित्य में ही परिगणित हैं तथा वे भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं किन्तु काव्य की विलक्षणता सर्वमान्य है। रागात्मिका वृत्ति की प्रधानता तथा अनुभूति की तीव्रता के कारण कविता जीवन के विविध पार्श्वों का उद्घाटन अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक मनोरम तथा सत्य रूप में करती है । रागात्मिका वृत्ति भाव और अन्तश्चेतना के द्वारा वह जड़ तथा चेतन के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है । प्रत्येक चेतन में रागात्मिका वृत्ति विद्यमान रहती है किन्तु कुछ विशेष क्षण ऐसे होते हैं जब यह अनायास उद्दीप्त हो उठती है । इसका स्पष्ट कारण अनुभूति की तीव्रता है तथा रागात्मिका वृत्ति का पर्यवसान अनुभूति में ही होता है[१] । अनुभूति कविता के अन्तर्गत रागात्मक प्रवृत्तियों की परिधि भी परिस्थितियों के अनुसार घटती

१- कविता को मैं जीवन की एक पवित्र अनुभूति मानता हूं इसलिए कविता में हृदय की उन समस्त प्रेरणाओं का आकलन रहता है जो जीवन के नैतिक धरातल को अधिक से अधिक ऊंचा उठा सकती है । --डा० रामकुमार वर्मा, काव्यधारा, पृ० ६०

और बढ़ती रहती है । जब रागात्मक वृत्ति कवि के मानस की समस्त भाव-नाओं का संग्रह कर उसके व्यक्तिगत भावों और कल्पनाओं में सीमित रहती है तब वह गीतिकाव्य को जन्म देती है किन्तु जब कवि की अनुभूति अपनी व्यक्तिगत परिधि से बाहर निकल बाह्य जगत् से अपना सम्बन्ध जोड़ती है तो वह प्रबन्ध काव्य का अथवा खण्ड काव्य का रूप ग्रहण करती है । दोनों ही परिस्थितियों में कविता व्यष्टि और समष्टि की समस्याओं को आत्मीयता के साथ अनुबन्धित करती है । ऐसी स्थिति में विश्व के सुख-दुःख ,आशा-निराशा, कवि की अनुभूति के अंग बन जाते हैं । सम्पूर्ण जगत् के अन्तर्तम की झाँकी वह अपने अन्तर्जगत में देखता है उसे समेट कर वह एक नया रूप प्रदान करता है । हृदय का हृदय से इतना गहरा और चरम तादात्म्य काव्य के अतिरिक्त अन्यत्र सम्भव नहीं । व्यष्टि में समष्टि का ऐसा भावनामय बोध काव्य के अतिरिक्त दुर्लभ है ।[१]

इस रागात्मिका वृत्ति के कारण ही काव्य में भाव प्रवणता, संवेदना-स्पर्श और संगीत रस अधिक रहता है । कविता की भावनामय संगीत लहरी, सुनने वाले को ऐसा भाव विभोर किए रहती है कि वह अपने मन की सम्पूर्ण दुःश्चिन्ताओं से मुक्त होकर एक क्षण के लिए अलौकिक आनन्द में निमग्न हो जाता है । एक एक शब्द और उसमें निहित भाव का आनन्द वह झूम झूम कर लेता है ।

१- वास्तव में जीवन में कविता का वही महत्व है जो कठोर भित्तियों से घिरे हुए कक्ष के वायुमंडल को अनायास ही बाहर के उन्मुक्त वायुमण्डल से मिला देने वाले वातायन को मिला है । जिस प्रकार वह प्रस्तुत हमें सीमा रेखा पर खड़े होकर क्षितिज तक दृष्टि प्रसार की सुविधा देने के लिए है, उसी प्रकार कविता हमारे व्यष्टि सीमित जीवन को समष्टि व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही है । व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बांधती है । साहित्य के अन्य अंग भी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु न उनमें सामंजस्य की खोज लेने के कारण ही कविता उन ललित कलाओं में उत्कृष्ट स्थान पा सकी है जो गति की विभिन्नता स्वरों की एकरूपता या रेखाओं की विषमता के सामंजस्य पर स्थित है ।"

-महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि ,भाग प्रथम ,भूमिका

"कविता सुनने वाला किसी भाव में मग्न रहता है और कभी कभी बार बार एक ही पद सुनना चाहता है, पर कहानी सुनने वाला आगे की घटना के लिए आकुल रहता है। कविता सुनने वाला कहता है, 'ज़रा फिर तो कहिए'। कहानी सुनने वाला कहता है -' हां, तब क्या हुआ ?'[1]"

श्रवणकर्ता की भाव विभोरता उसे आनन्द की अनुभूति कराती है और कवि की भाव प्रवणता कवि की संवेदना के चरम पर ले जाती है। उसकी संवेदना का प्रसार महान् से महान् एवं तुच्छ से तुच्छ, प्रत्येक वस्तु ~~कण~~ तक होता है। एक ओर जहां " पछताता पथ पर आता दो टूक कलेजे के करता हुआ भिखारी" कवि-संवेदना को अपने में समेटता है वहीं मिट्टी से मैले एक तुच्छ फूल के पौधे को भी उसका संवेदनशील हृदय उसी भाव प्रवणता से अपनाता है। इस बिन्दु पर आकर काव्य दर्शन से भी ऊंचा उठ जाता है। दार्शनिक व्यक्ति-विशेष में सार्वलौकिकता के दर्शनों की खोज में रत रहता है और इस सत्य की खोज कर उसे स्थित कर देने में सन्तोष अनुभव कर लेता है। किन्तु काव्य व्यष्टि के द्वारा समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार कविता स्पन्दन युक्त सार्वलौकिक सत्य का मूर्त रूप है। यह तो हुई साहित्य की बात, कलाजगत् में भी (वास्तुकला,मूर्तिकला,चित्रकला और संगीतकला आदि) काव्यकला का स्थान सर्वोपरि है। यह सत्य है कि साहित्य तथा अन्य ललित कलाएं भावाभिव्यक्ति के माध्यम हैं किन्तु मानव हृदय की सूक्ष्मताएं काव्य में अपेक्षाकृत अधिक रागपूर्ण रूप में अवतरित होती हैं। दूसरे, काव्य में अन्य कलाओं का समावेश भी स्वयं ही हो जाता है अत: काव्य की विशिष्टता अन्य कलाओं में स्वत: दृष्टिगोचर होती है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुख्य रूप से रागात्मिका वृत्ति की प्रधानता तथा अनुभूति की तीव्रता के कारण काव्य का साहित्य में विशेष स्थान है।

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल , रस मीमांसा,

(ख) ब्रज भाषा और खड़ी बोली :-

(१) ब्रजभाषा — हिन्दी का लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों का साहित्य भाषा की दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य है । सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में साहित्य की ब्रजभाषा का माधुर्य और लालित्य अष्टछाप के प्रमुख भक्त कवि सूरदास द्वारा उपलब्ध होना आरम्भ हुआ था, जिसने बीसवीं शताब्दी के पूर्व और उन्नीसवीं शताब्दी के ~~अन्त्य~~ अन्त तक साहित्य में एकछत्र राज्य किया है । यह भाषा पश्चिमी हिन्दी की पांच बोलियों (ब्रज,खड़ी बोली, कन्नौजी,बांगरू और बुन्देली) में से एक बोली है । बहुत समय तक यह बोली भाखा मध्यदेशी,अन्तर्वेदी,पिंगल तथा ग्वालेरी आदि नामों से जानी जाती रही । किन्तु ब्रज प्रदेश में ही बोली जाने के कारण सम्भवत: यह `ब्रज भाषा` या `भाखा` कहलाई ।[१]

ब्रज भाषा का प्राचीन रूप बारहवीं शताब्दी से उपलब्ध होता है । पश्चिम में इसका नाम पिंगल था । जैन मुनियों की रचनाओं में यत्र तत्र इसका रूप मिलता है । पूर्व में सिद्धों और नाथों की रचनाएं तथा रासो-ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं । पूर्व में वैष्णव कवियों द्वारा इसे `ब्रजबुलि` नाम दिया गया था ।रामपूजन तिवारी बंगाली कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त के द्वारा `ब्रजबुलि` शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ मानते हैं ।[२] `ब्रजभाषा` शब्द का स्पष्ट प्रयोग भिखारी दास ने(काव्य निर्णय के रचयिता) और कवि गोपाल ने(रसविलास के रचयिता) किया ।[३]

१- डा० कैलाश चन्द्र भाटिया , ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ८४

२- `ब्रजबुलि`शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दि में मिलता है । बंगाली कवि ईश्वर चन्द्र गुप्त की रचना में पहले पहले इस शब्द का प्रयोग हुआ है । - ब्रजबुलि की भाषागत तथा व्याकरणगत विशेषताएं ,धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक से।

३- डा० कैलाश चन्द्र भाटिया, ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन , पृ० ८४

काव्य निर्णय में भिखारी दास का एक दोहा प्राप्त होता है -

भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहै सुमति सब कोय ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति सुगमु जो होय[१]।।
(काव्य निर्णय १।१४)

ब्रजभाषा का प्रचार तथा प्रसार :-

सोलहवीं शताब्दी के लगभग वल्लभ सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्री वल्लभाचार्य ने श्री नाथ जी के कीर्तन के हेतु भक्तों को ब्रजभाषा में रचना करने के लिए प्रेरित किया । उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप नाम से आठ कवियों की एक मंडली की स्थापना की । ये सभी कवि समकालीन थे और अत्यन्त उच्च कोटि के भक्त संगीतज्ञ एवं काव्य निर्माता थे । इन कवियों की क्रोड़ में पोषित होकर तथा कृष्ण भक्ति का आश्रय पाकर ब्रज भाषा की अभूतपूर्व उन्नति हुई। ब्रज इन भक्तकवियों के आराध्य देव भगवान कृष्ण के लीलाविलास की भाषा थी अत: इन्होंने इसे खूब गौरवान्वित किया । अन्य लोक भाषाओं का साहित्य भी उपलब्ध होता है किन्तु ब्रज भाषा जैसा माधुर्य उनमें प्राप्त नहीं होता । काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित होते हुए ब्रजभाषा इतनी प्रभावशालिनी सिद्ध हुई कि रामोपासक भक्त कवि तुलसीदास भी अवधी में अपनी प्रमुख रचनाएं करते हुए इस भाषा के प्रयोग से अपने को वंचित न कर सके । उन्होंने रामोपासना सम्बन्धी अपनी अनेक रचनाएं (कवितावली,विनयपत्रिका,गीतावली आदि) इसी भाषा में रचीं ।

मुस्लिम वर्ग के अन्तर्गत सहिष्णु और दार्शनिक कवि आलम और रसखान अपनी काव्य विधायक भावनाओं का प्रसार इसी भाषा में कर रहे थे ।

इधर मध्ययुग की धार्मिक स्थिति भी ब्रजभाषाके प्रसार में अनुकूल सिद्ध हुई ।हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का परस्पर सम्पर्क हो रहा था । मुसलमान हमारी धार्मिक भावना और सांस्कृतिक एकता को आघात पहुंचारहे थे और इस्लाम

१- डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, ब्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ८५

के प्रसार में तत्पर थे किन्तु हिन्दू अपनी संस्कृति और अपने धर्म की रक्षा जी-जान से कर रहे थे और अपना सन्देश ब्रजभाषा में ही दे रहे थे। परिणाम स्वरूप रीतिकाल का समस्त साहित्य ब्रजभाषा के अप्रतिम माधुर्य से परिपूर्ण है जिसमें कवियों ने लौकिक और आध्यात्मिक जीवन की अनेक दशाओं का चित्रण किया है। इस भांति ब्रज सम्पूर्ण उत्तरापथ की एक मात्र काव्य भाषा बन गई थी और लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक हिन्दी जगत् में इसी पद पर प्रतिष्ठित रही।

ब्रजभाषा और उसकी अवनति :-

प्रतिष्ठित प्रसिद्ध तथा प्रचलित होते हुए भी ब्रज भाषा आधुनिक युग में काव्य भाषा क्यों न बनी रह सकी तथा खड़ी बोली ने क्यों इसका स्थान ग्रहण किया, यह देखना आवश्यक है।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ साथ जहां एक ओर भारतीय इतिहास में राजनीतिक मोड़ आया वहीं हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक धारा भी नवीन मार्ग की ओर प्रवाहित हुई। साहित्य में भाव, भाषा, शैली सभी में युगान्तर आया। पश्चिम ने हमारी चिन्तन वृत्ति को अधिक प्रभावित किया। भाव तत्त्व के साथ साथ बुद्धि तत्त्व का उन्मेष हमारे जीवन में हुआ। बुद्धि तत्त्व से प्रेरित ज्ञान के अनेकानेक क्षेत्र नए सन्दर्भों को लेकर उद्घाटित हुए जिनके लिए पद्य की अपेक्षा गद्य की उपयोगिता अधिक व्यावहारिक दृष्टिगत हुई। अब तकप्राय: समस्त विचारों की अभिव्यक्ति ब्रज भाषा पद्य द्वारा ही होती आ रही थी। पद्य की प्रभविष्णुता जन मानस पर इतनी अधिक थी कि उसके समक्ष गद्य सम्यक् रूप से उभर कर साहित्य में प्रवेश नहीं कर सका था। सामान्य रूप से वार्ता साहित्य ने ही गद्य को न्यूनाधिक रूप में जीवित रखा, नहीं तो गद्य के नाम से टीका, तिलक, भाष्य ही उपलब्ध थे। इस प्रकार ब्रजभाषा में गद्य की कभी कोई पुष्ट परम्परा नहीं रही थी किन्तु हिन्दी साहित्य में अब गद्य की स्थापना हुई। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध और आलोचना आदि के द्वारा भी विचारों की अभिव्यक्ति प्रारम्भ हुई। इधर प्रेस की अनिवार्यता अनुभव हुई और सन् १८३५ ईसवी में मुद्रणालय की स्थापना हुई।

इस प्रकार खड़ी बोली गद्य का खूब प्रचार व प्रसार हुआ । गद्य की एक मात्र भाषा खड़ी बोली हुई तो कुछ प्रगतिशील विद्वान लेखकों ने पद्य के लिए भी खड़ी बोली भाषा का प्रयोग आरम्भ किया । श्रीधर पाठक ,अयोध्याप्रसाद खत्रीतथा महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सक्रिय पग उठाया । खड़ी बोली में काव्य रचना प्रारम्भ हुई । ब्रजभाषा प्रेमियों द्वारा अत्यन्त तीव्र विरोध हुआ किन्तु समय की मांग के समक्ष सभी को झुकना पड़ा और शनैः शनैः पन्द्रह-बीस वर्षों में ही खड़ी बोली ने परम्परा से चली आती हुई ब्रज भाषा का स्थान ले लिया ।

इन साहित्यिक कारणों के अतिरिक्त कुछ समाजगत कारण भी प्रस्तुत हुए । ब्रजभाषा के प्रसार में कृष्ण भक्ति और राजदरबारों के ने बहुत योग दिया था । आधुनिक समय में ये दोनों शक्तियाँ दुर्बल पड़ गई । कृष्ण भक्ति के पवित्र भाव पर रीतिकालीन कवियों ने विलासिता और कामुकता की परतें चढ़ाई थीं जो कालान्तर में जनता की अरुचि का कारण बनीं । अंग्रेजों के आश्रित होने के कारण अब राजा गण भी दरबारी कवियों को अधिक सहयोग नहीं दे सकते थे । एक और कारण था वह यह कि ब्रजभाषा एक मात्र काव्य भाषा होते हुए भी ब्रजमंडल से बाहर बोल-चाल की भाषा नहीं बन पाई थी । बोलचाल की भाषा खड़ी बोली ही थी । अंग्रेजों ने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भी जनता की इसी भाषा को अपनाया था ।इस प्रकार नवीन शक्तियों के प्रादुर्भाव और समय की मांग के समक्ष ब्रज भाषा के शक्ति सम्पन्न न हो सकने के कारण खड़ी बोली गद्य और पद्य की एक मात्र भाषा बनती गई तथा ब्रजभाषा का प्रायः लोप होता गया ।

(२) खड़ी बोली :-

खड़ी बोली हिन्दी समग्र भारत की भाषा है । साहित्य एवं सामान्य व्यवहार आज सभी में इसका प्रचलन है । राष्ट्र की एक मात्र भाषा खड़ी बोली हिन्दी किस प्रकार काव्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित होकर एकच्छत्र साम्राज्य की अधिकारिणी बन गई, इसका इतिहास भी अत्यन्त रोचक है ।

भाषा सर्वे के आधार पर तेरह आधुनिक भाषाएं मानी गयी हैं ।

सिंधी,लहँदा,पंजाबी,गुजराती,राजस्थानी,पश्चिमी हिन्दी,पूर्वी हिन्दी, बिहारी,उड़िया,बंगाली,असमी,मराठी,पहाड़ी भाषाएं।संविधान ने इसमें काश्मीरी भी जोड़ दी है। पश्चिमी हिन्दी प्राय: समग्र भारत अर्थात् उत्तरी-भारत में बोली जाती है। पश्चिमी हिन्दी की पांच प्रधान विभाषाएं या बोलियां हैं -खड़ी बोली,बांगरू,ब्रजभाषा,कन्नौजी और बुन्देली। यहां केवल खड़ी बोली का ही संदर्भ है।

पश्चिमी हिन्दी का विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर विंध्याटवी के पार मध्यप्रदेश में उत्तरी भाग तक और पश्चिम में जैसलमेर से पंजाब तक लगा कर पूर्व में आधे बंगाल तक है। इस क्षेत्र में ब्रजभाषा,कन्नौजी,बुन्देली आदि भी बोली जाती है।किन्तु प्रधानता खड़ी बोली की ही है[१]।मध्यकाल में दिल्ली के आस पास मेरठ ,बिजनौर में जो बोली हिन्दुओं द्वारा व्यवहार में लाई जाती थी उसे`हिन्दवी' अथवा`हिन्दुई'कहा जाता था। इसी प्रदेश तक पहले पहल इसके प्रचार की सीमा थी। किन्तु मुसलमानों के इन प्रदेश में बस जाने पर और दिल्ली को[२] शासन का केन्द्र बनाने पर उन्होंने इस प्रदेश की बोली को भी अपनाया। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का एक बड़ा साधन मान कर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहां जहां वे फैलते गए इसे भी अपने साथ लेते गए। इसमें उन्होंने अरबी फारसी के शब्दों की भरमार की तो इसके दो रूप हो गए। एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। अंग्रेजों ने इसी का एक तीसरा नाम

१-`इस भूमि भाग में हिन्दुओं के आधुनिक साहित्य पत्र-पत्रिकाओं शिष्ट बोल-चाल तथा स्कूली शिक्षा की भाषा एक मात्र खड़ी बोली हिन्दी ही है। साधारणतया हिन्दी शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है।'- डा० धीरेन्द्रवर्मा,हिंदी भाषा का इतिहास, भूमिका,पृ० ६०

२- इस बीच देश में मुसलमानों का आना हुआ जो फ़ारसी जबान के तेज थे।उस समय तक दिल्ली की खड़ी बोली साहित्य या काव्यकी भाषा नहीं थी। अन्य प्रादेशिक बोलियों के समान वह भी एक कोने में पड़ी थी।पठानों की राजधानी जब दिल्ली हुई तब मुसलमानों को यहां की बोली ग्रहण करनी पड़ी।'-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,बुद्धचरित ,भूमिका,

`हिन्दोस्तानी` अथवा `हिन्दुस्तानी` रहा । यूरोप से आकर व्यापार करने वाले भारत देश को `हिन्दोस्तान` और इसकी भाषा को `हिंदोस्तानी` कहा करते थे । उर्दू का बोलचाल वाला रूप भी हिन्दुस्तानी कहलाने लगा । इस प्रकार `हिंदी` ;उर्दू` तथा `हिन्दुस्तानी` इन सब का मूल आधार दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली खड़ी बोली ही है । साहित्य रचना में जब खड़ी बोली का प्रयोग किया जाने लगा और तत्सम शब्दों का आधिक्य हुआ तो बोलचाल की भाषा से यह भाषा क्लिष्ट हो गई । इस साहित्यिक हिंदी को अंग्रेज शुद्ध हिन्दी अथवा `हाई हिन्दी` के नाम से पुकारने लगे ।

खड़ी बोली शब्द का प्रयोग :-

दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली इस बोली को हिन्दवी, रेख्ता, हिन्दुस्तानी आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा किन्तु `खड़ी बोली` शब्द का प्रयोग लिखित साहित्य में सर्वप्रथम सन् १८०३ ई० में लल्लू जी लाल ने `प्रेमसागर` की भूमिका में किया है।[१] प्रेम सागर की भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि लल्लू जी लाल ने दिल्ली आगरे की बोली को `खड़ी बोली` नाम से पुकारा और इसी में अपने ग्रन्थ की रचना की ।

खड़ीबोली की उत्पत्ति के विषय में भ्रमात्मक विचार :-

लल्लू जी लाल द्वारा प्रयुक्त इस `खड़ी बोली` शब्द को लेकर इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक भ्रमात्मक विचार दृष्टिगोचर होते हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ी बोली भाषा को गढ़ने वाले अथवा उत्पन्न करने वाले लल्लू

१- एक समै व्यास देव कृत श्री मद् भागवत के दशम स्कन्ध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया । सो पाठशाला के लिए श्री महाराजाधिराज सकल गुण निधान, पुण्यवान महाजन मार कुइस वेलिज्लि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में श्रीयुत गुनगाहक गुनियन सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् १८६० में श्री लल्लू जी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह नाम प्रेम सागर धरा ।`-डा०धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी भाषा का इतिहास, भूमिका पृ०६५

जी लाल हैं । इससे पूर्व इस भाषा का अस्तित्व ही नहीं था । इस मत के मानने वालों में ग्रियर्सन साहब प्रमुख हैं । लाल चन्द्रिका की भूमिका में प्रेम सागर की भाषा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि इससे पूर्व इस प्रकार की भाषा इस देश में नहीं थी । इसका आरम्भ १९ वीं शताब्दी में अंग्रेजों के प्रभाव से हुआ[१] । प्रेम सागर को रच कर लल्लू जी लाल ने एक नई भाषा गढ़ डाली ।

ग्रियर्सन साहब के मत का खंडन स्वयं उन्हीं के आगे के कथन से हो जाता है । उन्होंने लिखा है -- जब लल्लू जी लाल ने प्रेम सागर लिखा तो हिंदुओं ने देखा कि यह तो वही गद्य की भाषा है जिसे वे अनजाने ही जीवन भर बोलते रहे हैं ।वास्तव में खड़ी बोली न तो अविष्कृत भाषा है और न ही किसी एक विशेष लेखक द्वारा गढ़ी गई है ।जिस समय लल्लू जी लाल प्रेम सागर की रचना कर रहे थे ठीक उसी समय आगरे में सदल मिश्र नासिकेतोपाख्यान की रचना उसी भाषा में कर रहे थे[२] । यदि लल्लूजी लाल द्वारा ही इस भाषा का आविष्कार होता तो इतनी शीघ्रता से एक नई भाषा कूद कर आगरा कैसे पहुंच गई और उसका प्रचलन इतनी शीघ्रता पूर्वक हो गया । वस्तुतः भाषा कविता अथवा कहानी नहीं होती कि बना लिया

१- "Such a language did not exist in India before. When, therefore, Lalluji Lal wrote his Prem-Sagara in Hindi, he was inventing an altogether new language".

Introduction, Lal Chandrika-Greyerson.

२- नासिकेतोपाख्यान के गद्य का नमूना :-

' कुंड में क्या अच्छा निर्मल पानी है कि जिसमें कमल के फूलों पर भौंरे गुंज रहे थे, तिस पर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते,आस पास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रहे थे जैसा बसंत ऋतु का घर ही होय ।'

-रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी

जाय या 'गढ़' लिया जाय । भाषा विज्ञान इस बात का साक्षी है कि भाषा का विकास शनै: शनै: होता है और कोई भी भाषा साहित्यिक भाषा बनने से पूर्व बहुत समय से बोल-चाल की अवस्था में रहती है।[1] डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'प्रेम सागर' से भी पूर्व राम प्रसाद 'निरंजनी' की भाषा को खड़ी बोली का स्वरूप ही माना है।[2] खड़ी बोली का अस्तित्व भी अनेक स्वरूप भेद के साथ लोक में उसी प्रकार था जिस प्रकार साहित्य-क्षेत्र के बाहर हिन्दी प्रदेश की किसी अन्य बोली का । यह सत्य है कि दिल्ली की यह बोली बहुत समय तक काव्य भाषा नहीं बन सकी फिर भी समय समय पर वह अपने अस्तित्व का परिचय देती रही । यह कहा जा सकता है कि लल्लू जी लाल ने इस बोली का नामकरण किया । इनके ग्रन्थ से पूर्व इस बोली के लिए 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । 'खड़ी बोली' के नामकरण के सम्बन्ध में भी भांति-भांति के विचार मिलते हैं । इसके उच्चारण में कुछ खड़ापन है, सम्भव है इसीलिए इसका यह नाम रखा गया है।[3] खड़ी

१- 'साहित्य के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि कोई भाषा साहित्य अवस्था में आने से पूर्व न जाने कितने काल तक बाल्य अवस्था में रहती है।'

-डा० श्यामसुन्दरदास, हिन्दी साहित्य, पृ० ८३

२- 'राम प्रसाद 'निरंजनी' और दौलत राम की भाषा ग्रियर्सन के इस मत का पूर्णत: खण्डन करने के साथ लल्लू लाल कृत प्रेम सागर को आधुनिक साहित्यिक खड़ी बोली का सर्वप्रथम ग्रन्थ भी सिद्ध नहीं होने देती । उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना शुद्ध संस्कृत शब्दों से समन्वित खड़ी बोली में की । रामप्रसाद 'निरंजनी' (१७४१) और दौलतराम (१७६१) की रचनाओं से अभी तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर खड़ी बोली गद्य के आधुनिक रूप का स्वतंत्र सूत्रपात मान सकते हैं।'

-डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २७६

३- 'ब्रजभाषा की अपेक्षा यह बोली वास्तव में खड़ी-सी लगती है कदाचित् इसी कारण इसका नाम खड़ी बोली पड़ा ।'

-डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी ~~साहित्य~~ भाषा का इतिहास, पृ० ६४

बोली नाम इतना प्रचलित हुआ है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग अब जनता में इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है ।

खड़ी बोली की प्राचीनता:-

खड़ी बोली हिंदी ब्रजभाषा आदि से कम प्राचीन नहीं है[1] । सहजिया सम्प्रदाय के कुछ सिद्धाचार्यों की रचनाओं में जो कि सातवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक उपलब्ध है, कतिपय ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनमें खड़ी बोली के प्राचीन और वर्तमान रूप मिलते हैं[2] । श्री ब्रजरत्नदास जी ने अपने खड़ी बोली के इतिहास में कुछ इस प्रकार के उदाहरण दिये हैं । इधर हिंदी साहित्य के आदिकाल में अमीर खुसरो, मध्यकाल में कबीर और रीति काल में भूषण आदि की रचनाओं में खड़ी बोली के प्रयोग बराबर मिलते हैं । अमीर खुसरो ने "पहेली और मुकरियां" में खड़ी बोली का प्रचुर प्रयोग किया है[3] । कबीर की रचनाओं में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ । इस पंच मेल भाषा में खड़ी बोली का रूप भी बहुत स्पष्ट है[4] । मध्य काल में प्रेमकाव्यों की रचनाएं हुई।इनकी मुख्य

१- प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रन्थों में जहां तहां खड़ी बोली के रूप भी बिखरे पड़े हैं। रासो कबीर भूषण आदि में बराबर खड़ी बोली के प्रयोग वर्तमान हैं । इससे यह तो स्पष्ट ही है कि खड़ी बोली का अस्तित्व आरम्भ से ही था यद्यपि इस बोली का प्रयोग हिन्दू कवि और लेखक साहित्य में विशेष नहीं करते थे ।"--डा० धीरेन्द्र वर्मा, हि०भा०इतिहास,पृ०८१

२- इस सम्प्रदाय के आदि सिद्धाचार्य लुई पाद हुए इनकी रचनाओं में खड़ी बोली का रूप स्पष्ट है ।उदाहरण के लिए-

काया तरुवर पंचवि डाल चंचल चित पईठो काल।
दिट्ट करिव महासुह परिमाम लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जान।।
-ब्रजरत्नदास ,खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३१

३-टट्टी तोड़ कर घर में आया बरतन बरतन सब सरकाया।
खा गया पी गया दे गया बुत्ता ए सखि साजन ना सखि कुत्ता।।
- खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास,श्रीब्रजरत्नदास

(शेष-

भाषा अवधी रही परन्तु कहीं-कहीं खड़ी बोली का रूप भी मिलता है। इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' में खड़ी बोली प्रखर रूप में प्रयुक्त हुई है। रीतिकालीन कवियों में यद्यपि ब्रजभाषा के प्रयोग की ही मुख्यता रही परन्तु भूषण के अतिरिक्त बिहारी, पद्माकर[१], कुलपति तथा आलम आदि ने खड़ी बोली का प्रयोग भी किया। खड़ी बोली हिन्दी का एक विशिष्ट रूप दक्षिण में भी पल्लवित हुआ। बीजापुर तथा गोलकुण्डा की [illegible] रियासतों को केन्द्र बना कर कुछ मुसलमान सूफ़ी संतों ने खड़ी बोली हिन्दी को 'दकनी' या 'हिन्दवी' के नाम से प्रचारित एवं प्रसारित किया। इस 'दकनी' का व्याकरण शतश: खड़ी बोली के व्याकरण से ही अनुशासित है यद्यपि इसमें ब्रजभाषा, मराठी तथा कन्नड़ के शब्दों का भी स्वतंत्रतापूर्वक स्थान दिया गया है। कविता, कहानी तथा वर्णनात्मक प्रबन्ध में 'दकनी' साहित्य का निरन्तर विकास होता रहा। यह कहा जा सकता है कि इसी 'दकनी' ने आगे चल कर उर्दू का रूप ग्रहण किया होगा क्योंकि जब 'दकनी' का कवि 'वली' उत्तरभारत में आया तब उसने 'दकनी' को फ़ारसी का अलंकरण प्रदान करते हुए एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसे इतिहास लेखकों ने 'उर्दू' की संज्ञा दी। इस 'दकनी' में काल्पनिक कथाओं के साथ साथ ऐतिहासिक संदर्भों का भी उल्लेख किया गया जिससे कथा-साहित्य में सजीवता एवं जागरूकता आ सकी। इस साहित्य का प्रसार सोलहवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक बड़े कौशल एवं सौन्दर्य के साथ साहित्य में होता रहा।

शेष-- (४) नारी तो हम भी करी कीया नहीं विचार।
जब कीया तब परिहरि नारी बड़ा विकार॥
--श्री ब्रजरत्नदास, खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास.

१- 'गुलगुली गिलमें गलीचा है गुणीजन हैं, चांदनी है चिक है चिरागन की माला है।'
- पद्माकर

बीसवीं शताब्दी तथा खड़ी बोली :-

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में भारत की राजनीति में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ । मुगल शासन की नींव उखड़ने लगी । सन् १८५६ ई० तक भारत-वर्षपर प्राय: अंग्रेजों का प्रभुत्व हो गया था । इस परिवर्तन के कारण मध्य देश की हिन्दी पर काफी प्रभाव पड़ा । ब्रजभाषा की शक्ति अट्ठारहवीं शताब्दी में ही क्षीण हो चुकी थी । अब अंग्रेजों के शासन काल में खड़ीबोली गद्य को अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला ।फलस्वरूप,लल्लू लाल जी ने `प्रेमसागर`तथा सदल मिश्र ने `नासिकेतोपाख्यान` की रचना की । गद्य साहित्य में खड़ी बोली हिन्दी का वास्तविक प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ ।साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द जी ने कार्य किया । किन्तु पद्य अभी तक ब्रज भाषा में ही लिखा जाता था । उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली में कविता करने की एक लहर सी उठी अवश्य थी किन्तु भारतेन्दु जी ने खड़ी बोली में कविता करने में असमर्थता प्रकट की थी। उस समय कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली विशेष रूप से नहीं अपनाई जा सकी। पद्य क्षेत्र में खड़ी बोली कविता के आन्दोलन का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ । श्रीधर पाठक ,अयोध्याप्रसाद खत्री और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया ।श्रीधर पाठक ने गोल्ड स्मिथ कृत `हरमिट` का अनुवाद `एकान्तवासी योगी` के नाम से किया । इस पुस्तक की अत्यन्त प्रशंसा हुई । यद्यपि प्रारम्भ की खड़ी बोली में ब्रज भाषा के शब्द भी मिश्रित हैं[1]। तथापि यह प्रयत्न स्तुत्य था । द्विवेदी जी के सम्पादन काल में तो खड़ी बोली को एक ऐसा सुदृढ़ रूप प्रदान हुआ जिसका विकास हम आज की साहित्यिक भाषा में देखते हैं । द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया ।

१- ओस बूंद ज्यों गिरे व्योम से कोमल निर्मल सुखकारी
त्यों ये मृदुल बचन योगी के लगे पथिक को दुखहारी
नम्र भाव से कीनी उसने विनय समेत प्रणाम
चला साथ योगी के हर्षित जहं उसका विश्राम । -श्रीधर पाठक,`एकान्त
वासी योगी`,पृ० ३

सभी विरोध अब तक शान्त हो गए थे । विद्वान् लेखकों ने द्विवेदी जी का पूर्ण सहयोग किया । इन्होंने खड़ी बोली की रचनाओं के लिए द्विवेदी जी से भरपूर प्रोत्साहन प्राप्त किया । फलत: बीस वर्षों में खड़ी बोली ने पद्य के क्षेत्र में भी अधिकार प्राप्त कर लिया ।[1] ब्रजभाषा का रूप भी खड़ी बोली में से धीरे-धीरे लुप्त होता गया । इस दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त विशुद्ध खड़ी बोली के प्रथम कवि हैं ।[2] मैथिलीशरण गुप्त ,जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`,सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा,डा०रामकुमार वर्मा तथा अन्य द्विवेदीकालीन कवियों ने खड़ी बोली को पल्लवित तथा पुष्पित किया । सुसंस्कृत शब्दावली को क्रिया रूप के साथ सरसता प्रदान की । आज खड़ी बोली साहित्य तथा सामान्य व्यवहार की भाषा है । हिन्दी का अर्थ ही खड़ी बोली के रूप में ग्रहण किया जाने लगा है । यद्यपि हिंदी की अन्य प्रादेशिक बोलियां भी अपने अपने प्रदेशों में बोली जाती हैं[3] तथापि साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का ही एकाधिकार है ।

१- परिश्रम और लगन से कवियों ने खड़ी बोली में केवल अट्ठारह बीस वर्षों के भीतर ही वह सफाई सुघराई तथा अर्थ गंभीरता ला दी जो ब्रज भाषा में शताब्दियों मंजने घिसने के बाद आई थी ।`

-डा० कपिलदेव सिंह,ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका, पृ० १४७

२- डा० रामकुमार वर्मा,आधुनिक हिन्दी काव्य,निवेदन

३- साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली हिन्दी के व्यापक प्रभाव के रहते हुए भी हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलियाँ अपने-अपने प्रदेशों में आज भी पूर्ण रूप से जीवितावस्था में हैं । मध्य देश के गावों की समस्त जनता अब भी खड़ी बोली के अतिरिक्त ब्रज, अवधी, बुन्देली,भोजपुरी,छत्तीस गढ़ी आदि बोलियों के आधुनिक रूपों का व्यवहार कर रही है ।

- डा० धीरेन्द्र वर्मा, हि०भा०इतिहास, पृ० ८२

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि खड़ी बोली साहित्य में अपनी उत्पत्ति के समय न किसी व्यक्ति विशेष द्वारा गढ़ी गई थी और न ही कोई स्वप्निल भाषा थी । यह खड़ी बोली थी जो अपने अनेक रूपों में प्राचीन समय से चलती आ रही थी । समय की आवश्यकता ने इसे साहित्य में महत्व प्रदान किया । विद्वानों के नवीन दृष्टिकोण ने इसे ब्रज भाषा के स्थान पर काव्य क्षेत्र में अंकुरित, पल्लवित तथा पुष्पित किया और आज आलोच्य काल की यह गद्य और पद्य की एक मात्र साहित्यिक भाषा है ।

(ग) आधुनिक युग में खड़ी बोली की मान्यता :

श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद खत्री तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने `बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में साहित्य के क्षेत्र में जिस खड़ी बोली का सूत्रपात किया था वही क्षीण धारा मार्ग में आई अनेकानेक बाधाएं पार करते हुए, विशाल धारा बन कर समस्त आधुनिक हिन्दी साहित्य को पल्लवित एवं पुष्पित करती हुई गौरव के अपूर्व सिंहासन पर आसीन हुई ।

हिन्दी की (खड़ी बोली) सर्वग्राहिणी शक्ति एवं लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि २६ जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ से खड़ी बोली हिन्दी के राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त हुआ है ।

भाषा की संजीवनी शक्ति कहीं बाहर की वस्तु नहीं होती वह उसके अपने भीतर ही विद्यमान रहती है । खड़ी बोली में संजीवनी शक्ति थी। अपने शैशव काल में हुए सभी ~~विरोध~~ विरोध झेल कर भी यह बोली अपने लालित्य माधुर्य एवं कोमलता के कारण सर्वप्रिय हुई ।

भाषाओं का विवाद भारतवर्ष में स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व भी और उसके पश्चात् भी चलता ही रहा है । तीस पैंतीस वर्ष पूर्व बंगालियों में एक धारणा घर कर रही थी कि राष्ट्र भाषा बंगला होनी चाहिए किन्तु उनका यह स्वप्न साकार न हुआ ।

वास्तव में भारत बहुभाषी देश है ।` चार कोस पर पानी बदले , आठ कोस पर बानी' वाली कहावत यहां चरितार्थ रही है । फिर एक प्रान्त

की बोली बंगला राष्ट्रभाषा कैसे बन सकती थी ? बहुभाषी देश होते हुए भी हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो भारतवर्ष में अधिकाधिक समझी और बोली जाती है । इतनी सर्वप्रियता का स्पष्ट कारण है इस बोली की सरलता । सरलतापूर्वक सीखी जा सकती है, बोली तथा समझी जा सकती है । ऐसी "बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय" हिन्दी (खड़ी बोली) का राष्ट्रभाषा के पद पर सम्मानित होना निश्चित ही है ।[१]

प्रारम्भ में अंग्रेजों का कार्यक्षेत्र पश्चिमी बंगाल रहा है तथापि भारतवर्ष में रहते हुए ब्रिटिश जितनी सरलता से हिन्दी सीखने और बोलने लगे थे मेरे विचार में कदाचित् ही इसके अतिरिक्त साधारण ब्रिटिश जनता ने कोई अन्य भाषा सीखने का प्रयास किया हो । ऐसी जागरूक एवं सर्व-शक्तिग्राहिणी भाषा को जब जब राजकीय सम्मान और मान्यता भी प्राप्त हो गई है तो भविष्य में भी इससे बहुत आशाएं की जा रही हैं । शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत हिन्दी निदेशालय का सूत्रपात किया जाना तथा उसके तत्वावधान में वैज्ञानिक एवं अन्यान्य विषयों में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियों के निर्माण के लिए जागरूक प्रयत्न होना इस दिशा में ठोस कदम है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा भी इस दिशा के किए गए प्रयत्न अत्यन्त ही श्लाघ्य एवंआशापूर्ण हैं । वर्तमान समय में खड़ी बोली हिन्दी में असंख्य पत्र-पत्रिकाओं

१- जब तक लोग इस वादविवाद में पड़े हैं, नेतागण अंग्रेजी के प्रवाह में आत्म विस्मृत हुए बह रहे हैं, तब तक खड़ी बोली अपने साहित्य के उत्कर्ष में श्रेष्ठ आसन ग्रहण कर लेगी, इसमें मुझे बिल्कुल भी सन्देह नहीं है । मैं यह भी जानता हूं कि जो राष्ट्रभाषा होगी, उसे अपने साहित्यिक पौरुष से ही वह पद प्राप्त करना होगा ।

--सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" :परिमल :भूमिका,पृ० ७

का प्रकाशन हो रहा है । विज्ञान के क्षेत्र में इसका पदार्पण हो ही रहा है। वे विषय जो अब तक अंग्रेजी में केवल इसलिए पढ़ाए जाते हैं कि हिन्दी में पुस्तकें उपलब्ध नहीं होतीं, अब हिन्दी में ही पुस्तकें लिखने में विद्वान लेखक संलग्न हैं । सम्भव है, वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी में ही सभी पुस्तकें उपलब्ध हुआ करेंगी एवं शिक्षा का माध्यम एक मात्र खड़ी बोली हिन्दी ही होगा ।

इस प्रकार राष्ट्र भाषा खड़ी बोली हिन्दी आधुनिक युग की सर्वाधिक मान्यता प्राप्त भाषा है । इसमें बन्धुत्व भाव तथा पारस्परिक स्नेह के बीज निहित हैं । इसकी मान्यता और भी अधिक इसलिए बढ़ जाती है कि भारतवर्ष में एकमात्र यही एक ऐसी भाषा है जो भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक भारतीय भावनात्मक एकता का प्रतिनिधित्व करती है ।

(घ) <u>प्राचीन काव्य में ऐतिहासिक वृत्त</u> : (आदिकाल से रीतिकाल तक)

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग को काल विभाजन की दृष्टि से प्राचीन काव्य नाम दिया गया है और इस काल की रचनाएं प्राचीन काव्य के अन्तर्गत परिगणित की जाती हैं । प्राय: सभी भाषाओं का प्रारम्भिक काव्य ऐतिहासिक वीरगाथाओं का साहित्य है । हिन्दी साहित्य के प्राचीन काव्य से भी इस कथन की पुष्टि होती है । किसी काल विशेष में वीरसाहित्य रचे जाने में राजनीतिक पृष्ठभूमि का बहुत महत्व होता है । हिन्दी साहित्य का प्राचीन काल राजनीतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त अशान्ति तथा विप्लव का समय था । कोई एक केन्द्रीय सत्ता नहीं थी । देशी राजाओं में सर्वत्र परस्पर फूट तथा वैमनस्य का साम्राज्य था । राजाओं की व्यक्तिगत मान मर्यादा इतनी उदण्ड हो चुकी थी कि बात-बात में परस्पर तलवारें लड़ जाया करती थीं । राष्ट्रीय एकता का पूर्ण अभाव था । उत्तर भारत, विशेष कर राजस्थान में सर्वाधिक अशान्ति थी । देश की आन्तरिक अवस्था तो शोचनीय थी ही उधर विदेशियों के आक्रमणों से भारत पदाक्रान्त हो रहा था ।[1]

१- मुस्लिम आक्रमणों के प्रारम्भ होते ही समग्र भारत अपनी राष्ट्रीय एकता और

भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर (सिंध आदि) अरबों के आक्रमण इससे भी बहुत पहले आरम्भ हो चुके थे और एक बड़े भाग पर उन्होंने अधिकार भी कर लिया था परन्तु इस समय मुसलमानों के आक्रमणों `लूटों` और उनके राज्य-स्थापन की दृढ़ धारणा से भारतवर्ष कुचला जा रहा था। महमूद गज़नवी और मोहम्मद गौरी के आक्रमणों का यही समय था। ये आक्रमण कारी खंडित भारत को कुचलने और इसकी सांस्कृतिक एकता को सदैव नष्ट करने में लगे रहे। फिर भी वर्तमान समय तक समय-समय पर भारतीय जनता तथा देश प्रेम की अटूट भावना से परिपूर्ण भारतीय वीरों ने पुन: राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए वीरतापूर्ण प्रयास किया। परिणामस्वरूप वीरों के बलिदान और उनके पराक्रम तथा शौर्य का इतिहास काव्य में मुखरित हुआ।

साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति की सम्भावना ऐसे समय में हो नहीं सकती थी। परिस्थिति के अनुकूल वीर काव्य के अतिरिक्त अन्य प्रकार के साहित्य की रचनाएं जो प्राप्य भी हैं वे अपवाद ही हैं। इस समय का वीर काव्य भी एक विशिष्ट विशेषता सम्पन्न है। इस काल में कविगण राज्य के आश्रित हुआ करते थे। इन राज्याश्रित कवियों ने अपने स्वामी राजाओं के शौर्य और पराक्रम का गान अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से किया है। कारण स्पष्ट है। अपने स्वामी राजाओं की प्रसन्नता में इनका भविष्य सुरक्षित रहता था अत: उन्हें प्रसन्न करने के लिए ये कवि कोई कोर-कसर न उठा रखते थे। स्वाभिमान से पूर्ण तथा राष्ट्रीय एकता के स्पन्दन से पूर्ण कविताएं लिख कर

शेष- गौरव को खोकर अनेक राज्यों में बिखर गया। एक भारत, एक राष्ट्र और एकदेश की कल्पना स्वार्थों की घनीभूत लिप्सा में भस्मीभूत हो गई। भारत की राष्ट्रीय भावना जिसमें संपूर्ण देश की सांस्कृतिक एकता गूंजती थी, मुस्लिम काल में आकर प्रादेशिक एवं प्रान्तीय हो गई अनेक छोटे-छोटे नरेश तारों के समान टिमटिमाने के लिए व्याकुल होने लगे।`--हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना: प्रो० राजाराम रस्तोगी, पृ० ११,१२

राजाओं में प्रेरणा भरना इनका उद्देश्य कदापि नहीं रहता था । देश और राष्ट्र की अपेक्षा इस समय व्यक्ति की प्रधानता थी[1] ।

वीर गाथा समय के ऐतिहासिक वृत्त :

वीर गाथा समय का प्राचीन काव्य अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं होता। जो प्राप्य भी है उसकी ऐतिहासिक तथ्यों से इतनी विभिन्नता पाई जाती है कि केवल मात्र राजाओं के नाम लेकर और उन्हें अपने ग्रन्थों के नायक बना कर उनके शासन और जीवन के सम्बन्ध में अनेक कपोलकल्पित घटनाओं के गुम्बद खड़े किए हैं[2] । इन घटनाओं का उल्लेख न इतिहास में प्राप्त होता है और न ही शिलालेखों में । आश्रयदाताओं के उचित व अनुचित गुणानुवाद की फांक में कवियों ने सच्चाई का गला घोटने में भी भिझक नहीं की । किन्तु एक बात अवश्य है कि ऐतिहासिक सच्चाई और तथ्यों की दृष्टि से जहां ये ग्रन्थ प्राय: शून्य हैं वहां साहित्यिक सौन्दर्य एवं वीर भावों से भरी ये रचनाएं समस्त हिंदी साहित्य की सिरमौर हैं ।

प्राचीन काव्य में गाथाएं दो रूपों में मिलती हैं - प्रबन्ध काव्य तथा वीर गीत ।

१- यही कारण है कि जयचंद जैसे नृपतियों की काल्पनिक वीर गाथाएं रचने वाले कवि तो हुए पर सच्चे वीरों की पवित्र गाथाएं उस काल में लिखी भी नहीं गईं। ---हि०साहित्य: डा० श्याम सुन्दर दास : पृ० ९०

२- भारतीय कवियों ने नाम भर लिया शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना विलास का अधिक मान था तथ्य निरूपण का कम,संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी घटनाओं की ओर कम उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था विलसित तथ्यावली की ओर कम ।इस इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा है ।

-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल . ६०/७०

प्रबन्धकाव्य : खुमाण रासो और पृथ्वीराज रासो प्रबन्ध काव्य है जिनके रचयिता क्रमश: दलपति विजय तथा चन्दबरदाई है। प्राचीन काव्य के अन्तर्गत रासो ग्रन्थों का भारी महत्व है। हिन्दी की ऐतिहासिक रचनाओं में सब ग्रन्थों से प्राचीन माना जाने वाला खुमाण रासो है। इसग्रन्थ में चित्तौड़ के खुमाण द्वितीय (सं. ८१०-९००) के युद्धों का वर्णन है। आचार्य शुक्ल जी खुमाण रासो का रचना-काल संवत् ८६९-८९३ मानते हैं[1]। श्री अगर चन्द जी नाहटा (नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक ४, सं० १९९९ `रासो का रचना काल और रचयिता` लेख में इस ग्रन्थ का निर्माण काल संवत् १७३० से १७६० के मध्य का मानते हैं। शुक्ल जी द्वारा निर्धारित समय भ्रमात्मक है। इसमें महाराणा प्रताप सिंह और किसी-किसी ग्रन्थ में राजसिंह तक का वर्णन है और इन राजाओं का समय सोलहवीं और सत्रहवीं सदी है। परिणामस्वरूप वर्तमान रूप में खुमाण रासो ऐतिहासिक वीर काव्यों में प्राचीनतम ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। मूल खुमाण चरित सम्भव है प्राचीन हो और बाद के कवियों ने अपने-अपने समय के ऐतिहासिक तथ्य इसमें जोड़ दिए हों। इस प्रकार का परिवर्तन तथा परिवर्धन सभी रासो ग्रन्थों में मिलता है।

पृथ्वीराज रासो ऐतिहासिक वृत्त संबंधी अन्य प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य ग्रन्थ में भारतीय इतिहास के अद्वितीय पराक्रमी वीर पृथ्वीराज चौहान की अमरकीर्ति गाथा वर्णित है। इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप किसी एक काल तथा एक कवि द्वारा रचित प्रतीत नहीं होता। डा० माताप्रसाद गुप्त जी इस ग्रन्थ को कथा नायक की समकालीन रचना भी नहीं मानते[2]। जिसका कारण है कि इसमें बहुत सा इतिहास असम्मत विवरण है। प्रक्षिप्त अंशों की भरमार के कारण यह जानना कि रासो का मूल रूप क्या रहा होगा अत्यन्त कठिन है। पृथ्वी राज रासउ अप्रमाणिक ग्रन्थ समझा जाने लगा है[3] क्योंकि रचयिता रचना-

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०

२- पृथ्वीराज रासउ : पृ० १६७

३- [illegible] वीर काव्य (उदयनारायण तिवारी) पृ० ११४ से ११३

काल तथा अनेक घटनाएं संदिग्ध सिद्ध हो रही हैं ।

"ऐतिहासिक व्यक्ति के नाम से जुड़े रहने के कारण आरम्भ में अनुमान किया गया था कि इससे इतिहास का काम निकलेगा । पर यह आशा फलवती नहीं हुई ।[1]"

इस प्रकार रासो ग्रन्थ ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ होते हुए भी इतिहास से कहीं भी मेल न खाते हुए कोरी कवि कल्पना है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार ग्रन्थ की ऐतिहासिकता की छान बीन में समय नष्ट करने से इसके साहित्यिक सौन्दर्य तक पहुंचना असम्भव है ।[2] यह सत्य है कि रासो काव्य ग्रन्थ है इतिहास नहीं किन्तु जिन ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बना कर कवि ने ग्रन्थ रचना की वे प्राय: सभी इतनी इतिहास विरुद्ध हों कि कहीं भी इतिहास और काव्य में साम्य न रहे, यह उचित प्रतीत नहीं होता । तथ्य का गला घोंट कर केवल कल्पना की मिठास चखना भी पर्याप्त नहीं होता । साहित्यिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि तथा रसानुभूति के उत्कर्ष के लिए ऐतिहासिक कथाओं में कल्पना का रंग भरना अनिवार्य अवश्य है किन्तु मेरे विचार में इतनी सीमा अवश्य रहनी चाहिए कि ऐतिहासिक वृत्त या तो लिए ही न जांय यदि लिए जांय तो उनमें ऐतिहासिक तथ्यों के समावेश की अवहेलना नहीं की जानी चाहिए।

वीर गीत :- प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त प्राचीन काव्य में वीर गीतों की रचनाएं भी हुईं । वीर गीत भी अपने मूल रूप में प्राप्त नहीं हैं । कुछ नष्ट हो चुके हैं और कुछ लिपिबद्ध न होने के कारण भट्ट और चारणों द्वारा मौखिक रूप में चलते रहे हैं । इसीलिए भाव और भाषा में अन्तर होता गया तथा बहुत से अनैतिहासिक और असम्बद्ध वर्णन भी मिलते गए। नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासो, जगनिक कृत आल्हखंड वीर गीतात्मक रचनाएं हैं।

१- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ;,हिन्दी साहित्य का आदिकाल,पृ०४८

२- हिन्दी साहित्य, पृ० ५६

बीसलदेवरासो :-

आठवीं शताब्दी के मध्य भाग में शाकम्भरी क्षेत्र में सामन्त सिंह चौहान ने चौहान वंश राज्य स्थापित किया था । इसी वंश के चौहानों में अजमेर और सांभर राज्य में विग्रह राज नाम के चार राजा हुए । इन राजाओं को बीसलदेव भी कहते हैं । बीसलदेव 'रासो' ग्रन्थ में कोई वंशावली नहीं दी हुई है जिसके कारण एक विवाद उठा हुआ है कि यह ग्रन्थ चारों बीसलदेव में से किस बीसलदेव को लेकर लिखा गया है ?

इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से दो घटनाएं हैं- बीसलदेव से राजा भोज की पुत्री राजमती का विवाह तथा बीसलदेव का उड़ीसा जाना । दोनों घटनाएं संदिग्ध हैं । कवि केवल इतना जानता है कि किसी राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ हुआ था किन्तु किस बीसलदेव के साथ हुआ था यह नहीं बतलाया गया ।[१] उड़ीसा जाने की घटना का उल्लेख न शिलालेखों में प्राप्त होता है न इतिहास में, अत: यह भी अनैतिहासिक घटना है । किस नरपति नाल्ह ने इस ग्रन्थ की रचना की यह भी सन्देहास्पद है।१६ वीं शताब्दी के कवि नरपति ने यह ग्रन्थ रचा अथवा किसी अन्य नरपति द्वारा रचा गया यह कुछ निश्चित नहीं है । इन सब कारणों से बीसलदेव रासो अनैतिहासिक रचना सिद्ध की गई है किन्तु क्योंकि गाने के लिए ये रचनाएं होती थीं , अत: ऐतिहासिकता एक मुख से दूसरे मुख तक जाते जाते संदिग्ध होती जाती थी ।[२]

१- पं० हीराचन्द जी ओझा ने रासो के नायक को विग्रहराज तृतीय माना है । (नागरी प्रचारिणी पत्रिका: वर्ष खण्ड ४५,अंक २,पृ०१६५

२-"नाल्ह के बीसलदेव रासो में में जैसा कि होना चाहिए था न तो उक्त वीर राजा(बीसल देव) की चढ़ाइयों का वर्णन है व उसके शौर्य पराक्रम का।शृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठ कर जाने का मन माना वर्णन है।अत:इस छोटी-सी पुस्तक के बीसलदेव जैसे वीर का रासो कहना खटकता है । पर जब हम देखते हैं कि यह कोई काव्य ग्रन्थ नहीं केवल गाने के लिए रचा गया था तो बहुत कुछ समाधान हो जाता है।"

-डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी,हिं०सा०आदिकाल,सन् १९५२

आल्हा खंड :- जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिन्दी भाषी प्रान्तों में और गावों में अवश्य सुनाई पड़ते हैं। बुन्देल खंड में कालिंजर के चन्देलों का वंश बहुत काल से राज्य कर रहा था। इनका अन्तिम प्रतापी राजा परमर्दी देव या परमार था इसने सन् ११६५ ईसवी से सन् १२०३ तक राज्य किया । यह पृथ्वीराज का समकालीन था । इसी के दरबार में बनाफर कुल के दो क्षत्रिय वीर आल्हा और ऊदल थे । परमर्दी और पृथ्वीराज में सन् ११८२ ईसवी में युद्ध हुआ जिसका वर्णन जगनिक ने `महोबा खंड` में किया है । इस युद्ध में आल्हा ऊदल काम आए । डा० श्यामसुन्दर दास जी का कथन है कि सब वीर युद्ध में मारे गए, केवल दो जीवित आल्हा और उसका पुत्र इंदल गृह परित्याग करके किसी कदलीवन में जा बसे[1] । आल्हा ऊदल युद्ध में मारे गए अथवा नहीं, विवादास्पद है । इस घटना की ऐतिहासिकता मदनपुर में प्राप्त पृथ्वीराज के एक लेख से होती है । इसी समय अर्थात् (११८२-१२०३ईसवी) बीस वर्षों के आस पास यह काव्य लिखा गया होगा । बहुत समय तक लोककंठ में बीता रहा फिर शताब्दियों पश्चात् गायकों की स्मरण शक्ति के आधार पर लिपिबद्ध कराया गया।[2] इस गीत काव्य में इन्हीं दोनों की वीरता विवाहों और बावन लड़ाइयों का वर्णन है । वर्णन अवश्य अतिशयोक्तिपूर्ण है किन्तु इतना निश्चित है कि अनेक युद्ध इन वीरों ने सफलतापूर्वक किए थे ।

इस प्रकार संक्षेप में हमने प्राचीन काव्य में जो ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ हैं, उनका परिचय प्राप्त किया है । इन काव्य ग्रन्थों की ऐतिहासिकता संदिग्ध होने के कारण इनका ऐतिहासिक मूल्यांकन शून्य के बराबर है ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ० १०५

२- फर्रुखाबाद के कलक्टर स्व०श्री चार्ल्स इलियट ने तीन-चार प्रसिद्ध आल्हा गायकों को बुलवाकर सं० १९२२ वि० में आल्हा खंड को लिपिबद्ध कराया था । --उदयनारायण तिवारी, वीर काव्य, पृ० ३५

मध्यकाल में ऐतिहासिक वृत्त (ब्रजभाषा)

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति काल और रीतिकाल में ऐतिहासिक कथाएं और चरित लेकर बहुत कम काव्य ग्रन्थ लिखे गये। मध्यकाल में इस दृष्टि से केवल जायसी कृत पद्मावत उल्लेखनीय है। कल्पना के आधार पर चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और महारानी पद्मावती की प्रेम-कथा से आरम्भ और उसके विकास में काव्य कथा समाप्त की गई है। ऐतिहासिक आधार बहुत कम है। जायसी इसमें सूफी सिद्धान्तों की रूप रेखा निर्धारित करते हैं। अतः हिन्दू धर्म के वातावरण में जायसी ने जिन सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है वही इस काव्य की विशेषता है। ऐतिहासिक महत्ता प्रायः शून्य है। उस समय मुगलों का शासन था और भारतीय राष्ट्र उनकी कूटनीति में फंस चुका था। महाराणा प्रताप उस समय हिन्दू जाति के गौरव थे किन्तु आश्चर्य है कि ऐसे वीर को आलम्बन रूप में पाकर भी किसी भी कवि की लेखनी महाराणा प्रताप के वीरतापूर्ण दर्प और उनके आत्म सम्मान पर मिटने के गुणों का गान करने में समर्थ न हो सकी। रीतिकाल में कवि समाज को नायिकाओं के नखशिख वर्णन से ही अवकाश नहीं था, फिर भी ढाई-तीन सौ वर्ष पश्चात् महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी और बुंदेलखंड में छत्रसाल तथा अन्य ऐतिहासिक वीरों पर कुछ रचनाएं हुई।

केशवदास कृत वीरसिंह देव चरित की रचना संवत् १६६४ में हुई। कवि ने अपने आश्रयदाता ओरछा नरेश वीरसिंह देव का चरितगान किया है। उनकी उदारता, न्यायप्रियता, विद्वता आदि का चित्रण है।

मानकृत राजविलास की रचना सं० १७३७ में हुई। इसमें वीर शिरोमणि मेवाड़ नरेश महाराणा राजसिंह की प्रशंसा का गान है।

श्री राज सिंह राना सबल, महिपतियाँ सिरमुकुट मनि
गावत तास गुण बंद गुरु, धणियाँणि दिज्जै सुद्धुनि ।[1]

राज विलास के संवत् प्रायः सभी प्रमाणिक हैं । औरंगजेब से सम्बन्धित सभी घटनाएं इतिहास सम्मत है ।

रीतिकाल में कवि भूषण ने, शिवराज भूषण ,शिवाबावनी और छत्रसाल दशक --इन तीन ग्रन्थों का निर्माण किया । कवि भूषण के जन्मकाल के विषय में कुछ निश्चित नहीं है । प्रसिद्ध यही है कि भूषण शिवाजी के दरबारी कवि थे ।भूषण की कविता में उक्त वीरों के युद्धों का वर्णन,कीर्तिगान और शौर्य चित्रण अत्यन्त सशक्त शैली में हुआ है । इनके काव्य ग्रन्थों का ऐतिहासिक मूल्य बहुत महत्वपूर्ण है । घटनाओं में सत्यता का प्राचुर्य है ।[2] शिवाजी की प्रशंसा इतिहासकारों ने मुक्तकंठ से की है । कवि भूषण भी "शिवराज भूषण" में लिखते है -

इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर
  रावन सदंभ पर रघुकुल राज है ।
पौन बारि बाह पर संभु रतिनाह पर
  ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ।
दावा द्रुमदंड पर चीता मृग झुंड पर
  भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
  त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है।

१- वीरकाव्य : उदयनारायण तिवारी ,(राजविलास , १-३२)

२- मराठा इतिहास से उनके वर्णन इतने मिलते जुलते है कि दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध-सा प्रतीत होता है । यहां तक कि यदि वर्णित घटनाओं को क्रमबद्ध कर दिया जाय तो वह शिवाजी महाराज का एक क्रमबद्ध कार्य परिचय सा फलकने लगता है ।
  -उदयनारायण तिवारी, वीरकाव्य, पृ०२६६

शिवाबावनी और छत्रसाल दशक क्रमश: बावन और दस स्फुट छन्दों के संग्रह हैं। ये छन्द शिवाजी और बुंदेलखंड के राजपूत छत्रसाल बुंदेला की प्रशंसा में रचे गए ।

"महाराज छत्रसाल बुन्देला, गोरे लाल कृत "छत्रप्रकाश" (सं०१७६४)के नायक हैं । गोरेलाल इनके आश्रित कवि थे । बुन्देलों की उत्पत्ति से लेकर छत्रसाल के पिता चम्पतराय और मुगलों के मध्य हुए अनेक युद्धों का ,औरंगजेब के आक्रमणों से दुखी होकर चम्पतराय द्वारा पत्नी सहित आत्मघात, छत्रसाल का औरंगजेब की सेना में नोकर होना, छोड़ कर शिवाजी से मिल कर स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा ग्रहण करना ,बुंदेल खंड आकर सेना संग्रह करके विजयें प्राप्त करना तथा विस्तृत राज्य स्थापन करने तक की कथा "छत्रप्रकाश "काव्य ग्रन्थ का विषय है । ऐतिहासिक सत्यता गोरेलाल को भी इतनी प्रिय थी कि आश्रयदाता नायक छत्रसाल शेर अफगन के साथ हुए युद्ध में मैदान छोड़ कर भाग जाते हैं कवि ने कोई घुमाव फिराव न करके ज्यों का त्यों लिख दिया ----

कह्यौ सबनि समुझाइयौ, जिन भाजिबे पछिताउ ।
भजे कृष्ण अवतार वे पुरन प्रगट प्रभाउ ।।छ०प्र० पृ० १४७

श्रीधर कृत "जंग नामा" की रचना संवत् १७६६ वि० में हुई । इसमें तीन युद्धों का वर्णन है । ये युद्ध मुगलों के अन्तिम सम्राट् बहादुर शाह के एक पुत्र जहाँदार शाह और अन्य लड़के अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर के मध्य हुए । जहाँदार शाह भाइयों और भतीजों सब को मार कर दिल्ली का सम्राट बन गया था । इतिहासकारों ने इसे विलासी और अयोग्य बतलाया है । "जंगनामा" में इसका चरित्र चित्रण इतिहास सम्मत है ।

सूदन कवि कृत "सुजान चरित" में भरतपुर नरेश सूरज मल जाट उपनाम सुजान सिंह की मुख्य सात लड़ाइयों का वर्णन है ।ये लड़ाइयां १८०२ विक्रम से १८१० वि० तक हुई । सुजान चरित ऐतिहासिक प्रामाणिकता से युक्त है । मुगल बादशाहों और सुजान के राज्य-प्रबंध और नीति-कुशलता आदि का वर्णन इतिहास सम्मत है ।

प्रसिद्ध क्षत्रिय नृपति हम्मीर के चरित को बहुत कवियों ने काव्य-विषय बनाया है । संवत् १८८५ में जोध राय ने "हम्मीर रासो" ग्रन्थ की रचना की । इसकी तिथियां और घटनाएं इतिहास विरुद्ध हैं ।

१८४६ से सं० १८५६ के बीच पद्माकर कृत "हिम्मत बहादुर विरदावली" की रचना हुई । हिम्मत बहादुर अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेना में नौकर थे ।

एक अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक काव्य रचना रीतिकाल में चंद्रशेखर वाजपेयी कृत " हम्मीर हठ " हुई । यह काव्य हम्मीर हठ की एक चित्रावली पर आधारित है । अत: इसमें बहुत-सी ऐतिहासिक असंगतियाँ मिलती हैं ।

इस प्रकार यहां हमने आदिकाल के प्राचीन काव्य तथा मध्यकाल और रीतिकाल के ऐतिहासिक वृत्तपर आधारित महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थों का अवलोकन संक्षेप में किया है । प्राचीन काव्य के ऐतिहासिक ग्रन्थों में जितनी ऐतिहासिक असंगतियां प्राप्त होती हैं उतनी ब्रजभाषा के ऐतिहासिक काव्य में नहीं । ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ब्रजभाषा में लिखे गए रीतिकालीन ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक हैं । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सभी काव्यों में वीर रस का परिपाक सुन्दर ढंग से हुआ है ।

(ड०) खड़ी बोली काव्य और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

पीछे हमने देखा है कि आदिकालीन, मध्यकालीन और रीतिकालीन कवियों ने अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास तथा पराक्रमी वीरों के वीरता और ओजपूर्ण व्यक्तित्व को काव्य की कोमल लड़ियों में अनुस्यूत किया । आधुनिक युग के खड़ी बोली काव्य में यह धारा और भी अधिक गतिमान हुई । अतीत के महापुरुषों वीर एवं आदर्श चरित्रों का गान करके युगद्रष्टा कवि भूत और वर्तमान के ऐसे सूत्रों से अनुबन्धित कर देता है कि शताब्दियों उपरान्त भी उनके जीवन सम्बन्धी अनेकानेक घटनाएं कल में ही घटित प्रतीत होने लगती हैं । काव्य श्रृंखला पकड़ कर वर्तमान की भावभूमि पर अवतरित होने वाले ये जीवन चरित्र सदैव प्रेरणादायक सिद्ध होते आए हैं । खड़ी बोली काव्य में इन ऐतिहासिक सन्दर्भों के अन्तर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य चरितकाव्य, चम्पूकाव्य तथा गीतिकाव्य आदि सभी काव्यशैलियों को अपनाया गया। अतीत के आदर्शपूर्ण तथा प्रेरणापूर्ण ऐतिहासिक चरित्रों को नायक बना कर महाकाव्यों का प्रणयन हुआ, उनके जीवन की विविध ज्वलंत घटनाएं और कार्य, प्रबन्धकाव्यों का विषय बनी । इसके साथ ही भारतीय संस्कृति और कला के प्रतीक ऐतिहासिक स्थान, भावभीनी अतीत गाथाएं, अन्तर्भुत किए हुए स्मारक और मकबरे,

विभिन्न हिन्दू सम्राटों ,मुगल बादशाहों की कला प्रियता की द्योतक कलात्मक कृतियां तथा अनेक साम्राज्यों में हुई शिल्पकला की उन्नति के परिचायक भव्य-भवन जो आज भी अपने युगों की कहानी कहते हुए खड़े हैं, भावुक हृदय कवियों की रचनाओं में मुखरित हुए । सुविधा की दृष्टि से ऐतिहासिक काल क्रमानुसार इन सन्दर्भों को हम मुख्य रूप से सात भागों में विभक्त कर सकते हैं –

(१) भारतीय इतिहास में मगध साम्राज्य के प्रारम्भिक युग में ईसा से लगभग पांच-छः सौ वर्ष पूर्व भारतीय ऐतिहासिक जन-पद राज्यों से सम्बन्धित ,महात्मा बुद्ध तथा महावीर स्वामी वर्द्धमान के सन्दर्भों में काव्य-रचनाएं हुईं। इन काव्य-रचनाओं में अधिकतर धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि ही प्रधान है ।

(२) मगध के प्रारम्भिक शासकों (बिम्बसार,अजातशत्रु) तथा ईसा से तीन चार सौ वर्ष पूर्व मौर्य सम्राटों तथा ईसा की तृतीय और चतुर्थ शताब्दी में हुए गुप्त सम्राटों के सन्दर्भों में काव्य-रचनाएं -- इन काव्य रचनाओं में चरित्रोत्कर्ष और पौरुष चित्रण की दृष्टि प्रधान है ।

(३) ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर लगभग अठारहवीं शताब्दी तक के राजस्थानी इतिहास के सन्दर्भों में काव्य रचनाएं । पृथ्वीराज चौहान, हम्मीर देव,महाराणा ~~संग्रामसिंह~~ रत्नसिंह और रानी पद्मिनी,आदि की जौहर गाथाएं, महाराणा संग्राम सिंह ,महाराणा प्रताप ,झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि अन्य राजपूत वीर और वीरांगनाओं के ओजपूर्ण सन्दर्भों में काव्य-रचनाएं । इस काव्य कोटि में आत्म सम्मान ,गौरव और मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग की भावना प्रधान है।

(४) देहली सल्तनत और उसके उपरान्त हुए मुगल बेगम तथा बादशाह काव्य का सन्दर्भ हुए । मोहम्मद गौरी ,अलाउद्दीन खिलजी,मुगल साम्राज्य के हुमायुं,बादशाह अकबर ,जहांगीर,नूरजहां,शाहजहां,औरंगजेब आदि पर काव्य रचनाएं हुईं । प्रेम और वैभव के रंगीन चित्र तथा हिन्दू और मुसलमानों के संघर्ष की गाथा ही इस काव्य कोटि का दृष्टिकोण रहा ।

(५) सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के इतिहास में पंजाब के सिक्ख गुरुओं तथा

मराठा साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी पर काव्य-रचनाएं हुई। देश में सांस्कृतिक और जातिगत जागरण की प्रमुख भावनाएं ही इस काव्य की पृष्ठभूमि में कार्य करती रहीं।

(६) विभिन्न ऐतिहासिक युगों में निर्मित स्मारक, मकबरे, भव्य भवन तथा अन्य शिल्प कला कृतियों के सन्दर्भों में काव्य-रचनाएं। इनमें ताजमहल और बादशाह तथा बेगमों के मकबरे अतीतकालीन ऐतिहासिक भव्य-भवन, फतेहपुर सीकरी आदि ऐतिहासिक स्थान, तक्षशिला, चित्तौड़, देहली आदि तथा ऐतिहासिकपृष्ठभूमि में हिमालय -काव्य के विषय बने। अतीत गौरव की फलक तथा जीवन की नश्वरता ही इस काव्य का मेरुदण्ड है।

(७) वर्तमान समय में आधुनिक युगीन तथा आलोच्यकालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर अनेकानेक काव्य-रचनाएं हुई। ब्रिटिश साम्राज्य की घटनाएं, स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास तथा राष्ट्रवीरों के चरित काव्य बद्ध हुए। इस कोटि में राष्ट्रीयता तथा उसके उन्नायकों की जीवन-गाथा पर काव्य-ग्रन्थ रचे गए।

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य का उपर्युक्त सात कोटियों में विभाजन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस भाषा में भारतीय इतिहास बहुत व्यापक परिवेश में काव्यबद्ध हुआ है। यहां इस विभक्त काव्य पर समीक्षात्मक टिप्पणियां देना आवश्यक है।

(१) धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि :-

भारतीय जीवन के विविध पार्श्वों पर प्रकाश डालने वाले तथा विविध युगों में प्रतिपादित होने वाले महापुरुषों के जीवन के उदात्त सिद्धान्तों तथा गरिमा सम्पन्न कार्यों के आधार पर रचनाएं लिखी गई। इन महान् आत्माओं में मानवीय गुणों और मानवीय उच्चता का पूर्ण विकास प्राप्त होता है। सांसारिक संघर्षों से पराजित न होकर ये महापुरुष निरन्तर उन्नति की ओर उन्मुख हुए। कविगण इनके गौरवपूर्ण जीवन से आकर्षित हुए और अपने तृषित समाज को उनका सन्देशरूपी रस काव्य वाणी के द्वारा दिया। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध

ऐसे ही महापुरूषों में थे । भारत-भूमि भी इन्हें अपनी क्रोड़ में खिला कर धन्य-धन्य हुई है ।

सुषमा सुन्दर भारत धन्य है
　　न धरणी इसके सम अन्य है
जगत ताप विनाश के लिए
　　प्रभु यहां अवतीर्ण हुए सदा ।[1]

बुद्ध और महावीर के आते-आते वैदिक धर्म विकृत हो चुका था । उस समय कर्म-काण्ड का बहुत बोलबाला था । इसीलिए कर्म-काण्ड के विरोध में जटिल-जीवन के दैनिक व्यवहार के लिए बुद्ध भगवान् को मौलिक विचारों का मार्ग अपनाना पड़ा। उन्होंने मध्यम मार्ग का उपदेश दिया । इस प्रकार ज्ञान का सन्देश और सत्यं-शिवं सुन्दरं का जीवन के प्रति आग्रह इनके जीवन से सम्बन्धी रचनाओं की आधारभूमि है । अनेक कवि इनकी ओर प्रेरित हुए । कुछ उनके महान् अहिंसात्मक व्यक्तित्व से अभिभूत हुए और कुछ उनके महान् उपदेशों से प्रभावित हुए ।

स्फुट कविताओं की इयत्ता ही नहीं । गिरिजाकुमार माथुर,रामधारी सिंह`दिनकर',धर्मपाल साहू,पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी,बच्चन आदि कवियों ने स्फुट रचनाएं की । मैथिलीशरण गुप्त ,पंडित अनूपशर्मा ने क्रमशः (यशोधरा)(वर्धमान : सिद्धार्थ)इनके जीवन पर प्रबन्ध काव्यों की रचनाएं भी की ।

(२)चरित्रोत्कर्ष और पौरूष :- समय-समय पर विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत भूमि को पदाक्रान्त किया किन्तु सामयिक वीरों ने उनसे टक्कर ली और पराजित किया ।`मौर्य विजय'(सियारामशरण गुप्त) में सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के सिल्यूकस के विरूद्ध एक ऐसे ही सफल अभियान का चित्रण है । मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस सम्राट की वीरता से प्रभावित होकर उसे महाबली के पद पर शोभित किया----

---

१- अनूप शर्मा , सिद्धार्थ ,पृ० ६४

जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकन्दर की चली
वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली
जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था है गया
कान्धार आदि देश देकर निज सुता था दे गया[1]।

सम्राट् अशोक समग्र भारतीय इतिहास में सबसे अलग खड़े हुए दिखलाई देते हैं। राज्य विस्तार राजा का धर्म है। इस प्रयत्न में नर-संहार भी अनिवार्य है किन्तु कलिंग-विजय में रक्त के रूप में मानवता को प्रवाहित देख कर सम्राट् का हृदय कांप गया। विजय का महादम्भ टूक-टूक हो गया। पश्चाताप ने मौर्य सम्राट् को आद्योपान्त परिवर्तन के बिन्दु पर ला खड़ा किया। जीवनादर्श बदल गया। चिन्तनधारा विरक्ति और वैराग्य का परिधान पहन कर इस प्रकार मुखर हुई --

यह महादम्भ का दानव
पीकर अनंग का आसव
कर चुका महाभीषण रव
सुख दे प्राणी को मानव
तज विजय पराजय का कुढंग[2]

रामधारी सिंह "दिनकर" की "कलिंग विजय" कविता में भी यही भाव चित्रित हुआ है। अशोक पुत्र कुणाल को राजकुमार होते हुए भी दर-दर भटकना पड़ा। राज्य-मोहिणी तिष्यरक्षिता ने आंखें निकलवा उसे राज्य से निकाल दिया। इस अभागे राजकुमार को इतिहास भले ही महत्व न दे किन्तु कवि मौन न रह सका-

सुंदरता के प्रतिनिधि अनूप लावण्य सिंधु की मृदु हिलोर
कमनीय कला की दिव्य मूर्ति मेरे कुमार मेरे किशोर
है भूल चुका इतिहास तुम्हें पर कवि की वाणी नहीं मौन
तुम भाल भाल पर चमक रहे कुंकुम से चर्चित कहो कौन।[3]

१- भारत-भारती, अतीत खंड
२- जयशंकर प्रसाद, अशोक की चिन्ता, लहर, पृ० ४७
३- सोहनलाल द्विवेदी, कुणाल की स्मृति में, सरस्वती, मई, १९५४

राष्ट्र कवि गुप्त जी ने "कुणाल गीत" लिख कर इस विस्मृत राजकुमार के प्रति संवेदना प्रकट की ।

(३)आत्मगौरव और मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग :- राजस्थान भारत के गौरवमय अतीत का इतिहास है। इतिहास के इस सन्दर्भ को लेकर कवियों ने राष्ट्रीय और जातीय प्रेम,मान-मर्यादा,प्रण-प्रतिष्ठा तथा क्षात्रिय-गौरव की रक्षा के हेतु आत्मोत्सर्ग और बलिदान की भावना से पूर्ण राजपूत वीरों और वीरांगनाओं की कथाएं प्रस्तुत कीं । डा० रामकुमार वर्मा ,लोकनाथ द्विवेदी, और श्रीनाथ सिंह श्यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों ने चित्तौड़ की जलती हुई व्यथा को, जो इतिहास के पृष्ठों पर अंगारे की भांति रखी है, पद्मिनी और महारानी करुणा के माध्यम से प्रस्तुत की । राजेश्वर गुरु,सुरेन्द्रनाथ तिवारी,डा० भगवतसिंह विशारद, द्वारका प्रसाद गुप्त रसिकेन्द्र,लाला भगवान दीन आदि कवियों ने भी क्रमश: दुर्गावती एकतारा,वीरांगना तारा, वीरांगना वीरा,सती सारन्धा,वीर क्षत्राणी आदि खंडकाव्य रच कर राजस्थान की ललनाओं की प्रशस्ति गाई । लावण्य और कोमलता की प्रतिमाएं लाल लाल ज्वालाओं से खेलने के लिए हंसते हुए कूद पड़ा करती थीं और तब जौहर की उन ज्वालाओं से आवाज़ आया करती थी -

ज्वालामयी चिता से उस आतिशबाजी से स्वर फूटे-
खड़े खड़े इस ठौर न वीरो ! देखो कहीं धैर्य्य टूटे ।
दुर्ग द्वार दो खोल हमें अन्तिम रण कौशल दिखलाओ
दिव्य शिखा पर ज्वाला की हम पहुंच चुकी बाहर जाओ[१]।(छंद २८)

और इसके उपरान्त -

चिता का जला हुआ कण शेष,
कहेगा मौन भाव के साथ
आर्य ललनाओं की शुभ गाथ
करेगा गौरव गर्वित देश[२] ।(छंद ३८४)

१- डा० श्रीनाथ सिंह,सती पद्मिनी

२- डा०रामकुमार वर्मा,चित्तौड़ की चिता

विदेशी सत्ता के द्वारा असंख्य बार भारतभूमि और उसकी संस्कृति पर आघात हुए। राष्ट्रीयता उत्पीड़ित हुई । यह उत्पीड़न असहनीय हो उठा तो इसके विरुद्ध राजपूत सरदारों और वीरों ने मोर्चा बांधा। इसके समक्ष कभी घुटने न टेकने का प्रण लिया । गोकुल चन्द्र शर्मा, रामनारायण ठाकुर, पं० रामदहिन मिश्र,रामचरित उपाध्याय,लोचन प्रसाद पाण्डेय ,आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव,देवी प्रसाद मुंसिफ आदि कवियों ने स्फुट काव्य और खण्ड काव्य रच कर महाराणा प्रताप हम्मीर देव आदि राजपूतों की गाथाएं मां भारती के मन्दिर में अर्पित कीं।

(४) मुगल कालीन वैभव और जाति-गत संघर्ष:- मुगलकालीन इतिहास से सन्दर्भ लेकर जो काव्य रचनाएं हुई उनमें प्रेम और शृंगार की कहानी तथा मुगलों और राजपूतों का संघर्ष अभिव्यक्त हुआ । भारतीय मुगल इतिहास में सलीम और मेहर के प्रेम की कहानी का ऐतिहासिक महत्व भी है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर गुरुभक्त सिंह`भक्त` के`नूरजहां` प्रबन्ध काव्य में यह गाथा चित्रित हुई तथा नूरजहां के व्यक्तित्व का कवि ने चित्रण किया । रामकुमार वर्मा तथा आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव ने स्फुट रूप में इस प्रसंग को अपनाया है । नूरजहां सौन्दर्य की अप्रतिम देवी के रूप में जानी जाती है । इसके जाने से कवि की दृष्टि में विश्व ही सौन्दर्य-रहित हो गया ---

नूर-रहित हो गया जहां,
तेरे जग से जाने से ।
नूरजहां तू जाग जाग फिर[1]
मेरे इस गाने से ।

अनेक राजपूत राजा इन मुगल बादशाहों से अपने धर्म अपनी जाति और अपने आत्माभिमान की रक्षा करने के लिए संघर्ष करते रहे । राजस्थान के इतिहास का एक बहुत बड़ा भाग इस संघर्ष का विवरण प्रस्तुत करता है ।`आर्यावर्त` ;हल्दी घाटी` `प्रणवीर प्रताप` आदि काव्यों में यही ऐतिहासिक संघर्ष काव्यबद्ध हुआ है--

----

१- रामकुमार वर्मा, नूरजहां, रूपराशि

(६) अतीत गौरव की झलक और जीवन की नश्वरता :- विभिन्न ऐतिहासिक युगों में बादशाहों और राजाओं ने भवन निर्माण- तथा शिल्प-कला सौन्दर्य के प्रति अनुराग होने के कारण अनेक भवनों,स्मारकों तथा मकबरों का निर्माण कराया था । प्रिय व्यक्तियों की स्मृति में कला-पूर्ण मकबरों की स्थापना हुई। ऐतिहासिक भवन वैभव और कला के प्रतीक थे । इन भवनों ने अपने समय में पूर्ण वैभव के दर्शन किए थे । अनेक स्वर्ण विहान देखे थे । सैकड़ों मधुमय रातियां देखी थीं । जीवन का पूर्ण उत्थान पतन इन्होंने अपने नेत्रों से देखा था किन्तु आज ये सब सुनसान से अपनी मूक वाणी में अपने युगों की कहानियां कहते खड़े हैं ।

"फतेहपुर सीकरी " (श्री विश्वम्भर नाथ)"रे पाटली के कंकाल बोल"(श्री अरविंद बी०ए०) "इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों से"(मोहन सिंह सेंगर)"सारनाथ के खंडहरों से" (श्रीयुत सुरेन्द्र) कुतुब मीनार"(गिरिजाशंकर मिश्र)"नालन्दा के खंडहरों से"तक्षशिला" (श्री केसरी,उदयशंकर भट्ट) और"दिल्ली" आदि काव्य-कृतियां कवियों की सम्वेदना की आधार बनीं । मोहन सिंह सेंगर"इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों से" पूछ रहे हैं --

रंग रंगीले वे दिन वे सोने की घड़ियां भूले
किस आशा से मौन खड़े हो नत शिर यमुना कूले[१] ।

"नूरजहां का मकबरा" नूरजहां की कब्र और"ताजमहल" ने कवि हृदय भाव उद्वेलित किया। भग्न मात्र रह गए मकबरों से कवि पूछ उठा--

तुम रजकण के ढेर उलूकों के तुम भग्न विहार ।
किस आशा से देख रहे हो उस नभ पर प्रतिवार ?
कि जिससे टकराता था कभी
तुम्हारा उन्नत भाल[२]

"ताज" खड़ी बोली काव्य में प्रेम और विरह की तीव्र अनुभूति बन कर और कहीं पत्नी प्रेम का प्रभा पुंज प्रासाद बन कर चित्रित हुआ--

---

१- सरस्वती १ नवम्बर , १९३६

२- नूरजहां की कब्र पर, भगवतीचरण वर्मा ,विशाल भारत ,मई १९३३

है नैराश्य विषाद प्रेम का ताजमहल तू धाम
तुझमें ही कर सकता है वह प्रेम पुंज विश्राम ।[1]

और कहीं 'ताज' को विरह का एक रूप मान कर कवि कह रहा है--

यह शाहजहां है एक व्यक्ति
जिसने इतना तो किया काम,
दे दिया विरह को एक रूप
है 'ताज' उसी का व्यथित नाम ।[2]

(७) राष्ट्रीयता तथा उसके उन्नायकों की जीवन गाथा:-

आधुनिक युग भारतीय इतिहास में अनेक ज्वलन्त घटनाओं का युग है । शताब्दियों की दासता के विरुद्ध राष्ट्र प्रेम की ऐसी हिलोर भारतीय जन मन में उठी कि सारा देश विदेशी शक्ति से टक्कर लेने के लिए एक झंडे के नीचे आ खड़ा हुआ । अनेक बलिदान हुए । देश की स्वतन्त्रता के लिए न्यौछावर होने वाले राष्ट्रवीरों की प्रशस्ति में स्फुट कविताओं की तो इयत्ता ही नहीं ,अनेक खंडकाव्यों और चरितकाव्यों का प्रणयन हुआ है । ऐतिहासिक सन्दर्भ में लिखी गई ये कविताएं उन महामहिम पुरुषों के चरित्रों को लेकर लिखी गयीं जिन्होंने जीवन के मूल्यों का निर्धारण उस सांस्कृतिक रूप में किया है जिसमें सत्य अहिंसा और आत्मोत्सर्ग की भावना विद्यमान है । इन देश सेवकों ने अन्धविश्वासों को समाप्त करने का प्रयत्न किया और साथ ही स्वस्थ जीवन की चेतना सामान्य जन मानस में प्रतिष्ठित की । आधुनिक युग की भाव-भूमि पर आत्मोत्सर्ग का वीरतापूर्ण चरम उदाहरण झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने प्रस्तुत किया है । श्यामनारायण प्रसाद ने 'झांसी की रानी' में लक्ष्मीबाई के इस पूर्ण संघर्ष और और गौरव की कहानी प्रस्तुत की है । अहिंसा और सत्य की ठोस भूमि पर आत्मबल के प्रकाश में विचरण करते हुए महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता प्राप्ति के इतिहास में एक नया मोड़ प्रस्तुत किया । राष्ट्र नेता गांधी के इस

१-म.पु.बख्शी, ताजमहल, सरस्वती, १६१८ नवम्बर
२- रामकुमार वर्मा, छाया , रूपराशि

गौरव की अभिव्यक्ति अनेक काव्यग्रन्थों में हुई । `गांधी गौरव` ;`बापू` ;`महामानव` आदि काव्य इसके उदाहरण हैं । रामधारी सिंह `दिनकर` इस युग पुरुष के दोनों चरण पकड़ कर उन्हें रोक लेने के लिए आतुर हैं ---

पकड़ो वे दोनों चरण पकड़ कर,
जिन्हें हमें सौभाग्य मिला ।
पकड़ो वे दोनों चरण, जिन्हें
छू कर जीवन का कुसुम खिला ।[१]

सियारामशरण गुप्त ने `आत्मोत्सर्ग` तथा बालकृष्ण शर्मा `नवीन` ने `आत्मार्पण` में विद्यार्थी जी के बलिदान के लिए भाव सुमन चढ़ाए ।

इस भांति भारतीय इतिहास ईसा पूर्व से लेकर आधुनिक युग में आलोच्य काल तक खड़ी बोली काव्य में मुखरित हुआ है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के आगे के अध्यायों में इसका विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन किया गया है ।

(ज) खड़ीबोली काव्य तथा ऐतिहासिक परम्परा :

पूर्व-पृष्ठों में हमने संक्षेप में खड़ी बोली काव्य को विभिन्न कोटियों में निर्धारित किया था यहां इस काव्यधारा की परम्परा देखना आवश्यक है । आलोच्य काल के पूर्वार्द्ध का काव्य प्राय: विषय की दृष्टि से अधिकांशत: ऐतिहासिक काव्य है । इसके कतिपय साहित्यिक सामाजिक तथा राजनैतिक कारण थे ।

आलोच्यकाल के द्विवेदी युग के प्रारम्भ में भाषा तथा भाव की दृष्टि से साहित्य में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ । कविता, रीतिकालीन रूढ़िबद्ध नखशिख एवं शृंगार वर्णन से सब: मुक्त हुई थी ।क्रान्ति के प्रथम अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कविता-कामिनी को विलासिता के आवरण से निकाल कर साहित्य के मुक्त प्रांगण में ला खड़ा किया था ।

१-`बापू`, पृ० ४२

दरबारों से निकाल कर उसे लोक-जीवन के सशक्त तथा स्वस्थ पथ की ओर अग्रसर किया था । उसे समाज के स्पन्दन से अवगत कराया था । इस प्रकार कविता एवं जीवन का अटूट सम्बन्ध पुनःस्थापित हुआ था । भाव परिवर्तन के साथ ही काव्य-भाषा की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण क्रान्ति का सूत्रपात हुआ था जिसे बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही महावीर प्रसाद का नेतृत्व प्राप्त हुआ और प्रौढ़ तथा प्राचीन ब्रज-भाषा के स्थान पर काव्य के लिए नितान्त नवीन खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई । इस नवीन भाषा में काव्य की खोज का प्रयास भी नए सिरे से आरम्भ हुआ ।उस समय खड़ीबोली काव्य के लिए विषय का होना अनिवार्य था। लगभग सौ वर्ष की आयु के पश्चात् खड़ीबोली आज इतनी सक्षम हो चुकी है कि काव्य सृजन की क्षमता मात्र कविता को साकार करने के लिए पर्याप्त है । कवि को अब विषय खोजने की आवश्यकता नहीं । उसकी अनुभूति का कोई कण मात्र ही कविता में ढल कर काव्य-रस प्रस्तुत कर सकता है किन्तु द्विवेदीकालीन कवियों की स्थिति इस दृष्टि से इतनी सरल नहीं थी । भाषा में तब तक काव्यानुकूल शब्दावली का विकास नहीं हुआ था । अतः यहां यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भाषा शैली अथवा अपने भावों के प्रकाशन के आधार पर कविता में काव्य-रस प्रस्तुत कर सकना कवि के लिए कठिन था । खड़ी बोली में कविता करने के लिए उसे कथानक की आवश्यकता थी एवं इस दृष्टि से उसके सम्मुख प्रकृति,समाज, इतिहास तथा पुराण मुख्य रूप से थे । इनचुने हुए विषयों को लेकर लिखे गए काव्य -ग्रन्थों में खड़ी बोली साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों के महत्व की घोषणा करता है[१] । अतीत केआवपना कर कवि ने कथानक-रस प्रस्तुत किया ।

१- आधुनिक कविता के मानवीय विषयों में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष ऐतिहासिक युग-प्राचीन,मध्य और वर्तमान युग-के महावीरों का गौरव-गान है ।"

- डा० कृष्णलाल ,आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ५२

इस काव्य की पृष्ठभूमि में राजनैतिक वातावरण तथा सामयिक आवश्यकता भी कार्य कर रहे थे। आलोच्यकाल आरम्भ से ही संघर्ष का युग रहा है। राजनीति,धर्म,समाज तथा साहित्य सभी परिवर्तन के क्रान्ति सीमा पर खड़े थे। यह काल राष्ट्रीय जागरण चेतना की नवीन चेतना के अभ्युदय का काल था। विदेशी राजसत्ता की क्रूर नीति तथा कठोर शासन के प्रति भारतीय जनसमुदाय विक्षुब्ध हो उठा था। वह दासता की कठिन बेड़ियाँ को तोड़ मुक्ति प्राप्त करने तथा प्रगतिपथ पर अग्रसर होने के लिए प्रयत्नशील था। इस ललक एवं विक्षुब्धता ने शीघ्र एक देशव्यापी विराट् रूप धारण कर लिया था और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि आन्दोलनों के मूल में देशाभिमान की प्रेरणा मूल कारण थी। युगों युगों से विस्मृत राष्ट्रीय चेतना के मूल में देशाभिमान की प्रेरणा मूल कारण थी। युगों युगों से विस्मृत राष्ट्रीय चेतना के प्रति इस जागरूकता और देशाभिमान की भावना को प्रोत्साहन की आवश्यकता थी। इधर सांस्कृतिक दृष्टि से भी भारतीय जन समाज अपने खोए हुए आत्मविश्वास ,आस्था,आत्माभिमान तथा गौरव को पुन: प्राप्त करने के लिए व्यग्र था। भारतीय समाज सुधारक स्वामी दयानन्द ,राजा राममोहन राय आदि स्वस्थ समाज के निर्माण में संलग्न थे। ऐसे संघर्ष पूर्ण परिवर्तन काल में जन समाज का अपने गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा लेना ऐसा ही स्फूर्तिदायक प्रतीत होता है जैसे नाविक की नौका के अनुकूल वायु का प्रवाह मिल जाना। प्रगतिशील,युगद्रष्टा साहित्यकार भी समाज नौका के लिए प्राय: ऐसे ही अनुकूल प्रवाह का कार्य करता है। द्विवेदी युगीन तथा आलोच्य काल के अन्य साहित्यिक युगों के काव्यकारों ने इतिहास से ऐसे गौरव एवं प्रेरणापूर्ण सन्दर्भ पुष्प लेकर काव्य माला में अनुस्यूत किए जो राष्ट्रीय जागरण,सामाजिक उद्बोधन एवं जन मन में आत्मोत्सर्ग की भावना के प्रतीक सिद्ध हुए। यहां खड़ी बोली के इसी ऐतिहासिक काव्य की परम्परा देखना आवश्यक है।

इस काव्य की परम्परा देखने के लिए द्विवेदी युग की प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाओं का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। `सरस्वती` तत्कालीन

खड़ी बोली केकाव्य को प्रश्रय देने वाली एक मात्र पत्रिका थी । इस पत्रिका के द्वारा द्विवेदी जी इतिहास से प्रेरित होकर काव्य-रचना के लिए खड़ी बोली के कवियों को सचेत किया करते हैं[१] । अत: ऐतिहासिक काव्य परम्परा `सरस्वती` में प्रकाशित प्रथम ऐतिहासिक कविता से समझना अनुचित न होगा । इस काव्य - परम्परा में सर्व प्रथम ~~मुक्तक~~ प्रबन्ध काव्य उपलब्ध हुआ । अक्तूबर सन् १९०७ की `सरस्वती` पत्रिका में प्रकाशित कामताप्रसाद गुरु की `शिवाजी` कविता इस परम्परा की प्रथम कड़ी है । कवि ने इस कविता में मराठा राज्य के संस्थापक महाराज शिवाजी की वीरता, निर्भीकता तथा उनके अन्य चारित्रिक गुणों का वर्णन किया है । यद्यपि मई १९०३ की `सरस्वती` में उमाशंकर द्विवेदी ने अपनी रचना `पूर्व पुरुषों के प्रति` में पौराणिक पूर्वजों का गुणगान करते हुए प्रताप और शिवाजी का भी स्मरण किया है तथापि ऐतिहासिक काव्य परम्परा की दृष्टि से उपर्युक्त रचना ही प्रथम ऐतिहासिक कविता है । ~~एक वर्ष~~ इसके पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त ने इतिहास को आधार बना कर `नकली किला` की रचना की जो राजस्थान के ऐतिहासिक वीर काव्य की एक महत्वपूर्ण झांकी है । आगे चल कर यही रचना `रंग में भंग` खण्ड काव्य की प्रेरणा दे सकी । इसी प्रकार सन् १९११ की सरस्वती में लोचनप्रसाद पाण्डेय की `सम्राट स्वागत` रचना भी ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर है । एक वर्ष पश्चात् गुप्त जी ने इतिहास को आधार बना कर अनेक `पत्र` काव्यबद्ध किये जो ऐतिहासिक वीरों तथा वीरांगनाओं द्वारा विशिष्ट घटनाओं और परिस्थितियों को लेकर लिखे गए । इसी वर्ष कामताप्रसाद गुरु ने `चांदबीबी` पर एक प्रशस्त मुक्तक काव्य की रचना की । इन रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर सन् १९२५ तक अनेक स्फुट रचनाएं लिखी गयीं तथा अनेक खंड काव्यों का निर्माण हुआ । इसके उपरान्त तो सरस्वती और विशाल भारत के अतिरिक्त आलोच्यकालीन खड़ी बोली काव्य में ऐतिहासिक काव्यों की एक सशक्त सुदृढ़ शृंखला मिलती है । ऐतिहासिक सन्दर्भों का निर्माण परिमाण और प्रभाव के अनुसार काव्य की प्राय: प्रत्येक शैली में हुआ है । जहां ऐतिहासिक प्रसंग किसी

१- भारत में अनन्त आदर्श नरेश, देशभक्त, वीरशिरोमणि और महात्मा हो गए हैं । हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य करें तो बहुत लाभ हो । `पलाशीर युद्ध` वृत्त संहार, मेघनादवध, और यशवन्त राव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं । वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिख कर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिए।" - हिन्दी की वर्तमान अवस्था, सरस्वती, अक्टूबर, १९११

(शेष-

महान् पुरुष या घटना के विश्लेषण तथा विवेचन सेसम्बन्ध रखते हैं वहां उनका रूप स्पष्टत: प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य या खंडकाव्य की शैली में हुवा है किन्तु जहां ऐतिहासिक परिस्थिति प्रेरणा और स्फूर्ति की चिनगारी उत्पन्न करती है वहां काव्य का रूप गीतात्मक हो गया है । संवेदनापूर्ण स्थलों पर तो काव्य निश्चय ही प्रसंग या परिस्थिति में परिणित होकर गीत अथवा छन्द में ध्वनित हो उठता है यही कारण है कि आलोच्य कालीन खड़ी बोली का ऐतिहासिक काव्य शैलियों और छन्दों की विविधता प्रस्तुत करता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक खड़ी बोली में ऐतिहासिक काव्य की स्थिति आशाजनक है । अतीत के आकर्षण का मोह जनमानस त्याग नहीं सकता । वर्तमान की मलिनता तथा अपकर्ष से मुक्त होने एवं वर्तमान के प्रगतिशील तत्वों में अधिकाधिक उत्साह भरने वाले अतीत के स्वर्णिम आदर्श जब तक प्रत्यक्ष नहीं हो जाते तब तक एक मात्र उन्हीं आदर्शों को आधार बना कर कवि उन्हें पुन: समाज में देखने का प्रयास करता है । इसी कारण कथाओं नाटकों और काव्यों में इतिहास ने स्वयं को दोहराया है । इतिहास की गौरव पूर्ण कथाएं ,प्रेरणापूर्ण आदर्शचरित्र और बलिदान की चिनगारियां भावुक हृदयकवियों के काव्य-रस में निमज्जित होकर गूंजती रहेंगी ।

(ख) <u>इतिहास में पौराणिक सन्दर्भ</u> :-

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों में पौराणिक सन्दर्भ भी किसी न किसी रूप में आए है । पुराणों में तीन प्रकार के चरित्र प्राप्त होते हैं :-

(१) मानवीय चरित्रों में प्रतीकात्मक रूप।(अवतार)जैसे राम,कृष्ण, सीता,रुक्मिणी आदि।

(२) वास्तविक मानवीय चरित्र । जैसे हरिश्चन्द्र,भीम,अर्जुन एवं द्रोपदी आदि।

(३) वास्तविक मानवीय चरित्रों में कल्पना का योग देकर उन्हें कवियों ने भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है - जैसे - दुष्यन्त

राम,कृष्ण,स्सीता आदि स्वरूपों में भगवान स्वयं इस भरत-भू पर अवतरित हुए।

वे स्वयं परब्रह्म परमेश्वर है अत: उनके द्वारा सम्पादित प्रत्येक कर्म प्रतीक है । भारतभूमि उनके चरणों का स्पर्श पाकर धन्य हुई ,अत: वे काव्य ग्रन्थों में, भारत के महिमा-गान के सन्दर्भ में तथा हमारे पूर्वजों के वर्णन के सन्दर्भ में प्रतीक स्वरूप उद्धृत किए जाते हैं ।

सत्यवादिता शक्ति तेज ओज एवं पुरुषार्थ के सन्दर्भ में राजा हरिश्चन्द्र भीम,अर्जुन तथा भीष्म आदि का उल्लेख रहता है।

भूल का परिणाम सदैव भुगतना पड़ता है । दुष्यन्त ने एक सती साध्वी नारी का अपमान किया भगवान कभी उसे क्षमा नहीं कर सकते, अन्त में स्वयं भी दुष्यन्त को पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़ता है । ऐसे प्रसंगों के उल्लेख में दुष्यन्त जैसे पौराणिक पात्र उदाहरण स्वरूप लिए जाते हैं।

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में पौराणिक पात्र उपमा ,उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के माध्यम से ऐतिहासिक वृत्तों की परस्पर तुलना,समानता,विभिन्नता प्रमाण आदि रूप में आए हैं ।

इतिहास के पात्र वास्तविक मानवीय चरित्र होते हैं, न तो वे अवतार ही हो सकते हैं और न कल्पना द्वारा उनका रूप ही परिवर्तन किया जा सकता है । ऐतिहासिक पात्रों को ज्यों का त्यों कवि काव्य पट पर चित्रित करता है केवल उन पात्रों के वर्णन में रागात्मक योग रहता है । कवि की भावुकता, सहृदयता तथा कल्पना इतिहास के नीरस अंशों तथा पात्रों में एक ऐसी संवेदना, सहानुभूति ,पीड़ा तथा मुस्कान भर देती है कि सहस्रों वर्ष पूर्व के वे पात्र अपने से प्रतीत होने लगते हैं । इतिहास के ऐसे अंशों तथा पात्रों के चित्रण में कवियों ने बहुत से पौराणिक सन्दर्भों को प्रयुक्त किया है ।

गुप्त बन्धुओं,द्वारकाप्रसाद गुप्त `रसिकेन्द्र`ठा० भगवत सिंह `विशारद` आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव आदि की रचनाओं में पर्याप्त पौराणिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं ।

" मौर्य विजय` मेंभीम,अर्जुन,राम,कृष्ण,स्कन्द आदि का उल्लेख मिलता है।

सैनिक उल्लासपूर्ण स्वर में वीरतापूर्ण गान कर रहे हैं। उन्हें अपनी शक्ति तथा अपने बल पर गर्व है। मृत्यु से वे भयभीत नहीं होते, क्योंकि-

मरा हमीं में भीम और अर्जुन का बल है?
कम्पित हमसे कहां नहीं, होता रिपु दल है ?
वीर प्रण सब काल हमारा अचल अटल है,
राम कृष्ण का अभय दान हम पर निश्चल है।[1]

महाराज चन्द्रगुप्त पृथ्वी के इन्द्र हैं। उनकी भुजाएं ही मानो यश रूपी स्तम्भ हैं –

थे मानों प्रत्यक्ष इन्द्र वे अवनीतल के,
थे उनके भुज यशः स्तम्भ से अतुलित बल के।[2]

और भी --

यद्यपि आज भारत भूमि में भीष्म और अर्जुन के समान वीर नहीं हैं किन्तु सन्तान हम उन्हीं की हैं यह क्या कम गौरव की वस्तु है। हमारी शिराओं में उन्हीं शक्तिशाली पूर्वजोंका रक्त दौड़ रहा है --

यद्यपि भीष्मार्जुन के सदृश वीर यहां अब हैं नहीं
पर उनके ही सन्तान क्या विश्रुत हम सब हैं नहीं।[3]

उपर्युक्त भाव के सन्दर्भ में ही श्रीकृष्ण,अर्जुन,भीम तथा भीष्म का उल्लेख डा० भगवत सिंह विशारद कृत `वीरांगना वीरा` में हुआ है।चित्तौड़ के राणा उदय सिंह के राज्य के राजपूत वीर सरदार जयमल कभी भी अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं करेंगेक्योंकि–

श्री कृष्ण अर्जुन भीम का बल है हमीं में शुभ भरा[4]

१- मौर्य विजय, सियाराम शरण गुप्त
२- वही , वही
३- वही , वही
४- छन्द ११३, पृ० २६

और भी —

सन्तान हो तुम भीष्म की, यह भूल नहीं जाना कहीं[1]

शत्रु यवनों की सेना में राजपूत वीर जयमल ने उसी प्रकार खलबली मचा दी जिस प्रकार अर्जुन ने कौरव सेना में मचाई थी—

ज्यों पार्थ ने कुरु सेन को विचलित किया था व्यूह में
त्यों खलबली इसने मचा दी घोर शत्रु समूह में[2]

रुक्मिणी और शिशुपाल का सन्दर्भ लेकर द्वारका प्रसाद गुप्त,'रसिकेन्द्र' ने 'आत्मार्पण' में प्रभावती की करुणा तथा असहाय दशा का चित्रण किया है।

रुक्मिणी सा आज मेरा हाल है
शाह ही मेरे लिए शिशुपाल है
द्वारिकेश समान सत्वर आइये
लाज धर्म बचाइये अपनाइये।[3]

राजपूत सरदार चूड़ावन्त हिन्दुओं की दुर्दशा पर दुःख प्रकट करते हुए अपने पूर्वजों का स्मरण कर रहे हैं ---

राम की सन्तान अब क्या हो रही ?
पूर्वजों की कीर्ति हा ! क्यों खो रही ?[4]

१- छन्द ११२, पृ० २६

२- छन्द १४५, पृ० ३७

३- प्रथम सर्ग, छन्द २३, पृ०१४

४- द्वितीय सर्ग, छन्द २५, पृ०२२

इसी प्रकार अनेकों स्थलों पर भी पौराणिक सन्दर्भों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। इन उल्लेखों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि प्रत्येक युग के वर्तमान को अतीत का सदैव आकर्षण रहा है। दूसरे यह कि हिन्दू जाति सदैव अपने पूर्वजों का सम्मान और गौरव अक्षुण्ण रखने के लिए जागरूक रही है। इस प्रकार पुराण और इतिहास का सन्दर्भ उल्लेख के प्रसंग में परस्पर सम्बन्ध रहा है।

सामान्य रूप से यह देखा जा सकता है कि जिन पौराणिक प्रसंगों में इतिहास की घटनाओं और चरित्रों को उत्कर्षता प्रदान करने की सामग्री और शक्ति है, उन्हीं का उपयोग कवियों के द्वारा ऐतिहासिक सन्दर्भों में हुआ है। यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणों में वर्णित चरित्र किस सीमा तक ऐतिहासिक हैं परन्तु कवियों ने ऐतिहासिक सन्दर्भों के साथ पौराणिक चरित्रों को जोड़ कर उनमें भी इतिहास की किरण डालने की चेष्टा की है। इस प्रकार पुराण और इतिहास जैसे एक ही सिक्के के दो पहलू बन गए हैं। पुराण ने इतिहास को प्रेरणा दी है और इतिहास ने अपनी भावनात्मक दृष्टि में पुराण को सजीव करने की चेष्टा की है।

प्रथम अध्याय

काव्य

तथा

इतिहास

(क) काव्य का स्वरूप — काव्यगत सत्य :

काव्य जीवन की विविध परिस्थितियों का रसात्मक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण है। जीवन का सत्य काव्य की भावभूमि पर अनेक रूपों में अवतरित होता है। यह रूप किसी विशिष्ट युग में भले ही तथ्यात्मक रूप से घटित न हुआ हो किन्तु इसमें जीवन की लगभग वे सभी स्वाभाविक सम्भावनाएं सन्निहित रहती हैं जो उसे तथ्यात्मक परिधि में ला सकती हैं।[1] इस प्रकार मानव जीवन की स्वाभाविक संवेदनाओं का आकलन ही काव्यगत सत्य का रूप ग्रहण करता है। इस सत्य को नाना परिस्थितियों में प्रस्तुत करने के लिए कवि को कल्पना का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। यह कल्पना कवि के चिन्तन से प्रसूत होती है परन्तु उसके द्वारा काव्यगत सत्य अधिकाधिक प्रखर एवं विश्वसनीय बन जाता है। इस सन्दर्भ में कल्पना काव्यगत सत्य की विनाशिका नहीं, विधायिका है। प्रकारान्तर से कवि कल्पना द्वारा ऐसी पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है जिस पर काव्यगत सत्य घटित हो सके। यदि रूपक के माध्यम से इसे स्पष्ट किया जाए तो कहा जा सकता है कि कल्पना वह क्यारी है जिसमें काव्यगत सत्य के पुष्प प्रस्फुटित होते है, अथवा कल्पना वह शरीर है जिसमें काव्यगत सत्य के प्राण स्पन्दन करते है। इस भांति काव्य में कल्पना और सत्य एक दूसरे के पूरक हैं।

---

1. The world of poetry, it is said, presents not facts but fiction : such things have never happened, such things have never live. Untrue, impossible, said the detractors of poetry in Aristotle's day : there creations are not real, not true to life, 'Not real' replied Aristotle, 'but a higher reality' 'what ought to be, not what is'.

S.H. Butcher.

Aristotle's theory of Poetry and fine Art.

With a critical text and translation of the Poetics.

Chapter III

काव्यगत सत्य जब इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो उसे पात्र एवं परिस्थिति की यथार्थता सहज ही प्राप्त हो जाती है । कल्पना को पात्र एवं परिस्थितियों के निर्माण की दिशा में विशेष सक्रिय होने की आवश्यकता नहीं, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि ऐतिहासिक सत्य के निरूपण में कल्पना निष्क्रिय हो जाती है । इतिहास मानव जीवन के तथ्यों की प्रमुख घटनाओं को ही संग्रहीत करता है ,उसकी जीवन्त मनोदशाओं तथा प्रक्रियाओं के प्रति वह अधिक जागरूक नहीं रहता । ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक पात्रों तथा घटनाओं की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के लिए कल्पना को सक्रिय होना ही पड़ता है । दूसरे शब्दों में ,कल्पना ऐतिहासिक सत्य को विश्वसनीय बनाने के लिए उन मनोवैज्ञानिक अभावों की पूर्ति करती है जो इतिहास के द्वारा उपेक्षित हो गए हैं। यह इतिहास जब काव्य का विषय बनता है तो इसका संयोजन कल्पना के द्वारा मानवीय संवेदनाओं के साथ हो जाता है । इस स्थल पर यह विचार करना आवश्यक है कि वस्तुत: इतिहास का रूप और उसकी परिधि क्या है ?

(ख) इतिहास से तात्पर्य :

ईसा पूर्व से लेकर आधुनिक युग तक इतिहास के सम्बन्ध में अनेक व्याख्याएं एवं परिभाषाएं निर्धारित हुई हैं । शाब्दिक दृष्टि से `इतिहास` का अर्थ है- `ऐसा हुआ` अर्थात् जो इस प्रकार हुआ । क्रमबद्ध वर्णन इतिहास है । भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सामयिक तत्वों की अपेक्षा जीवन के शाश्वत तत्वों को अधिक महत्व मिला है इसीलिए ईसा के बहुत बाद तक भी तथ्यपरक इतिहास-ग्रन्थों के लिखने की प्रणाली यहां नहीं अपनाई गई ।साहित्य के माध्यम से ही युगों के इतिहास कापरिचय मिलता रहा । बारहवीं शताब्दी में कल्हण की `राजतरंगिनी` प्राचीन साहित्य में एकमात्र ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध होता है जिसे इतिहासकारों ने पूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार किया है । आधुनिक युग में भारतीय इतिहासकारों ने पाश्चात्य दृष्टिकोण से प्रभावित होकर इतिहास के सम्बन्ध में शुद्ध तथ्यात्मक दृष्टिकोण की स्थापना की तथा इसी दृष्टि से भारतीय इतिहासकार आधुनिक युग में अनेक गवेषणाओं के आधार पर भारत के प्राचीन,मध्यकालीन

तथा आधुनिक युग का इतिहास प्रस्तुत कर रहे हैं । आधुनिक युग के इतिहास सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए कतिपय भारतीय एवं पाश्चात्य इतिहासकारों के विचार देख लेना उपयुक्त रहेगा ।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इतिहास और उसके महत्व के सम्बन्ध में बहुत व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है --

"देशों, जातियों, राष्ट्रों एवं महापुरुषों के उदाहरणीय कार्यों को प्रकट करने का एक मात्र साधन इतिहास है । किसी जाति को सजीव रखने, अपनी उन्नति करने तथा उस पर दृढ़ रह कर सदा अग्रसर होते रहने के लिए संसार में उससे बढ़ कर दूसरा कोई साधन नहीं है ।

इतिहास महापुरुषों के कृत्यों से हमारा परिचय कराता है । हमें उन्नति का मार्ग बतलाता है और अपना कर्तव्य स्थिर करने के लिए उत्साहित करता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान एडमण्ड बर्क ने लिखा है कि इतिहास उदाहरणों के साथ साथ तत्व ज्ञान का शिक्षण है । वस्तुतः यह बिल्कुल ठीक है ।

इतिहास हमारे सामने एक देश या समाज के भूतकालीन आचार-विचार, धार्मिक भाव, रहन-सहन, राजनीतिक संस्था शासन पद्धति आदि सभी ज्ञातव्य बातों का एक सुन्दर चित्र रख देता है तथा यह बतलाता है कि किन कारणों से कोई जाति उन्नत हुई अथवा किन कारणों से उसकी अवनति हुई । इतिहास भिन्न भिन्न देशों के पिछले सैकड़ों और हजारों वर्षों के अनुभव हमारे सामने रख कर हमें भावी कर्तव्यों का उपदेश देता है । इससे हम यह भी जान सकते हैं कि देश अथवा जातियां किस तरह पराधीन हो जाती हैं, सामाजिक संगठन क्यों टूट जाते हैं ।

अतीत का गौरवपूर्ण इतिहास समाज में एक संजीवनीशक्ति और अदम्य उत्साह का संचार करता है[१]।"

१- उदयपुर राज्य का इतिहास, जि० प्र०, भूमिका

पाश्चात्य विद्वानों ने इतिहास की अनेक व्याख्याएं की हैं । महान् दार्शनिक विद्वान् अरस्तू ने विशिष्ट घटनाओं ,सत्यतापूर्ण तथ्यों की क्रम-बद्धता को इतिहास माना है[1] । तीन अंग्रेज विद्वानों(हैस्टर बी रौगरौ,फैरलमन,वीकरब्राउन) ने अपनी पुस्तक `स्टोरी आफ नेशन्स` में इतिहास की अत्यन्त रोचक तथा अति आधुनिक तरह व्याख्या प्रस्तुत की है । मनुष्य जीवन की कहानी और इतिहास की कहानी में साम्य बतलाते हुए इतिहास को अतीत की कहानी माना है । साथ ही यह कह कर कि एक मनुष्य की कहानी से इतिहास की कहानी अधिक है , इतिहास के व्यापक रूप की स्थापना की है । इतिहास हमारे सभी सहपाठियों,सभी प्राध्यापकों तथा हमारे सम्पूर्ण नगर निवासियों की कहानी है । इतिहास एक व्यक्ति के,अपने देश एवं विश्व के,अन्य देशों तथा मनुष्यों के,अतीत और वर्तमान का ज्ञान प्रदान करता है[2] ।

---

1. Historicl Compositions, as Aristotle observes in a later chapter, are a record of actual facts, of particular events, strung together in the order of time but with out any clear casual connexion. Chapter I

   S.H. Butcher
   Aristotle's theory of Poetry and Fine Arts.
   With a critical text and translation of the Poetics.

2. .... your story is a continued story. All history is the part of it that happened before you came in .... you will understand your own story better when you read history. But history is more than your story. It is the story of all your classmates, your teachers and every body in your town. It can help you to understand your own country and all the other countries and peoples

मिस्टर वीसेन्ट स्मिथ ने क्रमबद्धता को इतिहास का अनिवार्य अंग माना है।[1] इस प्रकार सभी परिभाषाओं और व्याख्याओं को देखते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इतिहास मानव जाति के विकास का तथ्यात्मक एवं क्रमबद्ध आख्यान है।

(ग) साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा :

बीसवीं शताब्दी में ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों की परम्परा वस्तुत: कोई नवीन परम्परा नहीं है। भारत और विदेश के प्राचीनतम् साहित्यों में इस परम्परा का स्वरूप सरलता से खोजा जा सकता है। यहां साहित्य में ऐति-

---

of the world. ..... If you like stories or movies you should find the study of history interesting and stimulating. For it is many stories about many people - people who did interesting and exciting things, many of which have had an effect on your life ..... You will begin to see how the world "got that way". If you have any curiosity you will have fun in seeing how ideas began and grew through the ages - how such things as democracy, communism, and dictatorship cam about. No fiction can compare in interest with the historical facts of how man has bult what we know as the modern world"

Story of Nations Introduction.

1. "A body of history must be supported upon a skeletion of chronology and without chronology history is impossible".

T.L. Shah, Preface : Ancient India, Volume II
First Edition, 1939.

हासिक काव्य परम्परा का अवलोकन करने से पूर्व भारतीय प्राचीन साहित्य में इतिहास के प्रति जो दृष्टिकोण था वह देखना आवश्यक है । पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भारत के प्राचीन काल में ऐतिहासिक चेतना का अभाव था ।[१] संस्कृत साहित्य में आधुनिक अर्थ में इतिहास रचनाएं नहीं हुई । इतिहास के प्रति आधुनिक दृष्टि के आधार पर वास्तव में यही भ्रम होता भी है कि हमारे संस्कृत साहित्य के विद्वानों ने इतिहास-रचना के प्रति रूचि नहीं दिखाई किन्तु संस्कृत के इतिहास ग्रन्थों की समीक्षा इतिहास-रचना की आधुनिक धारणा के अनुसार करना उचित नहीं है । भारतीय प्राचीन काल में इतिहास का उद्देश्य तिथियों अथवा घटनावलियों का वर्णन करना नहीं था । इतिहास लिखने से उनका उद्देश्य जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को महापुरूषों के जीवन में घटाते हुए राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में योग देना था । इस प्रकार उनके समक्ष काल अथवा देश के संकुचित दृष्टिकोण की अपेक्षा विश्व-कल्याण तथा विश्व के चिरन्तन आदर्शों की अभिव्यक्ति करने का व्यापक दृष्टिकोण था । व्यक्ति का इतिहास प्रस्तुत करने की अपेक्षा उन्होंने सामूहिक चेतना का इतिहास प्रस्तुत किया। अतः प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसी व्यापक दृष्टि से इतिहास ग्रन्थों की खोज करनी चाहिए । इससे पूर्व हमने आधुनिक अर्थ में प्रसिद्ध इतिहासकारों की इतिहास सम्बन्धी धारणाओं पर विचार किया है । दोनों धारणाओं की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक इतिहास आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं को स्वीकार करने वाले इतिहासकारों द्वारा लिखे गए हैं तथा संस्कृत - साहित्य के प्राचीनकाल में साहित्यकारों द्वारा साहित्यिक रचनाओं में इतिहास का प्रयोग हुआ है । इन ग्रन्थों में केवल इतिहास की अपेक्षा साहित्यिक दृष्टि-प्रधान होने के कारण प्राचीन काल में भारतीय इतिहास अनेक रूपों में पुराण साहित्य का आश्रय लेकर ही व्यक्त हो सका है । विशेषता यह है कि अनेक

१- ए० बी० कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनूदित), पृ० १७८

तथ्य कथाओं का आवरण लेकर मनोरंजन के साथ प्रस्तुत किये गये हैं । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, मनुष्य जीवन के इन चार सोपानों की व्याख्या हुई है । अतएव काव्यकारों की ये रचनाएं ऐतिहासिक काव्यों की कोटि में परिगणित की गई है ।[१]

(१)भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा :- पुराण :

ऐतिहासिक काव्य परम्परा खोजने के लिए हमें भारतीय साहित्य में पुराण साहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिए। प्राचीन वंशों का वंशानुक्रमिक वर्णन हमें पुराणों में प्राप्त होता है । तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विशद चित्र पुराण साहित्य में सुरक्षित है । कथा कहानी कहने की शैली में अनेक भक्तिपूर्ण आख्यान काव्य बद्ध हुए हैं। इन भक्ति-पूर्ण धार्मिक कथाओं के परिवेश में ही इतिहास का वर्णन भी हुआ है । यह इतिहास अनेक कल्पनाओं एवं अतिरंजनाओं से आच्छादित होने के कारण स्पष्ट रूप में प्रत्यक्ष नहीं हो पाता अत: जब प्राचीन इतिहास का स्वरूप किसी भांति पुराण साहित्य के के अन्तर्गत खोजना होगा तब ऐतिहासिक काव्यों का स्वरूप भी पुराणों में ही प्राप्त होगा । यहां पुराणों के स्वरूप पर भी दो शब्दों में विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा।

समस्त भारतीय साहित्य में मुख्य रूप से एक ही दृष्टि परिलक्षित होती है - वह है कथाओं के माध्यम से जीवन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन । पुराणों में भी इस नीति के सिद्धान्तों पर मानव जीवन के उन आदर्शों का चित्रण हुआ है जिनका पालन अपने जीवन में करके मनुष्य सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है ।वह अपने जीवन को अनुकरणीय एवं महान् बना सकता है । मानव-धर्म ,वर्ण धर्म स्त्री धर्म आदि का निरूपण ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ आदि आश्रमों के नियम, गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार और गृहस्थों के लिए मोक्ष आदि चारों मार्गोंका सुन्दर

१- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त , हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास,पृ०३६८

विवेचन साहित्यिक सौन्दर्य के साथपुराणों में हुआ है । इसके साथ ही भक्ति का मर्म,योग की महिमा अनेक प्रकार से वर्णित हुई । आसक्ति और विरक्ति काम,क्रोध,लोभ,मोह आदि मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण अनेक कथाओं के माध्यम से प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया । संक्षेप में, पुराणों का स्वरूप निम्नतः बातों पर आधारित है ।

(१) जीवन के आदर्शों का प्राचीन महापुरुषों के चरित्रों से अनुप्राणित करने की दृष्टि ।

(२) नीति और उपदेश के द्वारा सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण।

(३) रूपकों तथा प्रतीकों का आश्रय ।

(४) कथा संयोजना

(५) वर्णन वैचित्र्य

(६) जनश्रुतियों तथा अनुश्रुतियों का योग ।

इन सभी कोटियों की एक संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है ।

पुराणों का स्वरूप :-

(१) उच्च वृत्तियों एवं महान् आदर्शों से परिपूर्ण जीवन-यापन करना मनुष्य की सफलता का द्योतक है । भारतवर्ष में अनेक महान् आत्माएं हुईं जिन्होंने अपने अनुभव पूर्ण जीवन के आधार पर अनेक आदर्शों की स्थापना की। भगवान राम ने मर्यादा का पालन आजीवन किया । महाराजा हरिश्चन्द्र ने सत्यपालन के लिए अनेक कष्ट सहन किये । महर्षि दधीचि ने परोपकार के लिए शरीर की एक-एक हड्डी का बलिदान किया । इस प्रकार मर्यादा,सत्यपालन, तथा परोपकार --इन महान् आत्माओं के जीवनादर्श थे तथा इनके प्रतिपादन हेतु पुराणों में इन महापुरुषों की गाथाएं गाई गई हैं ।

(२) सरल मार्ग की ओर मनुष्य शीघ्र आकर्षित होता है तथा सामान्य बुद्धि के मानव के लिए अभिव्यंजना की सरलता का होना परमावश्यक है । जीवन के गूढ़तम सिद्धान्त एवं रहस्य भी जब कथाओं के द्वारा स्पष्ट होते हैं तो जन साधारण के लिए शीघ्र ग्राह्य हो जाते हैं । इस दृष्टि से साहित्य में कभी-कभी कहीं-कहीं नीति और उपदेश की अनिवार्यता अनुभव की जाती है । पुराणों में यह दृष्टि सर्वत्र परिलक्षित होती है । उदाहरण के लिए ब्राह्मणों

के लिए विद्या एवं तपस्या परम कल्याण के साधन कहे गए हैं । किन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड एवं अन्यायी होकर अपनी शक्ति तथा विद्या का दुरुपयोग करने लगे तो वे दोनों विपरीत फल देने लगते हैं स्वयं कर्ता के विनाश का कारण बनते हैं।[1] इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए पुराणकार ने महर्षि दुर्वासा के संकट और उस संकट की निवृत्ति की कथा के द्वारा उपदेशात्मक प्रणाली अपनाई है । इसी प्रकार अनेकानेक नीतिपूर्ण श्लोक पुराण-साहित्य की सम्पत्ति है ।

(३) कवि केवल अमूर्त को ही मूर्त नहीं करता वह मूर्त को भी मूर्ति प्रदान करता है । इसके लिए उसे रूपकों तथा प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है । `उपकार` एक भाव है उसे मूर्तता प्रदान करने के लिए , चरम सीमा दिखाने के लिए पुराणकार ने महर्षि दधीचि के चरित्र को प्रतीक स्वरूप लिया । `महाराजा हरिश्चन्द्र `की स्थापना सत्य के प्रतीक रूप में हुई ।`गंगा` पवित्रता तथा पतितों के उद्धार करने की प्रतीक है । रूपकों तथा प्रतीकों के आश्रय से पुराणकारों ने अनेक अमूर्त भावों को मूर्तिमत्ता प्रदान करके रोचक शैली का निर्माण किया ।

(४) कथा-संयोजन की ऐसी सुन्दर आकर्षक एवं प्रभावशाली दृष्टि पुराणकारों ने प्रस्तुतकी है कि एक बार तो उनकी अद्भुतपूर्व कल्पना -शक्ति पर आश्चर्य होने लगता है । बात बात में उपकथाओं की उद्भावनाएं हुई हैं । वस्तुत: बात कहने का ढंग ही मानों कथाओं की सृष्टि करता है और फिर घूम फिर कर कवि प्रमुख कथा की कड़ी से सब उपकथाओं को जोड़ता हुआ अपनी बात कहने लगता है । भगवान् कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में कथाओं की सुन्दर योजना

१- तपो विद्या च विप्राणां नि:श्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ।।७०।।

श्रीमद्भागवत पुराण,खंड द्वितीय,नवम स्कन्ध,अध्याय ५

प्राप्त होती है । राजा दुष्यन्त और भरत के चरित्र चित्रण में अनेक कथाएं मिलती हैं । भरतवंश का वर्णन करते हुए राजा रन्तिदेव की कहानी कहने लगता है । श्रीमद्भागवतपुराण के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में भगवान के लीला अवतारों की अनेक कथाएं आई हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि कथाओं -उपकथाओं की ऐसी आकर्षण तथा सुष्ठु योजना पुराणकारों ने की है कि कोई भी मुख्य कथा कहने के साथ-साथ नवीन उपकथाओं की सृष्टि जैसे उस प्रमुख-कथा का जैसे एक आवश्यक अंग ही बन गई प्रतीत होती है ।

(५) कथा वर्णन करने की भी एक शैली होती है तथा वर्णन वैचित्र्य इसी शैली का एक अंग है । एक बात साधारण रूप में भी कही जा सकती है तथा वही बात उपमा उत्प्रेक्षा एवं प्रतीक आदि अलंकारों के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूपों में भी प्रस्तुत की जा सकती है । इसे वर्णन-वैचित्र्य की संज्ञा दी गई है। वर्णन-वैचित्र्य के उचित प्रयोग से काव्य-सौंदर्य की वृद्धि होती है । पुराण-कारों को वर्णन की यह विचित्रता इतनी अधिक प्रिय प्रतीत होती है कि कोई भी स्थल सम्भवत: ऐसा नहीं है जहां इस अलंकारिक शैली का प्रयोग न हुआ हो। वर्षा एवं शरद ऋतु के एक दो उदाहरणों से ही यह स्पष्ट हो जाता है --

" आकाश में नीले और घने बादल घिर आते हैं ,बिजली कौंधने लगती है, बार बार गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है सूर्य चन्द्रमा और तारे ढके रहते हैं इससे आकाश की शोभा ऐसी होती है कि जैसे ब्रह्म स्वरूप होने पर भी गुणों से ढक जाने पर जीव की होती है ।[1] जेठ आषाढ़ की गर्मी से पृथ्वी सूख गई थी । अब वर्षा के जल से सिंच कर वह फिर हरी भरी हो गई -जैसे सकाम भाव से तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु जब उसका फल मिलता है तब हृष्ट पुष्ट हो जाता है ।[2]

१- सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभि: ।
अस्पष्ट ज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ।।- भागवतपुराण,दशम स्कन्ध, वर्षाविंशोध्याय:

२- तप: कृशा देव मीढा आसीद् वर्षीयसी मही ।
यथैव काम्यतपसस्तनु: सम्प्राप्य तत्फलम् ।७। वही , वही वही

(६) पुराण किसी एक काल विशेष की रचना नहीं । समय-समय पर अनेक ऐतिहासिक युगों में लिखे गये । अत: यह सम्भव ही है कि उनमें अनेक जनश्रुतियाँ तथा अनुश्रुतियों का योग हो गया है ।

इस संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पुराणों की शैली और उनका कथ्य ऐतिहासिक तथ्यपरक दृष्टिकोण से प्रस्तुत नहीं हुआ वरन् धार्मिक दृष्टिकोण की उनमें प्रधानता है । विशेषता यह है कि धार्मिक दृष्टिकोण सर्वोपरि होनेके अनन्तर भी काव्यात्मक सौन्दर्य क्षीण नहीं हुआ है तथा अपनी इस काव्यात्मकता में ही पुराण इतिहास को भी समाविष्ट करते रहे है । अत: भारतीय साहित्य में ये प्रारम्भिक संस्कृत ग्रन्थ इतिहास की आधुनिक दृष्टि से भिन्न होने के कारण इतिहास ग्रन्थों की अपेक्षा ऐतिहासिक काव्यों के स्वरूप के अधिक निकट है ।

ईसवी सन् के पश्चात् संस्कृत के अनेक ऐतिहासिक काव्यों की रचनाएं हुई । बाण भट्ट कृत `हर्षचरित` (सन् ६०६-६४८) में महाराज `हर्षवर्धन` का चरित अंकित है । यद्यपि इसमें तथ्य को तथ्य के रूप में अपनाने की दृष्टि नहीं है तथापि अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन हर्षवर्धन के समय में भारत में आए चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णनों से मिलता हुआ है । हर्षचरित का ऐतिहासिक वृत्तान्त तत्कालीन इतिहास के शोध में विशेष सहायक होता है ।[1] ऐतिहासिक पात्रों को कथानायक बना कर `काव्य` रचने की बाणभट्ट की यह परम्परा संस्कृत में बहुत दूर तक प्राप्त होती है । कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रित कवि वाक्पति राज ने लगभग ७३६ ई० में `गौड़वहो` काव्य की रचना की । `गौड़वहो` की ऐतिहासिक महत्ता विशेष नहीं है ।[2] १००५ ईसवी

१- पण्डित चन्द्रशेखर पाण्डेय, डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, संस्कृत साहित्य की रूप रेखा, पृ० ३३६

२- वही , वही , वही , पृ० ३३८

में धार नरेश मुञ्ज तथा उनके पुत्र सिन्धुराज (नवसाहसांक) के राजकवि पद्मगुप्त ने `नवसाहसांक चरित` की रचना की । इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता के चरित्र का कवित्वमय वर्णन किया है । इसमें अनेक तत्कालीन ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन होता है ।

काश्मीरी ब्राह्मण कवि बिल्हण ने चालुक्य-वंशी राजा विक्रमादित्य को चरित नायक बना कर १०८५ईसवी के लगभग `विक्रमांकदेवचरित` की रचना की। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह काव्य उल्लेखनीय है । कल्पना और इतिहास के योग से एक सुन्दर काव्य का निर्माण हुआ है । ऐतिहासिक काव्यों की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में महाकवि कल्हण-कृत`राजतरंगिणी (११४८-११५१) सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है । इसमें कवि ने आदिकाल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के काश्मीर के प्रत्येक शासक की घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन किया है । यह वर्णन अत्यन्त ही सजीव एवं काव्यात्मकता पूर्ण है ।

इन संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों के अतिरिक्त प्राकृत अपभ्रंश में भी गुजरात के सोमेश्वरदत्त (११७९,१२६२)का `कीर्ति कौमुदी` जैन मुनि हेमचन्द्र (१०८८,११७२)कृत `कुमारपाल चरित` तथा जयसिंह कृत `हम्मीरमद-मर्दन`आदि अन्यान्य काव्य ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में उपलब्ध होते हैं । इसके पश्चात् यह परम्परा हिन्दी साहित्य जगत में अवतरित होती हुई बीसवीं शताब्दी तक अपने सुदृढ़ रूप में मिलती है । मध्यकालीन एवं रीतिकालीन ऐतिहासिक काव्यों का उल्लेख इस शोधप्रबन्ध के विषय प्रवेश में हुआ है ।

(२) विदेशी साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा : इलियड : आडेसी :-

केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं विदेशी साहित्य में भी `ऐतिहासिक महाकाव्यों` की यह परम्परा खोजी जा सकती है । उदाहरण के लिए इस परम्परा में यूनान का प्राचीनतम साहित्य उल्लेखनीय है । इतिहास के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्थापना ईसवी पूर्व लगभग पांचवीं शताब्दी में हेरोडोटस (Herodotus) ने की थी और इतिहास को एक तर्कसंगत विधा

मान कर इसे मानव जाति से सम्बन्धित माना था । इससे यह तो सिद्ध होता है कि पश्चिम में इतिहास के प्रति आधुनिक दृष्टि का सूत्रपात ईसा पूर्व हो गया था जब कि भारत में इस दृष्टिकोण की स्थापना ईसा के भी बहुत बाद में हुई । इसका एक मात्र कारण इतिहास के प्रति दोनों के भिन्न दृष्टिकोणों का था[१] । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यूनान में मानव जाति के आरम्भ से ही इतिहास के प्रति यह दृष्टिकोण रहा था । यूनान का प्रागैतिहासिक इतिहास भी कवियों की प्राचीन साहित्यिक रचनाओं द्वारा ही उपलब्ध होता है । हेरोडोटस से पूर्व इतिहास लिखने की कोई निश्चित परम्परा नहीं थी । काव्य रचनाओं में ही इतिहास का उपयोग होता था । इस सम्बन्ध में यूनानी साहित्य के प्राचीनतम काव्य 'इलियड' और 'आडेसी' उल्लेखनीय हैं तथा यूनान के प्रागैतिहासिक इतिहास से परिचय प्राप्त करने के प्रमुखतम साधन होमर कृत ये दोनों महाकाव्य ही हैं[२] । यहां 'इलियड' तथा 'आडेसी' के सम्बन्ध में संक्षेप में देख लेना अनुपयुक्त न होगा ।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि 'इलियड' और 'आडेसी' की मूल घटनाएं ईसा से अनेक शताब्दियों से पूर्व घटी थीं तथा कवि गायकों तथा चारणों द्वारा चली आती हुई इन कथाओं को महाकवि होमर ने 'इलियड' और 'आडेसी' महाकाव्यों में पद्यबद्ध किया था ।

१- इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की स्थापना इसी अध्याय के पूर्व पृष्ठों में हुई है ।

2. The little that we know of the early Greek Tribes comes to us in songs and stories the poets handed down from generation to generation. They told of the siege of Troy, an ancient city in Asia Minor, and of the wooden horse, a clear device the Greek warriors used to get inside the walls of the city. They sang of the beautiful Helen and of the Paris, son of the King of Troy, who stole her from the Greek noble Menelause. They told of

इलियड :-

सम्पूर्ण महाकाव्य की कथा ट्राय के युद्ध, उसके कारण तथा घटनाओं के मर्मस्पर्शी विशद वर्णन से सम्बन्धित है ।स्पार्टा के राजा मेनेलाउस की सुन्दर पत्नी हेलेन, ट्राजनों और यूनानियों के मध्य हुए इस भयंकर युद्ध का कारण थी ।`इलियड` में युद्ध की पचास दिनों की घटनाओं का सविस्तार वर्णन है । यूनानियों के देवी-देवताओं (सौन्दर्य की देवी वीनस,बुद्धिमता की देवी मिनर्वा ,देवताओं की रानीजूनो, देवताओं का राजा जूपिटर,सूर्य का देवता औपोलो,समुद्र की देवी थीटिस आदि) ने इस युद्ध में खूब हस्तक्षेप किया है । ये सभी देवी देवता युद्ध के दोनों पक्षों से सम्बन्धित हैं । ये देवी-देवता युद्ध की प्रत्येक भावी घटना को पहले से ही जानते हैं अत: अपनी अपनी रुचि और पारस्परिक स्वार्थों के कारण युद्ध के सेनानायकों एवं योद्धा-गणों को उत्तेजित करते रहते हैं ।

ऑडिसी :-

इलियड महाकाव्य के एक पात्र यूलिसिस् के साहसिक तथा वीरता पूर्ण कार्यों का वर्णन`ऑडिसी` महाकाव्य का कथानक है । ट्राय का पतन हुए दस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । यूलिसीस् इन दस वर्षों में निरन्तर भटकता रहता है । होमर ने उसके भटकने के ब्यालीस दिनों का वर्णन किया है ।

शेष- warriors and Gods and of a primitive war like people who lived in Greece around the 12th century B.C. Year later the legends were woven into the Epic Poems called The ILIAD and the ODYSSEY, supposedly by the blind poet Homer.

Rogers, Adams, Brown,
Story of Nations page-73-74.

यूलिसीज़, फियेशिया द्वीप के राजा से स्वयं अपने दस वर्षों के इधर उधर भटकने की कहानी सुनाता है और ट्राय के पतन की कहानी भी कहता है। अन्त में अन्य अनेक विपदाओं से मुक्ति पाकर यूलिसीज़ अपने द्वीप इथा का पहुंच कर अपनी पत्नी के प्रेमियों को, जिन्होंने उसकी पत्नी को अत्यन्त परेशान किया हुआ था, मार कर आनन्द से रहने लगता है। इस सम्पूर्ण काव्य कथा में भी देवी देवताओं द्वारा पूर्ण हस्तक्षेप होता है। एक प्रकार से 'इलियड' महाकाव्य के आगे की ही कथा 'ऑडिसी' महाकाव्य का कथानक है[1]।

दोनों महाकाव्यों के कथानकों को विस्तार से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनतम ग्रीक साहित्य ऐतिहासिक काव्यों की एक बहुत प्राचीन परंपरा की उद्घोषणा करता है। घटनाओं के वर्णन में इतिहास की भांति तथ्य परक दृष्टि के विपरीत अतिरंजनाओं, कल्पनाओं एवं काव्यात्मकता का प्राचुर्य है। विविध परिस्थितियों तथा प्रसंगों के उल्लेख के साथ ही साथ उन ऐतिहासिक सन्दर्भों पर भी दृष्टि रखी गई है जो राजनीतिक वातावरण में घटित हुए हैं। इतने प्राचीन काव्य के ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता संदिग्ध हो सकती है किन्तु उन ऐतिहासिक तथ्यों का प्रमाण अन्य किसी स्रोत से न होने के कारण यह सम्भव है कि यूनानी इतिहासकारों के लिए इस महाकाव्य का साक्ष्य ही विवेचन का आधार बना है[2]। अत: इतिहासकारों द्वारा इस महाकाव्य की घटनाओं को ही इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है।

---

1. T.A. Sinclair,
   A History of classical Greek literature,
   Page - 22, 60.

2. "The Homeric poems are still historical documents of the highest value, and that not merely as reflecting the life of the Poet's age, the sentiments and manners of the heroic society of which he formed a part, but also as preserving the popular traditions of Greece".

   S.H. Butcher,

   Aristotle's theory of Poetry and fine Arts with a critical test and translation of the POETICS,

   Chapter I.

इस प्रकार यहाँ संक्षेप में हमने `ऐतिहासिक काव्य` की परम्परा पर विचार किया तथा यह समझने का प्रयास किया कि भारतीय एवं विदेशी दोनों ही साहित्यों में ऐतिहासिक काव्यों का स्वरूप प्राचीनतम साहित्य में खोजा जा सकता है। बीसवीं शताब्दी के खड़ी बोली काव्य में ऐतिहासिक काव्यों की यह परम्परा नवीन नहीं है तथा सम्भवत: भारतीय साहित्य में संस्कृत साहित्य और विदेशी साहित्य में यूनान के `इलियड` और `ओडिसी` महाकाव्यों से किसी न किसी अंश से प्रभावित हुई हो।

(घ) ऐतिहासिक काव्य से तात्पर्य :-

कवि-संवेदना, अनुभूति एवं कल्पना का स्पर्श प्राप्त करके जब इतिहास का तथ्य कलात्मक रूप में प्रस्तुत होता है तो `ऐतिहासिक काव्य` की सृष्टि होती है। इतिहास जब काव्य में प्रतिष्ठित होता है तो उसका स्वरूप भिन्न हो जाता है। इतिहास की कथा काव्य-कथा बन कर सार्वलौकिक बन जाती है।[१] वहाँ उसका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष अथवा साम्राज्य विशेष से न रह कर मानवीय संवेदना से जुड़ जाता है। कवि सुन्दरम् का उपासक है। वह भाव जगत का प्राणी है। जिस दृष्टिकोण से उसके क्ष्य की सुन्दर से सुन्दर झांकी

---

1. "The first distinguishing mark than, of poetry, is that it has a higher subject matter than history. It expresses the universal, not that the particular, the permanent possibilities of human nature. It does not merely tell the story of the individual life, what Alcibiades did or suffered". Chapter I.

Aristotle's theory of Poetry and Fine Art with a critical text and translation of the Poetics.

S.H. Butcher.

प्रस्तुत हो सके उस उसी दृष्टिकोण को अपनाता है । अत: इतिहास का तथ्य उसके काव्य में ज्यों का त्यों चित्रित नहीं होता । तथ्य को भी वह अनेक कल्पनाओं द्वारा उस रूप में प्रस्तुत करता है जिससे वह सुन्दरतम दृष्टि-गोचर हो । वह सत्य की उपेक्षा न करके भावना और कल्पना द्वारा उसके अन्तरंग में प्रवेश करके शाश्वत सत्य की झांकी प्रस्तुत करता है । इस प्रकार इतिहास का 'सामयिक सत्य' कवि की कृति में चिरन्तन सत्य के रूप में प्रस्तुत होता है । यहीं ऐतिहासिक काव्य का निर्माण होता है ।

(ङ०) ऐतिहासिक काव्य और कल्पना :

कल्पना काव्य का अनिवार्य अंग है । इसके बिना काव्य का अस्तित्व सम्भव नहीं । प्रत्येक युग के साहित्य शास्त्रियों द्वारा कल्पना का महत्व एक स्वर से स्वीकार किया गया है । भामह, दण्डी, उद्भट और रुद्रट आदि आचार्यों ने तो रचना एवं कल्पना के सौन्दर्य को ही काव्यात्मा माना है । ऐतिहासिक काव्यों में यद्यपि विषय अथवा पात्र और परिस्थितियों के निर्माण में कवि कल्पना सक्रिय नहीं होती किन्तु किसी ऐतिहासिक घटना अथवा चरित्र के अन्त तक पहुंचने के लिए मानों कवि एक सेतु की कल्पना करता है । इस सेतु की भूमि इतिहास के ठोस तथ्य द्वारा निर्मित रहती है और दोनों ओर के आधार कल्पना की सुनहरी कड़ियां जोड़ कर बनाये जाते हैं, जिसके सहारे-सहारे काव्यकार पाठक को तथ्य के गन्तव्य स्थान तक पहुंचा देता है। कल्पना की ये सुनहरी कड़ियां तथ्य के प्रकार बनाती हैं ।ऐतिहासिक सत्य, काव्य में कल्पना द्वारा स्वयं वाणी धारण करके मानों अपनी कहानी अपने आप कहता चलता है ।जहां इतिहास मौन हो जाता है वहां कल्पना मुखरित होकर काव्य में उस अंश की पूर्ति करती है । साथ ही इतना निश्चित है कि कल्पना का मनमाना प्रयोग कवि ऐतिहासिक काव्यों में नहीं कर सकता । तथ्य की सीमा के अन्दर रहना तथा उसे विरूप न बनाने का उत्तरदायित्व काव्यकार के साथ साथ चलता है ।

गांधी चरित्र लिखते समय कवि श्रद्धा भाव एवं पूजा भाव के वशीभूत हो उनकी मृत्यु का सम्बन्ध किसी चमत्कार अथवा दैवी शक्ति के साथ नहीं जोड़

सकता । महात्मा गांधी विश्व बापू थे, जन मन के नायक थे यह सत्य है किन्तु यह भी सत्य है कि कुछ व्यक्ति समाज में ऐसे भी थे जिन्हें गांधी जी के कार्य और उनकी नीति नहीं भाती थी । अत: बापू ऐसे ही किसी व्यक्ति की क्रूरता का शिकार बन गए। भले ही नाथूराम गोडसे का यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय था किन्तु इस महान सत्य की अवहेलना काव्यकार किसी भी भांति नहीं कर सकता। हां, इस सत्य की प्रखरता के लिए वह किन्हीं नवीन कल्पनाओं का सृजन कर सकता है । वह कल्पना द्वारा इस सत्य के प्रति अपनी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति कर सकता है । काठ की किसी वस्तु पर पालिश इसलिए की जाती है कि उसमें चमक आ जाय तथा उसका सौन्दर्य बढ़ जाय ।इस रूप परिवर्तन में केवल सौन्दर्य परिवर्तन रहता है आकार परिवर्तन नहीं।इतिहास का सत्य काव्य में इसी रूप परिवर्तन के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। प्रमुख सत्य को दृष्टिगत रखते हुए ही नवीन सम्भावनाओं ,पात्रों और कल्पनाओं का सृजन होना चाहिए। एक हीविषय को प्रस्तुत करते हुए विभिन्न कवि विभिन्न कल्पनाओं का निर्माण करते हैं । राजपूत नारियों के जौहर -प्रसंग अनेक कवियों के काव्य विषय बने। इन मार्मिक प्रसंगों में कल्पना द्वारा कवियों ने अनेकों ऐसी सम्भावनाओं की कल्पना की है कि चिता की लपटों तक पहुंचते पहुंचते पाठक भाव-विभोर तथा करुणा विह्वल होकर अपने अश्रुओं के पावन जल से मानों इन देवियों के चरण धोने लगता है । वस्तुत: कल्पना के स्पर्श से ऐतिहासिक सत्य जो कि नीरस और कठोर आवरण से आवृत होता है संवेदनापूर्ण एवं हृदयग्राही बन जाता है।[1]

----

1. "And no doubt, in general, the poet has to extract the ore from a rude mass of legendery or Historical fact. To free it from the accidental the trival, the irrelevant : to purify it, in a word from the 'Dross which always mingles with empirical reality". Chapter III.

S.H. Butcher
Aristotle's theory of Petry and Fine Art with a critical text and translation of the Poetics.

इस दृष्टि से इतिहास मरुस्थल है तथा ऐतिहासिक काव्य रम्य विहार के लिए सुरभित वाटिका है। अतएव वस्तु और भाव का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए कल्पना-योग अनिवार्य है। कवि-कल्पना एवं भावना का स्पर्श पाकर आज इतिहास के चन्द्रगुप्त, अशोक, कुणाल, पद्मिनी और महाराणा प्रताप तथा आदि चरित्रों की वेदना केवल उनकी अपनी वेदना नहीं है वरन् आज काव्य में विस्तृत होकर वह वेदना तथा स्वाधीन भावना की रक्षा हेतु सहन किए गए राजस्थान के वीरों के कष्ट जन-जन की संवेदना प्राप्त करते हैं।

(ब) <u>खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में कल्पना एवं तथ्य का संयोजन</u> :

यहां खड़ी बोली के कतिपय ऐतिहासिक काव्यों में कल्पना और तथ्य के संयोजन पर विचार करने से ऐतिहासिक काव्यों में कल्पना का महत्व अधिक स्पष्ट हो जाएगा। महाराणा का शौर्य एवं पराक्रम पूर्ण जीवन चरित अनेक काव्यग्रन्थों एवं स्फुट कविताओं का विषय बना है। स्वाधीनता की रक्षा हेतु प्रताप ने परिवार सहित राजमहलों का सुख छोड़ पहाड़ी प्रदेशों में रहते हुए अनेक विपत्तियाँ सहन कीं। कष्टों के सम्बन्ध में एक घटना टॉड राजस्थान में आती है कि बच्चों को घास की रोटी भी नसीब न होते देख कर महाराणा प्रताप ने अकबर को एक सन्धिपत्र लिखा था किन्तु कवि पृथ्वीराज का प्रेरणा पूर्ण पत्र प्राप्त कर महाराणा प्रताप पुनः चित्तौड़ स्वातंत्र्य की रक्षा के हेतु अकबर से लोहा लेने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो गए थे। गौरी शंकर हीराचन्द ओझा टॉड के इस कथन से सहमत नहीं।[१] सन्धिपत्र लिखने के विषय में ऐतिहासिक तथ्य यही है कि प्रताप ने सन्धि पत्र नहीं लिखा था। यह कल्पना है अथवा किंवदन्ती है। प्रताप जैसा दृढ़ प्रतिज्ञ महाराणा, क्षुधा पीड़ित बालिका का करुण क्रन्दन सुन यदि मानवीय दुर्बलता के वशीभूत क्षण भर के लिए द्रवीभूत हो उठा हो, बाप्पाकुल का गौरव एवं सम्मान विस्मृत करके यदि बच्चों की ममता के मोहवश

१- राजपूताना का इतिहास, खंड तृतीय, पृ० ७४७,७८

वह अकबर को सन्धि पत्र लिखने बैठ ही गया हो तो कोई असम्भव बात नहीं है । महाराणा प्रताप के कठोर कवच के नीचे वात्सल्य से अभिभूत धड़कता हुआ पितृ हृदय भी था । किन्तु इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि राजपूत ललनाएं अपने वीर और पराक्रमी पति का कायर भाव क्षण भर के लिए भी सहन नहीं कर सकती थी । चित्तौड़ की राजमहिषी यह कैसे सहन कर लेती कि महाराणा प्रताप उसका पति, क्षत्रिय कुल का गौरव मोहवश अपने प्रण की दृढ़ता त्याग कर अपनी आन और शान को भूल कर उसी यवन तुर्क बादशाह के सामने सन्धि की भीख मांग कर अपना उच्च भाल नमित कर दे ।`हल्दी घाटी` के कवि ने क्षत्रिय नारी की इस भावना एवं सम्मान की अक्षुण्णता रखते हुए एक आकर्षक और नवीन कल्पना की योजना की है । प्रताप से कुछ दूर बैठी हुई राजमहिषी ने महाराणा प्रताप को सन्धि पत्र लिखते हुए देखा ---

सहने की सीमा होती
सह सका न पीड़ा अन्तर
हा ! सन्धि पत्र लिखने को
वह बैठ गया आसन पर ।।[१]

किन्तु वह सन्धि पत्र अकबर के हाथों में नहीं पहुंच पाया ।चित्तौड़ कीराजमहिषी ने अधीर हो पति के हाथों से`मसिपात्र` और `कागद` लेकर छिपा दिया । जननी की सेवा में रत भारत का एक मात्र गौरव आज यदि तुर्क बादशाह के सम्मुख झुक जाएगा तो राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास का क्या होगा ? भारत के बोझे को माथे पर कौन लेगा । कितने ही गोदों के लाल छिन गए, कितनी ही ललनाएं अपने प्रियतम खोकर मांग का सिंदूर पोंछ बैठीं ,राजमहिषी का गौरव तड़प उठा--

---

१- हल्दीघाटी , पंचदश सर्ग

तू सन्धि पत्र लिखने का
कब कितना है अधिकारी ?
जब बन्दी माँ के दृग से
अब तक आंसू हैं जारी ।[१]

जब स्वयं युद्धस्थल में जाकर चण्डी का रूप धारण कर जन्मभूमि की रक्षा करने के लिए प्रस्तुत हो गई । मोह के अन्धकार से आवृत प्रताप का हृदय पत्नी की इस प्रेरणा से पुन: कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हो गया । प्रताप गद्गद् हो उठे मानों खोया वैभव पुन: प्राप्त हो गया हो ---

बोला वह अपने कर में
रमणी कर थाम "क्षमा कर"
हो गया निहाल जगत में
मैं तुमसी रानी पाकर ।"[२]

इस प्रकार 'हल्दीघाटी' के कवि ने सन्धि-पत्र की घटना में महारानी की कोमल भर्त्सना की कल्पना करके ऐतिहासिक तथ्य की पूर्ण सुरक्षा के साथ ही महारानी के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की है तथा महाराणा के चरित्र में इस मानवीय स्पर्श से जिस संवेदना की उत्पत्ति होती है उसकी भी अवहेलना होने से बचा लिया है । ऐतिहासिक तथ्य और कल्पना का यह संयोजन इस प्रसंग में अत्यन्त ही आकर्षक है ।

'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर रचित 'आर्यावर्त' में मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने अनेक मौलिक कल्पनाओं की उद्भावना द्वारा रासोकार चन्दबरदाई को काव्य नायक बना कर एक नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया । कवि की ये कल्पनाएं चरित्रोत्कर्ष में सहायक हैं ।

१- हल्दीघाटी, पंचदश सर्ग

२- वही , वही

चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी और रत्नसिंह तथा अलाउद्दीन के आक्रमण की कथा को अपना कर खड़ीबोली में रचना करने वाले कवियों ने किसी न किसी रूप में `पद्मावत` का आधार अवश्य ग्रहण किया है । टाड राजस्थान में भी `पद्मावत` के आख्यान के आधार पर ही ऐतिहासिक आख्यान प्राप्त होता है अत: `पद्मावत` तथा टाड राजस्थान ,दोनों ही ग्रन्थ खड़ी बोली में इस कथा से सम्बन्धित काव्य ग्रन्थों के प्रेरक रहे हों, ऐसा सम्भव है ।`जौहर` के कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने दोनों ग्रन्थों में प्राप्त अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी का दर्पण में मुख देखे जाने की घटना को न अपना कर रत्नसिंह के शिकार खेलते हुए अलाउद्दीन के गुप्तचरों द्वारा बन्दी बनाए जाने के प्रसंग की नवीन उद्भावना की । इस कल्पना द्वारा राजपूत नारी के आत्म सम्मान की रक्षा हुई है तथा ऐतिहासिकता में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया है ।

इसी प्रकार `नूरजहाँ` विक्रमादित्य` ;झाँसी की रानी` आदि काव्य ग्रन्थों में भी अनेक नवीन कल्पनाओं के द्वारा ऐतिहासिक तथ्य को प्रकट रूप प्रदान किया गया है ।`वीर पंच रत्न` के कवि लाला भगवान दीन ने राजस्थान के इतिहास से आदर्श पूर्ण चरित्र लेकर इस पुस्तक में अनेक कविताओं की रचना की ।` तारा` रचना में तारा देवी की ऐतिहासिक कथा को कल्पना के रूप से चित्रित किया गया है । राव सुरताण सोलंकी की पुत्री का नाम तारा देवी था । लल्ला खाँ नामक एक पठान ने सुरताण का राज्य छीन लिया था। सुरताण मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा रायमल के पास आया । उसने बदनौर की जागीर देकर सुरताण को अपना सरदार बना लिया । राणा के कुंवर जयमल ने तारादेवी के सौन्दर्य के विषय में सुन कर सुरताण से कहलवाया कि मुझे अपनी लड़की दिखला दो तो मैं उससे विवाह कर लूंगा ।सुरताण ने पहली बात मानने से इन्कार कर दिया किन्तु विवाह सम्बन्ध मान लिया ।जयमल क्रुद्ध हो गया तथा बदनौर पर आक्रमण करने की तैयारी कर ली ।सुरताण ने कुंवर से संघर्ष करना उचित न समझ परिवार सहित बदनौर छोड़ दिया । जयमल ने रात्रि के समय बदनौर से आठ कोस दूर जाकर सादा गांव के निकट

सुरताण का पीछा किया । यह देख कर राव टकुराणी के भाई रत्न सिंह घोड़ा दौड़ा कर जयमल के पास पहुंचे तथा वहीं पे उसे मार डाला । जयमल के राजपूत साथियों ने रत्नसिंह को मार डाला । राव सुरताण वापिस बदनौर लौट गया । महाराणा रायमल के पास उसने सभी वृत्तान्त लिखा। रायमल ने राव सुरताण को निर्दोष बतलाया क्योंकि राणा रायमल की आज्ञा तथा जानकारी के बिना जयमल ने यह कार्य किया था । अब राव सुरताण ने निश्चय किया कि जो व्यक्ति लल्ला खां पठान से मुझे मेरा खोया हुआ राज्य दिला देगा उसी के साथ तारा देवी का विवाह कर दिया जायेगा । यह शर्त सुन कर रायमल के दूसरे कुंवर पृथ्वीराज ने तारा देवी से विवाह करके टोड़ पर चढ़ाई की । लल्ला खां को मार कर राज्य राव सुरताण को दिला दिया। इसी युद्ध में तारादेवी ने भी सैनिक वेश धारण करके पति के साथ खूब वीरता दिखलाई[1] ।

लाला भगवान दीन ने तारा के इस ऐतिहासिक चरित्र को अधिक प्रभाव-शाली बनाने के लिए कल्पना का स्पर्श किया । इतिहास में लल्ला खां पठान से राज्य दिलवाने पुरस्का के साथ तारा देवी के विवाह की जो प्रतिज्ञा पिता करता है कवि ने काव्य में वह प्रतिज्ञा तारा द्वारा कराई है ।

कुछ रोज़ में बढ़ कर हुई जब चौदही बाला ।
चेहरे पे चमक आई, हुआ हुस्न दुबाला ।।
सब अंग भरे पूरे बने काम- अखाड़ा ।
राजों के कुंवर करने लगे ब्याह की इच्छा।।
तब ठानी , कि " बस ब्याहूंगी उस राम-लला को,
टोडा को बचै, राजा करै मेरे पिता को"

१- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३३३,३३४

कुंवर जयमल 'तारा' की यह प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए बदनौर में आकर रहने लगा किन्तु 'तारा' ने कह दिया कि विवाह तभी होगा जब राज्य जीत लिया जायेगा। किन्तु कुंवर जयमल विवाह से पूर्व और प्रतिज्ञा करने से पूर्व प्रेम प्रदर्शन करता है। राजकुमारी उसे प्रतिज्ञा के प्रति सचेत करती है किन्तु वह उसे टाल देता है। पुन: कुछ दिन पश्चात् जयमल के प्रेम प्रदर्शन करने पर राजकुमारी तारा स्वयं उसका वध कर देती है। कवि ने जयमल के वध की इस कल्पना में राजकुमारी के चारित्रिक उत्कर्ष की सुंदर व्यंजना की है।

'चित्तौड़ की चिता' का कवि (डा० रामकुमार वर्मा) इस काव्य में घटनागत सत्य की अपेक्षा भावनागत सत्य को अधिक महत्व देता है। चित्तौड़ की विधवा महारानी करुणा बहादुरशाह के आक्रमण से भयभीत हो चित्तौड़ रक्षार्थ दिल्ली के बादशाह हुमायूं से सहायता के लिए प्रार्थना करती है। राखी भेज कर करुणावती हुमायूं से भ्रातृत्व सम्बन्ध जोड़ती है। हुमायूं सेना सहित चित्तौड़ की ओर चल देता है किन्तु मार्ग में बहादुर शाह का यह पत्र प्राप्त करके कि वह हिन्दुओं के प्रति जिहाद कर रहा है, हुमायूं ग्वालियर में ही ठहर जाता है।[1] जातीयता जड़ पकड़ती है, वह रानी करुणा के सहायतार्थ नहीं जाता। करुणा सतीत्व रक्षार्थ जौहर की ज्वालाओं में अन्य राजपूत नारियों सहित प्राण त्याग देती है। इसके पश्चात् हुमायूं बहादुर शाह के सेनापति रूमीखां का पत्र प्राप्त करके बहादुरशाह को जीतने के लिए चित्तौड़ को प्रस्थान करता है।[2] यहां कवि कल्पना द्वारा हुमायूं के विलम्ब से चित्तौड़ पहुंचने की घटना की उद्भावना करता है।[3] राखी भाई - बहन के पावन

१- गौ०ही० ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, जि०प्रथम, पृ० ३६७

२- वही वही वही पृ० ३९९-४००

३- मिले मिट्टी में उम्र दराज़
लग गई आने में क्यों देर
कर दिया अगर लहू को ज़ेर,
किया हासिल क्या मैंने आप? -रामकुमार वर्मा, चित्तौड़ की चिता

स्नेह और भाई द्वारा बहन की रक्षा करने का प्रतीक है । हुमायूं का महारानी करुणावती के रक्षार्थ चित्तौड़ न पहुंचना राखी की पुनीत भावना और भ्रातृत्व स्नेह के आदर्श के विरुद्ध है । वास्तविकता एवं आदर्श में समन्वय हेतु कवि ने हुमायूंके विलम्ब से पहुंचने की कल्पना की । महारानी करुणावती अन्त तक हुमायूं की प्रतीक्षा करती रही । यहां कवि से न घटना के सत्य का तिरस्कार अथवा उपेक्षा की तथा राखी की पुनीत भावना की भी रक्षा हुई ।

मलिक मोहम्मद जायसी ने दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूर के समय में 'पद्मावत' हिंदी काव्य रचना की । चित्तौड़ के राणा रत्न सिंह और रानी पद्मिनी को अपने काव्य का विषय बनाया । यह एक प्रेम-कथा है । आध्यात्मिक सूत्र जोड़ कर कवि ने कथानक को सम्भावनाओं एवं अनेक कल्पनाओं की योजनाओं से सजाया है तथा अत्यन्त विस्तृत रूप दिया है ।

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार इतिहास के अभाव में जनता ने 'पद्मावत' को ही ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया किन्तु वास्तव में वह आज कल के उपन्यासों की सी कविता बद्ध कथा है ।[१]

श्रीनाथ सिंह की 'सती पद्मिनी' रचना में भी इतिहास और कल्पना का आकर्षक मिश्रण हुआ है । कवि ने अनेक सम्भावनाओं के द्वारा राजपूत नारी की चारित्रिक वीरता एवं सतीत्व रक्षा हित आत्म बलिदान की भावना को उद्घोषित किया है । सोना रानी के प्रसंग की कल्पना प्रभावपूर्ण है। कवि की यह कल्पना उसकी मौलिकता की परिचायक है । इस कथा से ही संबंधित अन्य काव्यों में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं हुआ है ।

१- उदयपुर का राज्य का इतिहास ,जि० प्रथम , पृ० १८७

काव्य के द्वितीय सर्ग में भी इसी सोना रानी के शौर्य का चित्रण हुआ है । मृगया हेतु गई सोनारानी की मुठभेड़ वन में यवन सैनिकों से होती है । दो को मार कर एक कोभगा कर तथा एक यवन सैनिक को बांध कर सोनारानी रक्त से लथपथ मर्दों में लौट कर अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ पर आक्रमण की सूचना देती है । युद्धोपरान्त सोनारानी अपने पति एवं पुत्र को आहत सैनिकों में ढूंढती हुई युद्ध भूमि में जाती है । कुछ क्षणों के लिए पुत्र से उसका वार्तालाप होता है । समीप ही मृतपति का शव दृष्टि-गोचर होते ही वह उस ओर बढ़ जाती है । शव उठाना ही चाहती है कि कुछ यवन सैनिक उसे घेर लेते हैं । समाचार मिलते ही अलाउद्दीन भी वहीं आ पहुंचता है तथा शोक सन्तप्त इस राजपूत ललना से कामुकता की बातें करता है - 'लेकर ऐसा सुन्दर मुखड़ा व्यर्थ भटकती हो वन वन ।

फेंको इस मुर्दे को सुख से चलो शिविर में करो शयन'[१]।

साथ ही उसे प्रलोभन देता है कि यदि वह पद्मिनी को उसे किसी प्रकार दिलवा दे तो वह उसके पुत्र को मेवाड़ का राणा बना देगा । सोनारानी का रक्त उबलने लगता है । जब उसने देखा कि सतीत्व रक्षा का इस यवन समूह से एक मात्र उपाय आत्मघात है तो तुरन्त अपनी कटारी निकाल कर वह अपनी छाती में भोंक लेती है ।

प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त ऐतिहासिक पात्रों के जीवन से सम्बन्धित जिन स्फुट प्रसंगों को लेकर काव्य-रचनाएं हुई हैं उनमें कवि-कल्पना द्वारा मानवीय संवेदनाओं के तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के महत्वपूर्ण चित्र उभरे हैं । इतिहास का तथ्य रागात्मक रूप में प्रस्तुत हुआ है । कतिपय उद्धरण दर्शनीय हैं । अशोक ने कलिंग युद्ध किया किन्तु युद्ध की वीभत्सता ने सम्राट् अशोक को

१- स. प. प्रथम सर्ग

`प्रियदर्शी अशोक` और देवनाम प्रिय` में परिवर्तित कर दिया । युद्ध और राजनीति से विरक्त होकर उसने अपना सर्वस्व बौद्ध धर्म प्रचार के निमित्त अर्पण कर दिया था यह एक ऐतिहासिक तथ्य है । यह तथ्य कवियों की भावपूर्ण कविताओं में अनेक स्थलों पर उद्घाटित हुआ ।`जयशंकर`प्रसाद` की`अशोक की चिन्ता` तथा रामधारी सिंह`दिनकर` की `कलिंग विजय` शताब्दियों पूर्व घटित इस तथ्य को वर्तमान में लेकर अवतरित हुई ।इतिहास ने बात कह दी । तथ्य का निरूपण कर दिया किन्तु युद्ध की विभीषिका के करुण दृश्य ने अशोक के अन्तर में पैठ कर किस प्रकार हृदय में आत्मग्लानि तथा आत्मदंशन के भावों को जागृत किया होगा ऐसी सम्भावना का चित्रण कवि कल्पना ने किया है । युद्ध में मिटने वाले बेटों के साथ ही माताओं की आंखों के चिराग बुझ गए ,तितियों के प्राण उत्सर्ग करते ही कोमल कोमल हाथों की चूड़ियां टूट गयीं,मांग में चिता की गर्म राख भर गई, भाइयों के गिरते ही बहनों का स्नेह छिन गया कवि`दिनकर`ने भावों करुणा को मुखरित कर दिया है--

> ओढ़ती शुक्लाम्बरायें आभरण कर दूर
> पुछ मल कर धो रही है मांग का सिन्दूर।
> वीर बेटों की चितायें देख ज्वलित समक्ष
> रो रहीं मांएं हजारों पीटती शिर वक्ष ।।[1]

कवि उस अशोक की कल्पना करता है जो आत्मदंशन की व्यथा एवं परिताप से पीड़ित हो रहा है --

> आत्मदंशन की व्यथा परिताप पश्चाताप
> डंस रहे सब मिल उठा है धूप का मन कांप ।।[2]

१-`दिनकर`, कलिंग विजय

२- वही , वही

अशोक की इतिहास प्रसिद्ध विजय अशोक की मानवता की घोरतम पराजय है । उसी पराजय की ज्वाला से दग्ध अशोक का चित्र कवि कल्पना में दीखता है--

है ऊंचा आज मगध-शिर
पद तल में विजित पड़ा गिर
दूरागत क्रन्दन ध्वनि फिर
क्यों गूंज रही है अस्थिर
कर विजयी का अभिमान भंग ।[१]

मैथिलीशरण गुप्त रचित`कुणाल गीत` कवि कल्पना के सुन्दर उदाहरण है । इतिहास में एक अन्य कथा भी उपलब्ध होती है ।अशोक की दूसरी पत्नी तिष्यरक्षिता ने कुणाल के प्रति आकर्षित होकर प्रेम निवेदन किया किन्तु प्रेम की अवहेलना होने पर उसने कुणाल को अन्धा करा कर राज्य की सीमाओं से बाहर निकलवा दिया था ।[२] इसके उपरान्त कुणाल के संघर्ष के दिनों का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता । कुणाल की उस आन्तरिक वेदना को चित्रित करने वाला कवि है । मैथिलीशरण गुप्त ने, राजकुमार कुणाल के अन्तरतम में उठीं असंख्य भाव तरंगों का गान किया है । गीतों में कवि कल्पना ने ऐतिहासिक सत्य की पृष्ठभूमि में कुणाल के माध्यम से मानवीय वृत्तियों तथा मानव हृदय की उदात्तता का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है । अन्धा कुणाल कभी गहरी

१- `प्रसाद` ,अशोक की चिन्ता`

२- The queen, how ever, was not a woman of good character. Attracted by the eyes of Kunal, she asked him to enter into incestuous relations with her. Kunal flatly and indignantly refused to comply with her sinful request, with the result that he lost his eyes.

T.L. Shah, Ancient India
Volume II, Page - 234.

वेदना से पीड़ित हो उठता है और कभी अपना मरण चाह कर जन-कल्याण की भावना से पूरित हो उठता है।

> मैं असमर्थ अन्ध हूं लोगों
> मेरे लिये और कुछ टूक मांगो
> अपना मरण मुझे दे दो तो पा जाऊं निर्वाण
> चाहता हूं मैं सब का त्राण ।[१]

इन कतिपय उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक काव्यों में तथ्यात्मक वर्णन के साथ ही कवि-कल्पना का महत्वपूर्ण योग रहता है। कल्पना कहीं मनोवैज्ञानिक चित्रण के रूप में प्रस्तुत होती है कहीं घटना वैचित्र्य के रूप में आकर ऐतिहासिक तथ्य को प्रखर बनाती है तथा कहीं चरित्रोत्कर्ष में सहायक होती है।तथ्य के प्रति जागरूक रह कर कवि तथ्य को संवेदनीय एवं रसपूर्ण बनाने के लिए ऐतिहासिक काव्यों में उपकथाओं, पात्रों और प्रसंगों की भाव-भीनी कल्पनायें करके इतिहास को काव्य के माध्यम से लोक जीवन के बहुत समीप ले आता है।

१- कुणाल गीत

द्वितीय अध्याय

काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों का प्रयोग

काव्य में जब ऐतिहासिक सूत्रों का संग्रथन किया जाता है तो उसकी दिशा अनेक रूप धारण करती है । विशिष्ट ऐतिहासिक वृत्तों एवं विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाओं की विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ होती हैं । काल, स्थानक तथा वातावरण की व्यंजना हेतु काव्य में भावभूमि का निर्माण विशेष रूप से किया जाता है । समस्त ऐतिहासिकता एक बार ही प्रस्तुत की जानी सम्भव नहीं होती इसलिए उसे विभिन्न वर्गों में विभक्त करने की आवश्यकता होती है । उन वर्गों को निम्न क्रम में विभाजित करते हुए विश्लेषण की आवश्यकता है ।

प्रसंगों के उल्लेख में :- इतिहास के अनेक सन्दर्भों के आधार पर खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य का निर्माण हुआ । इतिहास की विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाएं, मध्य तथा आधुनिक युग के आदर्श एवं प्रेरणापूर्ण चरित्र कवि प्रतिभा का स्पर्श प्राप्त करके जीवन्त हो उठे । यहां इन्हीं महत्वपूर्ण घटनाओं तथा आदर्शपूर्ण चरित्रों के जीवन से सम्बन्धित उन विशिष्ट प्रसंगों का उल्लेख समीचीन होगा, जो अपनी किसी न किसी महत्ता के कारण अनेक कवियों की रचनाओं के विषय बने । यद्यपि आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा के आधार पर कतिपय प्रसंगों की ऐतिहासिकता अप्रामाणिक सिद्ध हो चुकी है तथापि कवियों ने काव्य-रचनाओं में उन प्रसंगों को अपनाया है[१]। ऐतिहासिक तथ्य का आग्रह न होते हुए भी इन प्रसंगों के द्वारा जीवनगत आदर्श, जातीय स्वाभिमान एवं आत्मोत्सर्ग आदि भावों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है । ऐतिहासिक कालक्रम की अपेक्षा, प्रसंगों के विभाजन में, काव्यों में प्रसंगों की बहुलता को ही महत्व प्रदान किया गया है जिससे प्रसंगों में सूत्रबद्धता बनी रही है । इस दृष्टि से खड़ी बोली के

१- अधिकांश काव्य ग्रन्थों के विषयों की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में तृतीय अध्याय में विचार किया गया है ।

ऐतिहासिक काव्य केप्रसंगों का विभाजन निम्न प्रकार से कर सकते हैं -

(१) सतीत्व धर्म व्यंजक- जौहर के प्रसंग ।

(२) स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता की रक्षा के आदर्श व्यंजक प्राचीन तथा मध्ययुगीन शूर वीरों के प्रसंग ।

(३) जीवनगत आदर्शों की व्यंजना करने वाले महात्मा बुद्ध,वर्द्धमान अशोक तथा कुणाल इत्यादि महान् विभूतियों के जीवन के प्रसंग ।

(४) वीरत्व की अभिव्यक्ति करने वाले-राजपूत वीरों के बलिदानों के प्रसंग ।

(५) राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति से पूर्ण वर्तमानकालीन राष्ट्र-वीरों के प्रसंग ।

(६) ऐतिहासिक प्रेम कथाओं के प्रसंग

इस प्रकार सम्पूर्ण ऐतिहासिक प्रसंगों को मुख्य रूप से उपर्युक्त छः कोटियों में विभाजित करते हुए यहां उन प्रसंगों का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है जो ऐतिहासिक पात्रों के जीवन से सम्बन्धित है तथा स्फुट प्रसंगों के रूप में काव्य में ग्रहण किए गए हैं । ऐतिहासिक प्रबन्धकारों ने भी कथा निर्माण में उन्हीं प्रसंगों को विशेष रूप से अपनाया है ।

(१) राजस्थान सती वीरांगनाओं के जौहर की पावन-भस्म से पूर्ण गौरवमय भूमि है । यवन साम्राज्यवादियों ने राजस्थान के महत्वपूर्ण प्रदेश को अनेक बार पददलित किया । राजपूत महाराणाओं को विजित करने के उद्देश्य के साथ-साथ नारी सौंदर्य के उपभोग तथा अपनी विलासी-वृत्ति के कारण ये यवन आक्रमणकारी तत्कालीन राजपूत नारियों के सतीत्व तथा कौमार्य को भंग करने का पूर्ण प्रयत्न किया करते थे । आजन्म पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली क्षत्राणियाँ यवनों की अमानुषिक प्रवृत्ति से बचने के लिए सुदृढ़ दुर्गों के द्वार टूटने से पूर्व ही मंगल गीत गाती हुई,लपलपाती अग्नि-ज्वालाओं में कूद-कूद कर सती-धर्म की रक्षा किया करती थीं । ये लोमहर्षक घटनाएं`जौहर` नाम

से प्रख्यात है । खड़ी बोली काव्य में इन रोमांचकारी जौहर गाथाओं के प्रसंग अनेक कवियों की संवेदना का विषय बने हैं । श्रीनाथ सिंह, लाला भगवान दीन, रामकुमार वर्मा ,श्यामनारायण पाण्डेय, सुधीन्द्र, अनूप शर्मा[1] आदि कवियों ने इन प्रसंगों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। जौहर,राजस्थान में अनेक हुए,किन्तु महाराणा संग्रामसिंह की विधवा महारानी करुणा(कर्मवती) तथा महारानी पद्मिनी की जौहर गाथा विशेष रूप से गाई गई । लाला भगवान दीन तथा रामकुमार वर्मा ने महारानी करुणा की जौहर गाथा का गान किया, शेष रचनाओं में महारानी पद्मिनी की ज्वलन्त कहानी प्रस्तुत हुई । महारानी पद्मिनी की जीवन गाथा में उन प्रसंगों का उल्लेख ही अधिकांश कवियों ने किया है जो जायसी कृत`पद्मावत` की कथा के आधार हैं । सात सौ डोलों की कथा,विजयोपरान्त अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी की खोज,सात सौ डोलों के शिविर में जाने के प्रसंग में जहां एक ओर पद्मिनी के निर्भीक चरित्र की व्यंजना होती है वहां अलाउद्दीन खिलजी की कामुकता की अभिव्यक्ति भी इस प्रसंग के

१- कवि की `चित्तौड़ दर्शन` कविता में जौहर के प्रसंग का उल्लेख हुआ है ।

२- उठी करुणा की एक हिलोर,
किया दुर्गा को पुन: प्रणाम
प्राणपति का ले मन में नाम
देख कर पुण्य भूमि की ओर ।
मिलाया लपट करों से हाथ
चिता के अंक हुई आसीन
पहिन लपटों का वस्त्र नवीन
हुई सज्जित स्वाहा के साथ `

-रामकुमार वर्मा ,`चित्तौड़ की चिता`

धारा होसकी है ।[१]

(२) स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष करने वाले शूरवीरों में महाराज पृथ्वीराज ,महाराणा संग्राम सिंह,महाराणा प्रताप, तथा महाराज शिवाजी का विशेष उल्लेख होता है । महाराज पृथ्वीराज के सम्बन्ध में आलोच्य काल में तथा उससे पूर्व ब्रजभाषा में कतिपय स्फुट कविताएं तो उपलब्ध होती हैं किन्तु खड़ी बोली में मोहन लाल महतो के अतिरिक्त अन्य कोई महत्वपूर्ण रचना उपलब्ध नहीं हुई है । महाराणा संग्राम सिंह भी `चित्तौड़ की चिता` में नाटक की पृष्ठभूमि में ही प्रस्तुत हो सके हैं । महाराज शिवाजी का जीवन संघर्ष एवं वीरता से पूर्ण था । तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगजेब की क्रूर नीति तथा शक्ति से टक्कर लेने में वे मृत्यु पर्यन्त संलग्न रहे । कूट नीति से पूर्ण, स्वाभिमानी जीवन के अनेक प्रसंग महाराज शिवाजी के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं ।दो-चार स्फुट कविताओं के अतिरिक्त खड़ी बोली के आलोच्य कालीन कवि शिवाजी के जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों की ओर भी प्राय: उदासीन ही रहे हैं । द्विवेदी युग में कामताप्रसाद`गुरु` तथा

१- मेघ घटा सी बढ़ती आती होली की छवि दिव्य छटा।
बिजली के उर में बिजली-सी चमक उठी तमतोम हटा।।
हो प्रसन्न अपनी सीमा पर झट स्वागत करने आया ।
दृष्टि पद्मिनी के डोले पर सबने उसकी दृढ़ पाया ।।
--श्रीनाथ सिंह,`सती पद्मिनी`

सजत सौ सवारियां
तीव्रतर कटारियां
तेग तबर आरियां
चल पड़ी दुधारियां ।।
\+ \+
सात सौ सवारियां
हैं सभी कुमारियां
चुन नवीन नारियां
हो गये मगन मियां।। --श्यामनारायण पाण्डेय ,जौहर,आठवीं चिनगारी

लोचन प्रसाद पाण्डेय ने शिवाजी पर रचनाएं कीं । लोचनप्रसाद पाण्डेय ने एक स्फुट आख्यानक कविता में `शिवाजी के मनोमहत्त्व` की झलक दी है । कल्याण प्रान्त के सूबेदार की सुन्दरी लड़की को पकड़ कर आबा जी ने शिवाजी के दरबार में उपस्थित किया था किन्तु शिवाजी के व्यवहार ने उनके जिस दृढ़ चरित्र का परिचय दिया वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । लोचन प्रसाद ने इसी घटना को पद्यबद्ध किया है[१]। सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` तथा विद्याभूषण `विभु` द्वारा एक ही प्रसंग पर दो रचनाएं प्रस्तुत हुईं । महाराज शिवाजी का पत्र[२] तथा जयसिंह के प्रति शिवाजी का पत्र[३] । इन कविताओं के शीर्षक से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि महाराज शिवाजी ने स्वयं सवाई मिर्जा राजा जयसिंह को यह पत्र लिखा होगा, वस्तुत: ऐसी बात नहीं है । इस पत्र का सम्पूर्ण प्रसंग ऐतिहासिक है तथा इसकी ऐतिहासिकता

१- करके फिर सम्बोधन नृप वर अपने ही को आप
बोले वचन सुधा-सिंचित यों करते पश्चाताप
यदि मेरी माता होती यों रूपवती विख्यात
अहा ! न होता क्या ऐसे ही सुन्दर मैं भी तात ।

इस साध्वी को लेकर आबो इसी समय कल्याण
सौंपो इसे पिता को उसके मांग क्षमा का दान ।
विनय युक्त तुम उससे बोलो यह मेरा सन्देश
`होने देगा कहीं शिवाजी अत्याचार न लेश`

-छत्रपति शिवाजी का मनोमहत्त्व,` पद्मपुष्पांजलि

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, परिमल

३- विद्याभूषण `विभु`, पद्य पयोनिधि

की कहानी भी बड़ी विचित्र है[१]। आत्मसम्मान को विस्मृत करके मुगल राज्य की सेवा में रहने वाले राजा जय सिंह के प्रति भर्त्सना के भाव एवं महाराज

१- शिवाजी ने अपनी पूर्ण शक्ति से मुगलों की शक्ति का सामना किया। दक्षिण में मुगलों द्वारा विजित प्रदेशों पर आक्रमण करके उन्हें लूटना आरंभ किया। शिवाजी द्वारा सूरत पर आक्रमण होने पर बादशाह औरंगजेब अत्यंत क्रोधित हुआ तथा उसने मिर्जा राजा जयसिंह के नेतृत्व में एक अभियान भेजा। राजा जय सिंह राजभक्त था। उसने शिवाजी को औरंगजेब की अधीनता स्वीकार कराने का प्रण किया। चार पांच माह तक दोनों पक्षों में तीव्र संघर्ष होता रहा अन्त में शिवाजी ने जयसिंह से उसके शिविर में जाकर मिलना उचित समझा और अपने कुछ सहायकों के साथ मिर्जा राजा के डेरे में गए। चार दिनों तक शिवाजी मुगल शिविर में रहे इस महत्वपूर्ण सम्मिलन के तीन मुख्य वृत्तान्त प्राप्त होते हैं —

फारसी वृत्तान्त जो जयसिंह ने स्वयं सम्राट को भेजे थे, तत्कालीन इतिहास लेखक मनुची-वर्णित वृत्तान्त जो घटनास्थल पर उपस्थित था, तीसरा फारसी में एक गुमनाम व्यक्ति का रोचक काव्य-मय वृत्तान्त जिसे किसी शिविर में उपस्थित मेधावी लेखक ने लिखा था। भारतीय इतिहास में इस पत्र का प्रकाशन 'जयसिंह को शिवाजी का पत्र' शीर्षक से हुआ है। मराठों के नवीन इतिहास के लेखक, गोविन्द सखाराम सर देसाई ने फारसी के इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व स्वीकारा है। शिवाजी जयसिंह के साथ पूरे तीन दिन ठहरे थे। सरकारी कार्य के अतिरिक्त दोनों में अवश्य ही राष्ट्रीय तथा धार्मिक महत्व के विभिन्न विषयों पर और भारतीय राजनीति की साधारण स्थिति पर वार्तालाप हुआ होगा। शिवाजी के विचारों से जयसिंह सहमत था अथवा नहीं इसका वृत्तान्त केवल इस फारसी काव्यमय पत्र में ही प्राप्त होता है। लेखक ने यह पत्र अपने नाम से न लिख कर शिवाजी के नाम से लिखा है। इसमें जयसिंह के हिन्दू हृदय को प्रेरणा दी गई है कि वह उस राष्ट्रीय एवं धार्मिक उन्नति को समझे और समर्थन करे जिस कार्य को शिवाजी ने अपने हाथ में ले रखा था जिससे उनके देश को अत्याचारी मुस्लिम शासन से छुटकारा मिले। शिवाजी ने

शिवाजी का जाति एवं हिन्दु धर्म के प्रति अपार प्रेम की अभिव्यंजना इस पत्र में हुई है । स्वाधीनता की सुरक्षा में रत शूरवीरों में महाराणा प्रताप के जीवन से सम्बन्धित प्रसंग सर्वाधिक काव्य रचनाओं का विषय हुए । महाराणा प्रताप एक विशिष्ट व्यक्तित्व की सीमा रेखा पर खड़े हुए दिखाई पड़ते हैं । निरन्तर संघर्ष ,निरन्तर कष्ट और उस संघर्षमय स्वाभिमानी जीवन के मार्मिक इतिहास ने महाराणा के जीवन को अत्यन्त ही संवेदनीय बना दिया है । इस सन्दर्भ में निम्न प्रसंग उल्लेखनीय हैं --

(१) मानसिंह के अपमान की कहानी

(२) महाराणा की कठिन प्रतिज्ञा

(३) शक्तिसिंह का मिलन

(४) चेतक की मृत्यु

(५) घास की रोटी

(६) सन्धि पत्र

मानसिंह के अपमान की कहानी में महाराणा प्रताप के स्वाभिमान का भाव सर्वप्रमुख है । मुगल साम्राज्य के चांदी के टुकड़ों पर पोषित, जातिद्रोही मानसिंह अपने वैभव एवं व्यक्तित्व से महाराणा को प्रभावित करना चाहता था।

शेष-

आग्रह किया था कि हिन्दू होने के नाते उन दोनों को साथ होकर कार्य करना चाहिए। इस पत्र में उन चुभते हुए उपालम्भों का भी वर्णन है जो स्वयं शिवाजी ने जयसिंह को दिए। यदि स्वयं लेखक उस वातावरण में उपस्थित न होता तो छोटे-छोटे विवरण नहीं दिये जा सकते थे,जिनका पत्र में उल्लेख है । इस पत्र के सम्बन्ध में और अधिक विवरण के लिए:

-गोविन्द सखाराम सरदेसाई ,मराठों का नवीन इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १६०,१६४

खड़ी बोली में इसी ऐतिहासिक पत्र का विषय सूर्यकान्त त्रिपाठी`निराला` एवं विद्याभूषण`विभु`की रचनाओं में प्रसंग के रूप में लिया गया है ।

वीर जाति के रक्त से मुगल साम्राज्य की नींव सींचने वाला वह कुलघातक महाराणा प्रताप को अपने स्तर तक लाने के स्वप्न देख रहा था किन्तु प्रताप द्वारा किए गए उचित सम्मान से क्षुब्ध हो उसका अभिमान चित्तौड़ के सशक्त प्रहरी के लौह-व्यक्तित्व से टकरा कर चूर-चूर हो गया । कवि महाराणा की इस निर्भीकता के प्रति कवि मोहाविष्ट हो उठा[1] । प्रताप की कठिन प्रतिज्ञा के प्रसंग द्वारा कवि ने उसके चारित्रिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है । समस्त राज्य-वैभव के सुखों को त्याग कर स्वतंत्रता की रक्षा करने का कठिन प्रण जितनी भावी विपत्तियों का जनक हुआ, प्रताप ने उन सब का स्वागत किया । घात-विघात, भाई के चरणों में पड़े हुए शक्तिसिंह तथा हल्दी घाटी की उपत्यकाओं में गूंजती हुई एक करुण पुकार` वो नील घोड़ारा सवार` की सम्पूर्ण मार्मिकता ने, क्षुधा पीड़ित बच्चों की बिल-बिलाहट तथा वात्सल्य की आंच में पिघलते हुए चट्टान सदृश हृदय ने, कहीं पराजित न होने वाली टूटती हुई आत्म दृढ़ता तथा प्रतिक्रिया स्वरूप सन्धि-पत्र लिखने की घटना ने, खड़ी बोली के आधुनिक कवियों की मानों सम्पूर्ण संवेदना को आत्मसात् कर लिया । इन विभिन्न प्रसंगों ने, मैथिलीशरण गुप्त[2], लाला भगवान दीन[3], लोचन प्रसाद पाण्डेय[4], गोकुलचन्द्र शर्मा[5], रामचरितउपाध्याय[6]

१- (क) सरदारों मान अवज्ञा से
मां का गौरव बढ़ गया आज
दबते न किसी से राजपूत
अब समझेगा वैरी समाज ।- श्यामनारायण पाण्डेय, हल्दीघाटी , सर्ग १

(ख)
थी मान -शंका जब किसी विधि भी न दूरी कृत हुई,
कहला दिया, है तुर्कता से भगिनी सम्बन्धित हुई ।-गोकुलचन्द्र शर्मा,
संशय नहीं तब अशन भी तूने किया होगा वहां
फिर वीर-बाप्पा -वंशधर के संग भोजन हो कहां?--गोकुलचन्द्र शर्मा, प्रणवीर प्रताप`, पृ०२९

२- पत्रावली
३- वीरपंचरत्न
४- मेवाड़ गाथा
५- प्रणवीर प्रताप
६- प्रताप प्रतिज्ञा, सरस्वती नवम्बर १६३२

सोहनलाल द्विवेदी[1],जयशंकर`प्रसाद`[2],शम्भुदयाल श्रीवास्तव[3],पं० वागीश्वर विद्यालंकार[4],श्यामनारायण पाण्डेय[5] तथा सुरेश चन्द्र[6] प्रभृति अनेक कवियों के भावुक हृदय का स्पर्श किया । रामधारी सिंह`दिनकर`ने भी`कल्पना के नामपर` रचना में `घास की रोटी` से ध्वनित आदर्श की व्यंजना की। अनेक संकटकालीन परिस्थितियां उपस्थित हुई किन्तु महाराणा ने स्वाधीनता का व्रत नहीं तोड़ा ।

(३) गौतम बुद्ध, सम्राट अशोक,राजकुमार कुणाल ,हम्मीर देव आदि महान् पुरुषों के जीवन के से ही प्रसंग काव्य में अधिक लिए गए जिनके द्वारा उनके उच्चादर्शों की मार्मिक व्यंजना हो सकी है । बौद्ध दर्शन तथा बुद्ध की करुणा से प्रभावित होकर[7] कवियों ने काव्यवाणी में भगवान् का आह्वान किया । पीड़ित ,व्यथित एवं अति भौतिकवादी वर्तमान के लिए उन्होंने बुद्ध वाणी के अमृतमय सन्देश का गुणगान करना[8] ही उपयुक्त समझ कर उसे काव्य में प्रस्तुत किया है । पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी,मैथिलीशरण गुप्त[9],सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`[10] रामधारी सिंह`दिनकर`[11], सोहनलाल द्विवेदी[12] ,गिरिजाकुमार माथुर[13]।

१- राणाप्रताप के प्रति, आधुनिक वीर काव्य,संग्रह से,हल्दीघाटी ,विशाल भारत,दिसम्बर१९३०

२- पेशोला की प्रतिध्वनि,लहर संग्रह से ।

३- महाराणा प्रताप और स्वतंत्रता,नीराजना संग्रह से ।

४- महाराणा प्रताप के प्रति ,राष्ट्रीय वीणा ,द्वितीय भाग।

५- हल्दीघाटी।

६- अतिथि सत्कार ,सरस्वती अक्टूबर १९५८

७- बुद्ध की विचारधारा ने आज के सौन्दर्य की निष्क्रिय चेतना के स्थान में अपनी सक्रिय करुणा दी । ---महादेवी वर्मा,आधुनिक कवि,भाग १ भूमिका

८- बुद्धदेव के प्रति ,सरस्वती जुलाई १९२०

९- अनघ

१०- भगवान बुद्ध के प्रति,अणिमा

११- बुद्ध आवाहन,विशाल भारत,जुलाई १९३४

१२- जागो बुद्ध देव भगवान ,प्रभाती

१३- गूंजे अमरवाणी,सरस्वती जून १९५६

अनूप शर्मा[1], आदि ने इस सम्बन्ध में रचनाएं की । करुणा के अतिरिक्त भगवान के जीवन का 'महाभिनिष्क्रमण' प्रसंग मैथिलीशरण गुप्त[2], अनूपशर्मा[3], सोहनलाल द्विवेदी[4], धर्मपाल साहु[5] आदि ने प्रसंग के रूप में लिया है ।[2] यशोधरा में मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी महाभिनिष्क्रमण के प्रसंग को अपना कर सिद्धार्थ कुमार के उस समय के विचारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया । सोहनलाल द्विवेदी[6] ने भी उस समय का सम्पूर्ण चित्र देने का प्रयास अपनी कविता में किया । सम्राट अशोक के जीवनकाल का केवल एक ही प्रसंग हिन्दी-काव्य की निधि बनपाया । कलिंग विजयोपरान्त मानवता के रक्त से रंजित हाथों को देख कर, आत्म-दंशन पश्चाताप तथा आत्मग्लानि की जिस पीड़ा से व्यथित होकर अशोक का हृदय कराह उठा होगा, उसकी अनुभूति ने जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा सोहनलाल द्विवेदी को भावनाविभूत किया ।[7] इतिहास द्वारा उपेक्षित कुणाल के जीवन के पितृ-

---

१- सिद्धार्थ

२- महाभिनिष्क्रमण, यशोधरा

३- महाभिनिष्क्रमण, सिद्धार्थ

४- महाभिनिष्क्रमण, वासवदत्ता

५- बुद्ध और गृहत्याग, कुणालकाकुला

६- भृकुटि में खिंची रेखा,
   चिन्ता की विषाद की, चित्त-अवसाद की,
   मन बना भ्रान्त, चित उद्भ्रान्त दिग्भ्रान्त,
   तड़ित हत, जड़ित से खड़े कुमार
   गौतम महान् । --वासवदत्ता से

७- है ऊंचा आज मगध-शिर
   पदतल में विजित पड़ा गिर
   दूरागत क्रन्दन ध्वनि फिर
   क्यों गूंज रही है अस्थिर
      कर विजयी का अभिमान भंग ?
      -जयशंकर प्रसाद, अशोक की चिन्ता 'लहर' से

(शेष---

भक्ति के आदर्श का प्रसंग अनूप शर्मा[1] ,उदयशंकर भट्ट[2] तथा सोहनलाल द्विवेदी[3] के काव्यों में मुखरित हुआ । इन काव्यों में कुणाल की आँखें निकलवा लेने का प्रसंग उसकी जीवन गाथा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । सोहनलाल द्विवेदी के `कुणाल` में यद्यपि इस प्रसंग को विशेष विस्तार प्राप्त नहीं हुआ है[4], तथापि सम्पूर्ण काव्य के उद्देश्य में यही प्रसंग कार्य कर रहा है । आत्म-दमन के आदर्श की अभिव्यक्ति कुणाल के इसी प्रसंग द्वारा हुई है । `तक्षशिला` में उदयशंकर भट्ट ने भी इस प्रसंग को विशेष महत्व प्रदान करते हुए इसे विस्तार रूप में ग्रहण किया है ।मैथिलीशरण गुप्त ने निर्वासित काल के कुणाल के विभिन्न मनोभावों की प्रभावपूर्ण तथा संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति`कुणाल गीत` में की । मध्य युग में महाराणा हम्मीरदेव महान् वीर चरित थे किन्तु वीरता की अपेक्षा उनके जीवन के उस प्रसंग को अधिक अपनाया गया है जिसके द्वारा वचन पालन के आदर्श की स्थापना हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में हुई । रघुकुल का वह आदर्श पुन: हमीरदेव के इस प्रसंग द्वारा खड़ी बोली के काव्य में मानों जीवित हो उठा । आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव[5] ,रामकुमार वर्मा[6], की रचनाओं में इसी प्रसंग की भावभूमि पर कथानक का निर्माण हुआ ।

शेषः- आत्म-दंशन की व्यथा परिताप पश्चाताप
डंस रहे सब मिल, उठा है भूप का मन कांप ।
- `दिनकर`,कलिंगविजय,इतिहास के आंसू से

१- सुनाल

२- तक्षशिला

३- कुणाल

४- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी,`कुणाल` की भूमिका से

५- हमीर का हठ,शंखनाद संग्रह से

६- चन्द्रिका यदि चन्द्रमा को छोड़ दे तो छोड़ दे।
मीन जल से नेह-नाता तोड़ दे तो तोड़ दे ।।
पर वचन मंगोल को जो है दिया मैंने अभी ।
झूठ हो सकता नहीं वह यवन के बल से कभी ।।
-रामकुमार वर्मा, वीर हमीर ,वाग्युद

(४) राजस्थान शौर्य एवं बलिदानों की पावन भूमि है । राजपूत वीरों की यह वीरता भिन्न भिन्न रूप में प्रकट होती थी । कहीं सम्मान तथा आन के रक्षा-हित ,कहीं स्वामी-भक्ति के हित तथा कहीं यवन आक्रमणकारियों से जाति की रक्षा के लिए संघर्ष करने में ये वीर सरदार प्राण न्योछावर कर दिया करते थे। आल्हा ऊदल,गोरा बादल,फाल्ता मान्ना, जयमल पत्ता,वीर कुंभा,चूड़ावंशी सरदार चूड़ा आदि वीरों के प्रसंग लेकर लाला भगवान दीन[१],मैथिलीशरण गुप्त[२], श्यामनारायण पाण्डेय[३],द्वारका प्रसाद गुप्त[४],सोहनलाल द्विवेदी[५] आदि कवियों ने विभिन्न रचनाएं कीं। संघर्ष से विमुख होना तथा उत्साह हीनता वीरत्व की हत्या थी । तत्कालीन वीरता का मापदण्ड और एक मात्र आदर्श युद्ध में लड़ते हुए प्राणोत्सर्ग करना था ।[६] उपर्युक्त तथा अन्य अनेक राजपूत वीर इसी रोमांचकारी वीरता के साकार रूप हैं ।

(५)आधुनिक राष्ट्रवीरों के जीवन से सम्बन्धित प्रसंग दो रूपों में कवियों की रचनाओं का विषय बने । महारानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे एवं आलोच्यकाल के राष्ट्रीय नेता सुभाषचन्द्र बोस ,लोकमान्य तिलक,लाला लाजपत राय आदि

१- आल्हा ऊदल , वीर पंचरत्न

२- नकली किला,`सरस्वती`दिसम्बर १९०६

३- गोराबादल फाल्ता मान्ना, हल्दीघाटी में

४- वीर चूड़ासरदार, आत्मार्पण में

५- सरदार चूड़ावन्त,वासवदत्ता

६-(क) करतूत हो जिस मर्द की हर व्यक्ति को भाती।
सुनते ही उमग उठती हो उत्साह से छाती ।।
भुजदंडों को फड़काती हो ओठों को कंपाती।
वीरत्व की लाली से हो नेत्रों को रंगाती ।।
निज देश में हर व्यक्ति से शाबाश कहा दे ।
है कौन कृतघ्नी जो भला उसको भुला दे ।

-लाला भगवानदीन,आल्हाऊदल,वीरपंचरत्न से

(शेष-

राष्ट्रवीरों के प्रसंगों में क्रान्ति तथा उग्रतापूर्ण हिंसा का स्वर प्रमुख है ।ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध बाहुबल से क्रान्ति करने का तत्कालीन सन्देश मुखरित हुआ है ।सुभद्रा कुमारी चौहान[1],श्यामनारायण प्रसाद[2],लक्ष्मीनारायण कुशवाहा[3],आनन्द मिश्र[4], रामचरण लाल श्यामरण मिश्र[5],पं० माधव शुक्ल[6],गोपाल प्रसाद व्यास[7] आदि की रचनाएं इन्हीं क्रान्तिकारी उद्गारों से परिपूर्ण हैं ।दूसरे रूप में आलोच्यकालीन राष्ट्रवीरों के जीवन से सम्बन्धित प्रसंग उस सांस्कृतिक रूप में कवि की प्रेरणा का विषय बने जिसमें सत्य अहिंसा एवं आत्मोत्सर्ग की प्रधानता है । महात्मा गांधी तथा गणेशशंकर विद्यार्थी के जीवन प्रसंग इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं ।सियाराम शरण गुप्त,बालकृष्ण शर्मा`नवीन`ने हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक संघर्ष में शहीद हुए गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान का प्रसंग लेकर काव्य रचनाएं की । इस काल में`बापू` के त्यागपूर्ण तथा महान् व्यक्तित्व से सम्बन्धित प्रसंग सर्वाधिक कवियों की प्रेरणा का विषय बने । गोकुलचन्द्र शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त,सियाराम

शेष- (ख) दुर्ग द्वार स्थित पुरुष जो दीखता गम्भीर है
धीर हाड़ा वंश का वह कुम्भ नामक वीर है
श्रवण कर उसका चरित मन में प्रमोद बढ़ाइए
पूर्वजों के पूज्य भावों की बड़ाई गाइए ।।
-मैथिलीशरण गुप्त,नकली किला

१- झांसी की रानी, मुकुल संग्रह

२- झांसी की रानी (काव्य)

३- तांत्या टोपे (,,)

४- झांसी की रानी (काव्य)

५-सरसी ,सरसी संग्रह से

६- लोकमान्य तिलक- जागृत भारत

७- कदम कदम बढ़ाए जा..(काव्य)

शरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, रामधारी सिंह 'दिनकर', सुमित्रानन्दन पन्त, सोहनलाल द्विवेदी, ठाकुरप्रसाद सिंह तथा रघुवीर शरण मित्र, आदि अन्य अनेक छोटे-बड़े कवियों का हृदय 'बापू' के प्रति श्रद्धाप्लावित हो उठा। बापू के चरणों में अनेक भाव सुमन अर्पित हुए। अन्य राष्ट्रवीरों की कर्मवीरता तथा चारित्रिक गुण भी कविगान का विषय बने किन्तु इनमें अधिकांश रचनाएं किसी ऐतिहासिक प्रसंग विशेष से सम्बन्धित न होकर राष्ट्रवीरों के उत्साह एवं वीरता आदि गुणों के उल्लेख रूप में कवि की श्रद्धा के उद्गार हैं। बापू का जीवन ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अनेक ऐतिहासिक आन्दोलनों एवं सत्याग्रहों की कहानी है, किन्तु डांडी का ऐतिहासिक अभियान, बापू एवं भारतीय जन संग्राम के राग का चरम स्वर है। 'बापू' से सम्बन्धित काव्यरचनाओं में इस प्रसंग का उल्लेख बहुलता से हुआ है।[१] गोपालशरण सिंह, रघुवीर शरण मित्र आदि ने भी अपने प्रबन्ध काव्यों में इस प्रसंग को ग्रहण किया है। इसी भांति दक्षिण अफ्रीका बापू की प्रथम कर्मभूमि थी।

१- (क) टेक घुटने उठा बापू ने लिए कुछ कण नमक के
और ज्वाला मुखी शत शत उमड़ अग्नि उछाल भभके
हांफता आ गिरा चरणों पर महासागर विशृंखल
टूट तोरण गिरे होकर ध्वस्त उन्नत नील नभ के

-ठाकुरप्रसाद सिंह, महामानव, सर्ग १२

(ख) टूटा शीश कुछ वारुणी का चरमा कर पै
रजनी प्रकाश की शिराएं खिलने लगीं --

-अनूप शर्मा, डंडी प्रयाण, जनवरी १९३९, सरस्वती

(ग) रक्त रहित विद्रोही झण्डा 'डाण्डी यात्रा' ने लहराया।
सत्य अहिंसा क्रान्ति शान्ति का तीन रंग झण्डा फहराया।।
तम पर ज्योति अमरता मृत पर, सत्य झूठ पर शाश्वत जय है।
गांधी जी के आदेशों पर क्षणभंगुर प्राणी अक्षय है।।

-रघुवीरशरण 'जननायक' सप्तदश सर्ग

इसका उल्लेख भी अनेक रचनाओं में हुआ[1]। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस प्रसंग को लेकर एक लम्बी कविता की रचना की[2]।

(६) इतिहास की दो जीवन गाथाएं खड़ी बोली के ऐतिहासिक प्रेम काव्य का आधार बनीं। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और ध्रुवदेवी, तथा मुगल साम्राज्य के प्रसिद्ध सम्राट् अकबर के पुत्र शहजादा सलीम और मेहरुन्निसा की प्रेमकथाओं के प्रसंग को लेकर गुरुभक्तसिंह`भक्त` ने `नूरजहां` तथा `विक्रमादित्य` काव्य ग्रन्थों का निर्माण किया। ध्रुवदेवी तथा विक्रमादित्य की प्रेमकहानी को खड़ी बोली में केवल गुरुभक्त सिंह`भक्त` ने ही अपनाया है किन्तु सलीम और मेहर की लोक विश्रुत प्रेम कहानी के आधार पर आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव[3], रामकुमार वर्मा[4], भगवतीचरण वर्मा[5], कावर हरियानवी[6] ने नूरजहां के जीवन के भावपूर्ण प्रसंगों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में काव्य रचनाएं कीं। आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ने नूरजहां के अन्तिम दिनों के जीवन का एक मनोविश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत किया। सौन्दर्य प्रिय रामकुमार वर्मा ने नूरजहां के माध्यम से सौन्दर्य की पवित्रता की अभिव्यक्ति की तथा सौन्दर्य की सर्वोच्च देवी के रूप में नूरजहां

१- (क) अफ्रीका में छिड़ी लड़ाई गांधी जी ने शंख बजाया।
सत्याग्रह,आत्मशक्ति से शान्तिपूर्ण संसार रचाया।।
गांधी जूझ पड़े गोरों से गिरमिटियों की सेना लेकर।
जय जय जय जय जय चिल्लाये भारतवासी सर दे दे कर।
-जननायक, सप्तम सर्ग

(ख) श्री का आंस खींच ले
गया कृष्ण को अपने द्वार
तुम्हें खींच ले चला रक्त
वह कर्मक्षेत्र के द्वार --
-ठाकुरप्रसाद सिंह,`महामानव` पृ०१६ प्रथमसर्ग

२- महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रिका संग्राम पर,हिमकिरीटिनी
३- नूरजहां, सरस्वती नवम्बर,१६२७
४- नूरजहां,रूपराशि संग्रह
५- नूरजहां की कब्र पर,विशाल भारत,मई १६३३
६- नूरजहां का मकबरा,विशाल भारत,मई,१६३३

का स्मरण किया । भगवतीचरण वर्मा तथा फारवर हरियानवी ,मुगल साम्राज्य की सर्वाधिक प्रभावपूर्ण प्रेमिका तथा साम्राज्ञी के जीर्ण शीर्ण मकबरे को देख कर भावपूर्ण हो उठे[1] तथा उसी शोक भाव की पृष्ठभूमि में नूरजहां के अतीत जीवन का चित्रण भी किया ।

इन प्रसंगों के अतिरिक्त खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में विभिन्न कवियों ने राजस्थान एवं आलोच्य काल के अनेक संवेदनापूर्ण छोटे छोटे ऐतिहासिक प्रसंग लेकर मार्मिक रचनाएं कीं । कहीं राजपूत नारी के आत्मगौरव से कवि प्रेरित हुआ[2], कहीं वीर-धर्म की रक्षा हित हाड़ारानी के रोमांचकारी बलिदान ने उसे आत्म विह्वल किया[3], कहीं स्थापत्य कला के सौन्दर्य रक्षा में उसने सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की[4], कहीं राजस्थान की गौरवपूर्ण कीर्ति को अक्षुण्ण रखने वाले मेवाड़ के गौरवपूर्ण प्रदेश चित्तौड़ के प्रति उसका हृदय श्रद्धाप्लावित हो उठा[5], कहीं अकबर की कामुकता को उचित मार्ग दर्शाती हुई किरण देवी के प्रति कवि भाव विमुग्ध हो उठा[6],कहीं

१- तुम रजकण के ढेर

उल्लूकों के तुम मग्न विहार

किस आशा से देख रहे हो उस नभ पर प्रतिवार ----

-भगवतीचरण वर्मा,नूरजहां की कब्र पर

\+ \+

ठहर जा बप्पुओं को रोक दे कुछ देर सुस्ता ले

यहां दो चार लमहों के लिए कश्ती को ठहरा ले

कि मैं उस सामने के मकबरे पर इक नज़र कर लूं

ज़माने हाल को माज़ी की सोहबत में बसर कर लूं --

-फारवर हरियानवी,नूरजहां का मकबरा

२- मैथिलीशरण गुप्त,महारानी सिसौदिनी का पत्र

३- सोहनलाल द्विवेदी,सरदार चूड़ावन्त,वासवदत्ता संग्रह से

४- प्रसाद , कानन कुसुम संग्रह से

५- अनूप शर्मा,चित्तौड़ दर्शन, सुमनांजलि संग्रह से

६- प्रणवीर प्रताप, पृ० १५

'प्रणवीर प्रताप' तथा हल्दीघाटी में क्रमशः गोकुलचन्द शर्मा तथा श्यामनारायण पाण्डेय ने भी इस प्रसंग का उल्लेख किया है।

कहीं जलियांवाला बाग़ में ब्रिटिश सरकार की क्रूरता उसके क्षोभ का विषय[1] हुई, कहीं बंगाल के दुर्भिक्ष तथा अन्न भंग ने उसके हृदय को द्रवीभूत कर दिया।[2] और कभी किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व के निधन पर कवि अश्रु प्रवाहित कर उठा,[3] कहीं द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से मानवता की हत्या का प्रसंग कविकल्पना के आश्रय से अभिव्यक्त हुआ[4]।

विविध प्रसंगों पर सम्यक् रूप से विचार करने पर एक तथ्य यह सामने आता है कि कवि ने इतिहास के उन प्रसंगों का उल्लेख काव्य में अधिकांशत: किया है जिनके द्वारा उसकी संवेदना द्रवीभूत हुई अथवा जिन्हीं विशिष्ट प्रसंगों में ऐतिहासिक पात्रों के चरित्रोत्कर्ष की अभिव्यक्ति हो सकी। महाराणा प्रताप स्वाभिमान तथा स्वाधीनता के प्रतीक माने गए हैं। किन्तु उनके जीवन में भी कुछ क्षण ऐसे अवश्य आए जब उनकी आत्मदृढ़ता, उनका स्वाभिमान क्षण भर के लिए मानवीय धरातल पर आ टिके। सब कुछ पीछे छोड़ वात्सल्य की शाश्वत् अनुभूति से ओतप्रोत पिता का स्पन्दित हृदय ऊपर उठ आया। दूसरी ओर प्रताप का जीवन राजपूती आदर्श की व्यंजना करता है। जातीय गौरव को कलंकित करने वाले मानसिंह के साथ बैठ कर भोजन करने में प्रताप का आदर्श टूटता था। भविष्य की बड़ी से बड़ी विपत्ति स्वीकार हुई किन्तु आदर्श का खण्डन किसी भी मूल्य पर सह्य नहीं हुआ। कवि दृष्टि ऐसे ही स्थलों पर अटक गई। गौरव एवं आदर्शपूर्ण उदाहरणों का इतिहास में अभाव नहीं है किन्तु भावना को स्पन्दित कर देने वाले क्षण इतिहास के प्रत्येक प्रसंग में उपलब्ध नहीं होते। शिवाजी का जीवन भी वीरत्व का जीवन था। मुग़ल साम्राज्य से संघर्ष में उनका सम्पूर्ण

१- जलियांवाला बाग़ में बसन्त, सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल संग्रह से
२- बंगाल का काल, हरिवंशराय बच्चन
३- मार्च, १९४८ की सरस्वती में अनेक कवियों द्वारा रचित कविताएं
४- विराट् संग्राम, अनूप शर्मा

जीवन व्यतीत हुआ । रीतिकाल के कवियों ने उनके वीरत्व के अनेक प्रशस्तिपूर्ण ओजमय गान प्रस्तुत किए। कवि भूषण ने शिवा के जीवन का शौर्यपूर्ण चित्रण किया किन्तु आधुनिक खड़ी बोली के कवि ने इन चरित्रों के प्रशस्तिमूलक गान की अपेक्षा मुख्यत: उनकी प्रसंगों को अपनाया जिनके द्वारा वह भावना के अतल सागर में निमज्जित हो गया ।शिवाजी के राजनैतिक जीवन में उग्र कूटनीति की प्रधानता थी जिसके द्वारा उनके उच्च तथा निर्भीक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति तो होती है किन्तु कवि की अनुभूति को स्पन्दित कर देने वाली आत्मत्याग पूर्ण तथा सर्वस्व होम कर देने वाली मार्मिकता के दर्शन वहां नहीं है, सम्भवत: इसीलिए खड़ी बोली में शिवा की अपेक्षा प्रताप के जीवन प्रसंग अधिक संवेदनापूर्ण सिद्ध हुए । इसी भांति क्षण भर के भाव परिवर्तन की मार्मिकता ने सम्राट् अशोक के जीवन के केवल एक प्रसंग को काव्य की अमूल्य भाव-निधि बना दिया । महावीर तथा कुमार सिद्धार्थ दोनों ही राजसी वैभव का परित्याग करके साधना के जीवन की ओर अग्रसर हुए थे किन्तु कुमार सिद्धार्थके गृहत्याग के समय के मार्मिक दृश्य ही कवि की भाव लहरी को तरंगित कर पाये । कहने का अभिप्राय यह है कि खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में वीरतापूर्ण गाथाएं भी चित्रित हुईं ,आदर्श पूर्ण जीवन चरित भी काव्यबद्ध हुए किन्तु प्रसंगों के रूप में केवल वे ही ऐतिहासिक अथवा किंवदन्तीमूलक प्रसंग काव्य रचनाओं का विषय बने जिनके मूल में संवेदना का भाव मुख्य रूप से निहित है ।

(ख) परिस्थितियों के चित्रण में :-

ऐतिहासिक काव्यों में तत्कालीन वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है। भारत के प्राचीन जनपद राज्यों से लेकर आधुनिक युग में वर्तमान काल तक के ढाई हजार वर्षों तक का राजनीतिक वातावरण, सामाजिक स्थिति तथा धार्मिक आचार-विचार खड़ी बोली के काव्यों में प्रतिबिम्बित हुए हैं। यहाँ कतिपय प्रमुख काव्यों का तीनों दृष्टियों से विश्लेषण करना वातावरण निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा।

(१) सामाजिक परिस्थिति :- सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य पर दृष्टिपात करने से भिन्न-भिन्न युगों की सामाजिक स्थितियों का एक क्रमबद्ध काव्यमय चित्र प्रस्तुत होता है। इन ऐतिहासिक काव्यों में प्राप्त प्राचीन भारत के वैभव तथा ऐश्वर्य का वर्णन भी स्वर्णयुग कहलाने वाले उस अतीत का स्मरण कराता है जब इस देश में दूध और दही की नदियाँ बहा करती थीं[१]। विदेशियों की लोलुप दृष्टि उस स्वर्ण पक्षी को हड़प जाने के लिए लालायित रहती थी और एक समय वह भी उपस्थित हुआ जब निरन्तर विदेशी आक्रमणों की लूट पाट तथा राजनैतिक दासता ने भारतीय समाज के उस स्वर्ण शिखर को धराशायी कर दिया। प्राचीन भारत का स्वर्ण ~~शिखर~~ विहान अन्धकार की घोर कालिमा में जाकर अस्त हो गया। उसके भाग्याकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र शनैः शनैः विलीन होते गए। अनेक लुटेरों ने वैभव की टोह में इस देश की सीमा का अतिक्रमण किया। मुगल पठानों ने वैभव प्राप्ति और साम्राज्य-स्थापना की निश्चित कामनाओं को लेकर भारत में पदार्पण किया। सामान्य जन जीवन इस युग में शोचनीय होता गया और भारत के वैभव की धारा दुःख सागर की ओर प्रवाहित होने लगी।

---

1. "The country was then famous for her untold wealth."

R.C. Majumdar,
H.C. Raychaudhuri &
K. Datta

An Advanced History of India, Page - 396.

यद्यपि मध्यकाल में सामन्ती वर्ग वैभव की गोद में क्रीड़ा कर रहा था पर साधारण समाज सम्पन्न स्थिति में नहीं था । उस समय मुगलों का वैभवपूर्ण जीवन भारतीय जन समाज पर आच्छादित हो रहा था । मुगलों के पश्चात् नई विदेशी ब्रिटिश शक्तियों ने भारत को नए ढंग से निचोड़ना आरम्भ किया और भारत का धन विदेशों में जाने लगा । भारतीय समाज में अशान्ति और हीन भावना ने घर कर लिया । ब्रिटिश शासन के कतिपय उदार शासकों ने भारतीय समाज में सुधार भी किए किन्तु सामान्य जन जीवन उन सुधारों से विशेष लाभान्वित नहीं हो सका । एक वर्ग विशेष तक ही सम्पन्नता सीमित रहती थी । खड़ीबोली के ऐतिहासिक काव्यों में प्राचीन युग में समाज के वैभव का, मध्य युग की क्षीण होती हुई स्थिति का तथा आधुनिक युग की अशान्ति एवं क्रन्दन का उल्लेख प्राप्त होता है । ऐसा से लगभग पांच छ: सौ वर्षों पूर्व का मौर्यकालीन गुप्तकालीन समाज का वर्णन `सिद्धार्थ``तप्तगृह` तथा`वर्धमान``मौर्य विजय`विक्रमादित्य`आदि काव्यों में हुआ है ।सिद्धार्थ महाकाव्य में सामाजिक जीवन के सुख का संकेत ही प्राप्त होता है । कवि का मुख्य उद्देश्य सिद्धार्थ कुमार का चरित्र-चित्रण करना है अत: राजकीय वैभव एवं राजप्रासाद के ऐश्वर्य का चित्र ही अधिक स्पष्टता के साथ उभर सका है। सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति का अभाव सा है तथापि कहीं कहीं उल्लेख अवश्य प्राप्त होता है ।कपिलवस्तु पुरी धनधान्य से भरपूर थी । चारों ओर समाज में सुख शान्ति का साम्राज्य था । प्रथम सर्ग के प्रथम छन्द में कवि ने कपिलवस्तु पुरी की सम्पन्नता का संकेत किया --

`गिरि हिमालय के उपकूल में
        कपिलवस्तु पुरी अति रम्य थी,
बहु प्रतिष्ठमयी जन-जन्मदा
        सुभग शासन भूषित भूमि थी ।[१]

१- प्रथम सर्ग, पृ० १

प्रेमवती प्रजा सुख से परिप्लावित थी

\+ \+

प्रणय पालित प्रेमवती प्रजा
सरस सी सुख से परिप्लाविता
विचरती निशि-वासर मोद में ।[1]

अमरावती के समान इस युग का वैभव था-

परम रम्य हिमालय की तटी
बन गई अपरा अमरावती
सकल सिद्धि रमी सब की यहां [2]

\+ \+

भगवान बुद्ध के समय में भारत में अनेक जनपद राज्य थे । इनमें अवन्ती, वत्स, कौसल तथा मगध राज्य विशेष थे । मगध के समाज का वर्णन `सप्तकूट' में हुआ है । समाज में धन का बहुत प्रभाव था । चांदी और सोने से मानव तथा पौरुष्य खरीदा जाता था । समाज में कोई एक श्रृंखला नहीं थी । निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं ---

शासन मगध का वह
कैसा विचित्र था।
राजा था राज्य था
जनपद थे जनता थी
किन्तु नहीं कोई थी
श्रृंखला समाज में ।
चांदी और सोने के
टुकड़ों पर हाट में
बिकता था मेल जोल
पौरुष्य का शौर्य का[3]

१- प्रथम सर्ग, पृ० ३
२- वही वही
३- चतुर्थ सर्ग, पृ० ४६

भारतभूपति चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल की सुख सम्पन्नता, विपुल धनधान्य तत्कालीन वैभवपूर्ण समाज के सूचक हैं। 'मौर्य विजय' में तत्कालीन समाज का स्वच्छ चित्र प्रस्तुत है --

सभी ओर उस समय धरा पर सुख ही सुख था
सब प्रसन्न थे नहीं किसी को कोई दुख था

+ +

भारत-भाग्याकाश स्वच्छ था, सु-प्रसन्न था
था सर्वत्र सुकाल विपुल-धन और अन्न था ।
फैला था आलोक ज्ञान-गौरव दिनकर का,
फटा रहा था अन्धकार जो भूतल भर का ।
दुर्वृत्त-निशाचर देश में आते कहीं न दृष्टि थे,
सब दृश्य यहां के दिव्य थे करते जो सुख सृष्टि थे ।।[१]

विदेशी इस सोने के देश को विजित करने के लिए लालायित रहते थे -

"इस सोने का देश जीत कर क्या हम रण में-
ग्रीक का ध्वज उड़ा सकेंगे विश्व भुवन में ?"[२]

यहां के सौन्दर्य तथा सुख शान्ति ने सिल्यूकस की पुत्री ग्रीक राजकुमारी हेलेना का मन विमोहित कर लिया था -

आह ! ग्रीस-सी छटा यहां पर मैंने पाई,
है यह सुन्दर देश नहीं किसको सुखदाई
है जैसी सुन्दरता यहां वैसी सुख-शान्ति है,
इस दिव्य देश में आप ही पाता मन विश्रान्ति है।[३]

१- प्रथम सर्ग, पृ० ६
२- वही पृ० ९
३- तृतीय सर्ग, पृ० २३

कवि सोहनलाल द्विवेदी ने मौर्य कालीन सामाजिक शिक्षा का तथा ज्ञान के आलोक का `कुणाल` काव्य में स्पष्ट दर्शन कराया है-

अर्थ शास्त्र साहित्य नीति
की जटिल ग्रन्थियों से उलझाव
सुलझाते थे विज्ञ ज्ञान गुरु
फैलाते आनन्द प्रभाव[१]

`तक्षशिला` में उदयशंकर भट्ट ने सम्राट् अशोक के समय की मौर्यकालीन शिक्षा पद्धति का चित्रण किया है-विद्याशुल्क भी जो नहीं दे पाते थे सेवा वृत्ति द्वारा शिक्षा ग्रहण करते थे ।

होते जो असमर्थ शुल्क शुल्क
व्यय भार सहन में
करते विद्या प्राप्त
निशा में सेवा दिन में[२]

मौर्यकालीन समाज में दासत्व के विषय में मतभेद है[३]। तक्षशिला में दास-प्रथा के ह्रास की ओर संकेत हुआ है -

---

१-`कुणाल` पृ० ६

२- पंचम स्तर, पृ० १५७

३- मेगस्थनीज़ ने मौर्यकाल में दास-प्रथा के न होने का उल्लेख किया है किन्तु अन्य सामग्री के आधार पर मौर्यकाल में दास प्रथा का होना प्रामाणिक है - Slavery was an established institution. It is recognised not only by the law-books and the literature on polity, but is expressly referred to in inscriptions. Asoka draws a distiuction between the slave and the hired labourer and inculcates kind treatment for all.

R.C. Majumdar,
H.C. Raychaudhari &
K. Datta

An Advanced History of India, Page - 133.

निज दास विक्रय कष्ट पातक
पर स्त्री व्यभिचार का ।
सब नाम को भी रहा अवगुण
देश में अविचार का ।।[1]

मौर्यकालीन सामाजिक स्थिति का चित्रण `तक्षशिला` में विशद रूप में हुआ है ।पाटलीपुत्र द्वारा क्रय-विक्रय का व्यापार अन्य देशों से हुआ करता था।[2] सप्तसिन्धु के अगणित महापोत विदेशों से भांति भांति की वस्तुएं लाया करते थे जिससे सामाजिक जीवन अधिक सुखी होता था-

सप्तसिन्धु के महापोत से
लाते अगणित निधि-भंडार।
पाटलिपुत्र उन्हें क्रय करता
देता सुख सुविधा विस्तार ।।[3]

`कुणाल` के प्रारम्भ में पाटलिपुत्र खण्ड में तत्कालीन मौर्यसाम्राज्य की सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक स्थितियों का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है।

`विक्रमादित्य` काव्य में गुप्तकालीन सामाजिक स्थितियों का चित्रण महत्व-पूर्ण है ।सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासक होने से पूर्व सम्राट् रामगुप्त के राज्यकाल में कृषक समाज की दशा दयनीय तथा शोचनीय थी । उनकी आर्थिक अवस्था का वर्णन चन्द्रगुप्त के स्वगत कथन में हुआ है-

----

१- `तक्षशिला` पृ० १०३

२- R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. Datta, Page-
An Advanced History of India, Page - 136-137.

३-`कुणाल` पृ० ६

भींगी रात, ओस खा-खा कर पिछले में पयाल को त्याग,
कृश शरीर वह कृषक लंगोटी ही पर चला खेलने फाग,
मोट चला दुबले बैलों संग ठंडी सांस, आंख भर , खींच,
पानी,गरम,गरम आंसू से करते खेत रहा है सींच
बच्चे उसके ची-ची करते विहगवृन्द संग फनीलों पर,
हाथ दबाये , धूप ला रहे अथवा, भूखे टीलों पर(पृ० २५)

इसके विपरीत काव्य के उनतालीसवें भाग में सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल में सामाजिक सम्पन्नता, कला,व्यापार,शिक्षा आदि का वर्णन है । गुप्त समय के स्वर्णयुग की झलक का यहां यथार्थ वर्णन किया गया है ---

प्रजा सदाचारी विदुषी है सब सम्पन्न सुखी है
धन कुबेर व्यापारी बाले दीपक चतुष्टमुखी है

\+ \+

सैनिक सब वेतन पाते हैं घर घर बरसा सोना
कौड़ी मोल नाज मिलती है नहीं पेट का रोना। (पृ० २०२)

सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के समय भी देश धन-धान्य से भरपूर था । भारत के वैभव की कहानियां परीदेश की परियों की भांति विदेशों में प्रचलित थीं । मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने 'आर्यावर्त' में गौर देश के एक नागरिक के कथन द्वारा भारत की समृद्धि का उल्लेख किया है-

मैंने सुना काफिरों का एक ऐसा देश है
होती है फसल जहां मोतियों की खेतों में।
लाल और पन्ने फलते है सभी वृक्षों में,
सोने के पहाड़ और मणि मखमल की ,
खेलते हैं बच्चे वहां अंटे बना हीरा के।
दूध-मधु घी की नदियां है -ढोर खाते हैं

गेवे, और दूध मधु पी के रह जाते है ..[1]।

मध्य युग में गौरी द्वारा राजपूतों की शक्ति तोड़ दिए जाने के पश्चात् सोने के इस देश की अवस्था निरन्तर पतन की ओर उन्मुख हुई । देश्ली पर विदेशियों का राज्य हो गया था, आर्य जाति का संगठन टूटने लगा, समाज अस्तव्यस्त हो गया । आर्य-जाति के महान् भविष्य की कल्पना कठिन हो गई । मातृभूमि का सौभाग्य डूब गया। 'आर्यावर्त' में कवि ने सामाजिक दासता का चित्र भी प्रस्तुतकिया-

इस रण सागर में आर्यावर्त डूबा
डूब गया जिसमें सौहाग मातृभूमि का,
डूब गया जिसमें भविष्य आर्य जाति का
डूब गई जिसमें स्वतंत्रता की प्रतिमा[2] ।

अलाउद्दीन खिलजी के समय हिन्दू समाज की अवस्था अधिक शोचनीय हो गई थी । राजपूतों की स्वतंत्रता-हरण के लिए अलाउद्दीन रावण बना ।समाज और धर्म सौन्दर्यलिप्सा और मजहब की अग्नि में झुलसने लगे । लूट-पाट और निरन्तर आक्रमण ,शक्ति तथा सम्पन्नता को शिथिल कर रहे थे ।राजपूत जातियों में जातिगत स्वाधीनता की रक्षा का भाव आ गया था।पारस्परिक वैमनस्य की भावना जड़ पकड़ती जा रही थी । सम्राट पृथ्वीराज के समय तक राष्ट्रीय ऐक्य भाव के दर्शन होते है किन्तु इसी समय से राष्ट्रीयता की प्रतिमा खण्डित होनी आरम्भ हो गई । मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस अवस्था से पूर्ण लाभ उठाया । राजपूतों के स्वाभिमान को कुचलना चाहा किन्तु चट्टानों से टकराना सहज नहीं था । अलाउद्दीन की दक्षिण तथा पश्चिम भारत के

१- द्वादश सर्ग, पृ० १४४
२- प्रथम सर्ग, पृ० ६

वैभव ने आकर्षित किया । राजपूती रियासतों में अब भी वैभव की चकाचौंध अपने उत्कर्ष पर थी । देवगिरि पर आक्रमण करके अलाउद्दीन समस्त वैभव लूट लाया|दक्षिण की आर्थिक अवस्था को चोट पहुंची[1] । पश्चिम में अन्य राजपूतों की रियासतों पर भी आक्रमण किए ।`हमीर हठ`,`सती पद्मिनी` `चित्तौड़ की चिता`तथा`जौहर` काव्यों में तत्कालीन राजपूत समाज की अवस्था का चित्रण हुआ है । यवनों के आतंक तथा अत्याचार के कारण हिन्दू समाज में नारियों की दशा हीन हो रही थी । यवनों की वासना लोलुप दृष्टि सौन्दर्य को निगल जाने के लिए तैयार थी । सुन्दर नारियों का सतीत्व संकट में था । श्रीनाथ सिंह ने उस घोर अत्याचार का वर्णन किया है-

जहां कहीं भी किसी सुन्दरी का होना सुन पाता था
वहां चढ़ाई कर देता था अति उत्पात मचाता था
बड़ी बड़ी थी सेना उसकी झट विजयी हो जाता था
बलपूर्वक उस अबला को अपने महलों में लाता था[2]

घर घर में वीर ललनाओं ने सतीत्व रक्षार्थ अग्नि में प्राण भेंट किए ।सती धर्म के सर्वनाश की आंधी में लड़ने के पहले वीर ललनाएं जौहर की अग्नि में कूद पड़ती थीं.... सुन्दरता अभिशाप बन गई थी....

१- Ala-ud-din returned to Kara with enormous booty in Gold, silver, silk, pearls and precious stones. This daring raid of the Khilji invader not only entailed a heavy economic drain on the Deccan but it also opened the way for the ultimate Muslim domination over the lands beyond the Vindhyas.
R.C.Majumdar, H.C.Raychaudhuri & K. Datta
An Advanced History of India, Page- 298.

२- सती पद्मिनी , प्रथम सर्ग, पृ० ६

पागल हाथी सा पैठा उसकी दल कमलों के सर में ।
धर्मवीर ललनाएं जलने लगीं चिता में घर घर में ।।
त्राहि त्राहि थी मची हुई भारत के कोने कोने में।
बहुत निकट था सती धर्म का सर्वनाश ही होने में ।।[१]

`जौहर` महाकाव्य में अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी विलास-वैभव का चित्रण तथा वर्णन तो हुआ किन्तु जनसमाज की आर्थिक धार्मिक एवं सामाजिक दशाओं का चित्रण इसमें नहीं है । रावल रत्नसेन के राज्य काल की सामाजिक स्थिति क्या थी, इसका भी उल्लेख नहीं हुआ । तत्कालीन वीरत्व का चित्रण तथा वर्णन ही प्रमुख है ।`चितौड़ की चिता` में तत्कालीन मुगल साम्राज्य के वैभव का तथा राजपूतों की आर्थिक एवं राजनीतिक दशाओं का चित्रण प्रभावपूर्ण है । पात्रों के संवादों द्वारा सामाजिक पक्ष एवं राजनीतिक शक्ति का उल्लेख हुआ है । राणा संग्राम सिंह की मृत्यु के पश्चात् चितौड़ के राज्य के नागरिकों की दशा दयनीय हो गई । साम्राज्य में हाहाकार मच रहा था, अबलाओं पर अत्याचार होते थे ।सामाजिक व्यवस्था विकृत हो गई थी । दीनों का स्वर दबा दिया गया था वे।सामन्त सरदारों की क्रूरता का शिकार भी रहे थे साम्राज्य का कोई शक्तिशाली उत्तराधिकारी नहीं था ।धन के लिए प्राण न्यौछावर करने को तैयार थे--

उठ रहा दीनों का स्वर करुण
हो रहे भारी अत्याचार
सभी करते हैं धन को प्यार
भूमि वध से होती है अरुण [२]

१- सती पद्मिनी, प्रथम सर्ग, पृ० ७

२- अष्टम सर्ग, पृ० ६१

धन की होड़ इतनी प्रबल होती गई कि साम्राज्य में हाहाकार मच गया, दीन नागरिक पिसने लगे -

राज्य में होता हाहाकार
दीन पर होता अत्याचार
जा रही अबलाओं की लाज[१]

इन अत्याचारों के कारण समाज में अशान्ति व्याप्त हो गई ।पारिवारिक जीवन का सुख नष्ट हो गया-

कहीं शिशु का होता प्राणान्त
कहीं होता था नारी-हरण
कहीं था राजाओं का मरण
गूंज जाती विदिशाएं शान्त[२]

दशम सर्ग में कवि ने तत्कालीन राजपूत समाज का विस्तृत वर्णन किया है । राज्य की आर्थिक अवस्था अवनत थी ,राज्य कार्य अव्यवस्थित हो जाने के कारण राज्यकोष खाली हो चुका था । कर्मचारी राज्य कार्य छोड़ रहे थे। महारानी करुणा को आन्तरिक तथा बाह्य दोनों विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा था-

कहा मंत्री ने निज कर जोड़
महारानी ! मैं हूं निर्दोष,
शून्य हो गया राज्य का कोष
कार्य भी दिया सभी ने छोड़ ।[३]

१- अष्टम सर्ग, पृ० ६४

२- दशम सर्ग, पृ० ७५

३- अष्टम सर्ग, पृ० ६५

गुजरात के बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था।

तत्कालीन मुगल बादशाह हुमायूं के ऐश्वर्य पूर्ण समाज का संकेत भी कवि ने किया है... महारानी कर्णावती का दूत बादशाह हुमायूं के राज-वैभव से प्रभावित हुआ था-

> पत्र दे शीघ्र झुकाया माथ
> बड़ी सम्मान दृष्टि के साथ
> राज्य वैभव से बना समीत[1]....

+ +

मध्ययुग के अद्वितीय वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप तथा तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबर से सम्बन्धित ऐतिहासिक काव्यों में तत्कालीन समाज का चित्रण हुआ है। `प्रणवीर प्रताप` तथा `हल्दी घाटी` में हिन्दुओं की सामाजिक दशा तथा अकबर के वैभव का दिग्दर्शन होता है। `प्रणवीर प्रताप` के प्रारम्भ में कवि गोकुलचन्द्र शर्मा ने तत्कालीन समाज की अवनत दशा का बहुत विस्तृत ,प्रभावपूर्ण तथा यथातथ्य चित्रण किया है। मध्य युग तक आते-आते कुछ राजनैतिक कारणों से तथा कुछ अपनी दुर्बलताओंवश हिन्दू समाज का अध:पतन हो रहा था। विलासिता ,मद,छल,स्वार्थ तथा कुछ स्वयं अपनी दुर्बलताएं विद्वेष विशेष रूप से घर कर रहे थे --

> अधोमार्ग में चलते चलते,
> कुछ कुत्सित होता,
> बढ़ा जा रहा था आगे के
> पिछला वैभव खोता।
> जिस विलासिता ने, जिस मद ने
> जिस ईर्ष्या, जिस छल ने
> स्वार्थ -भाव को जन्म दिया था
> जिस विद्वेष प्रबल ने ,

१- दशम सर्ग, पृ० ४०

उन सब ने मिल भरत खंड के
खंड खंड कर डाले
आर्यों के आदर्श न आर्यों
की संतति ने पाले ।[१]

ज्ञान का सर्वदा लोप हो रहा था । मिथ्या मद के उन्मादों में फंसने का कारण स्वर्ण की महत्ता थी । जातिगत चेतना का भाव प्रबल था और जागृति की ज्योति भी अपनी जाति में जगाते थे किन्तु भिन्न जाति वाले परस्पर द्रोह तथा द्वेष के दलदल में फंस गए थे।परिणाम स्पष्ट था---

प्रजा पिस रही थी संगर से
नर-मृगया की क्रीड़ा
बढ़ती ही जाती थी दिन दिन
ग्रस्त धरा की पीड़ा[२]

श्यामनारायण पाण्डेय ने `हल्दी घाटी` में सामाजिकों की अस्तव्यस्तता की ओर संकेत किया है--

तनिक न ब्राह्मण कुल उत्थान,
रही न क्षात्रियपन की आन ।
गया वैश्य कुल का सम्मान,
शूद्र जाति का नामनिशान ।[३]

राजपूतों की ह्रासोन्मुख अवस्था के चित्रण के साथ ही अकबर बादशाह के वैभव तथा नीति का वर्णन भी काव्यों में हुआ है । हिन्दू राजाओं तथा हिन्दू समाज को कूटनीति से वश में करके उनकी संस्कृति नष्ट करने वाले

१- प्रणवीर प्रताप, पृ० ८ ६
२- वही पृ० ११
३- चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०

बादशाह का प्रभुत्व सभी ओर आच्छादित था-

महा मुगल महिमा में अपनी
अद्वितीय बलशाली
नहीं किसी से कम था, शाहों
प्रभुता में मतवाली[1]

'हल्दी घाटी' में उसके राजकीय वैभव का चित्रण हुआ है --

नभ चुम्बी विस्तृत अभिराम
धवल मनोहर चित्रित धाम
[illegible]
भीतर नव उपवन आराम
बजते हैं बाजे अविराम[2]

\+ \+

स्वर्णिम घर में शीत प्रकाश
जलते हैं मणियों के दीप
धोते आंसू जल से चरण
देश-देश के सकल महीप[3]

किन्तु हमारे हिन्दू समाज की दशा शोचनीय हो गई थी मुगल बादशाह ने हिन्दुओं की सामाजिक नैतिकता ,आचार विचार को आघात पहुंचाया था-

बची हमारी मां- बहनों से
सजता था मीना बाजार ।
फैल गया था अकबर का वह
कितना पीड़ामय व्यभिचार।[4]....

१- प्रणवीर प्रताप , पृ० १५
२- तृतीय सर्ग, पृ० ५१
३- वही वही
४- हल्दी घाटी, पृ० ४३

मैथिलीशरण गुप्त ने `भारत भारती` के अतीत खंड में प्राचीन तथा अर्वाचीन भारती की सामाजिक स्थितियों का क्रमबद्ध चित्रण किया है। कवि द्वारा प्रस्तुत यह चित्रण सहृदयता पूर्ण है। मुगल शासकों की कठोरता के वर्णन के साथ-साथ अकबर बादशाह अपने राज्य की जनता के लिए सुख शान्ति की व्यवस्था कराता था। हिन्दूसमाज यद्यपि दासता की शृंखला में जकड़ा हुआ था किन्तु जन साधारण का जीवन अपेक्षाकृत सुखी था राज्य में हिन्दू प्रजा का भी सम्मान होता था।

निज राज्य में सुख शान्ति का विस्तार वह करता रहा
अन्याय अत्याचार को सब भाँति वह हरता रहा
निज शत्रुओं के भी गुणों का मान उसने था किया
विश्वास पूर्वक हिन्दुओं को सचिव तक का पद दिया[1]

जहांगीर तथा शाहजहां के राज्यकाल की महत्वपूर्ण घटनाओं का काव्य में विशेष महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त नहीं हुआ है। `नूरजहां` काव्य का जहांगीर के राजत्वकाल की घटना से ही सम्बन्ध है किन्तु इस काव्य में प्रेम कथा ही प्रधान है। तत्कालीन समाज इसमें स्थान नहीं पा सका। शेर अफगन की सूबेदारी के समय हिन्दू जनता पर शेर अफगन के अत्याचारों का वर्णन अवश्य उपलब्ध होता है।

औरंगजेब के समय में हिन्दू समाज की अवस्था का चित्रण इस युग के कथानकों से सम्बन्धित काव्यों में हुआ जिनमें `गुरुकुल` तथा `आत्मार्पण` उल्लेखनीय हैं। राजपूत हिन्दू समाज अपनी अकर्मण्यता के कारण तथा वीरत्व के ह्रास के कारण हीन होता जा रहा था। क्रूर मुगल शासक के कृपा पात्र बनने के लिए, भयभीत होकर छोटे-छोटे हिन्दू राज्य मित्रता बढ़ा कर पद-प्राप्ति के लिए मुगल राजघराने से सम्बन्ध जोड़ रहे थे-

---

१- भारत भारती, अतीत खंड, छन्द २३३

हाँम अपने आप निन्द हो रहे
धर्म को धन के लिए है खो रहे[1]

+ +

शाह की कर ब्याह की तैयारियां
आप ही अर्पण करें सुकुमारियां
देख कर मां आ रहे मकड़ी स्वयं
शाह की लिप्सा बढ़ा रखती स्वयं ।[2]

'गुरुकुल' में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य के समय हिंदुओं की दुरावस्था तथा पतन का चित्रण किया है । सामाजिक व्यवस्था प्रत्येक दृष्टि से अस्तव्यस्त हो गई थी।मनमाने पथ पर चल कर जनता निर्बल होती जा रही थी । इस समय की सामाजिक स्थिति चित्रण की दृष्टि से'गुरुकुल' विशेष उल्लेखनीय है । वर्णव्यवस्था नष्ट हो रही थी -

आश्रम धर्म मयी जीवन की
हुई दिशाएं चारों भ्रष्ट
मनमाने पथ पर चल चल कर
होते है नर निर्बल नष्ट ।
उस निष्काम कर्म के ऊपर
फैला वाम मार्ग का जाल,-
नर बलि तक सकाम साधन में
थी कब की चल चुकी कराल[3]

१- द्वितीय सर्ग,
२- वही
३- गुरुकुल, पृ० ३६

मुगल-काल के पश्चात् भारत पर ब्रिटिश राज्य के मेघ मंडराने लगे। इन्होंने भारतीय समाज को प्रभावित करना आरम्भ किया। भारतीय संस्कृति पर इस नई शक्ति का यह एक अन्य कठोर आघात था। पाश्चात्य शासकों ने जहां एक ओर आधुनिक युग की सुख-सुविधाओं से भारत समाज की उन्नति की वहां धर्म तथा संस्कृति पर अनेक अत्याचार किए। `फूट डालो और राज्य करो` की नीति अपना कर जन साधारण में वैमनस्य के बीज अंकुरित किए। फलस्वरूप देशद्रोही भारतीयों ने भी अंग्रेजों के साथ मिल कर गरीब तथा पीड़ित जन साधारण पर अत्याचार किए। मानवताहीन गोरों के नृशंस कार्यों ने मानवता के इतिहास को लहू-लुहान कर दिया था-

मानवता का इतिहास निराशा
से टकरा कर फिरा हुआ
मानवता का इतिहास आपदाओं
में आकर घिरा हुआ।[१]

... ...

उठ रही आग दुर्गन्ध लिये,
छा रहा चतुर्दिक विकट धूम,
विष के मतवाले कुटिल नाग
निर्भय फण जोड़े रहे घूम।[२]

समाज में अविश्वास, दानवता तथा सर्वनाश खिलखिला रहा है-

द्वेषों का भीषण तिमिर-व्यूह
पग पग प्रहरी है अविश्वास
है चमू सजी दानवता की
खिलखिला रहा है सर्वनाश।[३]

१- दिनकर, बापू, पृ० १२
२- वही वही पृ० १३
३- वही वही पृ० १४

`गांधी गौरव` में दक्षिण अफ्रीका की जनता पर ब्रिटिश शासकों के अत्याचारों का वर्णन हुआ है।`महामानव``जननायक``कादालोक`आदि काव्यों में ब्रिटिश शासकों के समय समाज का यथातथ्य चित्रण हुआ है। ब्रिटिश शासकों ने समाज की सुव्यवस्था के लिए भी अनेक प्रयत्न किए। आधुनिक युग की सुविधाओं से भारत को परिचित कराया था। भारतीय समाज में उन्नति की अनेक नई राहें निकल रही थीं। बाद के मुस्लिम शासकों के समय में जो समाज अत्यन्त हीन हो गया था उन्हें, अंग्रेजों के प्रयत्न द्वारा,नवीन चेतना का संचार हो रहा था। मैथिलीशरण गुप्त ने`भारत भारती` में इस नवीन सामाजिक व्यवस्था का संकेत किया है-

अन्यायियों का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी ?
आखिर हुए अंगरेज शासक राज्य है जिनका अभी।
सम्प्रति समुन्नति की सभी हैं प्राप्त सुविधाएं यहां
सब पथ खुले हैं, भय नहीं जिचरो जहां जाओ वहां[१]

इसके साथ ही भारतीय समाज की संस्कृति पर जो आघात ब्रिटिश शासन काल में हुए उनका वर्णन इस युग की घटनाओं से सम्बन्धित काव्यों में हुआ है। भारतीय समाज पर ब्रिटिश शासकों के क्रूर अत्याचार की कहानी पृष्ठभूमि के रूप में गांधी जी के चरित्र सम्बन्धी काव्यों में चित्रित हुई है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज के विभिन्न युगों का इतिहास खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में जीवित हो उठा है। सामाजिक उन्नति तथा अवनति दोनों ही का चित्रण महत्वपूर्ण है।विभिन्न शासकों की नीतियों से प्रभावित होता हुआ भारतीय समाज उत्थान और पतन की कहानी है। यवनों के आक्रमणों के पश्चात् वर्तमान समय तक हिन्दू समाज धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से ह्रास की ओर उन्मुख होता रहा है,ऐतिहासिक काव्य इस सत्य का प्रमाण है।

१- अतीत खंड, छन्द २८३

(२) धार्मिक स्थिति :-

बौद्ध काल से लेकर वर्तमान समय तक हिन्दू धर्म अनेक वीथियों से होकर चला आ रहा है । धर्म पर अनेक आघात हुए, अनेक सम्प्रदायों तथा मत-मतान्तरों का जाल फैला । सामाजिक आवश्यकता अनुरूप हिन्दू समाज ने धार्मिक परिवेश परिवर्तित किया । महात्मा बुद्ध के जन्मकाल तथा सिद्धि प्राप्ति से पूर्व की धार्मिक स्थिति का चित्रण कवि अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' काव्य में किया है । भगवान बुद्ध महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् तपस्या में निमग्न हो गए। ज्ञान प्राप्त होने पर उन्हें योगसाधना में रत अनेक साधु सन्तों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ । आश्रम स्थित व्रती, शारीरिक कष्टों से पूर्ण योगाभ्यास किया करते थे, शारीरिक कष्ट से पूर्ण इस योग साधना में अनेक कष्ट थे -

रुचिर तापस आश्रम में जहां
बहु व्रती करते जप योग थे,
स्व तन को रिपु के सम जान के
दमन थे करते बहु क्लेश से ।[1]

सकल-इन्द्रिय ज्ञान विनाशना
दमन थे करते बहु यत्न से,
मरण से पहले सब भाँति ही
मृत बने जिससे यम यातना ।[2]

निम्न पंक्तियों में कवि ने धार्मिक आचारों का चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है... कायिक कष्ट की एक झलक दर्शनीय है--

कुछ बड़े छुर से तन छेद के
स्वयं- पीड़ित थे अंग अन्य के
अपर क्षार रमा कर देह पे
अनल में तपते बहु भाँति थे ।[3]

१- सर्ग पन्द्रह ,पृ० २२८
२- वही वही
३- वही

बौद्ध धर्म में दीक्षित होने से पूर्व राजा महाराजा पशु बलि तथा नर बलि किया करते थे । धार्मिक क्षेत्र में अन्धविश्वास की जड़ें गहरी थीं--तत्कालीन मगध राजा बिम्बसार को भगवान बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया था इससे पूर्व उसके राज्य में पशु-बलि दी जातीथी ।निम्न पद में धार्मिक अन्ध श्रद्धा का अजातशत्रु के प्रसंग में चित्रण दर्शनीय है-

कहा प्रभो राजगृहाधिराज के
निदेश का पालन-मात्र जानता,
सुना कि वे यज्ञ विधान में लगे
समस्त आवश्यक मेध-भाग हैं ।[१]

भगवान् बुद्ध ने मार्ग भ्रष्ट राजाओं महाराजाओं तथा जनता को अहिंसा का मार्ग दर्शाया । बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा बुद्ध के जीवनकाल में हो गई थी । तत्कालीन जनपद राज्यों ने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया था`तथागत' में कवि ने तत्कालीन स्थिति का चित्रण किया है--

गौतम के प्रेम भरा
पावन नेतृत्व में
चरणों में अवनत थे
एक क्या अनेक नृप
एक क्या महान शक्ति
शाली जनपद अनेक
स्वागत में जन मन का
स्नेह नहीं रुकता था
स्वागत में मागध
सम्राट् बिम्बसार ने
अर्पण साम्राज्य किया

तथा उस समय की तीव्र इच्छा एक ही थी-

इच्छा थी एक ही
एक ही लगन और

१- सर्ग पन्द्रह , पृ० २३५

संकल्प एक ही

' बढ़ी शरण बुद्ध की
बढ़ी शरण धर्म की
बढ़ी शरण संघ की'

मौर्यकाल में सम्राट् अशोक ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था इस तथ्य का उद्घाटन अनेक काव्यों में हुआ है । कलिंग विजय के पश्चात् सम्राट अशोक बौद्ध धर्म का सच्चा सेवक बन गया था ।अहिंसा का एक मात्र मार्ग ग्रहण कर लिया था । किन्तु धार्मिक आचरण के प्रति कठोर नीति नहीं थी । अशोक के राज्यकाल में राज्य धर्म बौद्ध धर्म होते हुए भी विविध संप्रदायों के प्रति उदार दृष्टिकोण था--

विविध सम्प्रदायों के मत पर
होता संयत वाद विवाद
स्वयं मगध पति संयोजक बन
वितरण करता तद्व प्रसाद ।[1]

गुप्त साम्राज्य की धार्मिक स्थिति व तथा धार्मिक विश्वासों का चित्रण कवि गुरुभक्त सिंह ने `विक्रमादित्य' काव्य में किया है । बौद्ध धर्म के स्थान पर गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म पुन: जीवित हो गया था[2] । धार्मिक आस्था का प्रमुख साधन भक्ति थी[3] । शैव मत तथा वैष्णव मत दोनों मतों

१- सोहनलाल द्विवेदी, कुणाल

2. Buddhism had powerful exponents during the Gupta age in the famous sages and Philosophers Asanga, Vasubandhu, Kumarajiva and Dignaga.

R.C.Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. Datta
An Advanced History of India, Page - 201.

3. The most noliceable features in the religious life of the people during the Gupta age were the growing importance of Bhakti and love of fellow beings which found expression in benevolent activities and toleration of the opinions of others.

R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K.Datta
An Advanced History of India, Page - 199.

के मानने वाले राज्य में थे । मूर्ति पूजा को अत्यन्त महत्व प्रदान था । गुप्तकाल में अनेक कलापूर्ण मन्दिरों का निर्माण हुआ था । यज्ञों का प्रचलन था । अश्वमेध यज्ञ हुआ करते थे । मन्दिरों में सुन्दर मूर्तियों की स्थापना होती थी । शिव तथा विष्णु की पूजा में अधिक आस्था थी।[१]

है मंदिर की चौखट अलंकृत मनोहर,
कहीं गर्भ-गृह में है हरि तो कहीं हर
खुदे द्वार पर कीर्ति मुख गण कमलवर
मकर पर कहीं गंग लहरा रही है ।[२]

सम्राट विक्रमादित्य के समय में शिवपूजा के प्रचार का संकेत निम्न पद में प्राप्त है ---

उदयगिरि पर वह मूर्ति छवि पा रही है
निकट कीर्ति है संधि-विग्रह रविव की
है कवि 'वीर' ने थाप दी मूर्ति शिव की
गुहातम में भी जो बनी ज्योति दिव की[३] ।

अश्वमेध यज्ञ का प्रचलन हो गया था... सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विजय के उपलक्ष में अश्वमेध यज्ञ किया था --

---

१- "Bhakti to Sambhu, that is Siva, led to the hollowing out by a minister of Chandra Gupta II of a cave at Udayagiri".

R.C. Majumdar,
H.C.Raychaudhuri &
K. Datta

An Advanced History of India, Page - 200.

२- खण्ड ३६, पृ० १८६

३- खण्ड ३६, पृ० १६१

जय उपलब्ध किया सरयू तट अश्वमेध मख भारी
यूप कटक, कुम्भा, मत्वर, वेदिका अरणि नव कागी
एकत्रित है सामग्री रंग, घृत का बन्ता सोता,
ऋषि मंडली मंत्र पढ़ती है यज्ञ हवन के होता
हविष्य सुगंध निकल ऐसा है उठी मेघमाला सी
शमन उपाकृत हुआ है स्वाहा ध्वनि प्रणीत ज्वाला सी

(पृ० २००)

मध्ययुग में हिन्दुओं की धार्मिक भावना तथा धर्म पर अनेक आघात हुए । मुसलमानों के द्वारा मन्दिर एवं मूर्तियां तोड़ी गयीं । अकबर ने कूटनीति के द्वारा हिन्दुओं के धर्म पर आघात किया । उसकी उदार नीति ने हिन्दू समाज को एक ऐसे भंवर में छोड़ दिया था कि धार्मिक दृष्टिकोण से न वे हिन्दू ही रहे थे न ही मुसलमान बने थे । इससे पूर्व भी मुसलमानों द्वारा पंजाब में हिन्दुओं के धर्म पर अनेक अत्याचार किए जा रहे थे -

छाया था सब ओर यहां पर
उद्धत यवनों का आतंक,
वैद धर्म पर दारुण संकट
रहते थे सब समय-सशंक ।[1]

मुगलों के आतंक के अतिरिक्त स्वयं हिन्दुओं की धार्मिक अवस्था शोचनीय हो गई थी । गुप्त साम्राज्य में हिन्दू धर्म उच्च आदर्शों तथा निष्काम मार्ग पर आधारित था। यवन काल में निष्काम कर्म को वाममार्ग ने ग्रस लिया था । मन्दिर और मठ जिनमें मनुष्य को त्याग तथा आत्मशुद्धि का संदेश दिया जाता था अब आसक्ति का केन्द्र बने हुए थे । आश्रमों की व्यवस्था भ्रष्ट हो गई थी । विप्र वेद-विहीन हो गये थे । इधर यवन आतंक के

१- गुरुकुल पृ० ३७

नीचे रहा सका हिन्दू धर्म भी म्रियमाण हो रहा था । वह प्रयोग करते वे धर्म भ्रष्ट करने में अपने धर्म की सार्थकता मानते थे -

मन्दिर और मठों में जितने
होता सफल मनुज कुल-भंजित,
फैली कृमि युत कृमि नाशिनी
घास-राशि -सी परवाभंजित ।[1]

योगी से भोगी होकर काम ,क्रोध ,लोभ और मोह में फंस रहे थे-

आडम्बर में लगे छिपाने
अपनी धर्महीनता लोग
फैले रूढ़ रीतियों वाले
मिथ्या विश्वासों के रोग[2] ।

ब्राह्मण अपने उच्च उद्देश्य से पतित हो गए थे । जाति पांति ऊंच नीच का भेद भाव व्याप्त था-

करके घृणा मात्र औरों पर
करते थे द्विज शुचिता सिद्ध,
किये गये निज-सम मनुजों को
घाट बाट तक हाय ! निषिद्ध ।[3]

अकबर की उदार नीति में इस म्रियमाण धर्म को जड़ से नष्ट करने की चाह थी । दीने-इलाही के द्वारा एक नये धर्म का प्रचार करना चाहा----
कुछ समय के लिए दीने-इलाही की प्रसिद्धि हुई ---

१- गुरुकुल , पृ० ३७
२- वही पृ० ३५
३- वही वही

प्रभु का संसृति पर अधिकार,
उसका मैं पावन आविष्कार,
यह भव-सागर कठिन अपार
दीन-हलारी है उद्धार ।(हल्दीघाटी)

इसका करता जो विश्वास,
उसको तनिक न जग का त्रास,
उसकी बुझ जाती है प्यास,
उसके जन्म-मरण का नाश ।(हल्दीघाटी)

हिन्दू तथा मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त कटु थे । मन्दिर तुड़वा कर गोवध करा कर मुगल शासक तथा कर्मचारी हिन्दुओं की भावनाओं को आघात पहुंचाते थे । परस्पर काफिर तथा म्लेच्छ की संज्ञा देते थे । मुसलमान हिन्दुओं को कुचलने की हीन प्रवृत्ति से ग्रस्त थे और हिन्दु-विरोध करते अपने धर्म तथा जाति की रक्षा में लगे थे ।

छाया था सब ओर यहां पर
　　उद्धत यवनों का आतंक,
देख धर्मपर दारुण संकट
　　रहते थे सब समय-सशंक ।

तोड़ मूर्ति मंदिर ,गोवध कर,
　　करते अरि अविचार यथेच्छ,
हिन्दू-मुसलमान शब्दों के
　　अर्थ हो गये काफिर म्लेच्छ,
जब के मित्र शत्रु थे तब के
　　वही,विजाति,विधर्मी,लोग,
धर्म भ्रष्ट हमें करते थे
　　करके बहुधा बल प्रयोग ।[१]

१- गुरुकुल ,पृ० ३७

कुछ समय के लिए हिन्दू जनता पर दीन-इलाही का प्रभाव हुआ-

हिन्दू जनता ने अभिमान,
छोड़ा रामायण का गान।
दीन-इलाही पर कुर्बान,
मुसलमान से अलग कुरान ।।[1]

औरंगजेबी नीति तथा धार्मिक कट्टरता ने हिन्दू धर्म को जड़ से नष्ट करने का बीड़ा उठा लिया । बलपूर्वक हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार कराया जाता था । मैथिलीशरण गुप्त ने 'गुरुकुल' में औरंगजेब के धार्मिक अत्याचारों का विस्तृत वर्णन किया है । कवि तारकाप्रसाद गुप्त ने 'आत्मार्पण' काव्य में संकेत किया है-

प्रबल पापों से प्रपीड़ित है मही,
धर्म की गिरती पताका जा रही।
  मच रहा छलबल बड़ी हर ओर है
  कर रहा औरंगजेबी घोर है ।[2]

मुस्लिम युग की अवनति पर देश में ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ । भारतीय समाज पर नृशंस अत्याचारों की बाढ़ आ गई । सत्ता के मद ने मानवता का गला काट दिया ।ब्रिटिश अधिकारी भारतीयों के आचार विचार, शक्ति सम्मान,सभ्यता संस्कृति सभी की अर्थी उठा कर अंग्रेज़ियत थोपना चाहते थे--

रहे न सिर पर अब से चोटी
रहे न गीता का भी ध्यान।
रहे न मस्तक पर चन्दन का
चमचम करता रुचिर निशान ।।[3]

१- हल्दीघाटी, पृ० ५६
२- प्रथम सर्ग, पृ० ६
३- झांसी की रानी, पृ० १४७

'गांधी गौरव' में गोकुल चन्द्र शर्मा द्वारा अभिव्यक्त हार्दिक शोकपूर्ण उद्गार अंग्रेजों के धर्म तथा समाज पर हुए अत्याचारों की कहानी है।

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म तभी तक सुरक्षित रहा जब तक यवनों द्वारा भारत भूमि पादाक्रान्त नहीं हुई । यवन आक्रमणकारियों से पूर्व हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में भी परस्पर संघर्ष रहता था किन्तु किसी विदेशी धर्म की छाया अभी नहीं पड़ी थी। गुप्त सम्राटों के शासन काल में यद्यपि बौद्ध धर्म के अनेक विरोधी उत्पन्न हो गए थे और पुन: ब्राह्मण धर्म शक्ति संचय कर चुका था तथापि बौद्ध धर्म के प्रभाव से धार्मिक जीवन में अशान्ति तथा मिथ्याडंबर की अधिक संभावनाएं नहीं रह गया थी । यद्यपि यवनों के आगमन के पश्चात् भारतीय समाज तथा भारतीय धर्म अवनत होता गया तथापि अनेक धर्मरक्षक आन्दोलनों द्वारा जीर्णशीर्ण धर्म को नष्ट होने से बचा लिया गया । अंग्रेजों के कूटनीतिक प्रयत्न भी भारतीय हिन्दू धर्म को पूर्णतया से विलुप्त नहीं कर सके । समय-समय पर जागरूक धर्मवेत्ताओं ,समाज-सुधारकों तथा महान् आत्माओं ने पथ-भ्रष्ट एवं भ्रान्त जनता का उचित मार्ग निर्देशन किया ।पाश्चात्य प्रभावों से हिन्दू समाज तथा धर्म में यद्यपि कुछ परिवर्तन अवश्य हुए किन्तु इस अति - बौद्धिक युग में भी धार्मिक और सामाजिक आदर्श जनजीवन के प्रधान अंग बने ही रहे ।वर्तमान ऐतिहासिक काव्यों में इस ऐतिहासिक सत्य का निरूपण हुआ है ।

(३) राजनैतिक अवस्था :-

ऐतिहासिक काव्यों में तत्कालीन भारत की राजनैतिक अवस्थाओं का उल्लेख विस्तृत रूप में प्राप्त होता है । बौद्धकाल तथा उसके पूर्व से, वर्तमान युग तक भारत भूमि पर अनेक साम्राज्यों का निर्माण हुआ । अनेक राजाओं, महाराजाओं, सम्राटों तथा विदेशी शासकों की राजनीति विभिन्न युगों में परिचालित हुई । विभिन्न राज्यों के इस राजनीतिक उत्थान तथा पतन का इतिहास वर्तमान ऐतिहासिक काव्य में भी मुखरित हुआ है । संक्षेप में ऐति-

हासिक कालक्रम से कुछ प्रमुख ऐतिहासिक काव्यों पर विचार करना आवश्यक है।

मगध साम्राज्य के प्रारम्भिक समय में अर्थात् पूर्व मौर्यकालीन राजनीतिक अवस्था का चित्रण केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'तप्तगृह' प्रबन्धकाव्य में किया है। मगध शासक राजा बिम्बसार के राज्य की नीति तत्कालीन राजनैतिक अवस्था तथा राज्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है। राजा की शक्ति सर्वोपरि थी। साम्राज्य विस्तार के हेतु प्रतिवेशी राजाओं में परस्पर युद्ध होते रहते थे।[1]

राजा की इच्छा के
तृप्ति-हेतु बिकता था
पानी तलवार का
नीति साम्राज्य के
अनुदिन विस्तार की
मूल्य मनमाना दे
कुछ कर थी खेल रही
धज्जियां उड़ा कर
प्राचीन आर्यनीति की।[2]

---

1. But from the sixth century B.C. we can trace a new development in India politics. We have the growth of a number of powerful kingdoms in eastern India - the very region which in the Brahamana texts, is associated with rulers consecrated to a superior kind of kingship, styled Samrajya - which gradually obsorbed the neighbouring states till at last one great Monarchy swallowed up the rest and laid the foundations of an empire which ultimately stretched from the Hindu Kush to the Northern District of Mysore.

R.C. Majumdar, H.C.Raychaudhuri & K. Datta
An Advanced History of India, Page - 55.

२- सर्ग ४, पृ० ४६

साम्राज्य विस्तारिणी नीति के अतिरिक्त मगध राज्य में स्वार्थ की काली घटाएं छायी हुई थीं-

स्वार्थ एक जादू है
काला, कलंक-सा
मगध इसी ज्वाला में
दिन रात जलता था[१]

मौर्य काल से पूर्व के जन पद राज्य किसी विदेशी शक्ति के दबाव में नहीं थे। 'तक्षशिला' में इस ऐतिहासिक सत्य का उल्लेख है--

सब नृपति आत्माधीन थे
परतंत्रता का ह्रास था
सानन्द थे सम्पन्न थे
आदर्श गुण का वास था[२]

किन्तु परस्पर द्वेष भाव ने परतंत्रता का बीज बो दिया। छोटे छोटे ~~संप्रदाय~~ साम्राज्यों में भारत विभक्त था। किसी एक शक्तिशाली संगठन का अभाव था। पड़ोसी राज्यों के प्रति घृणा तथा पारस्परिक द्वेष भाव ने विदेशी शक्ति को आमंत्रित किया-[३]

१- सर्ग तृतीय, पृ० ३२

२- तक्षशिला, स्वर, पृ०

३- The distracted condition of the country invited invasion from without, and political changes in western Asia and the land of the Yavanas or the Greeks and Macedonians indicated the quarter from which it came. The door was opened to the invader by certain Indians whose hatred for their neighbours made them blind to the true interests of their country.

R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. Datta

An Advanced History of India, Page - 65.

इस भांति तक्षशिलाधिप ने
बीज देश - द्रोह का
बोया, किया परिपुष्ट, डाला
खाद मिथ्या मोह का
आप होकर पास निखिल-
प्रान्त को परतन्त्र कर
स्वातंत्र्य को दूषित किया
सब देश में आक्रान्त कर[1] ।

इस प्रकार मौर्यकाल से पूर्व भारत की राजनीतिक अवस्था छिन्न-भिन्न थी किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोना चाहते थे । कवि 'दिनकर' की मगध महिमा एकांकिका में निम्न पंक्तियां महत्वपूर्ण है-

छिन्न भिन्न है देश शक्ति भारत की बिखर गई है
हम तो केवल चाह रहे हैं उसको एक बनाना[2]

चाणक्य की नीति तथा चन्द्रगुप्त के वीरतापूर्ण प्रयत्नों ने सम्पूर्ण भारत को एक करने में कसर नहीं उठा रखी । मौर्य काल में एक संगठित शक्ति का निर्माण हुआ । चाणक्य की कूटनीति भारत के लिए हितकर थी-

आचार्य चाणक्य की ही
राजनीति विशेष थी
समयानुकूल सुचारु चालित
हित भरी निश्शेष थी ।[3]

इस राजनीतिक एकता को विदेशी शक्ति ने नष्ट करना चाहा । यूनानी आक्रमणकारियों का पुनः आक्रमण हुआ किन्तु सम्राट चन्द्र गुप्त सम्पूर्ण

१- तक्षशिला, चतुर्थ स्तर, पृ० ६५
२- मगध महिमा. दिनकर
३- तक्षशिला, पृ० १०२

आर्यावर्त के प्रतिनिधि के रूप में सिल्युकस के आक्रमण के विरोध में उठ खड़ा हुआ, विदेशी शक्ति के पैर उखाड़ दिए --

तज कर अपने गर्व भाव होकर आरत-से
लौट रहे हैं आज ग्रीक योद्धा भारत से
किन्तु आर्यगण महोत्साह से जय जय करके
उल्लसित हैं महामोद मानस में भर के
निज जय गौरव के गीत वे हर्षा हर्षित हो गा रहे
जो गुंजित होकर गगन में सभी ओर हैं छा रहे ।[१]

मौर्य साम्राज्य के पश्चात् भारत गुप्त सम्राटों द्वारा शासित हुआ । समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य इस साम्राज्य के दो शक्तिशाली सम्राट हुए । समुद्रगुप्त ने पुनः संगठन किया तथा विक्रमादित्य ने शकों को भारत से निकाल कर एक आर्यावर्त की स्थापना के प्रयत्न किए ।[२] किन्तु विक्रमादित्य से पूर्व कुछ

१- मौर्य विजय, पृ० ३०

२- भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में इस ऐतिहासिक तथ्य का खण्डन किया है कि विक्रमादित्य ने भारत में एक संगठित राज्य के प्रयत्न किये थे, वे लिखते हैं --

It has also been interesting to find how emphasis is laid on his fight against the foreigner and his desire to establish the unity of India under one National state.
Jawahar Lal Nehru, The Discovery of India,
Page - 93.

किन्तु इतिहास ने यह प्रमाणित किया है कि समुद्रगुप्त ने भारत का संगठन किया था और उसी के पद चिह्नों पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अनुसरण किया था।

In the case of the Gupta it was an intense military and intellectual activity intended to bring about the political unification of Aryavarta.....Chandra Gupta II carried on the policy of "world conquest" pursued by his predecessor.
R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. Datta
An Advanced History of India, Page - 148, 149.

समय के लिए रामगुप्त ने राज्य किया था। इतिहास में स्पष्ट उल्लेख रामगुप्त के विषय में उपलब्ध नहीं है।

संस्कृत साहित्य में रामगुप्त को विलासी अयोग्य तथा निर्बल सम्राट् कहा गया है। इसके समय में गुप्त साम्राज्य राजनीतिक दृष्टि से निर्बल हो गया। शकों ने प्रभुत्व जमाना चाहा अनेक विजयों के उपरान्त शकों ने मगध की ओर भी दृष्टि उठाई। रामगुप्त के समय की राजनीतिक दुरावस्था ने गुप्त राज्य के विरोधियों को पुन: शेर बना दिया-

हो गयी अवस्था शोचनीय निर्बल सेना नायक पाकर
कठपुतली राजा होने से रिपुओं ने पुन: उठाया सर
उस बंग देश के करद भूप, विद्रोही हो स्वाधीन बने
हो गए विदेशी पुन: बाघ जो दबे हुए थे दीन बने
शक शत्रु आक्रमण विकट वार अब मगध देश की ओर बढ़ी
छोटे नदियों के राज्यक्षेत्र को निज बहाव में बोर बढ़ी
यह सप्तसिंधु सौराष्ट्र आदि इनका सब कुछ है हो बीता
गण सेनायें सब हार गयीं शक दाम्रप ने मालव जीता
है कौन वीर जो देखेगा भारत को शक के पद तल में
साम्राज्य गुप्त सम्राटों का खण्डित हो बंटते अखिल में।[1]

सम्राट् विक्रमादित्य ने बिखरी हुई शक्तियों का संगठन करके आर्यावर्त में गुप्त राज्य की स्थापना की।

गुप्त साम्राज्य के पश्चात् भारत की मध्ययुगीन राजनीतिक अवस्था का चित्रण भी खड़ी बोली के मध्ययुगीन ऐतिहासिक सन्दर्भों से सम्बन्धित

१- विक्रमादित्य, पृ० १२०

काव्यों में हुआ है । उत्तर भारत छोटी-छोटी राजपूत रियासतों में विभक्त था । देहली तथा अजमेर चौहान सम्राट् पृथ्वीराज के अधिकार में थे, कन्नौज का शासक राजा जयचन्द था । इन रियासतों के पारस्परिक सम्बन्ध वैर, द्वेष तथा वैमनस्य की नींव पर टिके थे। कोई एक शक्तिशाली राजनैतिक सत्ता न होने से मोहम्मद गोरी ने परिस्थिति से लाभ उठा कर पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। अद्वितीय वीर पृथ्वीराज चौहान ने पूर्ण शक्ति से विरोध किया, अन्त में पराजित हुआ । मोहम्मद गोरी इस आक्रमण ने शताब्दियों के लिए भारत की परतंत्रता के बीज बो दिए -

इस रणसागर में आर्यावर्त डूबा
डूब गया जिसमें सोहाग मातृभूमि का,
डूब गया जिसमें भविष्य आर्य जाति का
डूब गई जिसमें स्वतंत्रता की प्रतिमा ।[1]

देहली से दास वंश के शासकों का अन्त हुआ । खिलजी नए शासकों के रूप में आए । इस वंश के शासकों में अलाउद्दीन खिलजी के रूप में एक बार पुन: उत्तर भारत के राजपूत नरेशों को एक दुर्दमनीय शक्ति का सामना करना पड़ा। गुजरात, रणथम्भौर, चित्तौड़ पर आक्रमण करके अधिकार किया । फिर देहली सल्तनत के खण्ड खण्ड हो जाने पर सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शताब्दियों उपरान्त पुन: उत्तर भारत को मुगल आक्रमण कारी बाबर की लौहशक्ति का सामना करना पड़ा । महाराणा संग्राम सिंह, चित्तौड़ के अधिपति के प्रतिनिधित्व में समग्र राजपूत शक्ति उठ खड़ी हुई । शत्रु भयभीत हुए, किन्तु एक दृढ़ तथा निश्चित उद्देश्य की अदम्य आकांक्षा से पूर्ण विदेशी शक्ति विजित हुई । भारत एक नए राजनीतिक प्रभुत्व की छत्र छाया में आया। इस संग्राम से मेवाड़ तथा अन्य राजपूत रियासतों की प्रतिष्ठा तथा शक्ति टूट गई थी[2] । मेवाड़ की आन्तरिक स्थिति से लाभ उठा कर गुजरात के बहादुरशाह ने

१- आर्यावर्त, प्रथम सर्ग, पृ० ६

२- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३८०

मेवाड़ पर आक्रमण किया । इस समय मेवाड़ की राजनैतिक दशा शोचनीय थी-

राज्य की दशा देख कर हाय
जा रहा बहादुर शाह
राज्य लेने की उसकी चाह
कौन सा आवे किया उपाय[1]।

... ...

नहीं है कुछ प्रबन्ध का नाम
राज्य में है अशान्ति सब ओर
हो रहे सेवक स्वार्थी घोर
राज्य का बिगड़ गया सब काम[2]।

राजपूतों में पारस्परिक संगठन का नितान्त अभाव था-

मची थी अति अशान्ति सब ओर
गूंजता था सब हिन्दुस्थान,
हुआ राज्यों का था अवसान
हो रहा था भीषण रण घोर।[3]

मेवाड़ राज्य सेना का संगठन नष्ट हो गया था-

राज्य सेना का सब संगठन
हो चुका है अब नष्ट-प्राय
यही मुझको दिखता अभिप्राय
सभी आवेंगे बागी बन[4]।

१- चित्तौड़ की चिता, अष्टम सर्ग, पृ० ६१
२- वही वही पृ०६०
३- वही दशम सर्ग, पृ० ७५
४- वही अष्टम सर्ग, पृ० ६६

संग्रामसिंह के पश्चात् राजपूत कभी एक दल के नीचे एकत्रित न हो सके। महाराणा प्रताप के समय में मुगल बादशाह अकबर की कूटनीतिज्ञता ने अनेक हिन्दू राज्यों की राजनीति को अपने हाथ में लिया। छिटपुट रूप में अतुल वीरता के साथ अनेक राजपूत वीरों ने अकबर बादशाह का विरोध तो किया किन्तु संगठन का सदैव अभाव ही रहा। अनेक राजपूत राजा अकबर के आधीन होकर जीवन यापन करने लगे -

हो के स्वाधीनता को अब हम रख है नाम को ही नरेश
ऊंचा है आप से ही इस समय अभी देश का शीर्ष देश।[१]

उत्तर भारत के राजपूत नरेशों की राजनीतिकशक्ति क्षीण हो गई। महाराणा प्रताप, स्वाधीनता के एक मात्र प्रतीक, आजीवन मुगलों के लिए चुनौती बने रहे किन्तु वह राजपूतों में संगठन का निर्माण न कर सके-

आत्म वीरता पर निर्भर हो
विक्रम अतुल दिखाया
पर माला की एक सूत्र में
गूंथ न कोई पाया

+ +

चमक दिखाते रहे टूट का
उस माला के मोती
भारत माता क थी पर उनकी
मलिन प्रभा में रोती

+ +

उन्हें समेट मुगल शाहों ने
गूंथी गौरव माला
कूट नीति में प्रेम प्रीति का
मोहक जादू डाला[२]

१- मैथिलीशरण गुप्त, पृथ्वीराज भट्ट का पत्र, प्रतापसिंह के नाम; सरस्वती, मार्च, १९१२

२- प्रणवीर प्रताप, पृ० १२

अकबर बादशाह की सैनिक शक्ति संगठित थी उसके राज्य का विस्तार सर्वाधिक था-

> 'सबसे अधिक राज विस्तार
> धन का रहा न पारावार
> राजद्वार पर जय जयकार
> भय से डग मग था संसार ।[1]

अकबर बादशाह के पश्चात् भी राजपूत राजा कभी संगठित न हुए ।मुगलबादशाहों से उनके राजनीतिक सम्बन्ध की कहानी संधि और विग्रह की कहानी है ।मराठा राज्य के संस्थापक महाराज शिवाजी, औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों के लिए एक चुनौती सिद्ध हुए । इस समय भी राजपूतों ने कभी एकत्रित होने का विचार नहीं किया ,उलटे मराठों को दबाने तथा कुचलने में औरंगजेब की सहायता की ।[2]

> सुना है मैंने, तुम,
> सेना ले पार दक्षिण-पथ को
> आये हो मुझ पर चढ़ाई कर,
> जयजी, जय सिंह ।
> मोगल सिंहासन के-
> औरंग के पैरों के
> नीचे तुम रक्खोगे,
> काट देना चाहते हो दक्षिण के
> प्राण -
> मोगलों को तुम जीव दान,
> फाड़ हिन्दुओं का हृदय
> सदय ऐसे ! कीर्ति से
> छाओगे अपनी पताका हे।[3]

१- हल्दीघाटी, तृतीय सर्ग,पृ० ५१

२-'सन् १६६५ में बादशाह ने मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना शिवाजी को परास्त करने को भेजी।' डा०ईश्वरीप्रसाद,भारत का इतिहास, भाग २,पृ०१६४

३-'निराला',महाराज शिवाजी का पत्र,परिमल संग्रह से ।

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत की राजनीति विदेशी शक्तियों के परस्पर संघर्ष से पूर्ण है । शक्ति के बल पर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारत पर अधिकार किया । सन् अट्ठारह सौ सतावन में विदेशी जुआ उतार फेंकने के लिए झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोह की जलती हुई अग्नि में घृत का कार्य किया । अनेक राजवंश सहयोगी हुए[1] । राजनीति ने कुछ समय के लिए उग्र रूप धारण किया-

> 'सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
> बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी
> गुमी हुई आजादी की कीमत सब ने पहचानी थी
> दूर फिरंगी को करने की सब ने मन में ठानी थी
> चमक उठी सन सतावन में वह तलवार पुरानी थी[2] ।

ब्रिटिश शासन की कठोर नीति के नीचे भारत की सम्पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता नष्ट हो गई । भारत के राजनैतिक इतिहास में इतना भारी विस्फोट कभी न हुआ था । राष्ट्रीयता का पूर्णत: पतन हो गया-

> परकीयता से पददलित है हो रही आत्मीयता
> जातीयता जाती रही है मर रही राष्ट्रीयता ।[3]

ब्रिटिश शासन की साम्राज्य विस्तारिणी नीति ने समूचे देश को निगल लिया-

---

१- ' उसकी साम्राज्य विस्तारकारिणी उग्र नीति से समस्त देशी नरेश मण्डल विक्षुब्ध हो चुका था । इस चतुर्दिक असन्तोष का परिणाम यह हुआ कि सन् १८५७ में विस्फोट हुआ जिसने अंग्रेजी शासन की जड़ें हिला दीं..'
--डा०ईश्वरीप्रसाद,भारत का इतिहास, भाग २, पृ०४६३

२- सुभद्राकुमारी चौहान, झांसी की रानी

३- गांधी गौरव, पृ० ११८

उसकी कराल मुखी तृष्णा का नहीं है पार
विषम दुरन्त शाप कन्या-सी
होकर अदम्य अग्नि वन्या-सी
दुर्विलंघ्य दुर्निवार,
फैल रही फैलती ही जाती है,
तृप्ति नहीं पाती है
निगल समुद्र के समुद्र देश
हाय अरे कैसा क्लेश ?[१]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि भारत के प्रारम्भिक जनपद राज्यों (पूर्वमध्य युग) से वर्तमान काल तक विभिन्न विगत युगों के लगभग दो ढाई हजार वर्षों की राजनीतिक शक्ति के उत्थान पतन का इतिहास खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में गुम्फित हुआ है । पूर्व मध्य युग में भौगोलिक दृष्टिकोण से राजनैतिक एकता का अभाव था । भारत भू खंड छोटे छोटे शक्तिशाली जनपदों में विभक्त थाकिन्तु मौर्य कुल के सम्राट् चन्द्रगुप्त ने छिन्न भिन्न शक्तियों को एकता के सूत्र में अनुस्यूत करके भौगोलिक अभिन्नता के आधार पर राजनैतिक एकता को सजीव रूप प्रदान किया और राष्ट्रीयता की भावना को प्रश्रय दिया। गुप्त साम्राज्य में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पुन: छिन्न भिन्न हुई भौगोलिक एकता को स्थापित करके राजनैतिक संगठन का अभूतपूर्व कार्य किया । उसने एक छत्र के नीचे सम्पूर्ण भारत को ला खड़ा किया किन्तु दुर्भाग्यवश यह एकता स्थायी रूप धारण न कर सकी । पृथ्वीराज चौहान के समय तक अखण्ड भारत की कल्पना चूर चूर हो गयी थी।उत्तर भारत के राजपूत नरेश खंड-राष्ट्रों में विभक्त हो गए थे । मोहम्मद गोरी के विरुद्ध सम्राट् पृथ्वीराज के प्रतिनिधित्व में सम्पूर्ण भारत संगठित नहीं हो सका था । देशद्रोही जयचन्द ने भारत की अखण्ड राजनैतिक चेतना को आघात पहुंचाया, फलत: आर्यावर्त की राजनीति में विदेशी शक्ति के पांव ऐसे जमे कि अनेक प्रयत्न होने पर भी हिन्दू जाति उन्हें

१- सियाराम शरण गुप्त, बापू , पृ० ३६

उखाड़ नहीं सकी । राणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में एक बार फिर उत्तर भारत में राजनैतिक चेतना प्रबुद्ध हुई थी। किन्तु एकता से पूर्ण यह कठिन संघर्ष सफल न हो सका । तदुपरान्त यवन राजत्व काल में भारतीय राष्ट्रीयता क्रन्दन कर उठी। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को विशेष आघात पहुंचा किन्तु संघर्ष तथा वीरत्व के इस युग में एक भी प्रयत्न ऐसा न हुआ जो राजनैतिक एकता के स्पन्दन से अनुप्राणित होता । महाराणा प्रताप स्वाधीन चेतना के निर्भीक प्रहरी तथा प्रतीक बन कर ही उदित हुए तथापि राजनैतिक एकता के प्रतिनिधि रूप में उनका भी आदर्श फलीभूत न हो सका । इधर दक्षिण भारत की राजनीतिक शक्ति के केन्द्र महाराज शिवाजी के द्वारा भी इस एकता का सूत्रपात नहीं किया जा सका। इस समय मुगल राज्य के आधिपत्य में अनेक देशद्रोही राजपूत सरदार तथा महाराष्ट्र राजे भारतीय राजनैतिक एकता के शत्रु बने रहे ।

मुगलों की शासकीय सत्ता का पतन हुआ और इसी के साथ एक नवीन विदेशी शक्ति का जुआ फिर भारत के कंधों पर लद गया । समूचे देश पर केवल एक शक्ति छा गई । ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी नीति ने चतुर्दिक त्राहि-त्राहि मचा दी । परिणामस्वरूप भारतीय सामन्ती राज्य विदेशी शासन से विद्रोह कर उठे । ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध सन् १८५७का यह विद्रोह तथा प्रथम स्वाधीनता संग्राम राजनैतिक एकता की चेतना से परिपूर्ण था । यद्यपि इसमें भारतीय जनता के सहयोग का अभाव था तथापि शताब्दियों के उपरान्त किसी विदेशी शक्ति के विरुद्ध भारतीय राज्यों में एकता की यह झलक स्वतंत्रता के इसी प्रथम अभियान में दृष्टिगोचर हुई । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूर्वकालीन एकता की यही भावना बापू के नेतृत्व में राष्ट्रीय चेतना के रूप में अवतरित हुई । आलोच्यकाल के खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में भारतीय इतिहास की इन राजनैतिक सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है ।

(ग) प्रतीकों के रूप में :—

प्रतीकों के प्रयोग तथा अर्थ को स्पष्ट करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है —

' यद्यपि प्रतीक-योजना की परिधि कविपरिपाटी और रूपक योजना को भी अपने में समाहित किये हुए है, तथापि उसकी एक अपनी अलग सत्ता भी है। इसका सम्बन्ध भाव और भाषा के एक विशिष्ट प्रयोग से ही है...... जब कवि अपनी भावना और भाषा को समानान्तर नहीं पाता तो वह ऐसी कलात्मक युक्ति की खोज करता है जो उसकी अनुभूति को सफलतापूर्वक व्यक्त कर चिरस्थायी बना सके। प्रतीकों की भाषा एक शैली की युक्ति है जिसका प्रयोग कुशल कवि अपनी अनुभूतियों को अधिक व्यापक और पूर्ण बनाने के लिए करता है।[1] '

भारतीय साहित्य में प्रतीक परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अनुभूत विषय के हेतु प्रतीकों की भाषा के सर्वप्रथम दर्शन ऋग्वेद में होते हैं। उपनिषदों में दार्शनिक तत्व की अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा हुई। काव्य-साहित्य में महाभारत तथा भागवत् पुराण में भावाभिव्यक्ति तथा दार्शनिक तत्वों की व्याख्या के लिए प्रतीकों की योजना हुई। हिन्दी की प्रारम्भिक अवस्थाओं में प्रतीकों को सन्ध्या भाषा शैली के रूप में देखा गया। इसके उपरान्त सिद्धों ने अपने वज्रयान-पन्थ की व्याख्या तथा सिद्धान्त निरूपण के लिए प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया। नाथ सम्प्रदाय तथा सन्त सम्प्रदाय ने उलटबासियों के प्रतीकात्मक रूप को अपनाया। रीति युग में नारी के नख-शिख सौन्दर्य के चित्रण में अनेक आलंकारिक प्रतीक अपनाए गए। आधुनिक युग में देश प्रेम तथा राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति एवं छायावाद और रहस्यवाद की सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों की भाषा का आश्रय लिया गया।

---

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कलाकाल - भाग २

ऐतिहासिक काव्यों में प्रतीकों का प्रयोग :-

आधुनिक युग के खड़ी बोली ऐतिहासिक काव्य में प्रतीकों के माध्यम से ऐतिहासिक पात्रों के सौन्दर्य तथा विशिष्ट गुणों की अभिव्यक्ति हुई है। प्रारम्भिक ऐतिहासिक काव्य में सौन्दर्य चित्रण के हेतु परम्परागत प्रतीकों को ही अधिकांशत: अपनाया गया किन्तु भाव तथा भाषा के विकास के साथ ही छायावाद तथा रहस्यवाद के युग में ऐतिहासिक पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों की अभिव्यक्ति नवीन भावात्मक प्रतीकों के माध्यम से भी हुई ।आशा,निराशा, करुणा तथा प्रेम के भावों की अभिव्यक्ति उषा,प्रभात,सन्ध्या,अन्धकार,पतझड़ आदिप्रतीकों द्वारा हुई । यहां हमारा तात्पर्य ऐतिहासिक पात्रों के विशिष्ट चारित्रिक गुणों के चित्रण में प्रयुक्त प्रतीकों से है । पौराणिक गाथाओं में अनेक महत्वपूर्ण चरित्र-उदाहरणार्थ राम ,कृष्ण,सीता,रुक्मिणी,तथा हरिश्चन्द्र, भीम,अर्जुन,भीष्म,द्रौपदी,अभिमन्यु,दु:शासन आदि पात्र खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में प्रतीक के रूप में अपनाए गए । पौराणिक गाथाओं में इन चरित्रों का कर्तृत्व मूर्तिमान होकर ऐतिहासिक काव्यों के पात्रों के लिए प्रतीक बन कर प्रस्तुत हुआ ।`मौर्य विजय` में सम्राट् चन्द्रगुप्त के यश तथा प्रताप के महत्व के चित्रण में इन्द्र प्रतीक स्वरूप आए हैं । इन्द्र ज्यों देवलोक का प्रतापी तथा यशस्वी राजा है उसी प्रकार चन्द्रगुप्त अवनीतल के प्रत्यक्ष इन्द्र हैं -

` थे मानो प्रत्यक्ष इन्द्र वे अवनीतल के[1]`

ठाकुर भगवत सिंह विशारद ने चित्तौड़ के राजपूत वीर जयमल पत्ता के रण-चातुर्य की व्यंजना महाभारत के पार्थ और कौरव सेना के प्रतीकों द्वारा की-

ज्यों पार्थ ने कुरु सैन को विचलित किया था व्यूह में
त्यों खलबली इनने मचा दी घोर शत्रु समूह में । [2]

१- मौर्य विजय, पृ० १५
२- वीरांगना मीरा, छन्द १४५

द्वारका प्रसाद गुप्त ने प्रभावती की करुण दशा के चित्रण के लिए एक पौराणिक गाथा में रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध उसके विवाह के समय की दयनीय असहाय रुक्मिणी का प्रतीक ग्रहण किया ।अपनी क्रूरता के लिए औरंगजेब शिशुपाल के रूप में देखा गया-

रुक्मिणी सा आज मेरा हाल है
शाह ही मेरे लिए शिशुपाल है
द्वारिकेश समान सत्वर आइये
लाज धर्म बचाइये बचाइये ।[1]

कृष्ण की बंशी को सुन सुन कर गोपियां कृष्ण का अनुगमन करती थीं ।बापू की प्रेरणापूर्ण मोहनी ललकार पर भारतीय जनता प्राण न्यौछावर करने को प्रस्तुत थी । इस भाव की अभिव्यक्ति कृष्ण की मोहनी बंशी के द्वारा हुई -

आकर यहां जब मधुर उनकी मोहनी बंशी बजी
सुन कर जिसे गिरिधारिणी गोपाल-व्रज सेना सजी ।[2]

गोपाल द्वारा गोवर्धन उठाने का प्रसंग संकट में रक्षा केप्रतीक स्वरूप अपनाया गया ।गांधी गोपाल की भांति रक्षक बने -

श्यामांग गांधी ने उसे कन्धा लगा कर रख लिया,
ज्यों गोत्र गोवर्द्धन उठा गोपाल ने कर रख लिया ।[3]

गांधी की सेवा वृत्ति के लिए कवि ने एक अन्य स्थल पर हनुमान द्वारा द्रोणाचल उठाने का प्रतीक भी ग्रहण किया है।

इसी प्रकार व्यूह में फंसने पर अभिमन्यु की स्थिति विरोधियों के बीच एकाकी घिर जाने की प्रतीक बनी ।गांधी के लिए राम तथा कस्तूरबा के लिए

१- आत्मार्पण, छन्द २३
२- गांधी गौरव, पृ० ३७
३- वही

सीता से प्रतीक की योजना भी हुई —

बहु भांति समझाया मगर हठ मान ली हैमी पड़ी।
आज्ञा न सीता की कही क्या राम को देनी पड़ी ?[१]

भीष्म कहीं इन्द्रिय दमन के प्रतीक रूप में लिए गए, कहीं प्रतिज्ञा की अटलता उनके द्वारा व्यंजित की गई । गांधी की एक भाव भंगिमा का प्रतीक भीष्म की अटलता हुई —

होकर व्यथित झलका वहां जो भंग भृकुटी -भाव था,
भीष्म प्रतिज्ञा का प्रकट उससे प्रचण्ड प्रभाव था[२]

परमार्थ का आदर्श दधीचि ने प्रस्तुत किया । फलत: दधीचि परमार्थ के प्रतीक हुए—

मुनिवर दधीचि तपश्चरण से पूत पृथ्वी गोद में
त्यागी तपोधन के चरित देखे निमग्न प्रमोद में[३]

`गांधी गौरव` में गोकुल चन्द्र शर्मा ने अनेक पौराणिक प्रतीकों द्वारा महात्मा गांधी के चरित्र की सफल अभिव्यक्ति की है ।तन्मय`बुखारिया` ने बापू की मर्यादा सत्य, टेक तथा परमार्थ की व्यंजना राम, युधिष्ठिर, लक्ष्मण, अर्जुन के गाण्डीव धनुष तथा दधीचि द्वारा की ।इस भांति तन्मय `बुखारिया` ने नए-नए प्रतीकों का भी प्रयोग किया —

तुम राम सौम्य के शुचि सायक
मर्यादा के पाषाण-शैल

+ +

तुम लक्ष्मण की दुर्दुमर्ष टेक।
तुम सत्य युधिष्ठिर के श्रीमुख

१- गांधी गौरव, पृ० १०६
२- वही पृ० ११५
३- वही पृ० १२५

तुम अर्जुन के गाण्डीव धनुष

तुम युग दधीचि तुम हरिश्चंद

+ + +

तुम भीष्म पितामह के संयम[१]

भारत मां की परतंत्रता में द्रौपदी के लुटते हुए चीर का प्रतीक लिया गया। 'बापू' कलिकाल के कृष्ण बन कर भारत मां की लाज बचाने के लिए दौड़ पड़े। कवि 'दिनकर' ने कृष्ण तथा द्रौपदी के प्रतीकों की योजना की-

बापू तू कलि का कृष्ण

निकल आया आँखों में नीर लिये

थी लाज द्रौपदी की जाती

केशव सा दौड़ा चीर लिये[२]

और कहीं भारतीय जनता के बापू की आवाज़ परपीछे पीछे चलने में राम के पीछे अयोध्यावासियों के चलने का प्रतीक लियाक--

पर कहीं राम का साथ साथ

तेरे पीछे चल पड़ा देश[३]

भारत मां के लिए 'दिनकर' ने यशोदा के रूप की कल्पना की। गांधी इस मां को सदा के लिए दीन करके चला गया-

फिर एक बार मोहन यशुदा को

सभी भांति कर दीन चला[४]

१- बापू , पृ० ६५

२- वही पृ० २१

३- वही पृ० ३१

४- वही पृ० ४०

फिर राम घनश्याम तथा गौतम तीनों गांधी के महापुरुषत्व के प्रतीक हुए -

यह अवध पुरी के राम चले
वृन्दावन के घनश्याम चले
\+ \+
गौतम प्रबुद्ध निष्काम चले [1]

सियाराम शरण गुप्त ने भी प्रतीकात्मक भाव भूमि पर गांधी के गुणों की प्रतिष्ठा की-

प्राप्त इसी दूर के अतल में
सत्य-हरिश्चन्द्र की अटलता
श्री प्रह्लाद की अनन्त-भक्ति-समुज्वलता
भीष्म की अनूठी ब्रह्मचर्यता [2]

'जौहर' में पद्मिनी के पातिव्रत धर्म तथा पवित्रता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई-

साध्वी परम पुनीता है वह
रामचन्द्र की सीता है वह
अधिक आपसे और कहूं क्या
रामायण है गीता है वह [3]

यवनों का अत्याचार कंस और रावण का अत्याचार है । सत् के प्रति असत् का विद्रोह है । रानी प्रतीकात्मक शैली में वीरता का आवाहन करती हुई-

---

१- बापू, पृ० ४०
२- वही पृ० ६५,६६
३- 'जौहर', पृ० ५०

जिस तरह रावण-निधन हित
जग उठी थी राम उर में ।
मौत बन कर कंस की ज्यों
जिस तरह घनश्याम उर में ।[१]

यवन अलाउद्दीन की सेना से जूझते हुए असंख्य राजपूत वीरों सहित राणा रत्न सिंह मारे गए । शत्रु का किले पर अधिकार हो गया । कुछ समय के लिए चित्तौड़ के सर्वनाश की भेरी बज उठी । यवन शत्रु लाशों को रौंदता हुआ बढ़ा चला आ रहा है । कवि व्याकुल होकर राजपूतों को निष्प्राण देख कर, उस स्वर्ग पुरी के रक्षार्थ खिड़की और कमरों से स्त्रियों को आंख उठा कर नहीं देखने देते हैं, पुकार रहा है-

जागो तुम्हारे नन्दन को
वैरी शोणित से सींच रहे।
उठो द्रौपदी का अंचल
सौ सौ दु:शासन खींच रहे ।[२]

राजपूतों की एक हुंकार पर सम्पूर्ण किला उसी प्रकार हिल जायगा जिस प्रकार रावण के हाथ पर शंकर का कैलाश हिल गया था । यहां उपमा मूलक प्रतीक द्वारा कवि राजपूतों की अदम्य शक्ति की व्यंजना कर रहा है-

रावण के हाथों पर जैसे
शंकर का कैलास हिला।
उठो तुम्हारी हुंकृति पर
वैसे ही हिले अधीर किला।[३]

१- जौहर, पृ० १२६
२- वही पृ० २२८
३- वही पृ० २२६

आर्यावर्त में भी उपमामूलक प्रतीकों की योजना कवि ने की है। पृथ्वीराज और मोहम्मद गौरी के मध्य हुए भीषण संग्राम क्षेत्र से श्रांत क्लान्त चन्द-बरदाई सैनिक वेष में लौट रहा है। नाश तथा पराजय के पश्चात् निराशा का घोर अन्धकार उसकी मुख मुद्रा, उसकी भंगिमा और उसकी भाल में फलक रहा है। उस श्रांत मुद्रा का आभास कवि ने उपमा मूलक प्रतीक के द्वारा किया-

लौटा कवि चंद देवि मंडप में श्रांत सा,
जैसे पार्थ लौटा था महान यदुवंश का।
सत्यानाश देख कर अपने नयन से[1]

दिल्ली अनेक राज्यों की रानी रही है। राज्य बने बिगड़े किन्तु इस सुन्दरी का सोहाग अटल अचल रहा। इसके अक्षय सोहाग की अभिव्यक्ति कवि ने द्रौपदी सुन्दरी के प्रतीक द्वारा की-

पांडवों की दिल्ली सखी द्रौपदी-सी सुन्दरी
पांच पतिवाली-हाय, अक्षय सोहाग है।[2]

पृथ्वीराज के पांच वर्षीय पुत्र रैणसी की मां संयोगिता के साथ, कवि के मानस चक्षुओं ने विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया-

साथ में था रैणसी कुमार, पांच वर्ष का,
जैसे हो शकुन्तला के साथ बाल रवि सा
भरत कुमार, सुरराज के विपिन में।[3]

निम्न पंक्तियों में संयोगिता तथा रैणसी के लिए लाक्षणिक प्रतीक लिया-

बैठ गया रैणसी निकट जाके माता के
मानो कर्म वीरता के पास पूर्ण धैर्य हो।[4]

१- आर्यावर्त, पृ० ३५
२- वही पृ० ५३
३- वही पृ० १५५
४- वही पृ० १५६

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी ऐतिहासिककाव्यों में अधिकांशतः उपमामूलक प्रतीकों का प्रयोग किया है। `गुरुकुल` के अनेक प्रसंगों में गुरुओं के चारित्रिक गुणों की उत्कर्षता के लिए कवि ने प्रतीकों का माध्यम अपनाया है। हिन्दू जनता पर यवनों का अत्याचार दैत्यों के नृशंस अत्याचार की भांति था। गुरु तेगबहादुर के पास काश्मीरी ब्राह्मण रक्षा के जिस भाव से आए हैं उस भाव की व्यंजना प्रतीक के माध्यम से की है --

देव यथा दैत्यों के भय से
आये थे दधीचि के द्वार
कुछ काश्मीरी ब्राह्मण आकर
गुरु से करने लगे गुहार।[1]

`तक्षशिला` में उदयशंकर भट्ट ने कुणाल की प्रशंसा में प्रतीकात्मक शैली अपनाई-

दुःशासन को भीम रूप से
दिगुवरा अभिमन्यु,
अपर प्रजापति दक्ष रूप से
पद्मप्रभा सुत अति धन्य।[2]

कवि जयशंकर प्रसाद की "जगती की मंगलमयी उषा[3] बन" प्रतीकात्मक कविता है। उषा आगमन से जगती में जिस सुखकी लहर व्याप्त हो जाती है वही सुख तथा मंगल सिद्धार्थ के आगमन द्वारा अनुभव किया गया था।

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ने `मेवाड़ के भीष्म[4]` में उपमा मूलक प्रतीकों के माध्यम से महाराणा लाखा के पुत्र चूड़ा के इन्द्रिय संयम तथा प्रतिज्ञा की अटलता का भाव ग्रहण कराया। घटना प्रसंग में भीष्म तथा चूड़ा की समतामूलक प्रतीकात्मकता दर्शनीय है।

१- गुरुकुल, पृ० ६७

२- तक्षशिला, पृ०७०

३- लहर संग्रह से

४- शंखनाद के संग्रह से

इस भाँति कतिपय ऐतिहासिक काव्यों के उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट है कि खड़ी बोली में ऐतिहासिक सन्दर्भों के प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में भी किये गये हैं। ऐतिहासिक पात्रों के गुणों की अभिव्यक्ति में अथवा किसी ऐतिहासिक घटना को स्पष्ट करने के लिए अधिकांशतः उपमामूलक प्रतीकों की ही योजना हुई है। सूक्ष्म भाव ग्रहण कराने के लिए दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग भी हुआ है किन्तु राम, कृष्ण, सीता, द्रौपदी, कंस, रावण आदि आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने के माध्यम बनाये गये। इस प्रकार ऐतिहासिक काव्य के पात्रों के लिए पौराणिक कथाओं के पात्र पूरक बन कर प्रस्तुत हुए हैं। सामान्य रूप से यह देखा जा सकता है कि जिन प्रतीकों के द्वारा ऐतिहासिक चरित्रों घटनाओं तथा प्रसंगों की उत्कर्षता प्राप्त हुई है उन्हीं का प्रयोग काव्यों में हुआ है।

(घ) अलंकारों के निरूपण में:-

खड़ीबोली के ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों का प्रयोग अलंकारों के निरूपण में भी हुआ है । सामान्यत: काव्य में अलंकारों का प्रयोग दो विशिष्ट दृष्टियों से किया जाता है -(१) बिम्ब ग्रहण कराने में सौन्दर्य परक दृष्टि और (२) प्रभावोत्पादकता तथा भावोत्कर्ष की दृष्टि ।ऐतिहासिक काव्यों में भी अलंकारों के द्वारा कवियों ने ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तित्व और स्वभाव का चित्रण किया है, ऐतिहासिक परिस्थिति अथवा घटना के बिम्बग्रहण कराने की दृष्टि प्रदान की है । भावोत्कर्ष एवं भाव के स्पष्टीकरण के लिए भी उन्होंने अलंकारों की सहायता ली है । यहां कुछ प्रमुख ऐतिहासिक काव्यों को अलंकार निरूपण की दृष्टि से देखना आवश्यक है ।

महाराजा शुद्धोधन ने राजकुमार सिद्धार्थ की वैराग्य वृत्ति को पोषित न होने देने के लिए विलासपूर्ण रंगमहलों का प्रबन्ध कराया था । सिद्धार्थ वहीं निवास किया करते थे किन्तु फिर भी स्वभावगत् विरक्ति भावना सिद्धार्थ के हृदय तल पर छा जाती थी । उस विलास पूर्ण वातावरण में रहते हुए किस प्रकार सिद्धार्थ वैराग्य भाव से पूर्ण हो जाया करते थे इसी की स्पष्ट अभिव्यक्ति कवि अनूपशर्मा ने अलंकार के माध्यम से की है --

प्रासादों में दिवस कटते शान्त सिद्धार्थ के थे,
    खाते पीते शयन करते मोद पाते महा थे
छा ही जाती हृदय तट पै किन्तु चिन्ता कभी थी
    छा जाती ज्यों धवल नभ पै श्यामला मेघ-माला ।[१]

इसी प्रकार विश्व-ताप के रहस्य के सम्बन्ध में विचार करते हुए चिन्ता निमग्न सिद्धार्थ की पद्मासन मुद्रा की भंगिमा का भाव कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा कराया। यथा-

वैसी मर्मर-मूर्ति देख उनकी पद्मासनावस्था लसी,
    हो साक्षात विराजमान मणि पै मानो तुरीयादशा ।[२]

१- सर्ग,४ पृ० ६६
२- सर्ग ४, पृ० ६७

'आर्यावर्त' में कवि ने रूपचित्रण तथा भाव के स्पष्टीकरण में अलंकारों की प्रचुर सहायता ली है । अलंकार निरूपण की दृष्टि से आर्यावर्त महत्त्वपूर्ण है । महाराज पृथ्वीराज के व्यक्तित्व चित्रण और घटनाओं के चित्रण में अधिकांशत: उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग हुआ है । निम्न पंक्तियों में मोहम्मद गोरी की कैद में पृथ्वीराज की असहाय अवस्था तथा शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा उल्लेखनीय है--

लौह-शृंखला में बंधा जैसे करिराज हो
महाराज दिल्लीपति आये दरबार में।
मूंछें थीं बढ़ी हुई, कठोर मुख मुद्रा थी,
मानो लौह निर्मित प्रचंड भुजदंड थे ।
सांड-जैसे कंधे, या शिला सा वक्ष, क्षीण कटि
जैसे मृगराज की हो- उन्नत शरीर था ।[1]

गोरी द्वारा पृथ्वीराज की पराजय का भाव कवि ने निम्न दृष्टान्त अलंकार द्वारा दिया-

राहु जैसे हाहाकार करके गगन में
ग्रस लेता है दिनकर की प्रभात की

+ +

ठीक इसी भांति - इसी भांति हाय, गोरी ने
दिल्लीपति को खा गया- उस घोर युद्ध में ।[2]

मानसिंह का चित्तौड़ में अपमान हुआ था । उस अपमान की ज्वाला में जल कर क्रोधित होते हुए उसने चित्तौड़ से प्रस्थान किया । उसके प्रस्थान में भावी अनिष्ट का संकेत कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा किया-

---

१- आर्यावर्त, सर्ग द्वितीय, पृ० २०

२- वही, सर्ग प्रथम, पृ० ८

मानसिंह का था प्रस्थान
सत्य-अहिंसा का बलिदान।
कितना दुःखद विदारक ध्यान
शत शत पीड़ा का उत्थान।[1]

रानी पद्मिनी और रत्नसिंह दोनों के सौन्दर्य की प्रशंसा कवि ने उत्प्रेक्षा द्वारा की ---

जैसी रूपवती रानी थी
वैसा ही था पति पाया
मानो वासव-साथ शची का
रूप धरातल पर आया।[2]

राजपूत वीरों के शत्रु समूह में प्रवेश करने का दृश्य अलंकार द्वारा चित्रित हुआ है। जिस प्रकार झपट कर वीर शत्रुदल में घुसे उसका बिम्बविधान उपमा द्वारा निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है-

भैरव वन में दावानल-सम
खग दल में बर्बर बाज-सदृश
अरि-कठिन व्यूह में घुसे वीर
मृग-राजी में मृगराज-सदृश।[3]

महारानी करुणा ने हुमायूं को राखी भेजी है। राखी भेजने के उपरान्त आशा-निराशा के भाव चित्रण में कवि ने अलंकारों की सहायता ली है। महारानी करुणा की भाव विह्वल स्थिति के चित्रण में उत्प्रेक्षा का प्रयोग दर्शनीय है-

भाव - रंगों का था मिश्रण
हृदय-नभ में खिंचता सुर-चाप
किया मन ही मन करुण प्रलाप
कौन करुणा का था कारण।[4]

१- हल्दीघाटी, सर्ग छः, पृ० ८२
२- जौहर, चि०पक्षी, पृ० ६
३- जौहर, चिनगारी दूसरी, पृ०१६
४- चित्तौड़ की चिता, नवम सर्ग, पृ०७२

गोकुलचन्द्र शर्मा ने भारत भूमि की ऐतिहासिक गाथा का प्रतिपादन उत्प्रेक्षा और तुल्ययोगिता अलंकार द्वारा किया-

जहाँ वीर जयमल पुत्ता ने
जीवन दान दिया है
जननी जन्म भूमि के पद पर
अर्पण प्राण किया है
जो संग्रामसिंह से योद्धा
का प्रचंड प्रांगण है
बोल उठा जिसकी नस-नस में
प्राण प्राण में रण है ।[१]

यवन शत्रुओं से घिरे हुए बन्दा बैरागी की रक्षा की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मैथिलीशरण गुप्त ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया-

ज्यों राणा प्रताप को दी थी
मानसिंह झाला ने ओट
रानी धन्य रत्नों की गुलाब में
अपने प्रभु पर आई चोट ।[२]

'झांसी की रानी' में श्यामनारायण प्रसाद ने ऐतिहासिक पात्रों के भावोत्कर्ष तथा युद्धक्षेत्र में उनकी भावभंगिमा को पूर्ण रूप देने में अलंकार प्रयोग किये हैं- मन्नूबाई के वीरत्व तथा निर्भीक भाव को उत्कर्ष प्रदान करने के हेतु कवि ने मन्नू के मुख से भारत-भू के प्राचीन गौरव का उल्लेख अलंकार द्वारा कराया-

हे तात ! वही आकाश धरा
हम सब का भी है रूप वही ।
नभ में है अभी वही रवि-शशि
तारों का वेश अनूप वही ।।

१- प्रणवीर प्रताप, पृ० १६

२- गुरुकुल, पृ० २४२

उस वीर शिवा की जन्म भूमि
शिवनेरी का है दुर्ग वहीं।
है वहीं अभी हल्दी घाटी
चित्तौर दुर्ग है खड़ा वहीं।।[१]

गोरों की सेना से जूझती हुई रानी का चित्र सन्देह अलंकार द्वारा चित्रित किया-

अब दो गोरे रण मध्य दिखा
झुंकृत रानी फिर झुक पड़ी।
या क्षुधित सिंहनी की अपने
शिशु रक्षक पर ही टूट पड़ी।[२]

`तप्तगृह` में उत्प्रेक्षा के प्रयोग से कवि ने सुन्दर भाव ग्रहण कराये हैं। कोणार्क कथानक का नायक अशान्त मन अपने प्रकोष्ठ में बैठा है। उपमा अलंकार के द्वारा कवि ने उसके मन की अशान्ति का चित्र प्रस्तुत किया है-

वायु के थपेड़ों से
क्षुब्ध नील जल तल पर
खेलता है कन्दुक-सा
पूनम का चांद ज्यों
दोलित त्यों होता था
मुख फलक उसका[३]

आधुनिक युग में `बापू` के व्यक्तित्व का चित्रण अलंकारों के माध्यम से हुआ है। रामधारी सिंह `दिनकर`, सियाराम शरण गुप्त आदि अनेकानेक कवियों ने बापू के व्यक्तित्व का प्रतिपादन अलंकारों के द्वारा किया है। इस सम्बन्ध में

१- झांसी की रानी, दूसरी हुंकार, पृ० ८८
२- वही, २२ वीं हुंकार, पृ० ३२६
३- सर्ग द्वितीय, पृ० १०

सन्मय 'बुखारिया' ने 'मेरे बापू' में मालोपमा अलंकार प्रयुक्त किए हैं-

> राणा प्रताप के आग्रह तुम
> तुम शाहजहां के ताज म्याम
>
> + +

और भी-

> तुम देश के बलिदान बुद्ध औ
> महावीर के तप संयम
> पैगम्बर अमर मुहम्मद के
> खामोश नूर तुम निःसम्भ्रम ।[१]

इन उपर्युक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों का प्रयोग अलंकारों के निरूपण द्वारा भी हुआ है जिसके अन्तर्गत ऐतिहासिक चरित्रों के व्यक्तित्व तथा विभिन्न अवस्थाओं में भाव स्पष्टीकरण की दृष्टि ही प्रमुख है । साथ ही एक बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि परिस्थितियों की सम्पूर्णता एक बार तो पाठकों की दृष्टि के समक्ष साकार हो उठे । इस भाँति बिम्ब विधान तथा चारित्रिक उत्कर्षों के लिए कवियों ने ऐतिहासिक इतिवृत्तों में अलंकार-शैली का प्रयोग अत्यन्त कौशल और अन्तर्दृष्टि से किया है ।

१- मेरे बापू

तृतीय अध्याय

काव्य में ऐतिहासिक आख्यान

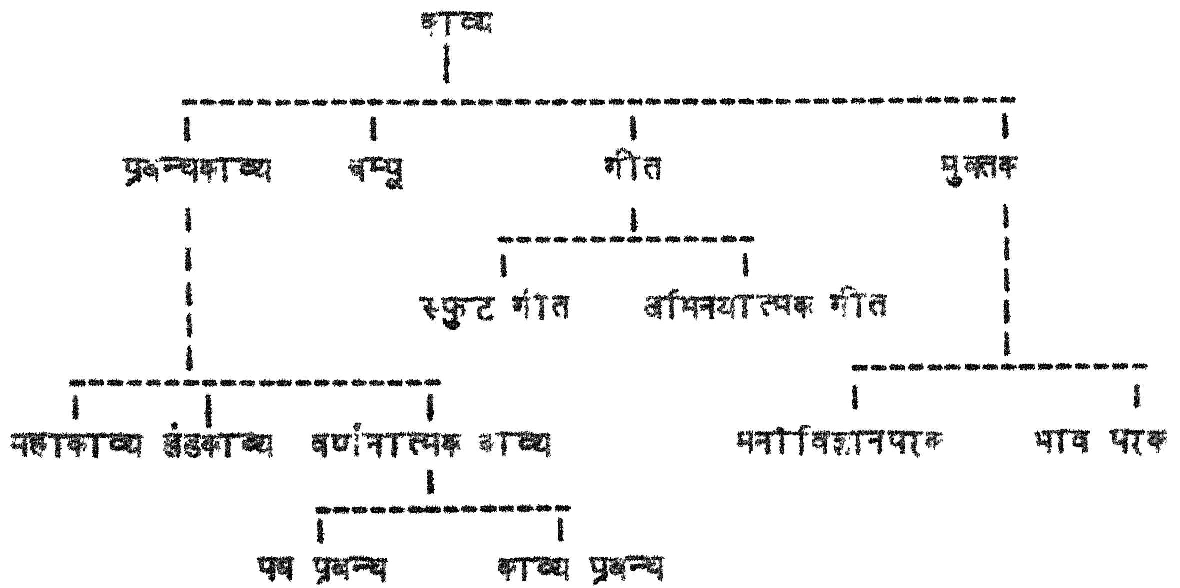
ऐतिहासिक काव्य तथा विभिन्न काव्यरूप :

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्ष जिस प्रकार भाव, भाषा, छन्द, विषय आदि की दृष्टि से हिन्दी काव्य में नवीन युग का सूत्रपात करते हैं उसी प्रकार काव्यरूपों की दृष्टि से भी यह विविधता तथा परिवर्तन का युग है । काव्य रूपों की दृष्टि से सन् १९०० ई० के पश्चात् के खड़ी बोली के काव्य में ऐतिहासिक काव्य का विशेष महत्त्व है । सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य-सामग्री को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग का अधिकांश आख्यानक काव्य ऐतिहासिक है तथा कवियों ने इतिहास के वर्णन के लिए विविध काव्य रूपों के प्रयोग किए हैं । भारतीय साहित्य में साधारणतया तीन प्रकार के रूप-काव्य-रूपों का प्रचार है -- (१) प्रबन्ध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य और खण्ड काव्य की गणना की गई है (२) गीतिकाव्य तथा (३) मुक्तक काव्य । आधुनिक खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में इन तीनों काव्य रूपों का अनेक शैलियों में विकास हुआ है । खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य का आरम्भ तथा विकास प्रबन्धात्मक काव्य-शैली से हुआ है । द्विवेदी युग की प्रारम्भिक रचनाओं को पद्य प्रबन्ध कहना अधिक उचित प्रतीत होता है । डा० उदयभानु सिंह ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रबन्धात्मक कविताओं को `पद्य प्रबन्ध` की संज्ञा दी है। तथा इसके दो भेद किए हैं - कथात्मक तथा वस्तु वर्णनात्मक । `सुत पंचाशिका` `द्रौपदी-वचन-बाणावली` `जम्बुकी न्याय` `टेसू की टांग` आदि कविताओं को कथात्मक पद्य प्रबन्ध के अन्तर्गत रखा है[१]। महावीर प्रसाद द्विवेदी की ये कविताएं छोटे-छोटे पौराणिक आख्यानों को लेकर निर्मित की गई हैं । प्रारम्भिक ऐतिहासिक काव्य में भी ऐसी अनेक प्रबन्धात्मक कविताएं प्राप्त होती हैं जो छोटी छोटे ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर लिखी गई । ये कविताएं खण्ड काव्य का संक्षिप्त रूप हैं या यों कह सकते हैं कि `गद्य की लघु कहानी की भांति किसी नन्हें-सी (ऐतिहासिक) यथार्थ का उपस्थापन किया गया है[२]। सम्भवत: द्विवेदी जी

१- डा० उदयभानु सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग , पृ० १०५

२- वही वही , पृ० १०५

की शैली के अनुकरण पर ही युग के अनेक कवियों ने इतिहास से प्रेरणा ग्रहण करके, छोटे-छोटे ऐतिहासिक आख्यानों को पद्यबद्ध किया । इन ऐतिहासिक आख्यानों को पद्य प्रबन्ध कहा जा सकता है । इन रचनाओं में इतिवृत्तात्मक वर्णन शैली का आधिक्य है । शैली की दृष्टि से आलोच्यकाल में निम्नलिखित रूपों में ऐतिहासिक काव्य की रचना हुई -



इन समस्त रूपों को स्वीकार करते हुए भी कालक्रम की दृष्टि से शैलियों के रूप कवियों ने इच्छानुसार ही ग्रहण किए हैं । अतः काव्य रचनाकाल की दृष्टि से जो शैलियां क्रम से हमें इस काल के साहित्य के इतिहास में प्राप्त होती हैं, उनका वर्णन उसी क्रम से नीचे प्रस्तुत करना समीचीन होगा:-

(क) प्रबन्धकाव्य

(१) पद्य-प्रबन्ध(वर्णनात्मक)

'सरस्वती' में प्रकाशित प्रथम ऐतिहासिक रचना पद्य प्रबन्ध है । आलोच्यकाल के प्रथम पच्चीस-तीस वर्षों में ऐतिहासिक प्रबन्धों की बाढ़-सी आ गई प्रतीत होती है । आलोच्यकाल में प्रारम्भ में इस शैली के विकास का कारण बहुत कुछ अंशों में रीतिकालीन मुक्तक-काव्य की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है । रीति-काल विशेषतः मुक्तककाव्य का युग था । राज दरबारों के लिए इस

शैली में काव्य रचनाएं होती थीं । इस काल में यद्यपि प्रबन्ध काव्य भी लिखे गये हैं तथापि मुक्तकों के विशाल समूह में इनका स्वरूप गौण हो गया । दूसरे, भाषा शैली की नवीनता के कारण भी सम्भवतः कविगण छोटे छोटे सरल एवं साधारण ऐतिहासिक आख्यानों की ओर झुके ।[१] ऐतिहासिक पद्य प्रबन्धों में वर्णनात्मकता की प्रधानता है । इतिवृत्तात्मकशैली की प्रधानता होने के कारण यद्यपि इन रचनाओं में काव्य सौन्दर्य का अभाव है तथापि ऐतिहासिक आख्यान होने के कारण इनमें ओज एवं प्रवाह का अत्यन्त सुन्दर निर्वाह हुआ है । अधिकांश रचनाओं में ऐतिहासिक पात्रों के वीरत्व का वर्णन आकर्षक है ।अक्टूबर सन् १६०७ की 'सरस्वती' में श्री कामताप्रसाद गुरु की 'शिवाजी' नामककविता प्रथम ऐतिहासिक पद्य-प्रबन्ध है । कवि ने शिवाजी के गुणों का वर्णन करते हुए उनके गौरव का गुणगान किया है । उनका जीवन वस्तुतः वीरत्व का जीवन था-

जीती जाती हुई जिन्होंने भारत बाजी
निज बल से मल मेट विधर्मी मुगल कुराजी
जिनके आगे ठहर सके जंगी न जहाजी
वह मैं वर्णी प्रसिद्ध छत्रपति भूप शिवाजी ।

गौरव गान करते हुए अन्त में वीर-पूजा-भाव के व्यक्तिकरण के साथ कविता की समाप्ति हो जाती है -

---

१- द्विवेदी युग में पद्य प्रबन्धों की अपेक्षाकृत अधिकता का प्रधान कारण उन युगों की हलचल और खड़ी बोली की अप्रौढ़ता ही है । मुक्तकों की काव्य माधुरी लाने के लिए अपरिपक्व खड़ी बोली की गागर में सागर भरना असम्भव था खण्ड काव्य या महाकाव्य लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश की आवश्यकता थी । बहुधंधी कवि इन परिस्थितियों के ऊपर न उठ सके ।

- डा० उदयभानु सिंह, महावीर प्रसाद और उनका युग ,
पृ० १०५

उचित यही है करें वीर पूजा मिल हम सब
यही धर्म है इसका यही है सच्चा मतलब
भारत पर अति कठिन विपद आती है जब जब
ऐसा ही अवतार शम्भु लेते हैं तब तब

इसके दो वर्ष उपरान्त मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'नकली किला' सरस्वती के अंकों में प्रकाशित हुई। एक वीर हाड़ासरदार के जननी जन्म भूमि के प्रति प्रेम तथा बलिदान के सन्दर्भ में लिखी गई इस कविता में भाषा की सरलता भी द्रष्टव्य है :----

दुर्ग द्वारा स्थित पुरुष जो धीरता गम्भीर है
वीर हाड़ा वंश का वह कुम्भ नामक वीर है
श्रवण कर उसका चरित मन में प्रमोद बढ़ाइए ।
पूर्वजों के पुण्य भावों की बड़ाई गाइए ।[1]

इसके दो वर्ष उपरान्त लोचन प्रसाद पाण्डेय कृत 'सम्राट स्वागत' प्रकाश में आई। गुण वर्णन में राजभक्ति की भावना उल्लेखनीय है। 'भारत-प्रभा-पुंज-हृदयेश' तथा भू-मण्डल के पंचमांश के अधिपति के प्रति कवि का हृदय मानो स्वागत से भर उठा है --

धन्य धन्य यह अवसर शुभ-मय धन्य भाग्य भारत का आज
धन्य आज का दिवस धन्य है आर्य भूमि का प्रजा समाज
आज आठ सौ वर्ष बाद है हुआ उपस्थित यह शुभ-योग
मिला हमें ईश्वर स्वरूप निज भूपति दर्शन का संयोग ।[2]

इसके पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त ने सन् १९१२-१३ में इतिहास को आधार बना कर अनेक पत्र पद्यबद्ध किए जो ऐतिहासिक महापुरुषों द्वारा अपने राज्यकाल की विशेष

१- सरस्वती, दिसम्बर १९०९

२- वही वही १९११

घटनाओं तथा परिस्थितियों को लेकर लिखे गए हैं । `महाराणा राजसिंह का पत्र औरंगजेब के नाम`[1] `महाराजा पृथ्वीराज का पत्र महाराणा प्रताप के नाम`[2] `औरंगजेब का पत्र पुत्र के नाम`[3] `महाराणा प्रताप सिंह का पत्र पृथ्वीराज के नाम`[4] आदि पत्रों की रचनाएं कीं । यह सत्य है कि मुगलों की शक्ति का लोहा अनेक राजपूत सरदार मान चुके थे किन्तु उनमें आत्म सम्मान की भावना का लोप नहीं हुआ था `महाराणा राजसिंह के पत्र` में महाराणा राजसिंह के निर्भीक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति दर्शनीय है । राणा राजसिंह की निर्भीकता निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत हुई है --

हां जी ऐसे क्षुण-चर से आप जोवे न हाथ
तो हो देवें प्रणाम उनसे हैं न आंबेर नाथ ।
मांगे पावे मुझ प्रार्थी से स्वस्थ भी एक बार,
शूरों को है समुचित नहीं मक्खियों का शिकार ।[5]

१- जनवरी १९१२ `सरस्वती`
यह ऐतिहासिक पत्र है । जजिया नाम का कर लगाने के विरुद्ध चित्तौड़ के महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब को लिखा था । कुछ इतिहासकार शिवाजी द्वारा लिखा गया मानते हैं किन्तु प्रामाणिकता राजसिंह द्वारा लिखा गया ही सिद्ध करती है । --विस्तृत विवरण के लिए- श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,
उदयपुर राज्य का इतिहास, खंड तृतीय , पृ० ४६३

२- मार्च १९१२ `सरस्वती`

३- अप्रैल १९१२ `सरस्वती`

४- महाराज पृथ्वीभट्ट तथा महाराणा प्रताप सिंह द्वारा लिखे हुए पत्रों का उल्लेख श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जी ने अपने इतिहास ग्रन्थ में किया है किन्तु पत्र किसी अन्य प्रसंग में लिखे गए हैं ऐसी किंवदन्ती है ।
-उदयपुर राज्य का इतिहास- खंड तृतीय,पृ० ७६३-६४

५- सरस्वती ,१९१२ जनवरी

१९१२ में प्रकाशित कामताप्रसाद गुरु की 'चांद बीबी' भी वर्णन की दृष्टि से एक सुन्दर सशक्त रचना है । अहमद नगर के निज़ाम की विधवा बहिन चांद बीबी की वीरता का वर्णन ओजपूर्ण शैली में हुआ है-

अबला ही डर नहीं चांद बीबी ने माना,
बाल-नृप के हित प्राण देना भी ठाना ।
सरदारों से कहा, ऐसा आफत का त्यागो,
सोचो निज कर्तव्य देश रक्षा हित जागो ।

+ +

तब कर में तलवार लिये बिजली-सी नंगी,
पहने पूरा फिलम साज सब राजे ढंगी ।
घूंघट खोले घटा-रूप सुलताना धायी
गोलों की बरसात बीच में से मचवायी ।

+ +

सब प्रकार से सफलकाम अपने ही बल में
कर ली उसने सन्धि चांदबीबी से पल में।
अकबर की यह हार बुढ़ापे में ज्यों खटकी
दक्षिण की वह बड़ा बाट भूला मरघट की

+ +

डाल दिया बुरहानपुर में उसने घेरा,
फिर से अहमदनगर दुर्ग सेना ने घेरा ।
इस अवसर पर भी न बाल निज बुके डोली
मुगलों की भी बाट न हत्यारों ने जोही ।

+ +

धन के बदले महावीर वध करने वाले
बच्चों के भी प्राण सहज में हरने वाले।
कई दुष्ट जा घुसे घातकी राजमहल में
धोखे में ले लिये प्राण अबला के पल में ।[1]

१- सरस्वती, अक्टूबर १९१२

यह सम्पूर्ण घटना ऐतिहासिक है ।[१]

महाराणा प्रताप के अनुज शक्तिसिंह के द्वारा बाल्यकाल में प्रदर्शित एक वीरत्व पूर्ण कृत्य की घटना को आधार बना कर पं० रामदहिन मिश्र ने 'एक राजपूती झलक' नामक कविता की रचना की । शक्तिसिंह के साहस का वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है -

जो अब से तलवार वीर कर में जावेगी
नर पुर्णों का मांस अस्थि शुभ यह खावेगी
इस प्रकार क्या ठीक परीक्षा इसकी होगी
और आपकी उचित कभी मर्यादा होगी
धार परीक्षा करनी हो तो यों करिये फिर
राजपूत की नाम कीर्ति जिससे हो सुस्थिर
यों कह उसने छीन लिया वह अंग मनोहर
हां हां कह सब लगे कहने रोकने उसे उठा कर
किन्तु रुका वह नहीं किसी के कुछ भी रोके
रुका नहीं वह दृढ़ प्रतिज्ञ बन उद्यत होके
उठा तुरन्त तलवार काट डाली निज उंगली
जिससे धर धर उष्ण रक्त धारा बह निकली
किन्तु न इससे हुआ चित्त उसका कुछ विचलित
और व्यथा के चिह्न दिखाई पड़े न किंचित् ।[२]

१- सारे उत्तर भारत और हिन्दूकुश के आगे तक के अफगान प्रदेश का आधिपत्य प्राप्त करके अकबर ने दक्षिण की ओर दृष्टिपात किया। अहमदनगर के राज्य में झगड़ा होने से उसे वहां हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया । मुगलों ने अहमद नगर पर घेरा डाला परन्तु उन्हें बुरहान निजाम शाह की विधवा बहिन सुविख्यात चांदबीबी के नेतृत्व में एक बड़े प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा । चांदबीबी ने स्वयं हाथ में तलवार लेकर दुर्ग की रक्षा करने में अलौकिक वीरता दिखाई और असाधारण सैन्य-संचालन और प्रबंध पटुता का परिचय दिया।उसने मुगलों के दांत खट्टे कर दिये किन्तु विश्वास-घातकों ने उसकी हत्या कर डाली।"-डा०ईश्वरीप्रसाद,भारत का इतिहास, भाग २,पृ०७३-७४

२- सरस्वती,जुलाई १९१४

ऐतिहासिक पत्रों में दो पत्र द्वारका प्रसाद गुप्त `रसिकेन्द्र` द्वारा रचे गए प्रभावती का पत्र महाराणा राजसिंह के नाम, राजसिंह का पत्र प्रभावती के नाम[1] जो आगे चल कर कवि द्वारा रचित `आत्मार्पण` खंडकाव्य की प्रेरणा बने । प्रथम पत्र, तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगजेब की रूपलिप्सा तथा कठोर दमन नीति से पीड़ित होकर रूपनगर की राजकुमारी ने सतीत्व रक्षार्थ चित्तौड़ के तत्कालीन राणा राजसिंह को लिखा था । औरंगजेब ने राजकुमारी के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे `हरम` में मांग भिजवाया था किन्तु उसकी यह आकांक्षा पूरी न हुई । कवि ने सरल तथा सुबोध भाषा में राजकुमारी प्रभावती के हृदय व्याकुलता का करुण चित्रण किया है --

यदि न मेरी प्रार्थना स्वीकार हो-
करुण रस का हृदय में संचार हो
तो कृपा कर काम इतना कीजियो
हां-नहीं का शीघ्र उत्तर दीजियो ।[2]

इन रचनाओं के दो ही वर्ष पश्चात् सन् १६२० में सियारामशरण गुप्त ने `अविश्वास` नामक रचना की । चित्तौड़ के राणा राजसिंह के समय के एक राजपूत सरदार चूड़ावन्त की पत्नी हाड़ी रानी द्वारा, मोहासक्त पति को युद्ध में भेजने के प्रेरणास्वरूप सिर काट कर देने की रोमांचकारी घटना इस कविता की आधारभूमि है[3] । एक राजपूत नारी के गौरव वर्णन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण रचना है । सरदार चूड़ावन्त औरंगजेब से छिड़े युद्ध का कारण अपनी नवविवाहिता वधू से बतला रहे हैं--उस प्रसंग का वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है---

---

१- प्रभावती द्वारा लिखे गये पत्र की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में खंडकाव्यों के प्रसंग में विचार किया गया है---
महाराणा राजसिंह का पत्र कविकल्पना प्रसूत है। `आत्मार्पण` की भूमिका से। (लेखक)

२- सरस्वती, सितम्बर १६१८

३- औरंगजेब के विरुद्ध राणा राजसिंह रूपनगर के राजा की पुत्री से विवाह करने जिस समय गया था एक चूड़ावन्त सरदार ने औरंगजेब की फौज को रूपनगर की ओर बढ़ने से रोक लिया था तथा युद्ध किया था । गौरीशंकर

--- शेष आगे --

चूड़ावत की कहा प्रिया ने पास खींच कर-
नित्य नया अन्याय कर रहा है दिल्लीश्वर।
चारुमती है रूप नगर की राजकुमारी,
है विवाहना उसे चाहता अत्याचारी ।।

चारुमती की किन्तु नहीं इच्छा है जो है
हो उसका न विवाह किसी विध उस पापी से,
राना जी ने पत्र कुमारी का पाया है,
उसने उनको स्वीय-त्राण हित बुलवाया है ।।

दिल्लीश्वर भी उसे व्याहने को आवेगा,
उससे मेरा युद्ध बीच में छिड़ जावेगा ।
करके व्याह न लौट आयंगे राना जब तक
रोकूंगा इस भांति शत्रुओं को मैं तब तक ।।

परन्तु सरदार चूड़ावन्त के साहस को नव विवाहिता पत्नी का प्रेम शिथिल कर रहा है -

तुम सुरम्य हो और अभी नूतन जीवन है,
विविध-वासना पूर्ण अतृप्त तुम्हारा मन है ।
होगा कैसे सह्य तुम्हें वह विरह हमारा
कर देगा वह शोक ! क्या हाल तुम्हारा ।[1]

सम्पूर्ण कविता के २२ छन्दों में वीर राजपूत के शिथिल मन से युद्ध में जाने तथा हाड़ा रानी के सिर काट कर देने तक की सम्पूर्ण कथा का वर्णन हुआ है ।नव विवाहिता वधु द्वारा मोहासक्त राजपूत पति के उत्साह के लिए इस रोमांचकारी बलिदान का कवि ने प्रभावपूर्ण वर्णन किया है ।

शेष- हीराचन्द ओझा के राजपूताना के इतिहास में इस प्रकार का कोई प्रसंग उपलब्ध नहीं होता । ~~कवि ने टॉड राजस्थान से यह प्रसंग लिया है।~~

१- सरस्वती, अप्रैल,१९२०

इसी वर्ष कवि अरनाल्ड कृत `लाइट आफ एशिया` से बुद्ध जन्म की घटना का अनुवाद पारसनाथ सिंह ने `बुद्ध जन्म` शीर्षक रचना में किया । भावी सिद्धार्थ की माता माया के प्रासाद भवन के उस पलाश तरुवर का वर्णन, जिसके नीचे भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था,[१] निम्न पंक्तियों में हुआ है --

माया के प्रासाद भवन में शोभा ध्वजा समान
था पलाश का तरुवर कोई विस्तृत और महान
चिकने पत्रों और सुवासित पुष्पों से आच्छन्न
शीर्ष भाग जिसका शोभा से था अतिशय सम्पन्न ।[२]

इन कविताओं के अतिरिक्त रामचरित उपाध्याय द्वारा `महावीर स्वामी` तथा `श्रीहीरविजय सूरीश्वर` रचनाएं हुईं।[३] सन् १९२७ तथा १९२९ में आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव की क्रमशः `शाहजहां के प्रति` तथा `लाजपत राय` रचनाएं सरस्वती में प्रकाशित हुईं । दोनों रचनाएं गुणवर्णन प्रधान हैं ।

अगस्त सन् १९२९ में `विशाल भारत` में बुंदेलखंड की एक ऐतिहासिक घटना को आधार बना कर श्री इकबाल बहादुर श्रीवास्तव की `आत्म बलिदान` रचना प्रकाशित हुई । कुल-अभिमान तथा आत्मगौरव के लिए एक दोषारोपण के निवारण हेतु बलिदान का यह प्रसंग निश्चय ही करुणापूर्ण है । इसी प्रकार नवम्बर १९३२ के सरस्वती अंक में श्री रामचरित उपाध्याय द्वारा `रचित `प्रताप प्रतिज्ञा` देखने में आती है । जीवनपर्यन्त कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करके भी स्वाधीनता की रक्षा करने की `प्रताप की प्रतिज्ञा` के वर्णन में महाराणा के स्वाधीनता प्रेम की अभिव्यक्ति इस रचना में हुई है । सात वर्ष उपरान्त सरस्वती सन् १९३९ में सोहनलाल द्विवेदी द्वारा रचित `त्रिपुरी कांग्रेस का जुलूस` द्विवेदीयुगीन वर्णन प्रधान रचना शैली परम्परा की एक सुन्दर कड़ी है ।

१- जैनागमों की कथा में बुद्ध जन्म के विषय में यह कथा प्रचलित है।
२-सरस्वती, अक्टूबर, १९२०

३- क्रमशः ,सरस्वती मई १९२५,सरस्वती, सितम्बर १९२७

था प्रात निकलने को जुलूस
जुड़ रात रात भर नारी नर
बैठे उत्सुक पथ में आकर
कब रथ निकले सज धज धारी ।
वह ग्राम ग्राम से नगर नगर से
वृद्ध बाल आए अगणित,
करने को लोचन सफल आज,
भर देश प्रेम से पावन चित

+ +

था तरल तिरंगा लहर रहा
रथ के मस्तक को किये तुंग
अभिनन्दन में दिखलाते थे
फुकते-से सब सतपुड़ा-शृंग
सतपुड़ा के शृंग जिनमें बैठे थे
अगणित उत्सुक नर नारी
चित्रित कर दी विधि ने जैसा
उनमें विचित्र जनता सारी ।[१]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि आलोच्यकाल में द्विवेदी युग के पश्चात् भी सरल सुबोध भाषा शैली में ऐतिहासिक आख्यान वर्णन करने की परम्परा प्रचलित रही । इन पद्य प्रबन्धों का खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में विशेष महत्व है । भाषा तथा विषय की दृष्टि से खड़ी बोली का प्रारम्भिक युग संघर्ष का युग है ऐसे समय में इन ऐतिहासिक रचनाओं ने धाराप्रवाह वर्णन द्वारा `काव्य रस`की पूर्ति`कथानक रस` प्रदान करके की । सशक्त एवं ओजपूर्ण वर्णन तथा इतिहास के अनेक वीरतापूर्ण चरित्रों के चारित्रिक गुण सौन्दर्य ,गौरव तथा आदर्श

१- सरस्वती, जुलाई १६३६

का उद्घाटन भी इन रचनाओं की विशेषता है । डा० विनयमोहन शर्मा ने आदर्शवाद को द्विवेदी युग की काव्य आत्मा माना है[१]। इस दृष्टि से ऐतिहासिक पद्य प्रबन्धों के द्वारा अपनी जन्म भूमि के प्रति राजपूत वीरों के प्रेम तथा वीर धर्म की रक्षा के हेतु बलिदान के जिन आदर्शों की अभिव्यक्ति होती है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है । भाषा की दृष्टि से भी एक विकास इनमें लक्षित होता है । प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा के साथ-साथ बाद की लगभग सभी रचनाओं में लाक्षणिकता तथा अर्थव्यंजना भी दृष्टिगोचर होती है । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भले ही ये ऐतिहासिक रचनाएं उच्च कोटि के काव्य में स्थान न प्राप्त कर सकें परन्तु खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य के विकास की दृष्टि से इनकी अवहेलना नहीं की जा सकती ।

१- साहित्यावलोकन, आधुनिक हिन्दी कविता के वाद , पृ० ६

) खंडकाव्य :

किसी महत्वपूर्ण घटना अथवा चरित्र की विशिष्टता प्रदर्शित करने के लिए खंडकाव्य की विधा अपनाई जाती है । खंडकाव्य में जीवन की पूर्णता तथा उसके वैविध्य की अपेक्षा, जीवन की किसी एक महत्वपूर्ण घटना का चित्रण होता है। इसमें प्रबन्ध काव्य की भांति कथावस्तु में तारतम्यता तो अवश्य रहती है किन्तु उसतारतम्य में अनेकरूपता चित्रित नहीं की जाती । जीवन की एकरूपता के चित्रण द्वारा किसी चरित्र अथवा घटना की महत्ता का प्रतिपादन खंडकाव्य की विशेषता है[१] । खंडकाव्य कहने से जिस खंडात्मकता का बोध होता है कथावस्तु में उसका तात्पर्य यही है कि किसी भवन का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत न करके उसके किसी कक्ष विशेष से पूर्ण सौन्दर्य का चित्रण करना । इसी कारण खंडकाव्य में चरित्रपरक अथवा घटना परक दृष्टिकोण की ही प्रमुखता रहती है ।संस्कृत साहित्य से लेकर आधुनिक युग के खड़ी बोली काव्य तक खंड काव्यों की अटूट शृंखला प्राप्त होती है । कविकुल-शिरोमणि कालिदास का `मेघदूत` प्राचीन संस्कृत साहित्य में खंडकाव्य का सर्वोत्तम उदाहरण है । सन् १६०६ से लेकर १६६० तक इतिहास के अनेक प्राचीन एवं आधुनिक राष्ट्र वीर विविध खंडकाव्यों का विषय बने । प्रस्तुत सन्दर्भ में इतिहास को मूलाधार मान कर हिन्दी के कवियों द्वारा रचित कुछ खण्ड काव्यों की विवेचना की जायगी।

रंग में भंग (१६०६)

आधुनिक युग में खड़ी बोली के ऐतिहासिक खंड काव्यों की परम्परा में मैथिली शरण गुप्त द्वारा रचित `रंग में भंग` प्रथम ऐतिहासिक खंडकाव्य है । बूंदी के इतिहास यह काव्य-कथा वि० सम्वत् १३६३ की है ।`बूंदी` के राव दामा की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र वरसिंह को बूंदी की गद्दी प्राप्त हुई तथा छोटे पुत्र लालसिंह को

१- खंड काव्य में प्रबन्ध काव्य का-सा तारतम्य तो रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है । उसमें कहानी और एकांकी की भांति घटना के लिए सामग्री जुटाई जाती है ।

--बाबू गुलाबराय :काव्य के रूप,पृ० १११

गणोली की जागीर मिली । लालसिंह की पुत्री का विवाह चित्तौड़ के महाराणा हम्मीरदेव के कुंवर खेतल (क्षेत्रसिंह) से होना निश्चित हुआ । चित्तौड़ में प्राप्त एक पाषाण-प्रतिमा के एक प्रसंग को लेकर चित्तौड़ तथा बूंदी के बाराती राजपूतों के मध्य झगड़ा हो गया । झगड़ा युद्ध में परिवर्तित हो गया । दोनों ओर के अनेक राजपूत मारे गए तथा कुंवर खेतल भी लड़ते हुए मारे गये । चित्तौड़ में जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो हम्मीरदेव की मृत्यु हो चुकी थी । खेतल की मृत्यु का समाचार प्राप्त होने पर खेतल के पुत्र महाराणा लाखा गद्दी पर बैठे और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बूंदी को विजित करके ही वह अन्न जल ग्रहण करेंगे। सरदारों के समझाने पर इस कठिन प्रतिज्ञा का निदान मिट्टी की नकली बूंदी को विजित करने में खोजा गया । परन्तु एक हाड़ा वीर कुम्भ नकलीबूंदी के रक्षार्थ लड़ते हुए बलिदान हो गया । इस प्रकार इस खंड काव्य में विवाहोत्सव पर चित्तौड़ तथा बूंदी के राजपूतों का परस्पर संघर्ष तथा बूंदी के नकली किले की रक्षा सम्बन्धी ये दो घटनाएं मुख्य हैं । इन दोनों घटनाओं का आधार ग्रन्थ बूंदी का इतिहास `वंश प्रकाश` है[१] । परन्तु आधुनिक खोजों के आधार पर ये दोनों घटनाएं अनैतिहासिक

१- कर्नल टाड के `राजस्थान` छपने के पीछे बूंदी के प्रसिद्ध चारण कवि मिश्रण सूर्यमल्ल ने `वंश प्रकाश` नामक बहुत विस्तृत पद्यात्मक ग्रन्थ लिखा, जिसमें दिये हुए चौहानों तथा हाड़ों के इतिहास का गद्यात्मक सारांश बूंदी के पंडित गंगा सहाय ने `वंश प्रकाश` नाम से प्रसिद्ध किया है, वही बूंदी का इतिहास माना जाता है । सूर्यमल्ल एक अच्छा कवि था, परन्तु इतिहासवेत्ता न होने से उसने उक्त पुस्तक में प्राचीन इतिहास भाटों की ख्यातों से ही लिया है। उसमें सैकड़ों कृत्रिम पीढ़ियां भर दी हैं और विक्रम संवत् १५८४ तक के सब सम्वत् तथा ऐतिहासिक घटनाएं बहुधा कृत्रिम लिखी हैं । उस समय तक का इतिहास लिखने में विशेष शोध की हो ऐसा पाया नहीं जाता । कवि का लक्ष्य कविता की ओर रहा प्राचीन इतिहास की विशुद्धि की ओर नहीं ।`

-उदयपुर राज्य का इतिहास-प्रथम जिल्द, सं०प्र० वि० सम्वत् १९८५

पृ० २४६

सिद्ध की गई है कि प्रथम घटना के द्वारा राजपूतों का आन-बान में मान-बेलु पर मिटने की संकुचित प्रवृत्ति का वर्णन हुआ है तथा नक़ली बूंदी है जिसे की घटना द्वारा राजपूतों के अपनी जन्म भूमि के प्रति प्रेम का चित्रण हुआ है, जो उनकी जातीय विशेषता थी।[२]

मौर्य विजय (१९१४)

'रंग में भंग' के अनन्तर इस परम्परा में सियारामशरण गुप्त रचित 'मौर्य विजय' प्राप्त होता है। इस खंड काव्य में कवि ने प्रथम मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की

१- यह प्रकार का यह सारा कथन कल्पित ही है। यदि कुंवर लोत्रसिंह अपने पिता की विद्यमानता में मारा गया होता तो उसका नाम मेवाड़ के राजाओं की नामावली में न रहता। उसने राणा होने पर कई लड़ाइयां लड़ीं और अट्ठारह वर्ष राज्य किया था। लोत्र सिंह का विवाह लालसिंह की पुत्री से होना और उस समय तक महाराणा हम्मीर सिंह का जीवित रहना भी सर्वथा कपोल कल्पना है, क्योंकि महाराणा हम्मीर सिंह का समकालीन बूंदी का राव देवीसिंह था, जिसके पांचवें वंशधर लालसिंह की पुत्री का विवाह उक्त महाराणा की जीवित अवस्था में हुआ हो यह किसी प्रकार संभव नहीं। लोत्रसिंह का विवाह राव देवी सिंह के कुंवर हरराज की पुत्री लालकुंवर से होना ऊपर बतलाया जा चुका है। यह सारी कथा भाटों की गढ़न्त है और उस पर विश्वास कर पिछले इतिहास लेखकों ने अपनी पुस्तकों में उसे स्थान दिया है परन्तु जांच की कसौटी पर वह निर्मूल सिद्ध होती है।" -- उदयपुर का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ० २५७-५८

२- है न कुछ चित्तौर यह, बूंदी इसे अब मानिये
मातृ-भूमि-पवित्र मेरी पूजनीया जानिये।
कौन मेरे देखते फिर नष्ट कर सकता इसे ?
मृत्यु माता की कभी मैं सह्य हो सकती किसे ?
-रंग में भंग, पृ० ३४

गुणगान के साथ ही ग्रीक सम्राट सिल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त मौर्य के मध्य हुए ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन किया है । मौर्य सम्राट् विजयी हुए तथा युद्ध की समाप्ति एक सन्धि द्वारा हुई, जिसके माध्यम से दोनों सम्राटों में एक प्रकार सम्बन्ध स्थापित हुआ । सिल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से किया । मौर्य सम्राट् की विजय तथा सिल्यूकस की पुत्री एथेना का सम्राट् से विवाह, ये दो घटनाएं प्रमुख हैं तथा दोनों ही इतिहास-सम्मत हैं[1]। सात सर्गों में विभाजित इस खंडकाव्य में कवि ने कल्पना एवं तथ्य की आकर्षक संयोजना की है । सैनिकों के गीत में देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखर है । सम्राट् चन्द्रगुप्त भारत गौरव के प्रतिनिधि हैं । सम्राट् चन्द्रगुप्त के शौर्य एवं गुण सम्पन्नता से ग्रीक सम्राट्की पुत्री एथेना को प्रभावित दिखा कर तथा सन्धि से पूर्व दोनों के परस्पर आकर्षण के संकेत द्वारा कवि ने माधुर्य भाव की मनोरम धारा प्रवाहित की है । सरल तथा शुद्ध खड़ी बोली में लिखा हुआ देश प्रेम से पूर्ण यह एक सुन्दर खंडकाव्य है[2]।

---

1. "The clash of arms with the Yavana king of Western Asia was followed by the establishment of an intimate relationship of a personal character between the ruling houses of Pataliputra and Babylon-seleucia. A lady of the Seleucid family probably graced the Royal Place of the king of Parasi".

Age of Nandas and Mauryas : Page - 457.

(Edited by K.A. Nilkanta Sastri)

२- प्रस्तुत पद्य पुस्तक एक प्राचीन ऐतिहासिक घटना के ऊपर लिखी गई है । और इसके लिखने का कारण लेखक का अपने देश के प्रति प्रेम और आदर-भाव प्रदर्शितकरना है । --- मैथिलीशरण गुप्त, मौर्य विजय, भूमिका से ।

प्रणवीर प्रताप (१९१४)

गोकुल चन्द्र शर्मा रचित 'प्रणवीर प्रताप' में राजस्थान के इतिहास की गौरवपूर्ण झांकी अंकित की गई है। मातृभूमि की रक्षार्थ स्वतंत्रता के अग्निपथ पर चलने वाले महाराणा प्रताप की गाथा सर्वप्रसिद्ध है। गोकुल चन्द्र शर्मा ने 'प्रणवीर प्रताप' में इस राष्ट्र वीर के जीवन का वह करुण प्रसंग चित्रित किया है जिसमें परिवार सहित जंगल में रह कर पर्वतीय प्रदेशों की कठिनाइयां सहने, घास की रोटी बना कर बच्चों को खिलाने से पूर्व बिलाव द्वारा छीन ले जाने,[1] बच्चों की क्षुधातुर पुकार से विचलित होकर अकबर को सन्धि पत्र लिखने[2], अन्त में पृथ्वीराज के पत्र द्वारा प्राणोत्तेजक प्रेरणा प्राप्त करके पुन: मातृभूमि की रक्षा हेतु कटिबद्ध होने तथा भामाशाह द्वारा अर्पित धन से सैन्य एकत्रित करके पुन: मुगल सम्राट से निरन्तर युद्ध में संलग्न रहने की[3] अनेक शौर्यपूर्ण घटनाओं का

१- सो भी बिड़ालाक्रमण से उस बाल-कर से गत हुआ
हा ! हा ! कलप कलपकर हुआ मां। तुरन्त ही भक्षित हुआ । (छन्द ९८,पृ०४६)
तृण,बीज,वल्कल पीस कर जो भोज्य कुछ प्रस्तुत किया,
शिशु ने उसे ही हाथ फैला कर लिया था ले लिया । (छन्द ९७,पृ०४६)

२- अति खिन्न हो लिख प्रार्थना दी भेज अकबर शाह को,
ध्रुव धीर वीर प्रताप रोक सका न दुःख-प्रवाह को ।छन्द १०२,पृ० ५०

३- सर्वस्व दे कर देह यह भी आप की सेवा करे,
आजन्म तो भी उऋण मैं प्रभु से न हो सकता अरे
प्रभु का दिया ही द्रव्य मेरे पास है सो लीजिए
चित्तौड़ उद्धारार्थ चलिए, शत्रु का नाश कीजिए ।- छन्द १६२, पृ० ६५

और भी स्पष्ट निम्न पंक्तियों में हुआ है--
देकर न लेते सुजन फिर, यह नियम आता है चला,
हे मान्यवर ! मैं आपका धन ले सकूं कैसे भला ?

समावेश है । काव्य की पृष्ठभूमि में कवि ने प्राचीन भारत के गौरव की महानता मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त तथा अशोक के पराक्रमी चरित्रों का स्मरण, उत्तरोत्तर पतन की ओर उन्मुख भारत के यवनों द्वारा पदाक्रान्त किए जाने पर भारतीय नरेशों की राजनीतिक स्थिति, अकबर की कूटनीति तथा उसके चरित्र की दुर्बलता ,प्रताप प्रशंसा तथा चित्तौड़गढ़ की महिमा का वर्णन किया है ।

जहाँ देश के स्वाभिमान ने
ऊँची गर्दन कर के
उद्घोषित स्वातंत्र्य किया था
रिपु का मर्दन करके । (पृ० २१)

काव्य के अन्त के पृष्ठों में वीरधर्म की महत्ता तथा एक देश भक्त वीर के आदर्श का प्रतिपादन करते हुए कवि ने 'प्रताप' में इन सब गुणों को देखा है । काव्य का मूल मंत्र निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है--

'वह व्यर्थ ही जन्मा जगाया देश को जिसने नहीं,
जातीय जीवन की महक आई कभी जिसमें नहीं ।' (पृ० २५)

इस ऐतिहासिक महापुरुष का ओजस्वी जीवन स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में हमारे देश प्रेमियों के लिए प्रेरणा स्रोत बना । घास की रोटी, सन्धि पत्र, पृथ्वीराज का प्रताप सिंह को पत्र, हल्दी घाटी का युद्ध ,भामाशाह द्वारा सम्पत्ति दिये जाने , विजय प्राप्त करने के उपरान्त तथा अन्त में महाराणा प्रताप का देहावसान,- ये छः प्रसंग हैं । प्रमुख घटना हल्दीघाटी का युद्ध है । कर्नल टाड द्वारा रचित 'राजस्थान का इतिहास' में ये सभी घटनाएं ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार की गई हैं । महाराणा की विपन्नावस्था के फलस्वरूप घास की रोटी तथा सन्धि-पत्र लिखने की घटना को गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भाटों द्वारा मनगढ़न्त कल्पना माना है[1] । भामाशाह द्वारा अपार सम्पत्ति दिये जाने पर महाराणा प्रताप

१- यह सम्पूर्ण कथन अतिशयोक्ति पूर्ण कपोलकल्पना मात्र है, क्योंकि महाराणा को कभी ऐसी कोई विपत्ति सहनी नहीं पड़ी थी । उत्तर में कुंभलगढ़ से लगा कर दक्षिण में ऋषभ देव से परे तक अनुमान ६० मील लम्बा और पूर्व में देवारी से लगा कर पश्चिम में सिरोही की सीमा तक करीब १० मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश, जो एक के पीछे एक पर्वत श्रेणियों से भरा हुआ है, महाराणा के अधिकार में था।

ने सेना का पुनर्संगठन करके मुगल सेना का विरोध किया था । ओझा जी ने इसे भी किंवदन्ती माना है[६] । महाराणा के जीवन से सम्बन्धित ये सभी प्रसंग सामान्य पाठकों तथा काव्य निर्माताओं में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं तथा प्राय: इन्हीं के रूप में ही ग्रहण किए जाते हैं ।काव्यों में इनके द्वारा करुणा तथा भावात्मकता का संचार हुआ है तथा महाराणा प्रताप की जीवन गाथा अधिक संवेदनशील हो गयी है ।

टीका-

महाराणा तथा सरदारों के जनाने एवं बाल बच्चे आदि भी सुरक्षित प्रदेश में रहते थे । आवश्यकता पड़ने पर उनके लिए अन्न आदि लाने को गोड़वाड़,सिरोही,ईडर और मालवे की तरफ के मार्ग खुले हुए थे । उक्त पहाड़ी प्रदेश में फल तथा फलवाले वृक्षों की बहुतायत होने के अतिरिक्त बीच-बीच में कई जगह समान भूमि आ गयी है और वहां सैकड़ों गांव आबाद हैं। ऐसे ही वहां कई पहाड़ी किले तथा गढ़ भी बने हुए हैं और पहाड़ियों पर हजारों भील बसते हैं । वहां मक्का,चने,चावल आदि अन्न अधिकता से उत्पन्न होते हैं।धर्यावद के परे तक का सारा पहाड़ी प्रदेश भी उस(महाराणा) के अधिकार में था । शाही सेना ने केवल मेवाड़ का उत्तर पूर्वी प्रदेश ही घेरा हुआ था । इतने बड़े पहाड़ी प्रदेश को घेरने के लिए लाखों की संख्या में सेना चाहिए।ऐसे देश का सहारा होने से ही महाराणा अपनी स्वतंत्रता को स्थिर रख सका और मुसलमानों की चढ़ाइयां निष्फल ही हुईं---कर्नल टाड ने महाराणा की आपत्ति का जैसा चित्र खींचा है वैसा ही हुआ होता, तो अबुल फज़ल जैसा लेखक जो पग पग पर बादशाह की खुशामद किया करता है और ज़रा ज़रा सी बात को बढ़ा बढ़ा कर लिखता है इस बात को राई का पर्वत बना कर न मालूम कितना क्या लिख मारता परन्तु उसके अकबरनामे तथा अन्य फारसी तवारीखों आपत्तियों के मारे महाराणा के अधीनता स्वीकार करने के लिए अकबर को पत्र लिखने का उल्लेख कहीं नहीं है ।अलबत्ता यह बात निश्चित है कि उदयपुर या गोगूंदे के राजमहलों में रहने का सा आराम वहां नहीं था और शत्रु से लड़ने की चिन्ता सदा लगी ही रहती थी ।"-उदयपुर का इतिहास,जि०१,पृ०४५५, ४५६,४५७

सती सारन्धा (१९१५)

उपन्यासकार प्रेमचन्द की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानी `रानी सारंधा` की कथावस्तु के आधार पर[1] `रसिकेन्द्र` ने `सती सारन्धा` खंडकाव्य का निर्माण किया। बुंदेलखण्ड के पराक्रमी वीर छत्रसाल के पिता चम्पतराय ने औरंगजेब आलमगीर का बन्दी होने की अपेक्षा आत्महत्या करना स्वीकार किया था यह ऐतिहासिक सत्य काव्य का मुख्य विषय है[2]। इस काव्य में चम्पतराय की

टिप्पणी- (१) इस कथन को हम कुछ अतिशयोक्ति ही समझते हैं। भामाशाह और उसका पिता (भारमल) उदयपुर राज्य के सच्चे स्वामिभक्त सेवक अवश्य थे। भामाशाह राज्य के खजाने की सुव्यवस्था करता रहा, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु आधुनिक शोध के आधार पर यह बात सिद्ध होती है कि महाराणा प्रताप के पास बहुत सम्पत्ति विद्यमान थी ---- बहादुरशाह की पहली लड़ाई के पूर्व ही राज्य की सारी सम्पत्ति चित्तौड़ से ले गई थी, जिससे बहादुर और अकबर में से एक को भी चित्तौड़ विजय करने पर कुछ भी द्रव्य न मिला, फारसी तवारीखों में कहीं भी उसका उल्लेख न होना इस बात का प्रमाण है कि मेवाड़ की संचित सम्पत्ति का कुछ भी अंश उनके हाथ न लगा और वह ज्यों की त्यों सुरक्षित रही। --- उदयपुर राज्य का इतिहास, जि०प्रथम, पृ० ४६३,४६४

१- मेरे इस काव्य का आधार श्रीयुत प्रेमचन्द जी की `रानी सारन्धा` नामक प्रसिद्ध गल्प है।`

उ------ रसिकेन्द्र, दो शब्द `सती सारन्धा`

२- "Chhatrasal's father, Champat Rai, had risen against Aurangzeb during the early part of his reign but hard-pressed by the emperor, he committed suicide to escape imprisonment".

R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhury & K. Datta

An Advanced History of India, Page - 498.

पत्नी तथा छत्रसाल की माता सारन्धा[1] के आत्मगौरव तथा क्षात्रोचित स्वाभिमान की करुण झांकी चित्रित हुई है। इन दो वस्तुओं के सम्मुख इस वीरांगना के लिए सब कुछ हेय एवं त्याज्य था। काव्य का अन्त अत्यन्त ही रोमांचकारी तथा प्राणोत्तेजक है। वर्णन शैली में शिथिलता है। यथा----

बालक एक अश्व पर से
करता है प्रणाम कर से,
छत्रसाल चम्पत का सुत है और नहीं है कोई संग
सैर कर चुका लौट रहा है अब घर को वो प्रमुदित अंग[2]।

सती पद्मिनी (१६१५)
तथा
मेवाड़ गाथा (१६१४)

चित्तौड़ के वीर राणा रत्नसिंह की अनिन्द्य सुन्दरी एवं वीर पत्नी रानी पद्मिनी तथा अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण की प्रसिद्ध कथा के आधार पर श्रीनाथ सिंह ने 'सती पद्मिनी' तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड़ गाथा' खण्डकाव्यों की रचना की। इनमें पद्मिनी के सौन्दर्य वर्णन से लेकर, अलाउद्दीन के आक्रमण, भीमसिंह के साथ[3] अलाउद्दीन का प्रथम संघर्ष, दर्पण में पद्मिनी दर्शन छल द्वारा रत्नसिंह को बन्दी बना कर शिविर में ले जाने, रानी द्वारा भीमसिंह को छुड़ाने के लिए सात सौ डोलों की चाल, संघर्ष में गोरा की मृत्यु राजपूतों की विजय, कई वर्ष अनन्तर पुनः आक्रमण, अलाउद्दीन की विजय तथा राजपूत नारियों का पद्मिनी सहित जौहर किये जाने के अनेक प्रसंगों का समावेश हुआ है। कवि का प्रमुख उद्देश्य पद्मिनी के वीर तथा करुण चरित्र की एक झांकी देना है। श्रीनाथ सिंह ने इस ऐतिहासिक खंड काव्य की कथा का

१- 'इस भित्ति पर कल्पना ने 'रानी सारन्धा' की सृष्टि की है। आपको यह नाम किसी इतिहास-ग्रन्थ में न मिलेगा।'
--प्रेमचन्द, सती सारन्धा की भूमिका से।
२- सती सारन्धा पृ० ३०
३- टाड राजस्थान में राणा का नाम भीमसिंह है।
४ वहां अगर वह वीर सकेगा तीरों की बौछारों को।

आधार टाड 'राजस्थान' है । पद्मिनी की इस प्रचलित कथा में ऐतिहासिकता बहुत कम है । पद्मिनी और अलाउद्दीन की कथा को माध्यम बना कर सर्व प्रथम मलिक मुहम्मद जायसी ने सन् १५४० में 'पदमावत' प्रेम काव्य की रचना की थी । अधिकांशत: कल्पना प्रसूत इस काव्य को आगे के इतिहास लेखकों ने ऐतिहासिक सामग्री का विषय बनाया[१] । इस काव्य-ग्रन्थ की रचना के सत्तर वर्ष पश्चात् फिरिश्ता ने 'तारीख फिरिश्ता' लिखी तथा किंचित् परिवर्तन के साथ इसी कथा को ऐतिहासिक रूप दिया । ओझा जी के मतानुसार पद्मिनी की कथा में ऐतिहासिक सत्य इतना है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण करके कुछ समय अनन्तर उसे जीत लिया । राणा रत्नसिंह,लक्ष्मण सिंह आदि सामंतों सहित मारे गये । रानी पद्मिनी तथा अन्य राजपूत स्त्रियों ने जौहर करके प्राण त्याग दिए । सती पद्मिनी में कवि की मौलिकता भी दर्शनीय है । सोना रानी नाम के एक नवीन स्त्री पात्र की कल्पना के द्वारा राजपूत नारी जाति के जन्मजात शौर्य का चित्रण भी अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक हुआ है ।

शेषा- रोक सकेगा एक साथ छूटी अनेक तलवारों को ॥
तो फिर मुझे देख लेगा वह पापी अपनी छाती पर।
जैसे दीप शिखा शोभित होती है बुझती बाती पर ।।

- सती पद्मिनी , सर्ग ५, पृ० ४०

१- इतिहास के अभाव में लोगों ने पदमावत को ऐतिहासिक पुस्तक मान लिया, परन्तु वास्तव में वह आजकल के ऐतिहासिक उपन्यासों की-सी कवितावद्ध कथा है ।

-- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,उदयपुर राज्य का इतिहास,जिल्द प्रथम, पृ० १८७

वीरांगना वीरा (१६१५-१६२०)

महाराणा उदयसिंह के शासनकाल में सन् १५६७ ई० में अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। महाराणा उदयसिंह भाग कर परिवारसहित पहाड़ों में चले गए थे।[1] चित्तौड़ के भाग्य का निर्णय करने वाले आठ हजार शूरवीर सरदारों ने भयंकर युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की थी। चित्तौड़ की वीरताको दो प्रतिनिधि वीर राठौड़ जयमल तथा सिसोदिया पत्ता चूंडावत ने अकबर की विशाल सेना को नाकों चने चबवा दिए थे और अन्त में इन वीरों की लाशों के ऊपर से होते हुए एक वर्ष पश्चात् वह चित्तौड़ पर अधिकार कर पाया।

'टाड-राजस्थान' में अकबर द्वारा चित्तौड़ दुर्ग पर दो बार आक्रमण का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] ओझा जी ने इस प्रथम युद्ध की बात को कपोल-कल्पना माना है। ठाकुर भगवतसिंह 'विशारद' ने 'टाड-राजस्थान' के आधार पर 'वीरांगना वीरा' खंड काव्य की रचना की। महारानी वीरा के वीरांगना रूप का चित्रण

१-'उन्होंने (सरदारों) महाराणा को यह सलाह दी कि गुजराती सुल्तान से लड़ते-लड़ते मेवाड़ कमजोर हो गया है और अकबर को बड़ा बलवान है। इसलिए आपको अपने परिवार सहित पहाड़ों की तरफ चला जाना चाहिए। इस सलाह के अनुसार महाराणा राठौड़ जयमल और सिसोदिया पत्ता को सेनाध्यक्ष नियत कर रावत नेतसी आदि कुछ सरदारों सहित मेवाड़ के पहाड़ों में चला गया और किले की रक्षार्थ ८००० राजपूत रहे।'

—गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१२-१३

२-'कर्नल टाड ने अकबर का चित्तौड़ पर दो बार आक्रमण करना लिखा है पहली बार जब अकबर आया, तब महाराणा की उपपत्नी ने उसे भगा दिया। इस पर सरदारों ने अपना अपमान समझ कर उसे मार डाला। चित्तौड़ की यह फूट देख कर अकबर दूसरी बार उस पर चढ़ आया। (टा०रा०, जि०१, पृ०३७८, ३७६) परन्तु पहली चढ़ाई की बात कल्पित ही है।'

गौ. ही. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४१२

तथा राजपूतों का शौर्य प्रदर्शन इस काव्य का मुख्य विषय है । सुन्दरी वीरा के रूप लावण्य में आसक्त भोगी-विलासी उदयसिंह की कायर भावनाओं के चित्रण से लेकर वीरा द्वारा उदयसिंह को फटकार, परिणामस्वरूप भयंकर संघर्ष, युद्ध वर्णन, उदयसिंह का बन्दी होना, वीरा का सैनिक वेश धारण कर समर-भूमि को प्रस्थान तथा उदयसिंह को छुड़ा कर महलों में लौट आने तक के विविध प्रसंगों का काव्यमय चित्रण है । अन्त तक एकही सर्ग में लिखे गये इस काव्य की भाषा, सजीव, प्रवाहमयी तथा पात्रानुकूल है । राठौड़ जयमल तथा सिसोदिया पत्ता के रण चातुर्य, कृष्णसिंह के वीरोचित उत्साह कथन तथा वीरा की प्रेरणा में वीर रस का सुन्दर निर्वाह हुआ है[1] । यह रचना सन् १६१५ से १६२० तक के बीच में लिखी गई निश्चित रचनाकाल के विषय में कोई उपयुक्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका है ।

आत्मार्पण (१६१६)

रूप नगर के महाराजा विक्रम की पुत्री प्रभावती के सौन्दर्य की चर्चा से प्रभावित होकर औरंगजेब द्वारा उसे राजप्रासाद में बुलवाने की ऐतिहासिक प्रसिद्ध घटना को लेकर द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' ने वीर रसपूर्ण 'आत्मार्पण' खंडकाव्य की रचना की । सरदार चुड़ावन्त की वीर तथा विवाहिता पत्नी द्वारा पति को युद्ध क्षेत्र में लड़ने के लिए भेजते तथा मोह से विमुक्त करने के लिए सिर काट कर भिजवाने की रोमांचकारी कथा[2] भी इस काव्य में अनुस्यूत है । हाड़ा रानी के इस प्रसंग से यह

१- घर अंग का आघात सहना क्षत्रियों का धर्म है,
पर वाक्य का दुर्घात सहना कायरों का कर्म है ।
संसार में जब मान है तो जान है रखना भला
पर मान बिन इस जान को है त्याग ही देना भला।। छन्द ४३, पृ० १२

२- सरदार चुड़ावन्त की कथा के लिए कवि ने हनुमन्त सिंह के 'मेवाड़ का इतिहास' को आधार बनाया है ।

काव्य प्राणोत्तेजक तथा राजपूत नारी-गौरव का आदर्श बन गया है । प्रभावती के पत्र में कवि ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किया है । प्रभावती ऐतिहासिक पात्र है[1] । यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि प्रभावती ने महाराणा राजसिंह को पत्र लिखा था[2] । काव्य में कवि ने इसी तथ्य का चित्रण किया है । तृतीय सर्ग में राजसिंह के प्रत्युत्तर पत्र का वर्णन किया गया है । यह पत्र अधिकांशतः कवि की कल्पना है । 'आत्मार्पण' में कवि-कल्पना तथा इतिहास का एक सुन्दर संयोजन है । राजपूत नारियों की [illegible] वीरता, तथा राजपूतों की रणकुशलता का चित्रण कवि का उद्देश्य है ।

<u>गांधी गौरव (१९१९)</u>

महान् नेता एवं राष्ट्र-नायक 'बापू' के गौरवमय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गोकुलचन्द्र शर्मा ने 'गांधी गौरव' खंडकाव्य की रचना की । वंश वर्णन तथा बाल्यकाल से लेकर सन् १९१९ तक की जीवन घटनाओं का सजीव वर्णन कवि ने किया है । वर्णनात्मक शैली होने पर भी, कवि का रागात्मक वर्णन सर्वत्र दर्शनीय है । दक्षिण अफ्रीका में गोरों के अन्यायों के प्रति गांधी जी के अभियान की कहानी, गोरों द्वारा 'बापू' तथा भारतीय जनता पर किए गए अत्याचारों का, जेल जीवन के कष्टों का, गांधी के नेतृत्व में जनता के सत्याग्रहों का तथा नर-नारियों के राष्ट्रीय प्रेम से ओत प्रोत उत्साह आदि का मार्मिक वर्णन हुआ है । गांधी के गौरव में कवि को 'राम के देवत्व' की झलक दृष्टि-गोचर हुई-

---

1. प्रभावती के नाम की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में मतभेद है। टॉड राजस्थान में प्रभावती है।

२- जब चारुमती ने अपने बचाव का कोई उपाय न देखा तब उसने महाराणा राजसिंह की शरण ली और उसके पास एक अर्जी भेजी, जिसमें अपने दुःख का पूरा हाल लिखते हुए प्रार्थना की कि आप मेरे साथ विवाह कर मेरे धर्म की रक्षा करें । इस पर महाराणा (ई०सन् १६६०) किशनगढ़ ससैन्य पहुंचा और चारुमति से विवाह कर उसे अपने यहां ले आया ।'

-श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ८५२

गांधी ! तुम्हारी टेक विश्वविवेक की न विवेक है ?

श्रीराम के वन-गमन से क्या प्रिय अधिक (अभिषेक) है ?

(सर्ग नवम)

गांधी जी के देशानुराग के स्वच्छ वात्सल्य पोषण की गाथा-

तुम राष्ट्र भाषा के सिपाही बन अरि की भीड़ में,

किस भांति मेरा मोह फिर जाता तुम्हारे गेह में ?

कर्तव्य को छोड़ो न मुझसे पुण्यतर प्रिय देश है,

राष्ट्रीय रण में ध्येय तुम हो एक भारतदेश है ।"

(दशम सर्ग)

सम्पूर्ण काव्य में निश्छल राष्ट्रीयता का ही स्वर गुंजरित है । ऐतिहासिक तथ्यों के दृष्टिकोण से सन् १९१९ तक की प्रमुख राजनैतिक घटनाओं का यह काव्य मानो पद्य बद्ध इतिहास है । अन्याय के प्रति गांधी जी के इस काव्य में अमोघ अस्त्र सत्याग्रह की प्रशस्ति मिली है-

टूटे पहाड़ विपत्तियों के स्वप्न में भी दुख न हो

तो भी कभी तनु-भंग-भय से सत्य रण प्रतिकूल न हो ।

(सर्ग अष्टम)

गांधी जी का आत्मबल राष्ट्रवासियों की प्रेरणा का स्रोत बना । वे पूज्य बन गये। प्रत्येक कवि-कंठ में उनकी विरुदावलि का गान था । जनता का महात्मा के प्रशस्त मार्ग की ओर बढ़ चली । उनकी महत्ता का प्रसार सार्वकालीन हो गया[1] । काव्य-कथा

१-" वे अपने उच्च, उदात्त, गम्भीर, निर्मल और पवित्र चरित्र में अपना सानी नहीं रखते । उनका मन वाणी और कर्म एक है ----- उनका हृदय मानवी प्रेम का पारावार है । परमात्मा में अमित आस्था और अनन्य श्रद्धा है । वे सत्य के सेवक हैं । सेवा के सिपाही हैं । धर्म ही उनकी ध्वजा है । सत्याग्रह ही उनका अमोघ अस्त्र है । आत्मबल ही उनका तेजोमय तनुत्राण है । वे निर्भयता की मूर्ति हैं । सहिष्णुता के सत्यार्थ हैं । दया के अवतार हैं नम्रता के भंडार-निधि हैं, और पतितों के वे प्राणाधार हैं । उनके मन में घृणा का प्रतीकार

शेष---

में मार्मिकता होने के साथ-साथ देश प्रेम की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । इस प्रकार 'गांधी गौरव' आत्मार्पण आदि कई काव्य किसी युग की अभिव्यक्ति कही जा सकती हैं । इसके अनन्तर छायावाद काल में अनेक महत्वपूर्ण खंडकाव्यों का निर्माण हुआ ।

सन् १९२० से १९३६ तक अनेक महत्वपूर्ण खंडकाव्य लिखे गये । वीर हमीर, चित्तौड़ की चिता, गुरुकुल, [illegible], आत्मोत्सर्ग, सिद्धराज आदि खंडकाव्यों के विषय राजस्थान तथा पंजाब के ऐतिहासिक सन्दर्भ रहे ।

वीर हमीर (१९२२)

'वीर हमीर' अलाउद्दीन तथा हमीरदेव के परस्पर युद्ध की कथा को आधार रूप लेकर लिखा गया है । हमीर की यह कथा सर्वप्रथम संवत् १५४२ में नयचन्द्र[1] सूरी द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'हमीर महाकाव्य' का विषय बनी । इसके अनन्तर जोध राज कृत हम्मीर रासो (सम्वत् १८८५) चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीर हठ' तथा ग्वाल कवि कृत 'हमीर हठ' की रचनाएं रीतिकाल में हुईं । काव्यों के अतिरिक्त 'हमीर हठ' की कथा कांगड़ा के एक उस्ताद सजनू के द्वारा बनाए गए इक्कीस चित्रों में भी चित्रित की गई है[2] । खड़ी बोली काव्य में केवल दो रचनाएं — डा० रामकुमार वर्मा की 'वीर हमीर' (१९२८) तथा आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव की 'हमीरहठ' (प्रबन्ध पद्य) निर्मित की गयीं । इन सभी काव्यों तथा चित्रों की कथा न्यूनाधिक रूप में घटनाओं की दृष्टि से मिलती जुलती है । अलाउद्दीन की किसी बेगम का किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम (चित्रों तथा हिन्दी काव्यों में महिमाशाह मंगोल नाम है) प्रेम कथा के प्रमाणित होने पर अलाउद्दीन

१- 'हमीर हठ का कथानक अनेक ग्रन्थों में पाया जाता है। जिनमें से एक संस्कृत में और शेष चार हिन्दी में हैं । वे ग्रन्थ छप भी चुके हैं । संस्कृत ग्रन्थ 'हमीर महाकाव्य' है जिसे नयचन्द्र सूरी ने १५४२ सम्वत् में रचा था ।'
—श्री हीरानन्द शास्त्री, एम०ए०,डी०लिट०, 'हमीर हठ' लेख से, विशाल भारत, मई १९३८

२- श्री हीरानन्द शास्त्री, 'हमीर हठ' लेख से, विशाल भारत, मई १९३८

का क्रोध, बेगम के कहने पर प्रेमी का चित्तौड़ाधिप हम्मीर देव की शरण में आना, हम्मीर द्वारा शरणागत की रक्षा तथा परिणामस्वरूप अलाउद्दीन से युद्ध, हम्मीर देव का विजयी होना, धन के लोभ से हम्मीर के सचिव का शत्रु से मिल कर दुबारा आक्रमण करवाना, पुन: हम्मीर की विजय, विजयी राजपूत सेनानियों के हाथों में शत्रु के झंडे देख कर भ्रमवश समस्त राजपूत नारियों का जौहर की अग्नि में कूद कर प्राण त्यागना, शोकाकुल हम्मीर का महादेव के चरणों में शीश चढ़ा कर आत्महत्या करना तथा अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर अधिकार हो जाना। ऐतिहासिक तथ्य की दृष्टि से इनमें से अनेक घटनाएं अनैतिहासिक सिद्ध होती हैं।

(१) इतिहास का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हुआ है कि एक हम्मीर देव रणथम्भौर का शासक अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था जिस पर नए मुसलमानों की घटना के कारण, अलाउद्दीन द्वारा आक्रमण हुआ और वह सन् १३०१ में मारा गया[१]।

(२) एक सिसोदिया हम्मीर ने चित्तौड़ की गद्दी पर सन् १३२६ में अधिकार किया। उसकी किसी अलाउद्दीन खिलजी से लड़ाई नहीं हुई क्योंकि तत्कालीन दिल्ली सुलतान महमूद तुगलक था। इस हम्मीर के चित्तौड़ पर अधिकार करने के समय के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है[२]। काव्यकारों ने रणथम्भौर के हम्मीर की कथा को लेकर काव्य रचनाएं की हैं किन्तु इन रचनाओं में अनेक ऐतिहासिक असंगतियां हैं।

१- R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri and K. Datta
An Advanced History of India, Page- 301, 302.

२- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि०प्रथम, पृ० २३३, २३४

रीतिकालीन रचनाएं हमीर से सम्बन्धित किसी चित्रावली पर आधारित हैं। हमीर की मृत्यु के सम्बन्ध में भी अनेक असंगतियां हैं। संस्कृत के `हमीर महाकाव्य` में हमीर की मृत्यु का वर्णन भिन्न प्रकार से है। अलाउद्दीन से युद्ध के समय अधिक जख्मी होने पर तथा अपने दो सरदारों के ऊपर अविश्वास होने पर हमीर ने अपनी तलवार से अपना अन्त कर दिया था[1]।

खड़ी बोली हिन्दी के `वीर हमीर` तथा `हमीर का हठ` रचनाओं के आधार रीतिकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं क्योंकि इनमें हमीर देव की मृत्यु महादेव के मन्दिर में शीश काट कर भेंट चढ़ाने के प्रसंग में हुई है। `वीर हमीर` की कथा का आरम्भ महिमा शाह मंगोल के शरण में आने के प्रसंग से हुआ है। कवि का उद्देश्य महाराणा की शरणागत वत्सलता दिखलाना ही प्रतीत होता है। इस करुणान्त काव्य में वीर तथा करुण रस के अनुकूल सरल तथा सुबोध भाषा का सुन्दर निर्वाह हुआ है। वीर हमीर के वीरतापूर्ण निर्भीक चरित्र कावर्णन प्रभावपूर्ण है।

<u>चित्तौड़ की चिता (१९२९)</u>

मध्ययुग के अद्वितीय वीर मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह की पत्नी महारानी करुणावती[2] की वीरतापूर्ण तथा मार्मिक जौहर गाथा को लेकर डा० रामकुमार वर्मा ने `चित्तौड़ की चिता` खंडकाव्य की रचना की। उस चित्तौड़ की करुण गाथा काव्य की लड़ियों में अनुस्यूत है जिसकी पावन भूमि भारतीय ललनाओं के रक्त से रंजित है और जिसके विशाल प्रांगण में सुकुमार ललनाओं ने अपने कोमल हाथों से अपनी ही चिता सजाई थी[3]।` बारह सर्गों में विभाजित इस खंडकाव्य

---

1. Ishwari Prasad, Medieval India, Page - 195.

२- महारानी करुणा का नाम `कर्मवती` दिया गया है।
--- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द पहली, पृ० ३६०

३- रामकुमार वर्मा, चित्तौड़ की चिता, भूमिका

में मुगल राज्य के संस्थापक बाबर तथा महाराणा संग्राम सिंह के मध्य हुए खानवा के ऐतिहासप्रसिद्ध युद्ध(सन् १५२७) राजपूतों की पराजय तथा संग्राम सिंह की मृत्यु,उदयसिंह के जन्म,गुजरात के बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण, विधवा महारानी करुणा द्वारा देहली के शासक हुमायूं के पास राखी भेजने और सहायता के लिए प्रार्थना करने, हुमायूं के विलम्ब से पहुंचने, बहादुर शाह द्वारा विजय प्राप्त करने तथा प्रतीक्षा करते करते अन्त में सतीत्व रक्षार्थ महारानी करुणा का राजपूत ललनाओं सहित जौहर की लपटों में स्वाहा हो जाने तक की कथा का समावेश हुआ है । महारानी करुणा की करुणा में विकसित इस खंडकाव्य की कथावस्तु अत्यन्त मार्मिक है । कल्पना और ऐतिहासिक तथ्य के संयोजन द्वारा महारानी करुणा के चरित्र चित्रण में कवि की भावुकतापूर्ण संवेदना काव्य की विशेषता है ।मार्मिकता के परिवेश में वीरता का संचरण भी आकर्षक है ।काव्य का मुख्य उद्देश्य महारानी करुणा के जीवन का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत करना है । काव्यात्मक सौन्दर्य को दृष्टिगत रखते हुए कवि ने इतिहास की घटनाओं में कुछ उलट फेर किया है जिनका उल्लेख काव्य की भूमिका में स्वयं कवि ने किया है ।

(१) महाराणा सांगा की मृत्यु युद्ध के तुरन्त बाद (अथवा युद्ध में) नहीं हुई थी। खानवा के युद्ध के दस-ग्यारह मास पश्चात् हुई थी [१] ।

१- राजपूतों की शक्ति नष्ट करने के लिए बाबर मेदिनीराय(जो कि महाराणा का सेनापति था) पर चढ़ाई करके चन्देरी पहुंचा(ईसवी सन् १५२८ जनवरी)। 'बदला लेने के लिए इस अवसर को उपयुक्त जान कर महाराणा ने भी चन्देरी को प्रस्थान किया और कालपी से कुछ दूर इरिच गांव में डेरा डाला, जहां उनके साथी राजपूतों ने, जो नये युद्ध के विरोधी थे, उनको फिर युद्ध में प्रविष्ट देख कर विष दे दिया । शनैः शनैः विष का प्रभाव बढ़ता देख कर वे उनको वहां से लेकर लौटे और मार्ग में कालपी स्थान पर ३० जनवरी १५२८ को उनका स्वर्गवास हो गया इस प्रकार उस समय के सबसे बड़े प्रतापी हिन्दुपति महाराणा सांगा की जीवन लीला का अन्त हो गया ।'

—गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जिल्द पहली, पृ० ३८३-८४

(२) काव्य में उदयसिंह का जन्म महाराणा की मृत्यु के बाद दिखाया है किन्तु उदयसिंह का जन्म महाराणा की जीवित अवस्था में ही हुआ था। महाराणा ने अपने जीवन काल में उदयसिंह और विक्रमादित्य दोनों पुत्रों को (रानी कर्मवती से) रणथम्भौर की जागीर दे दी थी[१]।

(३) जातीय-भावना केवल पकड़ने के कारण हुमायूं ने जान बूझ कर महारानी करुणा की सहायता नहीं की थी[२]। और युद्ध के पश्चात् भी वह बहादुर खां के तोपखाने के अध्यक्ष रूमीखां का पत्र प्राप्त करने के पश्चात् चित्तौड़ की ओर रवाना हुआ था जहां उसने बहादुर शाह को पराजित कर दिया था[३]।

इतना निश्चित है कि इस ऐतिहासिक उलट फेर में ऐतिहासिक सत्य काव्य-सत्य बन कर सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठा है[४]।

१- उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ० ३९०-९१

२- "उधर हुमायूं भी बहादुर से लड़ने के लिए चित्तौड़ की तरफ बढ़ा और ग्वालियर आ पहुंचा, जिसकी खबर पाते ही सुलतान ने उसको इस आशय का पत्र लिखा कि मैं इस समय जिहाद (धर्मयुद्ध) पर हूं, अगर तुम हिन्दुओं की सहायता करोगे तो खुदा के सामने क्या जवाब दोगे ? यह पत्र पढ़ कर हुमायूं ग्वालियर में ही ठहर गया और चित्तौड़ के युद्ध के के परिणाम की प्रतीक्षा करता रहा।"

-उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृ० ३९७

३- उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृ० ३९९-४००

४- "इसलिये सत्य के रूप को विकृत करने के लिए नहीं वरन् सत्य को सजाने के लिए मैंने कल्पना को सेवक की भांति बुला लिया है।"

-चित्तौड़ की चिता परिचय में

गुरुकुल (१६२६)

मुस्लिम शासन काल में पंजाब में सिक्खों के दस गुरुओं द्वारा मुगलों की क्रूरताओं के विरुद्ध सिक्ख धर्म का संगठन ऐतिहासिक महत्व की वस्तु है । मुस्लिम शासक अन्त तक इन सिक्खों के विरोधों का सामना करते रहे किन्तु अदम्य उत्साह से पूर्ण इस जाति को कभी झुका नहीं सके[1]। इन्हीं दस गुरुओं के आत्म बलिदान शौर्य,निर्भीकता तथा महापुरुषत्व की गौरव गाथा मैथिली-शरणगुप्त ने 'गुरुकुल' में छन्दोबद्ध की है । वास्तव में कथा दस विभिन्न कविताओं से सम्बन्धित होकर भी घटनाओं के ऐसे सूत्र में गुंथी हुई है कि प्रबन्धात्मकता में कहीं भी शैथिल्य दृष्टिगोचर नहीं होता । गुरु नानक के शान्त मार्ग से आरम्भ इस कथा में मुगल शक्ति से लोहा लेने वाले गुरु अर्जुन ,गुरु हरगोविन्द,गुरु तेगबहादुर तथा गुरु गोविन्दसिंह के सैनिक संगठन और मुगल शक्ति से संघर्षों का चित्रण हुआ है ।अन्त में 'परम्परा' प्रसंग में 'नामधारी' सिक्खों के वर्णन से कथा समाप्त हो जाती है । औरंगजेब तथा गुरु तेगबहादुर की बातचीत गुरु पत्नी प्रसंग , सरहिन्द के सूबेदार से गोविन्दसिंह के अल्पवयस्क बच्चों का तर्कपूर्ण वादविवाद तथा बन्दावैरागी और गुरु गोविन्द सिंह की भेंट का चित्रण ऐतिहासिक तथ्य केआधार पर कल्पना के योग से बहुत आकर्षक हुए हैं । गुरु पत्नी के पुरुष वेष धारण करके युद्धस्थल में पति के साथ रह कर आहत सैनिकों को जल पिलाने की कल्पना भारतीय नारी के इस वीरतापूर्ण सेवा भाव के

---

1. "The most important and organised religious movement in the Punjab in Mughal period was Sikhism. Coincidently the ten Sikh Gurus (1469-1708) and the six great Mughal Emperors (1583-1707) began and ended their careers almost at the same time".

K.S. Narang & H.R. Gupta,
History of the Punjab (1526-1857), IIIrd Edition

आदर्श की व्यंजना हुई है।[1] कन्या की हत्या का प्रसंग विशेष मार्मिक है। २६८ पृष्ठों में लिखे इस खंडकाव्य में गुरुजी के महापुरुषत्व तथा धर्म-रक्षा निमित्त आत्म बलिदान के वीरतापूर्ण आदर्श का बहुत सफल चित्रण हुआ है। सिक्ख जाति के वीरत्व की अभिव्यक्ति ओजपूर्ण है। कुछ सर्गों कोरों में लिखे गए इस काव्य की भाषा सरल सुबोध एवं रसानुकूल है।

कुनाल (१६२६)

सम्राट् अशोक के पुत्र कुणाल के प्रति सौतेली माँ तिष्यरक्षिता के प्रेम की कथा अनूप शर्मा के 'सुनाल' खंडकाव्य का विषय है।[2] सुलोचना अपमान की ज्वाला में जल कर सुलोचना सम्राट की मुद्रा का अनुचित प्रयोग करके सुनाल की आँखें निकलवा लेती है। सुनाल अपनी पत्नी सरोजिनी के साथ भिक्षा माँग कर दर दर भटकते हैं। भटकते हुए एक दिन पिता के राज्य में पहुंच जाते हैं वहां अशोक की संगीत सभा में गाना सुनाते हैं। अशोक पुत्र का स्वर पहचान लेते हैं। क्रोधित होकर महारानी को दंड देना चाहते हैं परन्तु कुणाल माता को क्षमा करने की प्रार्थना करते हैं। सुनाल को पुन: दृष्टि प्राप्त हो जाती है। सम्राट् सुनाल का अभिषेक

१- शस्त्र उठा कर हर न क सकूंगी
        यदि मैं शत्रु जनों के प्राण
    तो क्या कर न सकूंगी अपने
        हत्यारों का भी कुछ त्राण ?
    एक घूंट जल भी अवसर पर
        पहुंचा सकें कहीं ये हाथ
    तो इतने से ही कृतार्थ
        हूंगी नाथ, तुम्हारे साथ। ---'गुरुकुल' पृ० १९०

२- कवि ने तिष्यरक्षिता का नाम सुलोचना दिया है। ऐतिहासिक नाम तिष्यरक्षिता है। इसी प्रकार अशोक के पुत्र का नाम 'कुणाल' है।
    --टी.एल.शाह, एन्शेन्ट इण्डिया, पृ० २३४ फुटनोट

करके तपस्या करने चले जाते हैं ।

इस काव्य कथा में कुनाल तथा कांचनमाला के दाम्पत्य जीवन की सरस झांकी अंकित हुई है । आंखें निकलवाने का प्रसंग मार्मिक है । अन्त आदर्शवादी एवं किंवदन्ती मूलक है ।

कथावस्तु के संयोजन में कवि ने अनेक कल्पनाएं की हैं । रानी का एक दिन का राज्य प्राप्त करना उद्भावक कल्पना है । जहां तक ऐतिहासिकता का प्रश्न है रानी द्वारा प्रेम निवेदन तथा कुणाल की आंखें निकलवाने का प्रसंग ऐतिहासिक तथ्य है[१]। मां को क्षमा कराने और कुणाल की दृष्टि लौटने के प्रसंग किंवदन्तियां हैं । तिष्यरक्षिता का यह कुकृत्य मालूम होने पर अशोक ने तिष्यरक्षिता को जिन्दा जलवा दिया था[२]।

जैन ग्रन्थों में भी तिष्यरक्षिता का मरवाया जाना लिखा[३] है । दृष्टि के लौटने, मां को क्षमा दान तथा अशोक का तपस्या के लिए जाना--घटनाएं संभवतः किसी बौद्ध धर्म ग्रन्थों में प्राप्त हुई थीं । काव्य में इन दोनों घटनाओं के द्वारा काव्य सौन्दर्य तथा चरित्रोत्कर्ष का निरूपण हुआ है । कुणाल वाली घटना खड़ी बोली में सर्वप्रथम कवि अनूप शर्मा द्वारा अपनाई गई है । इसके उपरान्त

---

1. "... The queen, how ever, was not a woman of good character. Attracted by the eyes of Kunal, she asked him to enter into incestuous relations with her. Kunal flatly and indignantly refused to comply with her sinful request, with the result that he lost his eyes".

   T.L. Shah, An Ancient India : Page - 234.

2. When Asoka came to know the plot which has cost Kunal his eyes and also the faithlessness of the queen, he was over powered with rage and burnt her alive.

   T.L. Shah, An Ancient India : Page - 235.

3. T.L. Shah - An Ancient India : Page - 235.

तक्षशिला में उदयशंकर भट्ट ने इस घटना का चित्रण किया एवं मोहनलाल द्विवेदी ने (१९४३) `कुणाल` खंडकाव्य की रचना की । सभी काव्य कथानकों में प्राय: एक से ही प्रसंग अपनाए गए हैं ।

तक्षशिला (१९३१)

प्राचीन भारत की वैभव तथा गौरवपूर्ण झांकी प्रस्तुत करने वाली ऐतिहासिक नगरी `तक्षशिला` को माध्यम बना कर पं० उदयशंकर भट्ट ने `तक्षशिला` खंडकाव्य की रचना की । यह अपने ढंग की सर्वथा नवीन रचना है । इसका कथानक न किसी महान् राजा का जीवन चरित्र है और न ही घटनाएं किसी विशिष्ट पात्र के इर्द गिर्द घूमती हैं । कथानक का सीधा सम्बन्ध तक्षशिला नगर से है और इसके सिंहासन पर आसीन जो अनेक सम्राट तथा शासक तक्षशिला की समृद्धि और अवनति, उत्थान और पतन का कारण हुए उनका क्रमानुसार काव्य-मय वर्णन तथा चित्रण तक्षशिला काव्य की कथा है । सात सर्गों में विभाजित इस काव्य के आरम्भ के तीन सर्गों में तक्षशिला की भूमिका स्वरूप पंजाब के अतुल्य वैभव ,ज्ञान-गरिमा तथा उसकी भौगोलिक रचना[१] ,तक्षशिला का अयोध्या के महाराज भरत चक्र के अनुज बाहुबली द्वारा शासित होना और दोनों भाइयों में एक संघर्ष उत्पन्न होने केपरिणामस्वरूप बाहुबली द्वारा सन्यास ग्रहण करके अपने पुत्र चन्द्रयशा को राज्य दे जाने की घटनाओं का वर्णन है । इसके पश्चात् चतुर्थ से सप्तम सर्ग तक आम्भी का शासनकाल, अलक्षेन्द्र द्वारा आक्रमण ,पौरव और अलक्षेन्द्र के इतिहास प्रसिद्ध युद्ध का वर्णन, मौर्य राज्य की स्थापना, चन्द्रगुप्त बिन्दुसार

१- आर्य जाति का उज्ज्वल भूतल
पंच नदों का सुन्दर देश
स्वर्ण विभूति भरा संसृति का
मूर्तिमान भारत राकेश ।

प्रथम सर्ग पृ०

तथा सम्राट् अशोक के समय तक्षशिला की शासन व्यवस्था एवं विभिन्न ऐतिहासिक घटनाएं और अन्त में ग्रीक, कुषान, पार्थियान, तथा हूण आदि जातियों के आक्रमण स्वरूप तक्षशिला के ध्वंस का वर्णन हुआ है। नगर की महत्ता के वर्णन के साथ ही उसकी क्रोड़ में पलने वाली भारत तथा एशिया की प्राचीन संस्कृति का दिग्दर्शन कराना कवि का उद्देश्य है[1] 'तक्षशिला' में वर्णित सभी घटनाएं ऐतिहासिक महत्व की हैं। बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों और इतिहास ग्रन्थों के आधार पर कवि ने कथानक का विषय ग्रहण किया है।[2] तक्ष के नाम पर तक्षशिला की स्थापना,[3] कलिंग विजयोपरान्त अशोक की विरक्ति तथा बुद्ध धर्म में आस्था कुणाल का अन्धा किया जाना बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में विद्रोह[4] आदि सभी घटनाएं ऐतिहासिक हैं। तक्षशिला ज्ञान विज्ञान का केन्द्र था भारत का समस्त आयात निर्यात इसी प्रदेश से होता है इतिहास इस सत्य का साक्षी है।[5] विभिन्न छन्दों में रचित इस काव्य की भाषा

१- 'तक्षशिला नामक इस काव्य के लिखे जाने का कारण प्राचीन एशियाई तथा भारत की प्राचीन संस्कृति की महत्ता दिखाना ही है।' -- पृ० ४

२- भूमिका में, उदयशंकर भट्ट

३- 'वर्तमान रावल पिंडी से बीस मील दूरी पर हरो नदी तथा उसके साथी नालों द्वारा सिंचित उर्वर भूमि में श्रीराम के भाई भरत ने एक सुन्दर नगर बसाया और अपने बेटे तक्ष के नाम पर उसका नाम तक्षशिला रखा।'

-धर्मवीर एम.ए., पंजाब का इतिहास, प्रथम सं० १९५०, पृ० १५३

४- 'दिव्यावदान से मालूम होता है कि मौर्य सम्राट् बिन्दुसार के समय तक्षशिला में एक विद्रोह हुआ। बिन्दुसार ने अपना पुत्र अशोक शासक के रूप में भेजा।'

-धर्मवीर एम०ए०, पंजाब का इतिहास, पृ० ६४

५- R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta, An Advanced History of India, Page - 64.

समासपूर्ण तथा प्रवाहयुक्त है । कहीं कहीं काठिन्य दोष अवश्य आ गया है । कुणाल के अन्धे किए जाने का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक तथा भावनापूर्ण है । अलंकृत शैली सर्वत्र दर्शनीय है । अतीत के टूटे फूटे खंडहरों में करुणा के विराट दर्शन करके तथा उनसे प्रेरणा ग्रहण करके[१] उसे खंड काव्य का रूप दे देना खड़ी बोली में सम्भवत: `तक्षशिला` प्रथम प्रयास है ।

`आत्मोत्सर्ग`, `प्राणार्पण`

सन् १९३३ से १९४७ तक के समय में आधुनिक राष्ट्रवीरों के जीवन चरित्र से सम्बन्धित चार खंडकाव्यों का निर्माण हुआ । सियाराम शरण गुप्त तथा बाल कृष्ण शर्मा नवीन ने श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़े के कारण हुए आत्म बलिदान के प्रसंग को लेकर क्रमश: `आत्मोत्सर्ग`(१९३१) तथा `प्राणार्पण` खंडकाव्यों का निर्माण किया।

`आत्मोत्सर्ग` के कवि ने तीन खंडों में विभाजित इस रचना के प्रथम दो खंडों में विद्यार्थी जी की कर्मवीरता, दोनों वर्गों की वैमनस्य भावना को नष्ट करने

१- तीन चार मील दूर तक फैली हुई तक्षशिला की घाटी में मुझे भारतीय महत्व की गहरी झलक मिली । उसके एक-एक भग्न में मुझे भारत की आत्मा झलकती दीखी । एक एक खण्डहर मानों कोई पुराना किन्तु अस्पष्ट तथा करुण भरा गीत गा रहा था । एक एक स्तूप में, एक एक भग्न मूर्ति में करुणा की सूक्ष्म लहर उठ रही थी । दिन भर देखने और एक-एक जगह देखने के बाद मैं इतना तन्मय हो गया कि मुझे अपनी सुध-बुध भी न रही । रात को मेरे सामने वे ही खंडहर, वे ही मूर्तियां झूमती सी दिखाई देतीं । इतनी तन्मयता इतनी तल्लीनता मुझे अपने जीवन में कभी नहीं हुई ।

-- उदयशंकर भट्ट, भूमिका में

के उनके अनेक निर्भीक प्रयत्नों का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है।[1] तीसरे खंड में एक साम्प्रदायिक झगड़े की घटना को शान्त करने के लिए गए हुए विद्यार्थी जी (मुसलमानों के क्रूर प्रहारों के कारण) के ~~[illegible]~~ बलिदान का हृदयद्रावक चित्रण हुआ है।[2] विद्यार्थी जी समकालीन हैं अतः इतिहास असम्मत होने का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु ऐतिहासिकता के आधार पर घटनाओं एवं प्रसंगों के वर्णन में कवि की कल्पना एवं मार्मिकता प्रभावपूर्ण है। बालकृष्ण शर्मा नवीन के 'आत्मार्पण' में भी विद्यार्थी जी के इसी निर्भीक तथा कर्मवीर चरित्र का चित्रण हुआ है।

१- मैंने जिस विषय पर लिखा है, उसकी प्राणप्रतिष्ठा केवल वाणी से नहीं, विद्यार्थी जी के प्राणों से हुई है।

-सियाराम शरण गुप्त, आत्मोत्सर्ग के निवेदन में

२- विद्यार्थी जी के बलिदान का चित्रण निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है -

काम अभी बाकी था उनका
अब विद्यार्थी जी की ओर
करते हुए शोर दौड़े वे
क्रुद्ध भाव से क्रूर कठोर।
डोल उठी नीचे पृथ्वी भी
कांप उठा ऊपर आकाश
ज्योतिस्तंभ-तुल्य अविचल ही
खड़े रहे वे पुण्य-प्रकाश।

साथी सज्जन मुसलमान ने
शान्ति-हेतु बहु यत्न किया
'भागो' जान बचाओ' कह कर
पीछे उनको खींच लिया

शेष अगले पृष्ठ पर---

सिद्धराज (१९३६)

बारहवीं शताब्दी में राजस्थान में सोलंकी शासक कर्ण देव के पुत्र सिद्धराज जयसिंह की माता के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति से पूर्ण एक जीवन घटना को लेकर मैथिलीशरण गुप्त ने `सिद्धराज` खंडकाव्य की रचना की। मातृभूमि से पूर्ण सिद्धराज जयसिंह के विनम्र परन्तु वीर चरित्र का चित्रण करना कवि का उद्देश्य है। काव्य की घटनाओं में ऐतिहासिक तत्वों की सुरक्षा हुई है। किन्तु घटनाओं के वर्णन क्रम में ऐतिहासिक शृंखलता नहीं है स्वयं कविने भूमिका में भी यह बात स्पष्ट कर दी है[१]। कवि ने जीवन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। प्रतिभा सम्पन्न कवि की गम्भीर वर्णन शैली दर्शनीय है। अतुकान्त छन्द में लिखा गया यह काव्य पाटन और मालवे के मध्ययुगीन वीरों के शौर्यपूर्ण जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है[२]।

शैली---

`छोड़ो` तन कर कहा उन्होंने
छोड़ो मुझे, यहीं हूं मैं
नहीं भागनेवाला मैं
बस नामर्द नहीं हूं मैं।

+ +

लट्ठ-लाठियां-भाले-बल्लम
बरस उठे उनके ऊपर,
पूर्णाहुति हो गई, हुतात्मा
तत्क्षण दीख पड़ा भू पर।
उस शरीर के बन्दीगृह से
आत्मा वह उड्डीन हुई,
अमर ज्योति वह अमर ज्योति में
तदाकार तल्लीन हुई। --आत्मोत्सर्ग, खंड तीन, पृ०८७,८८

१- पुस्तक में जो घटनाएं हैं वे ऐतिहासिक हैं। परन्तु उनका क्रम संदिग्ध है। इसलिए लेखक नेउसे अपनी सुविधा के अनुसार बना लिया है। `-मैथिलीशरण गुप्त, `निवेदन`

२- अपने मध्यकालीन वीरों की एक झलक पाने के लिए पाठक सिद्धराज पढ़ेंगे तो उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। `--मैथिलीशरण गुप्त, निवेदन में।

बापू (१६३८)

अहिंसा, असहयोग तथा सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र प्रदाता जन-जन के नायक, झंझावातों में स्वतंत्रता दीपक को हथेली पर रख कर निर्भय भ्रमण करने वाले युग-नेता महात्मा गांधी के उज्ज्वल चरित्र का गान कवि सियाराम शरण गुप्त ने `बापू` खंड काव्य में किया। इस खंडकाव्य में बापू के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के चित्रण के साथ-साथ बापू के सर्वोच्च गुणों का श्रद्धा एवं भावपूर्ण वर्णन हुआ है। इक्कीस कविताओं में यत्र तत्र वर्तमान संकट पूर्ण अवस्था तथा ब्रिटिश साम्राज्य की दुर्नीति का उल्लेख करते हुए कवि ने युद्ध भय तथा भौतिक वादी मानव की नीच प्रवृत्ति का भी वर्णन किया है। ऐसे संकट पूर्ण समय में गांधी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व की छत्रछाया प्राप्त हो जाना भारत का सौभाग्य है --

तुम हे निखिल बन्धु, करते हो शान्ति पाठ,
प्रेम का अकड़ ठाठ
एक रस दीखता तुम्हारी पुण्य वीणा में
शुद्ध स्वर-लीना में।
पूर्ण आत्म-प्रत्यय है तुमको,
आशा के सुकोमल कुसुम को
मानस में होने नहीं देते म्लान
जीवन का करके स्वरस दान । (पृ० ४१)

मानव नाश के कगार पर खड़ा है। बल शक्ति के मद में चूर चूर हो रहा है। दुर्निवार तृष्णाकी तृप्ति का कोई पार नहीं। संस्कृति के वेश में जघन्य असंस्कृति पनप रही है। बुद्धि-बल आज विश्व का महा अभिशाप बन रहा है ऐसे कठिन समय में दया के दूत को पाकर धन्य हो उठे--

धन्य भाग्य ! - प्रभु की दया से हे दया के दूत,
ऐसे में हुए तुम प्रादुर्भूत;
तृष्णा के निवारण-से
डूबते हुए में समुत्तारण-से ।

हाथ में तुम्हारे प्रेम-मन्त्र-पूत
  शोभित अमर सूत
देख कर नूतन अभय मैं
आशा जगी विश्व के हृदय में । (पृ० ५०)

वे लोकगुरु हैं, लोक के पुंजीभूत अनुताप के उद्धारक हैं, जीवन की स्थिरता का एक मात्र आधार हैं । इसी भांति कवि की श्रद्धा अनेक स्थलों पर शतशः खण्डों में विभक्त होकर फूट पड़ी है । गांधी के वैविध्यपूर्ण जीवन रस से जितने बिन्दु इस काव्य में छिटके हैं सरस तथा भावनापूर्ण हैं । `गांधी गौरव` में यदि वर्णनात्मकता का प्रवाह है तो `बापू` में बापू के व्यक्तित्व के अन्तर्गत तथा बहिर्गत की सूक्ष्म अभिव्यक्ति दर्शनीय है । सम्पूर्ण कविताएं इस क्रम से रखी गई हैं कि उनमें एक सूत्रता आ गई है जो इस काव्य को खंड काव्य के समीप ले जाती है ।

दुर्गावती (१९४०)

गढ़मंडला की वीर राजपूत रानी दुर्गावती के ऐतिहासिक वीरतापूर्ण चरित्र का अंकन रामेश्वर शुक्ल ने `दुर्गावती` खंडकाव्य में किया है । काव्य के आरंभ में ही महारानी दुर्गावती की चिन्तित मनःस्थिति का चित्रण अत्यन्त भावपूर्ण है । सात वर्ष के कुमार तथा महारानी के संवाद आकर्षक हैं । भाषा सरल तथा ओजमयी है ।

कुणाल (१९४३)

ऐतिहासिक पात्र कुणाल को लेकर सोहनलाल द्विवेदी जी ने `कुणाल` खंड काव्य की रचना की । सम्पूर्ण काव्य की कथा पाटलिपुत्र,कुणाल,तारुण्य अशोक,तिष्यरक्षिता प्रणयन निवेदन, अनुताप, प्रतिशोध, वर , निर्वासन,पथ-गीत, प्रत्यागमन पुनर्मिलन, दामादान ,राज्याभिषेक आभार इत्यादि शीर्षकों में विभाजित की है । कुणाल की आंखें निकलवाने की घटना का चित्रण समस्त कथा का सूत्र है । सौतेली मां तिष्यरक्षिता की आसक्ति से उत्पन्न प्रतिक्रिया के कारण कुणाल के जीवन का आदर्श तथा त्याग का चित्रण प्रभावपूर्ण है । कथा चित्रण में

'ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण की ओर भी ध्यान रखा गया है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था तथा विशेषताओं का चित्रण भी उचित स्थान हुआ है । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से कथानक के गीत सुन्दर हैं । इस चित्रण में कुणाल के सौन्दर्य शील तथा पुरुषत्व का चित्रण सुन्दर है । गीतों में भावात्मक सौन्दर्य उल्लेखनीय है तथा तिष्यरक्षिता के पश्चाताप एवं प्रतिक्रिया में उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण भी उल्लेखनीय है । कथानक का विकास स्वाभाविक गति से हुआ है । कवि ने निर्वासन के पश्चात् पुनर्मिलन के बीच में केवल 'कुछ पथ गीतों' की योजना की है जिससे कुणाल के हृदय के विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है । गत काल का संकेत 'प्रत्यागमन' में मगध के राज पथ में हुए अनेक परिवर्तनों द्वारा किया गया है । समय की गति के साथ साथ ऋतु चक्र हो गया है । ताम्रलोहित पत्र जीर्ण हो गए हैं तथा अनेक वृक्ष वृद्ध हो गए हैं । इस संकेत से काव्य में कथानक की सूत्रबद्धता के साथ ही काल दोष का भी निवारण हो जाता है । रस की दृष्टि से काव्य में शान्त रस प्रधान है प्रमुख पात्र कुणाल का जीवन त्याग, आत्म सन्तोष तथा शान्त भावों से पूर्ण है । चरित्र-चित्रण कुणाल तथा तिष्यरक्षिता का अधिक प्रभावपूर्ण है । कांचन को अधिक स्थान नहीं मिल सका है । ऐतिहासिक घटना की दृष्टि से एक प्रसंग पाठक के लिए भ्रम उत्पन्न करता है कि कुणाल तक्षशिला क्यों भेजा ?' इतिहास से अनभिज्ञ पाठक के लिए इस घटना की स्पष्टता आवश्यक थी[१]। काव्य की प्रमुख घटनाएं ऐतिहासिक हैं । तिष्यरक्षिता का कुणाल के सौन्दर्य से प्रभावित होकर प्रेम निवेदन, कुणाल द्वारा प्रेम की अवहेलना तथा तिष्यरक्षिता द्वारा आंखें निकलवाना ऐतिहासिक तथ्य है[२]।

१- कुणाल में कवि ने कथा के साथ-साथ चलने का प्रयास अवश्य किया है पर एक स्थल पर उससे भारी भूल हो गई है । पाटली पुत्र से कुणाल तक्षशिला कैसे और क्यों पहुंचा इसका कहीं भी निर्देश नहीं है । अत: जो इतिहास कथा से अनभिज्ञ है, उन्हें तिष्यरक्षिता के तक्षशिला पत्र भेजने का मतलब समझ में नहीं आ सकेगा। कथा का यही सूत्र प्रबन्ध काव्य को उठानेवाला है और दुर्भाग्य से यही टूटा हुआ है ।' -- डा० विनयमोहन शर्मा, विशाल भारत, अगस्त १९४३।

२- इन घटनाओं की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसी अध्याय से पहले विचार किया जा चुका है ।

बापू (सन् १९४७)

मानव जाति के लिए आदर्श के प्रतीक `बापू` के अतिमानवीय अलौकिक गुणों का चित्रण कवि रामधारी सिंह `दिनकर` ने `बापू` शीर्षक काव्य में किया।[१] कवि के स्वर में मानो जन जन की अभिव्यक्ति हुई है। प्रथम भाग में बापू मानवता के पुजारी, शान्ति दूत तथा वन्दनीय हैं किन्तु `महाबलिदान`, वज्रपात, अघटन घटना, क्या समाधान, के छन्दों में उस `महामानव` के लिए आँसुओं का सागर उमड़ पड़ा है। कवि पुकार-पुकार कर उस महादेवता को महाप्रयाण के पथ से लौटा लाना चाहता है, नगराज उसका पन्थ रोक ले, अंबर क्यों शून्य दृष्टि से क्या देख रहा है, भागते हुए बापू के चरणों को पकड़ कर रोक क्यों नहीं लेता? कवि का अंतर्मन अकुला रहा है। चालीस कोटि के प्राण, आशा, अभिमान, सभी कुछ बापू में केन्द्रीभूत हुए जा रहे हैं किन्तु सभी मौन-मूक भाव से व्यथा के कण बिखराते हुए खड़े हैं। `बापू` खंड में जहां एक ओर विकल मानवता को इतिहास से कुछ चित्र दिखा कर कवि ने मानवता के रक्षक के प्रति भावनामय उद्गार प्रकट किये हैं वहां महा-बलिदान के छन्दों में उसके आकुल हृदय के हाहाकार की छटपटाहट है। कवि का भावातिरेक महापुरुषत्व से आगे बापू में देवत्व की प्रतिष्ठा करता है उसका विराट् रूप उसके छन्दों में समा ही नहीं पाता बापू अतिमानव हैं --

तू कालोदधि का महास्तंभ,
आत्मा के नभ का तुंग केतु,
बापू! तू मर्त्य- अमर्त्य,
स्वर्ग-पृथ्वी भू-नभ का महासेतु।[२]

१- तू सहज शान्ति का दूत, मनुज-
के सहज प्रेम का अधिकारी
दृग में उँडेल कर सहजशील
देखती तुझे दुनिया सारी। पृ० ४

२- पृ० ३३

भावातिरेक के कारण वर्णन आवेगपूर्ण है । भाषा में विलक्षणता दर्शनीय है। यत्र तत्र सम्बोधन शैली अपनाई है ।

कदम कदम बढ़ाए जा (१९५४)

आजाद हिन्द फौज के अमर सेनानी सुभाष चन्द्र बोस की ऐतिहासिक जीवन गाथा को आधार बना कर कवि गोपाल प्रसाद व्यास ने `कदम कदम बढ़ाए जा` खंडकाव्य का निर्माण किया । मध्ययुगीन वीरों तथा वर्तमान राष्ट्रवीरों का जय गान करने के पश्चात् कवि ने राष्ट्रवीर सुभाष बोस की कथा को वाणी प्रदान की है । नेता जी का भारत से प्रस्थान, सेनानी का संदेश, खूनी हस्ताक्षर, धन और जन, नेता जी का तुलादान, गांधी जयन्ती, दिल्ली की ओर कूच, मुकदमा और मुक्ति, स्वागत तथा मुक्तिपर्व खंडों में विभाजित यह खंडकाव्य वीररस से पूर्ण है । `नेता जी का तुलादान` प्रसंग में कवि ने करुणा की धारा प्रवाहित की है । ऐतिहासिक तथ्यों का भावात्मक चित्रण इस काव्य में प्रस्तुत हुआ है ।

खंडकाव्य की शैली में रचे गए सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य के उपर्युक्त स्वरूप को देखते हुए दो बातें स्पष्ट होती हैं । एक तो अधिकांश खंडकाव्यों के विषय राजस्थान के गौरव तथा आदर्शपूर्ण इतिहास से चुने गए हैं जिनमें शृंगारि क्रीड़ा के स्थान पर आत्मबलिदान एवं देश प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है । इसे[१] द्विवेदी युग का प्रभाव कहा जा सकता है। दूसरे द्विवेदी युग के बाद के खंडकाव्यों में शैली एवं भाव की दृष्टि से भी अन्तर परिलक्षित होता है । स्थूल वर्णन अथवा कथा की इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर पात्रों के आन्तरिक मनोभावों का चित्रण भी खंडकाव्यों में हुआ है।

०

१-द्विवेदी युग की कविता में शृंगार भावना के स्थान पर आदर्श भावना को स्थान प्राप्त हुआ इस सम्बन्ध में डा०विनयमोहन शर्मा के शब्द उल्लेखनीय हैं--

`उन्होंने कविता में शृंगार भावनाओं के क्रीड़ाविलास को भी प्रोत्साहित नहीं किया वे जाति को सबल बनाने की दृष्टि से नीति और सदाचार पर अधिक आग्रह प्रदर्शित करते थे। अत: उनका काल आदर्शवाद की धारा को प्रवाहित करने वाला युग कहा जाने लगा ।`-- साहित्यावलोकन , पृ० ४

(ख) मुक्तक काव्य :-

पद्य प्रबन्ध तथा खंड काव्य के अतिरिक्त मुक्तक शैली में भी अनेक ऐतिहासिक कविताओं का प्रणयन इस आलोच्यकाल में हुआ । इन कविताओं में कथा-अंश होते हुए भी कविगत अथवा पात्रगत भावना विशेष महत्व की वस्तु रही है । इन भावनात्मक कविताओं में कतिपय कविताएं ऐसी भी हैं जिनमें केवल एक ही भाव की प्रधानता है तथा उस भाव विशेष की ही अभिव्यक्ति विभिन्न छन्दों में की गई है । कतिपय कविताएं वे हैं, जो भाव प्रधान तो हैं, किन्तु इनमें पात्रों की मन:स्थिति का विश्लेषण किया गया है । इन कविताओं में ऐतिहासिक पात्रों की मानसिक अवस्थाओं के सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं । उपर्युक्त कविताओं के आधार पर मुक्तक काव्य को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है--

(१) मनोविज्ञान-परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

(२) भाव-परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य

इन दोनों श्रेणियों के सूक्ष्म अन्तर कोनिम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है । मनोविज्ञानपरक कविताओं में मानसिक अवस्था का चित्रण ही महत्वपूर्ण होता है। किसी विशिष्ट घटना अथवा परिस्थिति से उत्पन्न जो विविध भाव एक ही समय में पात्र के मानस को उद्वेलित करते रहते हैं उस स्थिति को मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दी जाती है । इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में अनेक भाव निहित रहते हैं, जब कि भाव परक स्थिति में केवल एक ही भाव-भूमि रहती है । उसमें इतना उद्वेग और विप्लव नहीं होता । वह केवल चिन्तन का एक दिशागामी अभिव्यक्तिकरण है किन्तु मनोविज्ञान परक कविताओं में अनेक भावों की पारस्परिक सन्धि तथा अन्तर्सन्धि इस प्रकार संयोजित होती है कि तथ्यगत निष्कर्ष अत्यन्त ऊहापोह के साथ प्राप्त होता है । मानसिक स्थिति में विप्लव उत्पन्न करने वाले विविध भावों का आवर्तन, परिवर्तन, विवर्तन और व्यावर्तन अन्तर्हित रहता है ।मनोविज्ञान तथा भावपरक ऐतिहासिक मुक्तक रचनाओं में अनेक अवस्थाओं के चित्र दिये जा सकते हैं जैसे संदेह उद्बोधक ,विषाद उद्बोधक,उल्लास उद्बोधक तथा उद्वेग उद्बोधक आदि । ऐतिहासिक मुक्तक काव्य में ये अवस्थाएं कविगत एवं पात्रगत दोनों प्रकार की हो सकती हैं । यहां ऐतिहासिक मुक्तक काव्य से मनोविज्ञान परक एवं

भावपरक कविताओं के कतिपय उद्धरण देना समीचीन होगा।

श्री जयशंकर प्रसाद की आख्यानक रचनाएं भाव परक एवं मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। 'लहर' संग्रह की चार ऐतिहासिक कविताएं इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। 'शेरसिंह शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'अशोक की चिन्ता', 'प्रलय की छाया' रचनाओं में मनोविज्ञान परक एवं भाव परक सौन्दर्य दोनों ही का उद्घाटन हुआ है।

(१) <u>मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य:-</u>

'प्रलय की छाया' मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य के अन्तर्गत एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। गुजरात के महाराजा कर्णदेव को पराजित करके अलाउद्दीन खिलजी महारानी कमला को पकड़ कर दिल्ली ले आया और उसे अपनी बेगम बना लिया।[1] महारानी यदि चाहती तो उसकी बेगम बनने से पूर्व वीर राजपूत नारियों की भांति अपने जीवन का अन्त कर सकती थी परन्तु रूप-गर्व से उत्पन्न मनोविकारों ने ऐसा करने से रोक लिया। कविता में प्रसाद जी ने एक कुशल मनोवैज्ञानिक की भांति महारानी कमला के विगत मनोविकारों तथा मानसिक अव्यवस्था का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। विगत जीवन के मनोविकार महारानी के मानस-पटल पर पुन: पुन: बिखर आते हैं। कविता का आरम्भ ही जीवन की निराशा से होकर उसकी परिणति विषाद-भाव में हुई है।

---

1. The first state doomed to extinction was Gujrat....... It was now ruled by Raja Karan the, Vaghela, Alauddin sent an army from Delhi.... The country was over run, the capital was occupied, and Karan was forced to flee. Malik Naib was sent.... to capture the daughter of Karan of Gujrat, whom her mother, now a member of Royal harem wished to see.....
The Cambridge Shorter History of India, Page - 223, 226.

महारानी कमला का रूप यौवन ढल गया, वह जीवन की संध्या में श्वास ले रही है ।

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में
और उस दिन तो ----

अर्थात् एक दिन वह भी था जब समस्त प्रकृति उसके रूप सौन्दर्य को सजाने संवारने में संलग्न था । वह रूपवती थी, उसे अपने रूप पर गर्व था ।महारानी कमला के नेत्रों में सम्पूर्ण अतीत नृत्य कर उठा जब अलाउद्दीन खिलजी के हरम में बन्दिनी कमला का मन इस सौन्दर्य के गर्व के कारण अनेक प्रकार के मनोविकारों से ग्रस्त हो उठा था । इस विचार शृंखला में कमला के मानसिक संघर्ष की अनेक अवस्थाओं की व्यंजना हुई है -

बन्दिनी मैं बैठी रही
देखती थी दिल्ली कैसी विभव विलासिनी ।

उसने आत्महत्या का विचार किया परन्तु रूप का गर्व उसके समीप आ कर खड़ा हो गया ।कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का,कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति, क्षण भर चाहती जगाना मैं,
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में ।

सतीत्व रक्षार्थ मरने का विचार शिथिल हो गया । जीवन नष्ट करने का अधिकार उसे नहीं है । जीवन सौभाग्य है--अलभ्य है ।और वह ईश्वर प्रदत्त उस अलभ्य जीवन को नष्ट करना चाहती है? सम्पूर्ण चेतन जगत प्रत्येक क्षण जीवन दान मांग रहा है-

व्याकुल हो विश्व , अन्धतम से
भोर में ही मांगता है
जीवन की स्वर्णमयी किरणें प्रभाभरी
जीवन ही प्यारा है जीवन सौभाग्य है

जीवित रहने की उत्कंठित आकांक्षा तथा रूप के बल पर पुरुष के हृदय को जीतने की कामना प्रबल हो उठी । जौहर की ज्वालाओं में कूद कर प्राण देने वाली

राजपूत नारियों के प्रति स्पर्धा जाग्रत हो उठी । अपने ध्येय के समक्ष उसे वे तुच्छ जान पड़ीं। उसने अलाउद्दीन के हृदय पर साम्राज्य किया परन्तु एक दिन रूप के ढल जाने पर सहसा महारानी को जीवन की सार्थकता और जीवन के सत्य का आभास होता है । मनोविकारों के जिस मायास्तूप ने विशाल आधार ग्रहण किया था वह लुप्त हो रहा है तथा महारानी का आत्म प्रवंचित हृदय विषाद की गहरी छाया से पूर्ण हो उठा है ।

एक मायामय स्तूप सा
हो रहा है लोप इन आंखों के सामने
देख कमलावती ।
ढुलक रही है हिम बिन्दु-सी
सत्ता सौंदर्य के चपल आवरण की ।

इस प्रकार इस कविता के विचार संघर्ष में महारानी के संदेह,उल्लास ,उद्वेग तथा विषाद पूर्ण भावों का अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत हुआ है । यह एक लम्बी कविता है ,परन्तु किसी कथा से सम्बन्धित न होकर मानस की विभिन्न संघर्ष पूर्ण अवस्थाओं का चित्रण है अतः प्रबन्धात्मकता से इसका सम्बन्ध न होने के कारण इसे मुक्तक काव्य की कोटि में ही रखना उचित प्रतीत हुआ है । पात्र गत मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्त काव्य की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ कविता है । `शेरसिंह का शस्त्र समर्पण`भी इसी श्रेणी की रचना है ।`चिलियानवाला` के स्थान पर सिक्खों के दूसरे युद्ध में सिक्ख ब्रिटिश फौज से पराजित हुए थे तथा उन्हें हथियार डालने पड़े थे[1] । पराजित वीर शेरसिंह[2] के मानसिक क्षोभ से उत्पन्न विविध भावों का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत हुआ है । शेरसिंह यह स्वीकार नहीं कर पाता कि शक्तिहीनता के कारण सिक्ख जाति पराजित हुई है । वह सिक्ख जीना जानते हैं । वे वीरता के साकार रूप हैं । मृत्यु का संदेश देने वाले आग के गोले और बारूद उनके लिए--------------------

१- के० एस०नारंग ,डा०एच०आर०गुप्ता,हिस्ट्री आव दी पंजाब, पृ० ३६५

२- शेरसिंह महाराज रणजीत सिंह का लड़का था । खड्गसिंह के पश्चात् यह महाराजा बना था ।

लिए गेंद के समान क्रीड़ा के साधन हैं । रक्त की नदी में वे बार ऊँची हाथी करके तैरना जानते हैं । यह शतद्रु सिक्ख जाति के गौरव की कहानी कहती हुई प्रवाहित हो रही है किन्तु आज वह गौरव, वह वीरता अतीत की गाथा बन गई है । सिक्ख जाति के गौरव का स्मरण आते ही शेरसिंह का हृदय गर्व से भर उठा-

कहेगी शतद्रु शत-संगरों की साक्षिणी
सिक्ख थे सजीव
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे
जीना जानते थे
मरने को जानते थे सिक्ख ।

परन्तु तुरन्त ही वह गर्व विषाद से पूर्ण हो उठा-

किन्तु आज उनकी अतीत वीर गाथा हुई
जीत होती जिसकी
वही है आज हारा हुआ

धोखे की आग में पंचनद के वीर और मातृभूमि के सपूत हो गए । पंचनद प्रदेश के जीवित कलुष लालसिंह[१] को सम्बोधित करते हुए शेरसिंह की मानसिक वेदना साकार हो उठी-

`लालसिंह! जीवित कलुष पंचनद का
देख दिए देता है
सिंहों का समूह नखदन्त आज अपना।`

----------------- -----

१-लालसिंह प्रथम सिक्ख युद्ध में सिक्ख सेना का सेनापति था किन्तु ठीक घोर कुछ युद्ध के समय उसने विश्वासघात किया तथा अंग्रेजों से जा मिला । सैन्य संचालन के अभाव में वीर किन्तु असहाय सिक्ख सेना पराजित हुई । इस प्रथम पराजय का कलंक देशद्रोही लालसिंह के माथे लगा उसके विश्वासघात से इतिहास ही बदल गया । — के०एस०नारंग,डा०एच०आर गुप्ता,हिस्ट्री आफ दि पंजाब,पृ० ३६०

सम्पूर्ण कविता में पराजित वीर शेरसिंह के मानसिक अंतर्द्वन्द्व का विश्लेषण हुआ है । सिक्ख जाति के वीरत्व का गर्व और छल से प्राप्त पराजय की वेदना के विविध भावों की अभिव्यक्ति सम्पूर्ण कविता की आत्मा है ।

ये दोनों कविताएं पात्रों के स्वगत चिन्तन के कारण पात्रगत मनोविज्ञान परक ऐतिहासिक मुक्त काव्य की कोटि में आती हैं । इतिहास की भावभूमि पर आधारित मनोविश्लेषणात्मक रचनाएं केवल प्रसाद काव्य में ही उपलब्ध होती है ।

(२) भावपरक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य:-

भाव परक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं । प्रसाद जी की `अशोक की चिन्ता` पात्रगत भाव परक ऐतिहासिक मुक्त रचना का सुन्दर उदाहरण है ।`अशोक की चिन्ता में` हिंसा की प्रतिक्रिया से उत्पन्न अहिंसा का भाव ही प्रमुख है । मानवता का रक्तपात देखकर सम्राट अशोक का हृदय कांप उठा । रक्तपात की तीव्र प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप अशोक का हृदय `धारुण संसृति के विदग्ध वर्णों में अनुलेप सदृश लग जाना चाहता है । दुखाग्नि में तपते हुए जग जग पर वह करुणा की तरंग बन कर बह जाना चाहता है ---

जलती वसुधा तपती नग
दुखिया है सारा जग जग
बह जा बन करुणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग

इस कोटि में कविगत भाव की अभिव्यक्ति करने वाली भी अनेक रचनाएं हैं ।`पेशोला की प्रतिध्वनि` प्रसाद की भावपरक रचना है । कविगत भावना का यह एक सुन्दर उदाहरण है पेशोला के तरल जल मण्डलों में वीर प्रताप की गूंज सुन कर कवि का हृदय क्षोभ से भर उठा । आज महाराणा के शब्दों की गूंज भी सुनी जा सकती है उसकी ध्वनि की प्रतिध्वनि नहीं-

आज भी पेशोला के
तरल जल मण्डलों में

मर्मी शब्द घूमता -सा
गूंजता [illegible] विकल है।
किन्तु वह ध्वनि कहां ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहां ?

रामधारी सिंह `दिनकर` की ऐतिहासिक मुक्तक रचनाओं[१] में कविगत भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वर्तमान की अधोगति के क्षोभ से कवि का मन भर उठता है और वह अतीत के गौरव का स्मरण करने लगता है ।`कलम के नाम पर` तथा `वैशाली आदि कविताएं इस कोटि की सुन्दर रचनाएं हैं । इन रचनाओं में विषाद उद्बोधक भाव प्रमुख है । इन कविताओं के अतिरिक्त विभिन्न कवियों की दिवंगत ऐतिहासिक राष्ट्र नेताओं के प्रति श्रद्धांजलियां तथा अतीत के वैभव के प्रतीक वर्तमान के खंडहरों के प्रति लिखी हुईमुक्तक रचनाएं शैली की दृष्टि से कविगत भावपरक ऐतिहासिक मुक्तक काव्य के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं । इन रचनाओं में भी विषाद का भाव ही प्रमुख है ।`ताज महल` पर लिखी हुई रचनाओं में कवि का सौन्दर्य-भाव अथवा प्रेम-भाव मुख्य भाव है अत: इन रचनाओं में विषाद अथवा शोक आदि भावों के स्थान पर कवि का प्रच्छन्न उल्लास ही व्यंजित होता प्रतीत होता है । इस प्रच्छन्न उल्लास में शाहजहां के प्रति हल्की सी विषाद रेखा कहीं कहीं अवश्य दिखाई पड़ जाती है । सुमित्रानन्दन पंत रचित `ताजमहल` रचना सर्वथा भिन्न है । ताजमहल सरीखे भव्य भवन के रूप में कवि मृत्यु का अमर अपार्थिव पूजन देख कर क्षोभ और विषाद एक साथ प्रकट करता है । श्रद्धांजलियों में `लाला लाजपत राय` लोकमान्य तिलक` तथा `बापू` आदि ऐतिहासिक राष्ट्र वीरों के निधन के शोक में डूब कर लिखीं विभिन्न कवियों की रचनाएं भावपूर्ण श्रद्धांजलियां हैं । आलोच्यकाल में इस प्रकार की असंख्य रचनाओं का निर्माण हुआ ।` सूत की माला` तथा `खादी के फूल` काव्यसंग्रहों में हरिवंशराय बच्चन तथा सुमित्रानन्दन पन्त की क्रमश: रचनाएं उल्लेखनीय हैं । भाव

१- इतिहास के आंसू (संग्रह)से

सन् १९४८ की सरस्वती में अनेक लेखकों की बापू के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलियां भी उल्लेखनीय हैं । खंडहरों में सोहनलाल द्विवेदी कृत 'हल्दीघाटी' के प्रति'[1] 'मुंशी अजमेरी 'सीकरी'[2] श्री फादर हरियानवी 'नूरजहां का मकबरा'[3] कुंवर सोहन सिंह सेंगर ;इन्द्र-प्रस्थ के खंडहरों से[4] आदि अन्य अनेक कवियों की रचनाएं उल्लेखनीय हैं । इन सभी रचनाओं के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध तथा महात्मा गांधी के व्यक्तित्व सम्बन्धी मुक्त रचनाएं तथा ऐतिहासिक सन्दर्भ में लिखी गयीं अन्य भाव पूर्ण मुक्तक रचनाएं कविगत ऐतिहासिक मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही परिगणित की जायेंगी ।भाव परक ऐतिहासिक कविताओं में कविगत तथा पात्रगत का भेद एक सूक्ष्म भेद ही है । दोनों प्रकार की रचनाओं में कवि की अनुभूति का ही विशेष महत्व है । तथापि स्वगत चिन्तन करते हुए पात्रों की भावनाओं का महत्व कविगत भावनाओं से कुछ भिन्न हो जाता है । कवि की अनुभूति के माध्यम से पात्रगत भावपरक रचनाओं में पात्रों के स्वतंत्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है ।

ऐतिहासिक मुक्तक काव्य का उपर्युक्त विवेचन प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दो भागों में विभक्त ऐतिहासिक मुक्तक काव्य में सूक्ष्म अन्तर है ।मनोविज्ञानपरक रचनाओं में पात्रों के मानसिक विप्लव का विशेष महत्व है जब कि भाव परक रचनाओं में यह मानसिक विप्लव नहीं होता वरन् एक ही भाव की अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से होती है । यह ऐतिहासिक मुक्तक काव्य छायावाद एवं प्रगतिवाद के साहित्यिक युगों में ही निर्मित हुआ है । अत: इन रचनाओं पर छायावाद की सूक्ष्म अभिव्यंजना शैली एवं प्रगतिवाद की वर्तमान के संघर्ष पूर्ण जीवन के प्रति क्रान्तिकारी एवं आक्रोशपूर्ण प्रवृत्ति का प्रभाव (दिनकर की ऐतिहासिक कविताओं में) देखा जा सकता है।

१- सरस्वती, दिसम्बर १९३०
२- विशाल भारत, मई १९३२
३- वही , मई , १९३३
४- सरस्वती, नवम्बर १९३६

ऐतिहासिक काव्य के अन्तर्गत मुक्तक काव्य शैली विशेष महत्वपूर्ण है। भावना के उन्मेष में किसी घटना या पात्र के विशिष्ट जीवन-चित्र को लेकर कवियों ने उक्त ऐतिहासिक संदर्भ में काव्य की योजना कर दी है। ऐसी स्थिति में काव्य ने किसी घटना-रेखा का आश्रय न लेकर घटना-बिन्दु का आश्रय लिया है और उस घटना बिन्दु या चरित्र सौन्दर्य को मुक्तक का रूप प्रदान किया है। यह शैली वास्तव में कवि के भाव जगत् की इतिहास के प्रति एकान्त निष्ठा है।

(ग) गीति काव्य

आत्मगत भावों से समन्वित कविता में गेयता का समावेश होने से वह गीत बन जाती है । गीत की परिभाषा के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा के विचार उल्लेखनीय हैं —

'साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके ।'[1]

इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि गेयता तथा आत्मनिवेदन गीत के दो अनिवार्य तत्त्व हैं । प्रो० सुधीन्द्र ने गीत शैली में 'गीत विधान' को भी महत्त्वपूर्ण अंग माना है ।[2] केवल आत्मनिवेदन को यदि गीत का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया जाय तो ऐतिहासिक काव्य में प्राप्त अनेक रचनाएं गीतिकाव्य की श्रेणी में नहीं आ पायेंगी और यदि केवल गीत-विधान को ही प्रमुखता दी जाय तो

१- महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४७

२-' केवल गेय होना ही गीतत्व नहीं है । मानस की चौपाई और रहीम के दोहे, मतिराम के सवैये और भारतेन्दु के कवित्त तक रेडियो पर गाये जाते हैं, अमिताक्षर छन्द भी गाये जा सकते हैं । वस्तुत: 'लय' ही छन्द को गेय बनाती है । फिर गीतत्व किसमें है ? आत्मगतता एक मुख्य लक्षण है किन्तु वह धर्म गीत के आत्म विन्यास का है, शरीर-विन्यास का नहीं। वस्तुत: गीत की आत्मा आत्मानुभूति है और गीत का शरीर गेयता है । गेयता का अर्थ है गीतात्मक एकसूत्रता।गीत में सारा सौन्दर्य स्थायी के आवर्तन पर निर्भर है, इसलिए अन्तरा का विधान आवश्यक है । गीत के स्फुट अन्य मुक्तक मुक्त होकर भी भाव-सूत्र में ग्रथित रहते हैं, यही गीतात्मक एकसूत्रता है।...इस दृष्टिकोण से देखने पर बहुत सी ऐसी आत्मगत कविताएं जिनमें गीत विधान नहीं होता, गीत की कोटि से गिर जाती हैं ।'जुही की कली' या 'झरना' की कई मुक्तक कविताओं या पन्त की 'स्वप्न', 'छाया' आदि कविताओं को भी गीत विन्यास के अभाव में 'गीत' की श्रेणी में किसी भी प्रकार नहीं बिठाया जा सकता है ।'

— हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ४३८

आधुनिक खड़ी बोली में विकसित विभिन्न गीत शैलियों में लिए गए ऐतिहासिक गीत जिनमें `गीत विधान` की दृष्टि नहीं है गीतों की श्रेणी में नहीं आ सकेंगे। अत: आत्मनिवेदन तथा गीतविधान के अतिरिक्त आधुनिक युग में विकसित अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कारण गीत शैलियों में जो अन्य विशेषताएं प्राप्त होती हैं, उनके आधार पर ऐतिहासिक काव्यों को दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है ।

(१) स्फुट गीत

(२) अभिनयात्मक गीत

ऐतिहासिक काव्य में स्फुट गीत विभिन्न शैलियों में लिखे गये हैं । गुप्त जी `कुणाल गीत` के गीत पदगीत शैली में लिए गए हैं।इन गीतों में कोई कथासूत्र नहीं मिलता, कुणाल की मनोभूमि के विभिन्न भाव इन गीतों के विषय हैं जो कवि के रागात्मक निर्वाचन से पूर्ण हैं अत: विषय की दृष्टि से ये गीत भावगीत कहे जा सकते हैं ।अंग्रेजी प्रभाव के कारण स्फुट गीतों की श्रेणी में ही सम्बोधन गीत भी लिखे गये हैं खड़ी बोली में इस शैली का पर्याप्त प्रचलन हुआ है ।`बुद्ध देव के प्रति`[1], `शाहजहां के प्रति`[2] `इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों से`[3], `हल्दीघाटी के प्रति`[4], `बापू के प्रति`[5] `महात्मा जी के प्रति`[6], तथा `भगवान बुद्ध के प्रति`[7] आदि आदि शीर्षक कविताएं ऐतिहासिक सम्बोधन गीतों के सुन्दर उदाहरण हैं । अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से ही शोकगीतों (ऐलिजी)की शैली भी हिन्दी काव्य में प्रचलित हुई । राष्ट्र-नेताओं के निधन पर लिखी गयीं रचनाएं शोकगीत कही जा सकती हैं ।`ठाकुर गोपालशरण सिंह द्वारा रचित`दीनबन्धु एन्ड्रूज की स्मृति में`[8],मार्च १९४८ की`सरस्वती` में महात्मा गांधी

१- पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सरस्वती, जुलाई,१९२०

२- आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, ,, ,, १९२९

३- कुंवर सोहनसिंह सेंगर ,, नवम्बर १९३६

४- सोहनलाल द्विवेदी ,विशाल भारत ,दिसम्बर १९३१

५- सुमित्रानन्दन पन्त, सरस्वती , जनवरी, १९४०

६- ,, ,, , ,, मार्च, १९४०

७- सूर्यकान्त त्रिपाठी`निराला`,अणिमा`संग्रह से

८- विशाल भारत, मई,१९४०

के निधन पर लिखी अनेक रचनाएं तथा वर्तमान युग के अनेक दिवंगत राष्ट्रीय नेताओं की स्मृति में लिखी रचनाएं शोकगीत के सुन्दर उदाहरण हैं । स्फुट काव्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक काव्य के अन्तर्गत कतिपय ऐसी रचनाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें कथा-अंश की प्रधानता है परन्तु गेयता तथा गीतिकाव्य की अन्य प्रवृत्तियों से युक्त होने के कारण ये प्रबन्ध काव्य की कोटि में न आकर गीतिकाव्य की कोटि में आती हैं। `झांसी की रानी`[1], `वीरपंचरत्न`[2], `विकट भट्`[3], `महाराणा का महत्व`[4] (गीतिरूपक) `मगध महिमा`[5] (पद्य नाटिका) , `अनघ`[6] (गीतिरूपक) आदि रचनाएं कथात्मक रचनाएं हैं `महाराणा का महत्व`, `अनघ` `विकट भट्` तथा `मगध महिमा` रचनाओं में अभिनयात्मकता की प्रधानता है अतः ये रचनाएं नाट्य-साहित्य में परिगणित की जानी चाहिए परन्तु इनमें सहित पद्यबद्धता ,अभिनयात्मकता तथा गीतितत्व को ध्यान में रखते हुए इन रचनाओं को अभिनयात्मक गीत कहना उचित प्रतीत होता है । डा० कृष्णलाल ने आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास` पुस्तक में इनमें से अधिकांश काव्यों में प्रबन्ध-काव्य की धारा के ही अन्तर्गत `आख्यानक गीति`[7] नाम दिया है । कथात्मक होने के

१- सुभद्राकुमारी चौहान

२- लाला भगवान दीन

३- मैथिलीशरण गुप्त

४- जयशंकर प्रसाद

५- रामधारी सिंह `दिनकर`

६- मैथिलीशरण गुप्त

७- `प्रसिद्ध अंग्रेजी समालोचक हडसन के मतानुसार आख्यानक गीति एक पद्यबद्ध कहानी है। इसमें युद्ध-वीरता और पराक्रम के कृत्यों का प्राधान्य रहता है और प्रेम घृणा करुणा इत्यादि जीवन के सरलतम अभिभाव इसे प्रेरणा-शक्ति प्रदान करते हैं। इसकी शैली भी बहुत ही सरल और स्पष्ट होती है । इसमें वर्णन प्रवाह का स्वच्छन्द वेग होता है और इसके पढ़ने से एक प्रकार की शक्ति और उत्साह का संचार होता है वर्णन स्थल इसमें कम होते हैं ,मनोवैज्ञानिक चित्रण का अभाव होता है ,केवल कार्य ही इसका मूल तत्व। इन नियमों के अनुसार लाला भगवानदीन का `वीर पंचरत्न`, मैथिलीशरण गुप्त का `रंग में भंग`, `विकट भट्` और `गुरुकुल` तथा सुभद्राकुमारी चौहान की `झांसी की रानी` उत्कृष्ट आख्यानक गीति हैं

(शेष---

कारण इन रचनाओं को आख्यानक गीतों की कोटि में रखना उचित ही है । परन्तु अभिनयात्मक शैली इन सभी रचनाओं की मुख्य विशेषता है । और इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए इन्हें अभिनयात्मक गीतों की संज्ञा भी दी जा सकती है । उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि भाव तथा शैली की दृष्टि से ऐतिहासिक स्फुट तथा अभिनयात्मक गीतों का विकास विभिन्न शैलियों में हुआ है परन्तु लोकगीतों की शैली में लिखे गए `फांसी की रानी` तथा `वीरपंचरत्न` के गीत ही काव्यजगत् सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए[1] ।

शेष- परन्तु शैली की दृष्टि से यह गेय काव्य के अधिक निकट है ।'

-- डा० कृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ९८

१-`मौर्यविजय`, `यशोधरा` , `कुणाल`, `विक्रमादित्य` आदि प्रबन्ध काव्यों में तथा जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भी राष्ट्रीय भावना से पूर्ण तथा अनेक सुन्दर भाव पूर्ण ऐतिहासिक गीत प्राप्त होते हैं ।

(घ) चम्पूकाव्य - यशोधरा (सन् १६३२):

प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से महाकाव्य तथा खंडकाव्य के अतिरिक्त एक अन्य विधा `चम्पू` भी स्वीकार की गई है । गद्य-पद्य मिश्रित रचना को चम्पू कहा गया है[1] । जीवन वैविध्य पूर्ण है, चम्पू में जीवन की यही विविधता गद्य-पद्य मिश्रित विभिन्न शैलियों द्वारा अभिव्यक्त की जाती है । जो भाव पद्य द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता अथवा जो बात पद्य में अधिक प्रभावोत्पादक नहीं हो पाती, उसकी व्याख्या कवि गद्य के माध्यम से करता है । वास्तव में रंग रंग के विभिन्न प्रकार के फूलों के गुलदस्ते के समान चम्पू में विविध प्रकार फूलों की शैलियों को सजाया जाता है । साहित्य की समस्त शैलियों का संयोजन इसमें होता है । खड़ी बोली काव्य की ऐतिहासिक परम्परा में कुछ चम्पू काव्य लिखे गए हैं जिनमें मैथिलीशरण गुप्त रचित `यशोधरा` चम्पूकाव्य[2] ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । प्रारम्भ के पृष्ठ पद्य बद्ध हैं किन्तु सधर पृष्ठ से सौ पृष्ठ तक की कथा, यशोधरा, राहुल, गंग गौतमी (यशोधरा की सखियां) चित्रा, विचित्रा (यशोधरा की दासियां) आदि पात्रों द्वारा संवाद शैली तथा गद्य भाषा में प्रस्तुत की गई है ।

यशोधरा ऐतिहासिक पात्र है । इतिहास में यशोधरा का उल्लेख सिद्धार्थ की पत्नी के रूप में प्राप्त होता है[2] । गौतम बुद्ध के त्याग के पश्चात् यशोधरा का उल्लेख

१- यशोधरा के प्रारम्भिक पृष्ठों में `शुल्क` के अन्तर्गत स्वयं लेखक ने यशोधरा में प्रकट की गई शैलियों की ओर संकेत करते हुए लिखा है- - अपने अनुज सियाराम शरण को संबोधित करते हुए -- `कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है । हो कविता, हो गीत, हो नाटक और हो गद्य-पद्य, तुकान्त अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं।`

—मैथिलीशरण गुप्त -यशोधरा की भूमिका से ।

२- "At the age of sixteen, the prince was married to a lady known to tradition as Bhadda Kachchana, Yasodhara, Subhadraka, Bimba or Gopa, whom some authorities represent as a niece of Maya".
R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta, An Advanced History of India, Page - 87.

इतिहास में प्राप्य नहीं है । राहुल के जन्म के पश्चात् गौतम बुद्ध परिवार त्याग करके मोक्ष प्राप्ति के हेतु चले गए थे, परिवार के सम्बन्ध में इतिहास में केवल इतना ही उल्लेख है[१]। 'यशोधरा' काव्य में कवि-कल्पना ने पति परित्यक्ता यशोधरा की उस मनोव्यथा तथा आत्म-सम्मान -भावना को वाणी प्रदान की है। जिसके विषय में इतिहास मौन है । गौतम बुद्ध के जीवन की दिव्यता ने अनेक कवि प्रतिभाओं को प्राप्त किया किन्तु गोपा के जीवन की महानता एवं त्याग 'यशोधरा' में साकार हुए हैं । नारी पुरुष के जीवन की पूरक है, भारतीय नारी के इस सर्वोच्च आदर्श की अभिव्यक्ति यशोधरा के त्याग में प्रतिबिम्बित हुई है । 'यशोधरा' काव्य की कतिपय विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं ।

(क) इतिहास उपेक्षिता यशोधरा का चरित्रांकन । यशोधरा क्षत्रिय नारी थी । फलतः कुल गौरव की रक्षा का आदर्श उसके रक्त में भी प्रवाहित था । क्षत्राणियां पति के कर्मपथ में बाधा कभी नहीं बनती वरन् वे तो स्वयं —

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को,प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में
क्षात्र धर्म के नाते ।[२]

---

1. "He felt powerfully attracted by the calm serenity of the passionless recluse, and the birth of a son, Rahula, made him decide to leave his home and family atonce. The Great renunciation took place when Siddharatha reached the age of twentynine".

R.C. Majumdar,
H.C.Raychoudhuri &
K. Datta.

An Advanced History of India : Page - 88.

फिर यशोधरा कैसे अपने प्रियतम के मुक्ति पथ की बाधा बनती ? उसे केवल एक दुख सालता रहा कि गौतम उससे कह कर जाते तो उन्हें गाकर वह विदा देती, गौरव पाकर विरह व्यथा का भार झेलती, उसके विरह में आत्मसम्मान का भाव होता किन्तु उसे इतना भी योग न उपलब्ध हुआ ।आत्मग्लानि उसके अन्तर तम को कुरेदती रहती है किन्तु इस आत्मग्लानि में पश्चाताप अथवा करुणा के स्थान पर नारीत्व के मान की अभिव्यंजना`यशोधरा` का समस्त काव्य सौन्दर्य है ।

(ख) राहुल के चरित्र चित्रण में शैशव कालीन औत्सुक्य पूर्ण मनोवृत्ति का आकर्षक चित्रण हुआ है ।

(ग) प्रसाद गुण पूर्ण भाषा में इस काव्य में गीतों की अत्यन्त ही सुन्दर योजना हुई है ।कतिपय गीत बहुत मार्मिक तथा हृदयद्रावक हैं । यशोधरा का मानसिक चिन्तन तथा आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व अनुभूतिपूर्ण है । गुप्त जी ने गर्विणी गोपा की जिस स्वतंत्रता और महत्ता का प्रतिपादन किया है काव्य संसार में वह अमिताभ की आभा तथा दिव्यता से किसी प्रकार भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

चम्पू का नामकरण ही ऐतिहासिक पात्र यशोधरा के नाम पर हुआ है । इससे यह स्पष्ट है कि कवि ने समस्त कथात्मक सौन्दर्य को यशोधरा के पात्र में केन्द्रीभूत करना चाहा है ।मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया,नारी का आत्म सम्मान, धैर्यपूर्वक विरह सहन की क्षमता, पारिवारिक सौजन्य, पुत्र-वात्सल्य,पति की कल्याण कामना,मानवता के प्रति मंगल कामना तथा पुत्र के भविष्य की परिकल्पना मातृ सुलभ मनोविज्ञान और वात्सल्य के परिवेश में चित्रित किये गये हैं । इतिहास इन समस्त अन्तर्कथाओं तथा मनोविकारों के आरोह और अवरोह के प्रति जागरूक नहीं है । साहित्यकार की दृष्टि मानवता के के अन्तराल में प्रवेश कर उन समस्त विचार-कोणों का उद्घाटन करने में समर्थ हुई है जो प्रकारान्तर से इतिहास की पुष्टि करती हुई उसकी पूरक सिद्ध होती है ।कवि की अन्तर्दृष्टि ने ऐतिहासिक सत्य कासमर्थन ही नहीं किया है, वरन् ऐतिहासिक संभावनाओं को साहित्यिक प्रेरणाओं से समर्थित करते हुए मानवगत सत्य का मुखरित किया है।

भावों और विचारों के वास्तविक निरूपण के लिए पद्य और गद्य का प्रयोग समीचीन और उपयुक्त है। जहां भावों की प्रखरता है वहां पद्य का प्रयोग हुआ है, जहां विचारों का उतार-चढ़ाव या विश्लेषण है वहां गद्य के प्रयोग की आवश्यकता हुई। यशोधरा का जीवन अन्तर्द्वन्द्व का जीवन है जिसमें भावों और विचारों का अद्भुतसम्मिश्रण है। अत: इस ऐतिहासिक काव्य वास्तविक निरूपण पद्य और गद्य से ही संभव था, इसीलिए अन्य विधाओं को छोड़ कर कवि मैथिलीशरण गुप्त ने इसके लिए `चम्पू`काव्य का निरूपण किया।

प्रबन्ध काव्य शैली की पुनरावृत्ति :

(३)काव्य प्रबन्ध

पद्य प्रबन्ध एवं खंडकाव्य के अतिरिक्त प्रबन्धात्मक ऐतिहासिक रचनाओं में अनेक रचनाएं ऐसी प्राप्त हुई हैं जो अपने आकार प्रकार में पद्य-प्रबन्धों के निकट रखी जा सकती हैं। परन्तु शैली की दृष्टि से इन्हें काव्य प्रबन्ध कहना अधिक उपयुक्त है। पद्य प्रबन्ध तथा इन रचनाओं में भाव भाषा की दृष्टि से बहुत बड़ा अन्तर है। पद्य प्रबन्ध इतिवृत्तात्मक शैली में निर्मित पद्य बद्ध छन्द मात्रा है जब कि ये रचनाएं भाव,भाषा, छन्द रस ,अलंकार आदि काव्य गुणों से परिपूर्ण हैं। आलोच्यकाल में छायावाद के उत्कर्ष काल में ही काव्य प्रबन्धों का निर्माण हुआ है। नवम्बर सन् १६२९ की सरस्वती में प्रकाशित आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव की नूरजहां,अनूपशर्मा कृत की`चित्तौड़ दर्शन`,`लंकाई में शान्ति` तथा`विराट संग्राम`[१] डा० रामकुमार वर्मा कृत `नूरजहां` तथा`शुजा`[२] रामधारी सिंह`दिनकर`कृत`दिल्ली``वैभव की समाधि पर`,`अतीत के द्वार पर,`पाटली पुत्र की गंगा से`[३] सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` `दिल्ली`[४] श्री स्नेही `पाकिस्तान`[५] कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह`झाँसी वाली रानी`[६] पंडित भैरवदीन मिश्र `मध्यभारत`रामगोपाल विजय वर्गीय`शक्तिसिंह`[८] सोहनलाल द्विवेदी `सेवाग्राम`[६] हरिवंशराय बच्चन`बुद्ध और नाचघर`[१०] भगवतीचरण वर्मा`नूरजहां की कब्र पर`[११] आदि आदि अनेक लम्बी रचनाएं जो ऐतिहासिक सन्दर्भ में लिखी गई हैं

१- सुमनांजलि संग्रह से

२- रूपराशि संग्रह से

३- इतिहास के आंसू(संग्रह)

४- अनामिका(संग्रह)

५- सरस्वती, जून, १६४०

६- ,, ,, ,,

७- ,, फरवरी, १६४२

८- ,, मार्च , १६४६

६- प्रभाती (संग्रह)

१०- बुद्ध और नाचघर(संग्रह)

११- विशाल भारत, मई,१६३३

काव्य प्रबन्ध कहा जा सकता है । इन रचनाओं में कथानक की दृष्टि से एक विशेषता है । कवि किसी ऐतिहासिक राजा अथवा रानी की कथा का वर्णन न करके कल्पना के क्षीण आधार पर अधिकांशत: अपने भाव प्रकट करता है । कहीं कहीं ऐतिहासिक पात्रों के स्वगत चिन्तन द्वारा कवि भावना प्रस्फुटित होती है। आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव की 'नूरजहां' आत्म विश्लेषणात्मक काव्य प्रबन्ध है । मृत्यु शैया पर पड़ी हुए 'नूरजहां' अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात कर रही है । सलीम की 'प्रेयसी' और अफगन की विवाहिता 'पत्नी' लैला की ममता-पूर्ण 'मां', तथा मुगल साम्राज्य की साम्राज्ञी के रूप में नूरजहां का आत्मविश्लेषण प्रभावपूर्ण तथा आकर्षक है । इसमें उसके शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है । रामकुमार वर्मा कृत 'नूरजहां' भाव प्रधान काव्य प्रबन्ध है , कवि भोली नूरजहां के नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित होते हुए अन्त में उसके अवसान में जहां को 'नूर रहित' अनुभव करता है तथा पुन: अपने गाने के द्वारा उसके जागरण की कामना करता है--

नूर रहित हो गया जहां
तेरे जग से जाने से
नूरजहां तू जाग जाग फिर
मेरे इस गाने से

'शुजा' में कथा अंश अधिक है शाहजहां के वैभव उसकी प्रेयसी तथा ताजमहल, सिंहासन के लिए भाइयों में संघर्ष तथा अन्त में कवि अराकान के वन्य प्रदेशों में लुप्त शुजा के प्रति अधिक करुण हो उठा है । आज भी उसे अराकान के विशाल वन्य प्रदेश की धड़कनों में 'शुजा' का हृदय धड़कता हुआ सुनाई देता है --

ओ अराकान के शून्य प्रान्त !
तेरे विशाल तन में प्रशान्त
वह शुजा हृदय की भांति आज,
क्या धड़क रहा है बन-अशान्त ?

अनूपशर्मा की 'चित्तौड़ दर्शन' देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय कविता है । चित्तौड़ गढ़, जयमाल बलिदान ,रणदीप ,जौहर आदि प्रसंगों की भाषा बड़ी सशक्त तथा ओजपूर्ण है। 'विराट् संग्राम' कविता में भी भाषा ओजपूर्ण है। द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका का चित्रण हुआ है । रूपक योजना के द्वारा अभिव्यंजना शैली में आकर्षण उत्पन्न हुआ

है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य प्रबन्धों में भावना का आवेग तथा वर्तमान के प्रति क्षोभ दर्शनीय है। कवि अतीत के वैभव को टूटे फूटे खंडहरों के रूप में देख कर भावुक हो उठा है वह वैभव की एक एक समाधि में प्राण फूंकना चाहता है। उसे इन समाधियों से एक आवाज़ सुनाई देती है। जीवन की जो प्याली कभी नहीं भर पाई थी वह मृत्यु रस को पीकर पूर्ण हो गयी है ---

वैभव मदिरा पी-पी कर
सो गई विकुल मतवाली
पी पी न कभी भर पाई
जीवन की छोटी प्याली।

इस तम में निज को खोकर
मैं उसको भर पाई हूं
देखो मुझको क्यों अब तू
तेरा क्या ले आई हूं ?[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'दिल्ली'[2] तथा 'महाराज शिवाजी का पत्र'[3] 'हरिवंशराय बच्चन कृत 'बुद्ध और नाचघर' में व्यंग्यपूर्ण शैली द्रष्टव्य है। कवि अपनी गम्भीर वाणी में पूछ उठता है---

क्या यह वही देश है
यमुना पुलिन से चल
पृथ्वी की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहुत जहां विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान से[4]

१- वैभव की समाधि पर, विशाल भारत, अप्रैल, १९३३

२- अनामिका (संग्रह)

३- परिमल (संग्रह)

४- अनामिका से

'बुद्ध और नाचघर' में कवि ने धर्म के अवतार एवं आदर्श महापुरुषों के प्रति श्रद्धा तथा पूजा के भाव रखने वाली मानव जाति की थोथी श्रद्धा पर तीखा व्यंग्य किया है। कवि भगवान बुद्ध को सम्बोधित करते हुए कह रहा है--

बुद्ध भगवान
अमीरों के ड्राइंग रूम
रईसों के मकान
तुम्हारे चित्र तुम्हारी मूर्ति से शोभायमान ।

....

और आज
देखता हूँ मैं
एक ओर तुम्हारी प्रतिमा
दूसरी ओर है डांसिंग हाल
हे पशुओं पर दया के प्रचारक
अहिंसा के अवतार,
परम विरक्त,
संयम साकार
मचा है तुम्हारे सामने
रूप-यौवन की ठेल पेल,
इच्छा और वासना खुल कर रही हैं खेल
गाय सुअर के गोश्त का उड़ रहा है कबाब
गिलास पर गिलास
पी जा रही है शराब
पिया जा रहा है पाइप सिगरेट सिगार
धुआंधार ---

इस प्रकार मानव जाति के सिद्धान्तों और व्यवहारों पर यह कविता एक सशक्त व्यंग्य है ।इसी प्रकार अन्य रचनाओं में भी भाषा एवं भाव-सौन्दर्य दर्शनीय है ।

सोहनलाल द्विवेदी की 'सेवाग्राम' रचना में सेवाग्राम के महत्त्व का वर्णन अधिक है। वर्धा से दूर यह छोटा-सा ग्राम किस तरह से धन्य बना है --

सेवा धाम
यह है हिमगिरि अभिराम
जहाँ से प्रवाहित प्रवहमान
सेवा की सुरसरि छविमान
बहती सी रसना
स्वच्छ धार
सींचती सी ताप-शाप
सींचती सी ...।

इसी प्रकार इन रचनाओं में भी ऐतिहासिक सन्दर्भों के तटस्थ तथा इतिवृत्तात्मक वर्णन की अपेक्षा इतिहास का तथ्य काव्य-सत्य बन कर प्रस्तुत हुआ है जिसमें कवि कल्पना तथा भावना का सुन्दर सामंजस्य श्लाघनीय है।

(४) ऐतिहासिक महाकाव्य

आलोच्यकाल से पूर्व ऐतिहासिक महाकाव्यों की स्थिति :-

वीरगाथा काल के पश्चात् तथा आधुनिक युग से [illegible] काव्य से पूर्व तक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों की कोई सुदृढ़ परम्परा प्राप्त नहीं होती । वीरगाथा काल में चारणों द्वारा प्रशस्ति मूलक वीर काव्य निर्मित हुआ था जिसमें ऐतिहासिकता बहुत कम है, तथा अलौकिकता पूर्ण तत्व के कारण वास्तविकता धूमिल हो जाती है । कल्पना के समावेश से अनेक परवर्ती कवियों द्वारा परिवर्तित एवं परिवर्धित होते हुए वह ऐतिहासिक इतिवृत्त अपने मूल रूप में नहीं रहा है । इस काल में राजनीति एवं साहित्य प्रायः परस्पर सम्बद्ध हो गए थे[1] । वीरगाथा काल के पश्चात् भक्तिकाल में जायसी कृत 'पदमावत' उपलब्ध होता है जो चित्तौड़ के महाराणा रत्नसेन और रानी पद्मिनी की ऐतिहासिक कथा लेकर लिखा गया किन्तु दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा कल्पना के बोझ से ऐतिहासिकता इतनी प्रच्छन्न हो गई है कि ऐतिहासिक सन्दर्भों का रूप स्पष्ट नहीं आ पाता । रीति-युग के अधिकांश कवियों ने अपने अतीत युग के इतिहास को स्मरण करने की आवश्यकता ही नहीं समझी । उन्हें न तो अतीत गौरव के चित्रण में आकर्षण था और न उन्होंने अपनी रचनाओं में सामयिक समाज के नैतिक तथा आत्मिक बल के ह्रास की ओर संकेत करने की ही आवश्यकता अनुभव की । इस युग-काव्य में शृंगारिकता [illegible] था इस युग के कवियों में अनुपम काव्य शक्ति एवं [illegible] प्रवणता थी, किन्तु दिशा के

१- इतिहास की घटनाओं का वर्णन भी साहित्य के अन्तर्गत आ गया था क्योंकि साहित्य इस समय वीरपूजा अथवा धर्म और राजनीति के नेता के गौरव का गीत था । सत्य और धर्म में किसी भी अग्रणी का जीवन चरित्र उस समय साहित्य था । राजनीति और साहित्य का इतने समीप आ जाना हिन्दी साहित्य के इतिहास में चारणकाल की विशेषता है"

— डा० रामकुमार वर्मा -हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १५१

में घिरे रह कर उनके हासविलास, नयन कटाक्ष, हाथों की मेंहदी, पैरों के महावर, अधरों की ललाई आभा और कपोलों की मधुरिम प्रभा ही में इन्होंने अपने पांडित्य की सार्थकता समझी। नायिकाओं तथा उपनायिकाओं के भेदोपभेद के जटिल जाल में उलझ कर ये कवि मात्र रह गए, किन्तु कुछ कवियों ने इतिहास का यथातथ्य निरूपण करते हुए अपने चरित नायकों का गुणगान भी किया है। उदाहरण के लिए केशवदास(वीरसिंह देव चरित) मान (राजविलास) भूषण(शिवराज भूषण), शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, लाल कवि (छत्रप्रकाश) श्रीधर (जंगनामा) सूदन (सुजान चरित) जोधराज (हम्मीर रासो) चन्द्रशेखर वाजपेयी (हम्मीर हठ) आदि कवियों द्वारा ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर कुछ ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। इन कथानकों में इतिहास का आधार लिया गया है किन्तु कवियों की कल्पना तथा रसात्मकता के आग्रह से इतिहास में भी अतिशयोक्तियों का अत्यधिक समावेश हो गया है। इतिहास के सूत्र तो स्पष्ट हैं किन्तु अतिरंजना भी अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है। भूषण और लाल इस युग के राष्ट्र कवि तथा भविष्य की ऐतिहासिक काव्य चेतना के मानो संकेत हैं। राष्ट्रीय उत्थान की महान् स्फुरण का इन्होंने जिन राष्ट्रवीरों के चरित्रों का गान अपनी रचनाओं में किया है वह उत्कर्ष पूर्ण है। इस वीर काव्य के रचयिताओं की परम्परा सामन्ती जीवन का स्पष्ट संकेत करती है जिसमें देशी और विदेशी आक्रमणकारियों से संघर्ष होता था। युद्ध वर्णन, सेना वर्णन, सैनिकों का उत्साह, रणभूमि की विभीषिका आदि का बड़ा वीरत्व पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। जैसे जैसे यह सामन्ती परम्परा क्षीण होती चली गई, वैसे वैसे इन चारण कवियों की वाणी भी क्षीण होती गई और जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक के बाद एक राज्यों को समाप्त करके समस्त देश पर अधिकार प्राप्त करना प्रारम्भ किया तो मानो यह धारा ही समाप्त हो गई।

भारतेन्दु युग में राष्ट्र प्रेम एवं देश भक्ति का स्वर गूंजा। भारत की दुर्दशा के प्रति संवेदनशील कवियों ने शोक प्रकट करते हुए काव्य रचनाएं कीं किन्तु राष्ट्रीय जागरण के हेतु इतिहास के प्रेरणापूर्ण गौरवान्वित चरित्रों के गान का काव्य में विशेष आग्रह रहा। इस युग में ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित कुछ नाट्य रचनाएं अवश्य हुईं। भारतेन्दु(विषस्य विषमौषधम्, नीलदेवी) प्रतापनारायण मिश्र(हठी हम्मीर) बाबू राधाकृष्ण दास(प्रताप नाटक, महारानी पद्मावती) आदि

कवियों द्वारा ऐतिहासिक नाटक लिखे गये किन्तु काव्य क्षेत्र इस दृष्टि से प्राय: अछूता ही रहा । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रथम बार अपनी रचना `विजयिनी-विजय-वैजयन्ती` में प्रताप, शिवा आदि वीरों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये । ऐतिहासिक काव्यों की दृष्टि से आलोच्यकाल का हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

महाकाव्य शैली की महत्ता :-

महाकाव्य इतिहास से सम्बद्ध रहता है । भारतीय साहित्य में आदि महाकाव्य वाल्मीकि रामायण से लेकर आधुनिक युग तक की महाकाव्य परम्परा में अधिकांशत: ऐतिहासिक कथानक ही महाकाव्यों के आधार बने हैं । ग्रीक के प्राचीनतम महाकाव्य `इलियड` और `ओडेसी` की कथाएं ऐतिहासिक हैं । संस्कृत के महान् आचार्य विश्वनाथ ने कथानक के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ `साहित्य दर्पण` में कहा भी है कि `इतिहासोद्भवं वृत्तम्` अर्थात् वृत्त इतिहास से उद्भूत हो । प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी लक्षण ग्रन्थकारों ने इस अनिवार्यता का समर्थन किया है । ऐतिहासिक कथानक से तात्पर्य है जिसकी कथावस्तु प्रख्यात हो और जीवन की विस्तृत परिधि में खींची गयी हो तथा जिससे सम्पूर्ण जीवन का चित्र नायक अथवा घटना द्वारा दिया जा सके ।

महाकाव्य में नायकत्व की प्रतिष्ठा, रसों की प्रमुख संयोजना, प्रकृति का विराट् रूप, अष्टाधिक्य सर्गों की विपुलता, विविध छन्दों का प्रयोग, चतुर्वर्ग की प्राप्ति तथा नाट्य सन्धियों की परिपूर्णता इस बात की साक्षी हैं कि कथावस्तु जिस रूप में प्रस्तुत की जाय वह सर्वांग हो तथा उसके द्वारा जीवन की व्याख्या विभिन्न मनोवेगों के साथ प्रदर्शित की जा सके । मानव चरित्र अनेकानेक जटिलताओं एवं सरलताओं में गुंथा हुआ है । जीवन के किन्हीं विशिष्ट क्षणों में उसका अन्तर्मन इतना गूढ़ हो जाता है कि सदा सर्वदा उसके समीप रहने वाला मित्र अथवा कोई भी अन्य व्यक्ति उसकी उस विलक्षणता के इन्द्रजाल में भटका हुआ उसकी सहज स्वाभाविक प्रकृति को खोजता -सा रह जाता है और वही जटिल मानव कभी इतना सरल और शिशु भाव से पूर्ण भी हो जाता

है कि उसकी जटिलता जीवनधारा की वस्तु बन जाती है । कहीं व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध न होकर सम्पूर्ण मानव मात्र के प्रति दर्शित होता रहता है । भावनाओं के आलोड़ित आवेगों-संवेगों में आन्दोलित होता हुआ वह कभी आकाश की ऊँचाइयों का स्पर्श करता है । और कभी दुःस्वप्न में भी संकुचित रहता है । जीवन की ऐसी विविधता का सर्वांगीण चित्रण एक प्रमुख पात्र तथा अन्यान्य गौण पात्रों के माध्यम से [illegible] चित्र में उपस्थित करता है । महाकाव्य में वामन - रूप भी विराट् बन जाता है । जहाँ कथानक विस्तृत नहीं होता वहाँ उसका चारित्रिक और घटनापरक विस्तार भावना एवं कल्पना द्वारा पूर्ण किया जाता है । आधुनिक युग के महाकाव्यों में यह दृष्टि परिलक्षित होती है । 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण का गोकुल से मथुरा जाने तक ही कथा है किन्तु इस संक्षिप्त कथा के माध्यम से भावना और कल्पना द्वारा प्रस्तुत जीवन का विशद मनोवैज्ञानिक चित्रण ही कथानक का सौन्दर्य है । इस प्रकार विविध वर्णन वैविध्य की प्रधानता के साथ ही वस्तु परक विवेचनात्मक दृष्टिकोण महाकाव्य में भी अपेक्षित है तथा शर्तों पर भी इसमें जीवन की विराट् गरिमा के दर्शन होते हैं ।

आलोच्यकालीन ऐतिहासिक महाकाव्य:-

खड़ी बोली काव्य के छायावादी युग में यद्यपि मुक्तक काव्य की विशेष प्रधानता रही है तथापि ऐतिहासिक महाकाव्यों का आरम्भ इसी युग से हुआ है । सन् १९३५ से लेकर सन् १९६० तक खड़ी बोली काव्य में ऐतिहासिक महाकाव्यों की एक पुष्ट परम्परा प्राप्त होती है ।

सम्बन्धित कथानकों के आधार पर ऐतिहासिक कालक्रमानुसार महाकाव्यों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है —

(१) प्राचीन ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित महाकाव्य— नहुष, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, विक्रमादित्य ।

(२) मध्यकालीन ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित महाकाव्य— आर्यावर्त, जौहर, हल्दीघाटी।

(३) आधुनिक ऐतिहासिक राष्ट्र-वीरों के जीवन पर आधारित महाकाव्य — झांसी की रानी(१९५५), झांसी की रानी (१९५६), तांत्याटोपे

(४) समसामयिक राष्ट्र-वीरों पर आधारित महाकाव्य— महामानव, जननायक, जगदालोक

यहां उपर्युक्त प्रमुख ऐतिहासिक काव्यों की ऐतिहासिक संरचनात्मकता की दृष्टि से विवेचना करना उपयुक्त होगा ।

नूरजहां (१९३५)

मुगलकालीन इतिहास में सम्राट अकबर के बेटे सलीम (जहांगीर) और ईरान के साधारण सौदागर ग्यासबेग की पुत्री मेहरुन्निसा की इतिहास-प्रसिद्ध तथा सर्वविदित प्रेमकथा के आधार पर गुरुभक्तसिंह `भक्त` ने १८ सर्गों में `नूरजहां` प्रेमकाव्य की रचना की। इस प्रबन्ध काव्य में मेहर के जन्म से लेकर उसके

हिन्दुस्तान की साम्राज्ञी बनने तक की कथा का वर्णन है । किशोरावस्था से लेकर साम्राज्ञी बनने तक का जीवन नूरजहाँ का संघर्षों का जीवन है । घटनाओं की तरंगे मेहर के जीवन सरोवर में ऐसी हलचल उत्पन्न कर देती है, उसकी जीवन धारा का प्रवाह, ऐसे विचित्र मोड़ लेता हुआ चलता है कि वह काव्य का सुन्दर विषय हो गया है । आदि से अन्त तक 'नूरजहाँ' की कथा प्रकृति की सुरम्य गोद में पालित तथा पोषित हुई है । कवि ने इस कथानक में कल्पना तथा इतिहास का सुन्दर समन्वय किया है । काव्यकथा के निम्न लिखित प्रसंग इतिहाससम्मत हैं--

(१) निर्धनता के कारण ग्यासबेग का ईरान छोड़ कर आगरा आना, मार्ग में मेहर का जन्म, आगरा में मेहर का पालन पोषण।[१]

(२) सलीम तथा मेहर का आकर्षण एवं प्रणय-व्यापार[२]।

(३) शेर अफगन से मेहर का विवाह[३]।

(४) शेर अफगन की मृत्यु में जहाँगीर का हाथ ।[४]

(५) अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर से मेहर का विवाह[५]।

१-डा० ईश्वरीप्रसाद ,भारत का इतिहास,भाग २,पृ० ४२४

२- इस सम्बन्ध में एक डच लेखक डी लैट ने लिखा है कि जब नूरजहाँ कुमारी थी तभी से जहाँगीर उससे प्रेम करता था किन्तु वह शेर अफगन की वाग्दत्ता हो चुकी थी इसलिए उससे विवाह करने की आज्ञा अकबर ने नहीं दी ।
-डा० ईश्वरीप्रसाद,भारत का इतिहास,, पृ० ११५

३- डा० ईश्वरीप्रसाद , भारत का इतिहास, पृ० ११४

४- यह बहुत विवादास्पद प्रश्न है । अनेक इतिहास जहाँगीर का हाथ शेर अफगन की मृत्यु में मानते हैं तथा कुछ इतिहासकार नहीं मानते ।
-डा०ईश्वरीप्रसाद,भारत का इतिहास, पृ० ११५-१६

५- डा० ईश्वरीप्रसाद, भारत का इतिहास, भाग २, पृ० ११५

इस कथानक को सशक्त एवं सुन्दर बनाने के लिए कवि ने अनेक कल्पनाएं की हैं तथा जनश्रुतियों का आश्रय भी लिया है । 'अनारकली' तथा सलीम के प्रेम की कथा बड़ी लोकविश्रुत कहानी है । प्रेम प्रसंग में तीव्रता प्रदान करने के लिए कवि ने इस कथा का उपयोग किया है । काव्य के प्रथम सर्ग से छठे सर्ग तक की कथा प्रेम की वेदी पर दुःख पूर्ण जीवन का अन्त करने वाली इस प्रेमिका अनारकली की उपकथा लेकर चली है । कवि ने सलीम के हृदय में प्रेम की तीव्रता उत्पन्न करने और मेहर और सलीम के प्रेम वर्णन की पृष्ठभूमि में प्रसंग की प्रखरता के हेतु इस उपकथा का वर्णन किया है । अकबर की क्रूरता का ग्रास बन कर वन वन भटकती हुई अनारकली अन्त में संयोगवश अपने एकान्त प्रेमी सलीम की गोद में प्राण समर्पण कर देती है । अनारकली के प्रसंग में भी अकबर के कामुक चरित्र का चित्रण भी हुआ है । कवि ने एक नवीन पात्र जमीला की कल्पना की है । जमीला भी सलीम से उसके वैभव के कारण प्रेम करती है । वह बजाज की लड़की है । सलीम और मेहर का प्रेम उसे खटकता है । जमीला के प्रसंग में नारियों की एक प्राकृतिक दुर्बलता "ईर्ष्या" का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

शेरअफगन क्रूर और शुष्क हृदय पुरुष था । उसके स्वभाव की कठोरता और हृदयहीनता के लिए कवि ने अनेक प्रसंगों की उद्भावना की है । अपनी बच्ची लैला तथा मेहर से भी उसका व्यवहार अत्यन्त कठोर था। इस कठोरता के अंकुश से व्याकुल होकर मेहर कभी कभी क्षुब्ध हो उठती है उसके हृदय में विद्रोह का तूफान भी उठता है परन्तु भारतीय विचारधारा का पुजारी पति के विरुद्ध पत्नी में विद्रोह भाव के शमन के लिए सर्वसुन्दरी की कल्पना करता है और मेहर पति का प्रेम प्राप्त करने और उसके स्वभाव की प्रत्येक कठोरता सहन करने के लिए प्रस्तुतकी जाती है । शेर अफगन की हत्या के पश्चात् मेहर के जी के सुखी संसार पर वज्रपात हुआ । मेहर शोक सागर में डूब सी गई । चार वर्षों तक पति की मृत्यु से शोक विह्वल मेहर, मानसिक संघर्ष में अपना जीवन व्यतीत करती है । जहांगीर सम्राट् होकर किसी प्रकार मेहर की प्राप्ति करना चाहता है । प्राकृतिक स्थानों की सैर और अनेक प्रेम पूर्ण निवेदन भी सलीम मेहर पर विजय प्राप्त नहीं कर सके । अन्त में कवि ने रोमान्टिक उपन्यासों के से

वातावरण की योजना की है । परिस्थिति और घटना के संयोग से रानी मेहर की पराजय और प्रेमिका मेहर की विजय हुई । मेहर 'नूरजहां' बन गई। नियति की मृदुल और क्रूर मुस्कानों का ग्रास बना हुआ मेहर का जीवन काव्य के लिए उपयुक्त विषय सिद्ध हुआ है । कभी मन्द और कभी तीव्र गति से प्रवाहित उसके जीवन प्रवाह को प्रबन्ध काव्य के कलेवर में ही बांधा जा सकता था अत: कवि ने इसी विधा का ही आश्रय ग्रहण किया है परन्तु चरित्र चित्रण में यदि कवि-भावना अधिक प्रखर हुई होती तथा मेहर के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण और अधिक विश्लेषणात्मक होता तो सम्भवत: नूरजहां एक सफल महाकाव्य कहलाने का अधिकारी होता । प्रधान पात्री नूरजहां के चरित्र चित्रण में हार्दिकता का अभाव अवश्य ही खटकता है । महाकाव्य की अन्तिम पंक्तियों में चित्रित 'नूरजहां' का व्यक्तित्व अठारह सर्गों में चित्रित मेहर के व्यक्तित्व पर कुछ इस प्रकार छा जाता है कि काव्य समाप्त होते होते मानो मेहर भी समाप्त हो जाती है । अन्त तक पहुंचते पहुंचते केवल दो ही बातें सर्वाधिक प्रभावित करती हैं -प्रकृति का सूक्ष्म और विराट रूप तथा 'नूरजहां'। कथानक के विस्तार में मानव चरित्रों की अपेक्षा, प्रकृति ही अधिक सहायक हुई है । सब मिलाकर 'नूरजहां' सरस तथा प्रभावपूर्ण प्रबन्ध काव्य है ।

सिद्धार्थ (१९३७)

अनूप शर्मा द्वारा खड़ी बोली में रचित 'सिद्धार्थ' काव्य ने ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए संस्कृत के महाकवि अश्वघोष के 'बुद्धचरित' कवि मथ्यू आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया' तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'बुद्धचरित' की बुद्ध-काव्य श्रृंखला को सुदृढ़ किया है । 'सिद्धार्थ' काव्य लक्षण ग्रन्थों की अनिवार्यताओं की तथा कथानक की सुदृढ़ता की दृष्टि से शान्त रस से पूर्ण एक सफल ऐतिहासिक महाकाव्य है । कवि वर्णन, संयोग वर्णन तथा विरह वर्णन में श्रृंगार रस का चित्रण प्रभावपूर्ण है । अठारह सर्गों में विभक्त इस काव्य के सर्ग-शीर्षक जहां एक ओर कथानक के मोड़ों का संकेत करते हैं वहां आध्यात्मिक मार्ग की ओर उन्मुख होते हुए कुमार सिद्धार्थ के चरित्र की महती विशेषताओं की मार्मिक अभिव्यंजना भी करते हैं । शुभ स्वप्न, भाग्योदय, उन्मेष, अनुकम्पा,

अवरोध,संयोग,राग,अभिज्ञान,चिन्तना,भावी,अभिनिवेदन,महाभिनिष्क्रमण, व्यथा,संबोध,संदेश,यशोधरा,दर्शन तथा निर्वाण शीर्षकों में काव्य की सम्पूर्ण कथा गुम्फित है । किरीटिन्दु शिखर । शाक्य नरेशों की राज नन्दिका के वर्णन से आरम्भ होकर बुद्ध भगवान के अन्तिम उपदेश तथा निर्वाण के प्रसंग में काव्य-कथा समाप्त होती है । तुमुल घोषावली गिरि कन्दराओं से भगवान बुद्ध के अवतार की रहस्य मय घोषणा कराकर सिद्धार्थ को महापुरुष ही न मान कर बाद में उन्हें भुवन पालक के अवतार रूप में प्रतिष्ठित किया है ।[1] प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से सिद्धार्थ का कथानक सुदृढ़ तथा सुनियोजित है । कथा में प्रवाह है किन्तु राग,अभिज्ञान तथा भावी-- इन तीन सर्गों का विस्तार प्रबन्ध धारा में किंचित् अवरोध उत्पन्न करता है परन्तु काव्य कला की दृष्टि से ये सर्ग आकर्षक है । काव्य के अन्त में सोलह सर्ग में यशोधरा के विरह का चित्रण भी कथानक से कुछ दूर जाता हुआ प्रतीत होता है । सिद्धार्थ के गृहत्याग के बारह वर्षों पश्चात् यशोधरा की विरहाकुल स्थिति का वर्णन सुसम्बद्धता की दृष्टि से अस्वाभाविक है। कथा वर्णन में प्राचीन परिपाटी का आग्रह अधिक है ।

कथानक में निम्नलिखित मुख्य प्रसंग इतिहास सम्मत है --

(१) महाराजा शुद्धोदन ऐतिहासिक पात्र है । कपिलवस्तु उनके राज्य की राजधानी थी ।

(२) महामाया[2] के गर्भ से सिद्धार्थ का जन्म ।

(३) सिद्धार्थ का यशोधरा से विवाह तथा पुत्रोत्पत्ति[3]

१- मनुज वृन्द सभी सम्हले उठे
    जय पढ़े सम्पर्क मन में गुने
  भुवन पालक बालक विश्व के
    प्रकट तथागत हो रहे (सर्गप्रथम)

२- महामाया के नाम के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है । प्रसिद्ध इतिहास-कार टी०एल०शाह माता का नाम यशोधरा बताते हैं तथा बुद्ध की पत्नी का नाम यशोधरा। '--- ऐन्शन्ट इंडिया पृ० ८-९

इन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया में इतिहासकारों ने माता का नाम माया लिखा है तथा ~~xxx~~ पत्नी का नाम यशोदा अथवा गोपा।' पृ० ८७ -शेष

(४) सिद्धार्थ की विरक्ति प्रवृत्ति तथा जरा, मरण, एवं व्याधि की घटनाएँ देखकर विरक्ति की तीव्रता। परिणामस्वरूप गृह परित्याग।

(५) सात वर्षों के उपरान्त गया के स्थान पर बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति।

(६) बिम्बसार को उपदेश - अन्त में अस्सी वर्ष की आयु में कुशी ग्राम में निर्वाण प्राप्ति।

भगवान बुद्ध के जीवन के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थ, वैदिक ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ तथा शिलालेख स्तूप आदि का आधार ग्रहण किया जाता है। बौद्ध ग्रन्थों तथा जैन ग्रन्थों में अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में विभिन्नता भी पाई जाती है परन्तु कुछ घटनाओं में साम्य भी है। काव्य के उपर्युक्त प्रसंगों के सम्बन्ध में आधार ग्रन्थों में अधिक मतभेद नहीं है[१]। इन तथ्यों के आधार पर भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए 'सिद्धार्थ' के कवि ने अनेक प्रचलित जनश्रुतियों का भी आश्रय लिया है। काव्य कथा के वर्णन प्रसंगों में मैथ्यू आरनल्ड कृत 'लाइट आफ एशिया' अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' तथा रामचन्द्र शुक्ल कृत 'बुद्धचरित' का प्रभाव है[२]।

(शेष- पिछले पृष्ठ का)

३- राहुल के जन्म के सम्बन्ध में मत विभिन्नता है। जातक कथाओं में सम्भवत: बुद्ध के गृहत्याग के पश्चात् राहुल के जन्म का उल्लेख प्राप्त हुआ जिसके आधार पर कवि ने राहुल का जन्म 'गृहत्याग' के बाद ही वर्णित किया है। एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया में गृहत्याग से पूर्व राहुल के जन्म की बात स्वीकार की गयी है --- पृ० ८८

१- टी. एल. शाह एन्शेन्ट इंडिया, पृ० ८,९,१०,११
एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया पृ० ८७,८८,८९

२- मैंने अपने कालेज-जीवन में कवि श्रेष्ठ मैथ्यू आर्नल्ड का 'लाइट आफ एशिया' नामक काव्य पढ़ा था। उसका प्रभाव मेरे विचारों पर अधिकाधिक पड़ता गया। तदनन्तर बड़े प्रयत्न के बाद महाकवि अश्वघोष का 'बुद्धचरित' भी प्राप्त हुआ, जो अपूर्ण था। सात आठ वर्ष पहले मुझे पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'बुद्धचरित', जो ब्रजभाषा में लिखा गया है प्राप्त हुआ। उक्त तीनों ग्रन्थों के पठन-पाठन का परिणाम आपके सम्मुख प्रस्तुत है। -अनूप शर्मा, 'सिद्धार्थ', 'दो शब्द' में।

कवि अन्तर्दृष्टि ने कथावस्तु के वर्णन में कल्पनाओं के जो रंग भरे हैं वे कवि की प्रतिभा का परिणाम हैं ।वसन्तोत्सव तथा स्वयंवर के प्रसंगों में कवि का सौन्दर्य वर्णन तथा आलंकारिक भाषा आकर्षक है । सर्गों के नामकरण में उसकी मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं । इससे कथा में मनोवैज्ञानिकता का समावेश हुआ है तथा सिद्धार्थ के चारित्रिक उत्कर्ष की एक पूर्व झांकी देने में भी सर्गों के नामकरण की योजना सहायक है ।अनेक प्रसंगों की संभावनाओं के द्वारा सिद्धार्थ का चरित्रोत्कर्ष हुआ है तथा मानव गत सत्य की अभिव्यक्ति हुई है । जहां एक ओर बुद्ध के ऐतिहासिक व्यक्तित्व में ईश्वरत्व की स्थापना का आग्रह है वहां सिद्धार्थ के चरित्र में मानवीय रागात्मक वृत्तियों के घात-प्रतिघात का चित्रण करके कवि ने मानव चरित्र की प्रतिष्ठा भी की है[१]। बुद्ध चरित की शृंखला को सुदृढ़ करने वाला खड़ी बोली में रचित`सिद्धार्थ` महाकाव्य अपने ढंग का अनोखा काव्य है । भगवान तथागत के वैविध्य पूर्ण सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति के लिए महाकाव्य की शैली ही अपेक्षित है ।

हल्दीघाटी(१९३९)

मध्ययुग के वीर शिरोमणि तथा उत्कट राष्ट्र प्रेमी महाराणा प्रताप के जीवन काल हल्दी घाटी के भयंकर युद्ध की इतिहास प्रसिद्ध प्रमुख घटना को लेकर श्यामनारायण पाण्डेय ने वीर रस प्रधान`हल्दी घाटी` प्रबन्ध काव्य की रचना की । खड़ी बोली काव्य में महाराणा प्रताप के जीवन का इतना ओजपूर्ण,वेगपूर्ण

१-` हम उनके चरित्र में मनुष्य की आत्मा का पूर्ण विकास पाते हैं किस प्रकार एक विशुद्ध आत्मा संसार के घातों से प्रतिघात पाती हुई नि:श्रेयस की ओर बढ़ती है तथा किस प्रकार उसको सफलता प्राप्त होती है यही बुद्ध चरित्र की विशेषता है ।`

-- अनूप शर्मा, सिद्धार्थ ,`दो शब्द` से

तथा हृदयस्पर्शी चित्रण 'हल्दीघाटी' के [illegible] हुआ है[1]। सत्रह सर्गों में विभाजित इस काव्य में कवि ने प्रताप के त्याग, [illegible] मान्यता, चेतक, वीर सिपाहियों, स्वदेश भक्ति तथा प्रताप के भाले के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। प्रथम सर्ग में आखेट प्रसंग[2], शक्तिसिंह, प्रताप का परस्पर संघर्ष, पुरोहित का प्राणोत्सर्ग, शक्तिसिंह का मेवाड़ छोड़ कर जाना, द्वितीय सर्ग में अकबर के कामुक चरित्र का चित्रण तथा किरण नामक राजपूतनी का प्रसंग[3], तृतीय सर्ग में अकबर के विलास वैभव का वर्णन तथा मानसिंह का प्रताप को अधीन करने की लालसा एवं हिन्दुओं के प्रति उदारपूर्ण कूटनीतिज्ञता, पंचम सर्ग में मानसिंह के चित्तौड़ में अपमानित होने की घटना का स्पष्टीकरण है। छठे सर्ग में मानसिंह के अपमान की बात सुन कर अकबर का क्रोधान्ध हो उठना तथा चित्तौड़ पर आक्रमण का आदेश, सातवें, आठवें और नवें सर्ग में प्रताप द्वारा अकबरी सीमा लेने के हेतु वीर राजपूत सरदारों सहित पहाड़ों में जाने तथा सैनिक संगठन का

१- 'श्यामनारायण पाण्डेय ने महाराणा प्रताप का कुछ पुनीत चरित्र लेकर, उसे नूतन छन्द और काव्य का नवीन बाना पहना कर, हिन्दी काव्य-क्षेत्र में प्रविष्ट कराया है। हमारा उमड़ता हुआ पावक [illegible] आकाश के तारों में रमने वाला समाज अब चेतन होकर उठ खड़ा होगा और राष्ट्रीय काव्य के दूसरे युग निर्माण होगा।' --सीताराम चतुर्वेदी, 'विशाल भारत', नवम्बर १९३९।

२- प्रताप की कथा से सम्बन्धित इस प्रसंग का उल्लेख श्री हरिदास माणिक ने अपनी [illegible] के काव्य 'हल्दीघाटी की लड़ाई' (१९११) में, शक्तिसिंह के मेवाड़ छोड़ कर जाने के कारण को परिचित कराने के लिए, फुटनोट में लिखा है। सम्भवतः यह कोई जनश्रुति रही हो। --हल्दीघाटी की लड़ाई, हरिदास माणिक,
प्रकाशक-हरिदास माणिक, सम्पादक-नवजीवन, काशी।

३- बादशाह अकबर की कामुकता ऐतिहासिक सत्य है। प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ में १९ दिन तक नौ रोज़ के उत्सव मनाने की प्रथा अकबर ने प्रचलित की थी। इन दिनों मीना बाज़ार लगते थे और अमीर उमरावों की स्त्रियाँ सामान बेचती थीं। पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था, अकबर हिन्दुओं की बहू-बेटियों से मनमाना व्यवहार करता था। -- उदयपुर राज्य का इतिहास, [illegible]
पृ० ७६६

४- अभिमानी मान-अवज्ञा से,
थर-थर होने संसार लगा।
पर्वत की उन्नत चोटी पर
राणा का भी दरबार लगा। -- सर्ग सात, पृ० ८५

वर्णन है । दशम सर्ग में पर्वतीय सौन्दर्य का वर्णन तथा मानसिंह का भीलों द्वारा बन्दी बनाए जाने, प्रताप के आदेश से छोड़ दिए जाने की घटना है। एकादश तथा द्वादश सर्ग में युद्ध वर्णन ,झाला द्वारा आत्मोत्सर्ग । तेरहवें सर्ग में चेतक की मृत्यु शक्ति सिंह और प्रताप का पुनर्मिलन, काव्य के इस प्रसंग में करुणा की धारा प्रवाहित है । चौदहवें सर्ग में युद्धोपरान्त युद्ध की विभीषिका का वर्णन हुआ है । पन्द्रहवें सर्ग में प्रताप की उदासीनता बिलाव और घास की रोटी ,रानी द्वारा सन्धि पत्र न लिखने देना, सोलहवें सर्ग में चिन्तित प्रताप द्वारा मेवाड़ छोड़ कर अन्यत्र जाने का निश्चय, भामाशाह की भेंट,धन समर्पण, प्रताप सिंह का मुगलों से जूझने के लिए, उत्साहित हो उठना, सत्रहवें सर्ग में राणा और शाहबाज खां के बीच संघर्ष ,कुम्भल गढ़ पर राजपूतों का विजय की प्रसन्नता में राजपूतों द्वारा उत्सव मनाना । परिशिष्ट में मेवाड़ के वीरों तथा मेवाड़ सिंहासन के गौरव का चित्रण हुआ है । प्रबन्ध की दृष्टि से काव्य की कथावस्तु प्रवाहपूर्ण तथा सुदृढ़ है । शृंखलाबद्ध घटनाक्रम ने काव्य में शैथिल्य नहीं आने दिया । डा० श्यामनन्दन किशोर ने कथावस्तु की दृष्टि से ‘हल्दी घाटी’ को महत्वहीन कहा[१] है । सम्भवत: ‘प्रियप्रवास’ अथवा ‘कामायनी’ से ‘हल्दीघाटी’ की तुलना करते हुए विद्वान लेखक ने अपना मत प्रतिपादित किया है । भावपूर्ण वर्णनात्मक तथा संवेदनात्मक चित्रण ‘हल्दीघाटी’ की कथावस्तु की विशेषताएं हैं ।महाराणा प्रताप के संघर्षपूर्ण वीरता के जीवन का कवि ने प्रभावोत्पादक चित्रण किया है । कथावस्तु के नियोजन में जिन प्रसंगों की योजना हुई है उनमें भी कवि की मौलिक सूझ बूझ श्लाघनीय है । ‘हल्दीघाटी’ के कवि के समक्ष महाराणा के जीवन से सम्बन्धित कोई विशेष महत्वपूर्ण पूर्व काव्य परम्परा नहीं है इस बात को भी ध्यान में रखते हुए ‘हल्दीघाटी’ का प्रवाहपूर्ण सुनियोजित कथानक किसी भी दृष्टि से महत्वहीन प्रतीत नहीं होता।

१- " इसी तरह श्यामनारायण पाण्डेय का ‘जौहर’ और ‘हल्दीघाटी’ काव्य रस-प्रधान होते हुए भी कथा-वस्तु की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखते ।"

-आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान,पृ० १६१

प्रताप के अतिरिक्त अकबर, मानसिंह, फाला मान्ना, शक्तिसिंह तथा चित्तौड़ की महारानी आदि को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

काव्य के निम्नलिखित प्रसंग इतिहाससम्मत हैं --

(१) मानसिंह का अपमान।

(२) अकबर के आदेश से मानसिंह का चित्तौड़ पर आक्रमण।

(३) महाराणा प्रताप का राज्य सुख छोड़ कर स्वाधीनता की रक्षा के लिए कटिबद्ध होना।

(४) मौलवी द्वारा मानसिंह का वन्दी बनाया जाना तथा प्रताप के आदेश से छोड़ दिया जाना।

(५) हल्दीघाटी का युद्ध फाला मान्ना का प्राणोत्सर्ग तथा मुगलों का विजयी होना।

(६) युद्ध के मैदान से लौटते हुए शक्ति सिंह का मिलन

(७) घास की रोटी

(८) भामाशाह द्वारा धन समर्पण

(९) प्रताप द्वारा पुनः मुगलों से युद्ध तथा विजय प्राप्त करना।

इन प्रसंगों में शक्तिसिंह का मिलन, घास की रोटी तथा भामाशाह द्वारा धन अर्पण किए जाने के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। टाड 'राजस्थान' में सभी घटनाओं का आधार ग्रन्थ है परन्तु प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने इतिहास ग्रन्थ में इन घटनाओं का खण्डन किया है।[१]

१-घास की रोटी तथा भामाशाह द्वारा धन दिए जाने के सम्बन्ध में श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के खण्डन पूर्ण विचारों का उल्लेख इस अध्याय के खंड-काव्य के प्रसंग में हुआ है।

शक्तिसिंह के मेवाड़ छोड़ कर जाने की घटना भी ओझा जी के मतानुसार ऐतिहासिक सत्य नहीं है। शक्तिसिंह उदयसिंह के समय में ही नाराज होकर चित्तौड़ से चला गया था किन्तु अकबर द्वारा चित्तौड़ पर चढ़ाई की बात सुनकर लौट आया था। --- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द पहली, पृ० ४११

हल्दीघाटी में कवि ने सन्धिपत्र की घटना को अत्यन्त मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। बेटी की क्षुधा तथा करुणाविलाप से विचलित होकर महाराणा को सन्धि पत्र लिखते हुए देख कर प्रताप की पत्नी तथा चित्तौड़ की साम्राज्ञी ने महाराणा का हाथ थाम लिया[1]। एक मधुर किन्तु निर्भीक प्रताड़ना के द्वारा महाराणा को उनके कर्तव्य के प्रति सचेत किया। महाराणा अपनी बार पत्नी के प्रति कृतज्ञ हो उठा। इस प्रकार इस कवि की एक नवीन कल्पना के द्वारा जहां एक ओर ऐतिहासिक तथ्य की सुरक्षा हुई है वहां रानी के वीरतापूर्ण भाव की अभिव्यंजना से राजपूत नारी के गौरव का चित्रण भी हृदयग्राही है। चेतक की मृत्यु तथा बच्चों की क्षुधा से विचलित होकर पाषाण हृदयी महाराणा का आंसू बहाना, नन्ही बालिका का क्षुधा आतुर होकर सूखी रोटी में सिसक उठना अत्यन्त मार्मिक तथा करुणापूर्ण है। इन प्रसंगों के सम्बन्ध में स्वयं इतिहासकारों में मत विभिन्नता है परन्तु काव्य में इनके द्वारा जो रसोद्रेक हुआ है वह अत्यन्त मार्मिक है। वीर रस की क्रोड़ में परिपोषित करुण रस की फुहारों से सम्पूर्ण काव्य का कथानक भाग भीगा हो उठा है। खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों की परम्परा में 'हल्दीघाटी' महत्वपूर्ण एक प्रबन्ध काव्य है।

१- जब 'सावधान' रानी ने
राणा का थाम लिया कर।
बोली अधीर पति से वह
कागद मसि पात्र छिपा कर।।

- हल्दीघाटी, पंचदश सर्ग, पृ० १६६

आर्यावर्त (१९४३)

हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' के प्रसिद्ध रचयिता कवि चन्द बरदाई को नायक बना कर पं० मोहनलाल महतो वियोगी ने 'आर्यावर्त' प्रबन्ध काव्य की रचना की । तेरह सर्गों में रचित इस प्रबन्ध काव्य का कथानक आदि से अन्त तक राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम भावना से ओत प्रोत है । काव्य का आरम्भ तातारों से देश की स्वतंत्रता सुरक्षित रखने की चिन्ता से आरम्भ होता है और अन्त में महान् राजपूत सम्राट पृथ्वीराज चौहान तथा कवि चन्दबरदाई के आत्म बलिदान के द्वारा मोहम्मद गोरी की विजय पराजय में परिणत हो जाती है । मोहम्मद गोरी तथा सम्राट् पृथ्वीराज के मध्य हुए युद्ध के के उपरान्त चन्दबरदाई को एक पराजित वीर सैनिक के रूप में प्रस्तुत करते हुए काव्य कथा का आरम्भ हुआ है । इस दृश्य के उपरान्त, मोहम्मद गोरी द्वारा बन्दी पृथ्वीराज की आँखें निकलवाने तथा गजनी भेजने, संयोगिता के नेतृत्व में पुनः संघर्ष होने तथा विजयी होने, चन्दबरदाई का सम्राट पृथ्वीराज को गोरी के बंधन से मुक्त करने की तीव्र अभिलाषा से प्रेरित होकर गजनी पहुंचने, साधु रूप धारण कर शाह के रूप में प्रविष्ट होने, कारागार में सम्राट से मिलने, अपने बुद्धि चातुर्य द्वारा शब्द संधान के उत्सव की योजना करा कर पृथ्वीराज द्वारा मोहम्मद गोरी को मरवाने तथा अन्त में परस्पर एक दूसरे को मार कर आत्म बलिदान कर देने की मुख्य घटनाओं के परिवेश में काव्य-कथा का निर्माण हुआ है । काव्य का मुख्य रस वीर है । करुण रस की धारा भी इसमें कहीं कहीं प्रवहमान है परन्तु काव्य का पर्यवसान वीर रस में ही हुआ है । वीरत्व का स्थायी भाव ओज प्रत्येक पात्र में दृष्टिगत होता है । काव्य कथा के कतिपय प्रसंग अत्यन्त रोमांचकारी हैं । महाराज पृथ्वीराज की वीरतापूर्ण मुद्राओं का चित्रण आकर्षक है । शत्रु के प्रति मोहम्मद गोरी की क्रूर नीति का चित्रण उसकी हृदयहीनता का परिचायक है । भारत के सम्राट् महाराज पृथ्वीराज गजनी की कठोर कारा में जिस यातना तथा दुरावस्था में पड़े हैं, उसके चित्रण द्वारा गोरी की समस्त कठोरता और क्रूरता प्रत्यक्ष हो

उठती है ।[1] सरल सुबोध भाषा में भावों के मनोवैज्ञानिक स्पन्दन के चित्र प्रभावोत्पादक हैं । एक ऐतिहासिक प्रसिद्ध कवि को प्रधान पात्र बना कर खड़ी बोली में यह प्रथम काव्य-रचना है । काव्य कथा के नियोजन में कवि की नवीन दृष्टि, सार्वभौम सुख की भावना का प्रसार एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है । मानव-जीवन की व्यापक अभिव्यक्ति के स्थान पर आद्योपान्त विभिन्न भावों की उत्कट राष्ट्रीय भावना का परिपाक इस प्रबन्ध काव्य की मुख्य विशेषता है ।

काव्य का ऐतिहासिक आधार :-

'आर्यावर्त' की प्रमुख कथा का आधार 'पृथ्वीराज रासो' है । पृथ्वीराज रासो में ऐसी अनेक ऐतिहासिक असंगतियाँ प्राप्त होती हैं जिनकी प्रामाणिकता पर विद्वानों में मतभेद है ।

(१) तराइन के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् पृथ्वीराज को कैद करके अन्धा किए जाने और गजनी ले जाने की घटना ऐतिहासिक सम्मत नहीं मानी जाती । पृथ्वीराज को गोरी ने कैद करके मरवा दिया था ।[2]

१- सिर पर रूखा बालों का एक वन था
भौंहें थीं बढ़ी हुई परन्तु सारा चेहरा
दाढ़ी और मूछों से भरा था- शैवाल से
मानों सरसी में कोकनद हो छिपा हुआ।
दुर्बल शरीर था- थे 'टाट' पहने हुए
जुएं रेंगती थीं , बेड़ियां थीं पड़ी पैरों में । -- सर्ग बारह, पृ० १३८

२- "Prithviraj was captured and put to death, and his brother was also slain".
R.C. Majumdar, H.C. Raichoudhuri & K. Datta , An Advanced History of India : Page - 278.

"The captive Prithviraj who was granted immunity from punishment, made an intrigue against the Sultan. The conspiracy was detected and at the order of the Sultan,Prithiviraj was executed".
History and Culture of the Indian People : Page - 112.
(Bharatiya Vidya Bhavan's)

पृथ्वीराज की पराजय तथा मृत्यु के सम्बन्ध में मुस्लिम इतिहासकारों तथा संस्कृत साहित्य के द्वारा बहुत कुछ परिचय प्राप्त होता है । पृथ्वीराज की मृत्यु के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्यकारों के विचार भिन्न-भिन्न हैं । परन्तु निष्कर्ष यही निकलता है कि पृथ्वीराज को गोरी ने मरवा दिया था[१] ।

(२) जयचन्द चन्दवरदाई तथा महारानी संयोगिता के नेतृत्व में राजपूतों द्वारा मोहम्मद गोरी पर विजय प्राप्त करना तथा पृथ्वीराज को छुड़ाने का प्रयत्न ऐतिहासिक तथ्य नहीं है । हाँ, पृथ्वीराज के कुछ सम्बन्धियों द्वारा गोरी के विरुद्ध कुछ प्रयत्न अवश्य हुए परन्तु सभी असफल रहे[२] । सम्भव है कवि ने इसी के आधार पर महारानी संयोगिता के नेतृत्व में गोरी के विरुद्ध अभियान की कल्पना की हो । गोरी के विजय प्राप्त करने के पश्चात् राजपूतों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी[३] । 'आल्हखण्ड' में गोरी के पराजित होकर गजनी लौटने की बात भी इतिहासविरुद्ध है ।

१- विस्तृत विवरण के लिए--
History & Culture of the Indian People : Volume V
(Bharatiya Vidya Bhavan's) Page - 112, 113.

2. "The victory of Muhammad was decisive. It laid the foundation of Muslim dominion in northern India and the subsequent attempts of the relatives of Prithiviraj to recover their lost power proved to be of no avail".

R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta
An Advanced History of India : Page - 278.

3. "The defeat of Prithiviraj in the second battle of Tarain not only destroyed the imperial power of the Chahamanas but also brought disaster on the whole of Hindustan".

History & Culture of India : Volume V & Page - 113

(३) पारम्परिक शत्रुता के कारण कन्नौज के महाराजा जयचन्द ने (पृथ्वीराज का मौसी का लड़का था) मोहम्मद गौरी को आक्रमण के लिए बुलाया था 'आर्यावर्त' में यह उल्लेख स्थान-स्थान पर आया है । इतिहास ने इस बात का विरोध किया है ।[1]

(४) पृथ्वीराज द्वारा मोहम्मद गौरी के मारे जाने की घटना ऐतिहासिक तथ्यों के प्रतिकूल है । खोखर तथा अन्य जातियों के भारी विद्रोह को दबाने के लिए मोहम्मद गौरी अक्टूबर सन् १२०५ में भारत आया था । खोखरों के झगड़े को निबटा कर जिस समय वह लौट रहा था किन्हीं शत्रुओं ने छुरा घोंप कर दमयक के स्थान पर १५ मार्च सन् १२०६ में उसकी हत्या कर दी थी ।[2] पृथ्वीराज द्वारा मारे जाने की घटना को इतिहासकारों ने राजपूतों में प्रचलित कहानी माना है ।[3] पृथ्वीराज रासो की कथा को मूल आधार बनाने के कारण 'आर्यावर्त' में इन ऐतिहासिक असंगतियों का आना स्वाभाविक था । आर्यावर्त में निम्न बातें इतिहाससम्मत ठहरती हैं --

(१) मोहम्मद गौरी का आक्रमण, पृथ्वीराज की पराजय तथा पृथ्वीराज का बन्दी बनाया जाना ।

---

1. "There is no reason, however, to believe that Jai Chand invited Muhammad of Ghur to invade India. The invasion of this country was an almost inevitable corollary to Muhammad's complete victory over the Ghaznavids in the Punjab".

   R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri, & K. Datta
   An Advanced History of India : Page - 278.

2. "On his way from Lahor to Ghazini, he was stabbed to death at Damyak on the 15th March, 1206 by a band of assassins whose identity has not been precisely determined".

   R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta.
   An Advanced History of India : Page - 280.

3. An Advanced History of India : Page - 280.

(२) काव्य के सभी प्रमुख पात्र सम्राट पृथ्वीराज समर सिंह (चित्तौड़ेश्वर) चन्दवरदाई, जयचन्द, महारानी संयोगिता, मोहम्मद गोरी आदि आदि।

ऐतिहासिक तथ्यों के महत्त्व को छोड़ कर राष्ट्रीय भावना के चित्रण के दृष्टिकोण को देखते हुए आर्यावर्त निःसंदेह ओज तथा वीर भाव से पूर्ण सफल प्रबन्ध काव्य है। वीरयोद्धा के रूप में पृथ्वीराज का चरित्र चित्रण तथा एक वीर सैनिक के रूप में कवि चन्द की कल्पना सुन्दर है[१]। वीरता तथा देश प्रेम की इस उत्कट भावना में जहाँ तत्कालीन शौर्य मुखरित हुआ है वहाँ आधुनिक युग में देश भक्ति की भावना तथा स्वतंत्रता प्रेम सम्पूर्ण काव्य की पृष्ठभूमि है। एक मध्ययुगीन प्राचीन कथानक को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करना कथावस्तु के नियोजन की दृष्टि से प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में नवीनता का सूत्रपात करना है[२]।

१- आया एक वीर ओज-तेज का प्रतीक सा
उन्नत शरीर मानो युवक गयंद हो,
अरि-गर्व-गंजन विशाल भुजदंड थे,
वक्ष मानो वज्र के कपाट-सा सुदृढ़ था,
अंग प्रत्यंग में था कवच कसा हुआ,
सिर था शिरस्त्राणहीन उस योद्धा का। -- आर्यावर्त, प्रथम सर्ग, पृ० ५

२- प्रसिद्ध आलोचक श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'कुरुक्षेत्र' तथा 'कैकेयी' के साथ आर्यावर्त को भी रखते हुए कहा है-

'दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' प्रभात के 'कैकेयी' और मिश्रजी के आर्यावर्त में आख्यान काव्य की परम्परा का आगामी विकास देखते हैं। इससे हमें यह भी आशा होती है कि कोई श्रेष्ठतर महाकाव्य हिन्दी में अभी आने वाला है।' --नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, भूमिका पृ० ३६

जौहर (१९४४)

चित्तौड़गढ़ की महारानी पद्मिनी तथा दिल्ली के तत्कालीन शासक अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण की चिरपरिचित तथा इतिहास-प्रसिद्ध कथा को श्यामनारायण पाण्डेय ने 'जौहर' प्रबन्ध काव्य[1] में प्रतिपादित किया। कवि-प्रतिभा ने इस मार्मिक कथा को नवीन अभिव्यंजना शैली के द्वारा ऐसा करुण रूप प्रदान किया है कि पाठक, पथिक तथा पुजारी तीनों अन्त तक भाव विह्वल हुए पढ़ते, कहते तथा सुनते रहते हैं। पथिक तथा पुजारी द्वारा प्रस्तुत श्रोता तथा वक्ता के रूप में जिस कलात्मक शैली का निर्माण कवि ने इस ऐतिहासिक महाकाव्य में किया है वह सर्वथा उसकी मौलिक उद्भावना है। सर्गों के स्थान पर कवि ने चिनगारियों में काव्य का विभाजन करके कथानक में निहित तीव्रता की ओर संकेत किया है। इक्कीस चिनगारियों में विभक्त इस कथानक विभाजन क्रम में 'कामायनी' की भाँति मनोवैज्ञानिकता से पूर्ण है। परिक्रम, युद्ध, उन्माद, आखेट, दरबार, स्वप्न, उद्बोधन, क्रीड़ा, मुक्ति, पुनर्युद्ध, चिन्ता, चुनौती, ध्वंस, आदेश, श्रृंगार, विदा, अर्चना, जौहर, व्रत, प्रवेश तथा दर्शन अंशों में सम्पूर्ण कथा कह कर कवि भावना के जलधि में डूबने उतरने के लिये छोड़ देता है। 'जौहर' वर्णन प्रधान भावपूर्ण महाकाव्य है। शान्त तथा वात्सल्य आदि रसों को छोड़ कर प्रायः सम्पूर्ण रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। मानवीय संवेगों की सहज अनुभूति अत्यन्त मार्मिकता के साथ व्यक्त होती है। 'कामायनी' का चिन्तन 'जौहर' काव्य में खोजने बैठें तो सम्भवतः निराश होना पड़े परन्तु जीवन की संवेदना के दर्शन कराने में सम्भवतः यह काव्य अद्वितीय सिद्ध हो। प्रसंगानुकूल छन्द योजना तथा प्रसाद गुण

१- हिन्दी की अनेक बृहद् ऐतिहासिक काव्य रचनाओं का महाकाव्यत्व संदिग्ध है। अतः उन्हें प्रबन्ध काव्य की संज्ञा देना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत हुआ ~~होता~~ है।

सम्पन्न भाषा ने काव्यात्मक सौन्दर्य को द्विगुणित किया है। ग्रन्थ की दृष्टि से यह कथानक दृढ़ है। उपकथा के साथ-साथ कथान्तर प्रसंग स्वर्ण में सुहागे की भाँति निहित है। कथानक तीव्र गति से आगे बढ़ता है। कवि ने मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा चित्तौड़ के ऐतिहासिक गौरव को उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत करने के साथ ही ऐतिहासिक तथ्य को भी आकर्षक तथा सुन्दर रूप प्रदान किया है। महारानी पद्मिनी के जीवन की करुणामय अभिव्यक्ति 'जौहर' महाकाव्य की विशिष्टता है।

काव्य-कथा तथा ऐतिहासिक तथ्य :-

'जौहर' में महारानी पद्मिनी की कहानी में ऐतिहासिक तथ्य इतना ही है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था तथा कुछ समय उपरान्त जीत लिया। महाराणा रत्नसिंह अनेक वीर सामन्तों सहित वीर गति को प्राप्त हुए तथा राजपूत नारियों ने 'जौहर' व्रत किया[१]।

'जौहर' में अन्य काव्य-कथाओं की भाँति ही लक्ष्मणसिंह को चित्तौड़ का महाराणा कहा है परन्तु चित्तौड़ के महाराणा रत्न सिंह थे[२]। लक्ष्मण सिंह सामन्त थे जो अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध में लड़ते हुए मारे गये[३]। वस्तुतः टाड राजस्थान तथा फिरिश्ता की तारीख फिरिश्ता में उल्लिखित पद्मिनी की कथा पद्मिनी काव्यों का आधार बनी। 'पद्मावत' ग्रन्थ से ७० वर्ष पीछे लिखे गये 'तारीख फिरिश्ता' में फिरिश्ता ने पद्मावत की कथा को कुछ घटा बढ़ा कर ऐतिहासिक रूप दे दिया है। टाड ने मेवाड़ के भाटों के कथनों

१- श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द प्रथम, पृ० १९१

२- ,, ,, ,, ,, पृ० १७९

३- ,, ,, ,, ,, पृ० १९१

के आधार पर ही लिखा है। भाटों ने पद्मावत् पन्नाकाव्य से यह कथा ली है। इस प्रकार अन्ततः पिछले ऐतिहासिक ग्रन्थों का आधार पद्मावत् की कथा ही ठहरता है[१]।

जौहर की नवीन उद्भावनाएं :-

रानी पद्मिनी तथा रत्नसिंह की कथा में अब तक प्रचलित किंवदन्तियों के स्थान पर 'जौहर' के लेखक ने कतिपय नवीन प्रसंगों की कल्पना की है। इनका ऐतिहासिक आधार न होते हुए भी इनका रूप-साम्य ऐतिहासिक संवेदना से ओत प्रोत है।

(१) सर्वप्रथम तीसरी तथा चौथी चिनगारी में रत्नसिंह के आखेट करते हुए मृग दम्पति की मृत्यु तथा इस पाप के परिणामस्वरूप वनदेवी का रत्नसिंह को शाप देना।[२]

(२) कवि ने अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी के दर्पण में दर्शन करने के प्रसंग को नहीं लिया। आखेट करते हुए गुप्तचरों द्वारा रत्नसिंह को बन्दी बनाये जाने की कल्पना की है।

१- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १८७ से १९२ तक

२- तो हत्या यह व्यर्थ न होगी
राजपूत बलिदान करेगी।
यह घर घर कृशाग्नि लगाकर
सारा पुर वीरान करेगी।
चिता पद्मिनी की धधकेगी
सारा जग-जग कांप जायेगा।
साथ जलेंगी वीर नारियां
महाप्रलय भय भांप जायगा।।
-चतुर्थ चिनगारी, पृ० ४१

(३) राणा भीमसिंह का स्वप्न तथा राजपूतों की इष्टदेवी का वीरों का रक्त पान करके पिपासा शान्त करने के हेतु, महाराणा से स्वप्न में भेंट कवि-कल्पना है।

(४) नवीं चिनगारी में अलाउद्दीन के वेश विन्यास तथा राज सज्जा की कल्पना से उसके कामातुर रूप तथा रूप लोलुपता का चित्रण हुआ है।

(५) पद्मिनी का दरबार में आकर वीरों को प्रेरणा देना तथा उत्तेजित करना कवि-कल्पना है। इसी कवि ने पद्मिनी को परम्परागत रूप से भिन्न नवीन रूप में प्रस्तुत किया है।

(६) बीसवीं चिनगारी में अलाउद्दीन की, सुन्दरी पर दृष्टि पड़ते ही उसमें से प्रकट हुई सखी का कटार लिये उसकी ओर बढ़ना, शोणित स्नात कटारी लिये अष्टभुजी काली की भांति देख कर अलाउद्दीन का भयवश चेतनाहीन होकर, ये दोनों प्रसंग कवि-कल्पना है।

ये सभी प्रसंग काव्य की कथावस्तु के विस्तार में सहायक तथा उसकी आकर्षण के केन्द्र हैं।

<u>महामानव</u> (१९४६)

आलोच्यकालीन राष्ट्रीय जागरण की ऐतिहासिक कथा के सूत्र में गान्धी जी के व्यक्तित्व का चित्रण ही 'महामानव' की कथा है[१]। ठाकुर प्रसाद सिंह 'अद्भुत' ने जागरण के प्रयत्नों की छाया में बापू के विशाल व्यक्तित्व का प्रभाव पूर्ण चित्रण किया है। भारत चिन्ता तथा स्थापना के परिवेश में सम्पूर्ण कथा पन्द्रह सर्गों में नियोजित है। गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका संग्राम के प्रथम

१- महामानव के मूल में गान्धी जी का चरित्र स्पष्ट है जैसे रामायण के मूल में राम का पूर्ण जीवन स्थित है। एक और रामायण भी मेरा आदर्श रहा है। रामायण में राम के चरित्र के अतिरिक्त एक युग का सन्देश है जो प्रधान न होते हुए भी प्रधान है और उस काव्य की संचालना शक्ति है। महामानव में भी गान्धी के जीवन से प्रधान जनता के जागरण की टेढ़ी सीधी रेखा है जो प्रत्येक स्थल पर उभरती गयी है। -- लेखक भूमिका में।

अभियान से लेकर, भारत लौटने, राष्ट्रीय जागरण की चेतना उद्बुद्ध करने चम्पारन, अहमदाबाद, खेड़ा की जनता का गांधी जी के नेतृत्व में खड़ा होने, रौलेट एक्ट, ब्रिटिश शासकों के अत्याचार, गोलियों बौछारों से भारतीय जनता के अभियान दमन नीति, जलियाँ वाला बाग का रोमांचकारी असहयोग सत्याग्रह, डांडी-प्रयाण, किसान सत्याग्रह, संघर्ष, भारत छोड़ो आन्दोलन, भारत में साम्प्रदायिकता, के तथा रक्त से रंजित नोआखाली में बापू के जाने तक की ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश इस काव्य में हुआ है। ऐसी ही दृष्टि से घटना चित्रण की अपेक्षा कवि ने भाव चित्रण की शैली को अपनाया है। फलत: महामानव वर्णन प्रधान भाव-काव्य है। भावानुकूल छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया गया है। भूमिका में स्वयं कवि ने शैली, भाषा तथा उद्देश्य के सम्बन्ध में स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है। गांधी जी समकालीन थे अत: काव्य इतिहास वैषम्य दृष्टिगत नहीं होता। जन जागरण की यह महागाथा सरल शुद्ध खड़ी बोली में प्रस्तुत की गई है। इतिहास को एक भाग को काव्य में समाहित करने वाला यह प्रबन्ध-काव्य बापू के चरित्र काव्यों में सम्भवत: सर्वाधिक भावपूर्ण है।

१- फिर खेड़ा में उठे दलित
 जन एक नये प्राण में।
 अत्याचारों का विरोध
 आवश्यक है जीवन में।

२- " मैंने पूरा वर्णन यों बराबर बदलते छन्दों में किया है, और जहाँ भी कथा की गति के हर मोड़ पर छन्द बदल गए हैं, किन्तु जहाँ एक ही छन्द में पूरा वर्णन किया गया है वहाँ भी आरोह अवरोह की गति पर ध्यान रखते हुए दीर्घ के पश्चात् ह्रस्व करके फिर दीर्घ राग पकड़ा गया है। कुछ शब्दों, मात्राओं के आंतरिक स्वरों तक पर मिलेंगे। ऐसा प्रयोग इंगलिश में तो बहुत है पर हिन्दी में निराला जी के अतिरिक्त कम ही दिखाई पड़ा------- क्षिप्र स्थलों पर गति भी क्षिप्र है, पर गम्भीर स्थलों पर पूरी फैल कर गंभीर पद धरती चलती है।" -लेखक, भूमिका में।

विक्रमादित्य(१९४९)

गुप्त साम्राज्य के यशस्वी सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा गुप्त सम्राज्ञी ध्रुवदेवी की प्रेम गाथा को आधार बना कर गुरु भक्त सिंह ने "विक्रमादित्य" प्रबन्ध काव्य की रचना की । चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के जीवन की जिस घटना को प्रमुख आधार बना कर लेखक ने कथानक का निर्माण किया है ऐतिहासिक दृष्टि से उसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता । ध्रुवदेवी तथा चन्द्रगुप्त की प्रेमगाथा के प्रमाणस्वरूप लेखक ने काव्य ग्रन्थ के "काव्य-कथा के पुरातात्विक आधार" में जिन प्राचीन पुस्तकों का उल्लेख किया है वे निम्न प्रकार है हैं --

(१) बारहवीं शताब्दी का इतिहास ग्रन्थ मुजमलुत्तवारीख,

(२) रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण,

(३) बाण कृत हर्षचरित

(४) ग्यारहवीं शताब्दी में धार के राजा भोज कृत शृंगार प्रकाश ।

प्रथम पुस्तक को छोड़कर शेष तीनों ग्रन्थ प्राचीन संस्कृत साहित्य के हैं । इन सभी में काव्य का कथानक संक्षेप में निम्न प्रकार से है -

तत्कालीन गुप्त सम्राट् रामगुप्त(चन्द्रगुप्त का बड़ा भाई)की पत्नी ध्रुवदेवी द्वारा सम्राट् के अनुज चन्द्रगुप्त (महाबलाधिकृत) के प्रति प्रणय निवेदन से काव्य का आरम्भ हुआ है । ध्रुव देवी को विवश होकर रामगुप्त की पत्नी बनना पड़ा था किन्तु वह चन्द्रगुप्त को ही हृदय से प्यार करती रही । सम्राज्ञी बनने के पश्चात् उसने अनेक बार हृदय की प्रेम भावना प्रकट करके चन्द्रगुप्त के हृदय साम्राज्य में स्थान पाना चाहा किन्तु उस कठोर सैनिक का हृदय मर्यादा तथा संकोचवश ध्रुवदेवी के इस कोमल भाव को महत्व न देते हुए तटस्थ ही रहा। अधिकार सम्पन्न सम्राज्ञी का एकांगी प्रेम तड़प उठा उसने अधिकारों की शक्ति से प्रेम पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु शक्ति की मदान्धता में वह चन्द्रगुप्त को खो बैठी । निर्वासित किए जाने पर चन्द्रगुप्त राज्य की सीमाओं से दूर चला गया । ध्रुवदेवी के लिए अब वियोग असह्य हो उठा। इसके उपरान्त शक्ति,बुद्धि चातुर्य ,प्रेम तथा त्याग के बल पर ध्रुवदेवी द्वारा

चन्द्रगुप्त को पुन: प्राप्त करके प्रेम की विजय की सम्पूर्ण कथा है वर्णन में अनेक काल्पनिक प्रसंगों की उद्भावना के साथ ही ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण भी हुआ है ।

काव्यकथा तथा ऐतिहासिकता :-

(१) समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बीच में एक गुप्त राजा और हुआ है । गुप्तकालीन सिक्कों में एक धातुवाला सिक्का मिला है । किन्तु इतिहासकारों तथा अन्वेषकों का मत है कि यह सिक्का रामगुप्त का है और काच को राम पढ़ा जा सकता है । डा० भंडारकर महोदय ने यह प्रमाणित किया है कि काचवाला सिक्का अर्थात् समुद्रगुप्त के बाद राज्य करने वाले उसके जेठ पुत्र रामगुप्त ने निकाला था[1] अत: रामगुप्त ऐतिहासिक पात्र है । संस्कृत साहित्य में भी रामगुप्त का उल्लेख प्राप्त होता है।

(२) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ऐतिहासिक पात्र है इसकी उदारता, यश तथा दिग्विजयों का वर्णन ऐतिहासिक तथ्य है । चन्द्रगुप्त ने शकों को पराजित करके राज्य में शान्तिस्थापना की थी इतिहास में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं ।[2]

(३) वीरसेन कुबेर नागा ऐतिहासिक पात्र है । वीरसेन चन्द्रगुप्त का मंत्री था। शकों को पराजित करने में वीरसेन भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ था ।[3]

१- वासुदेव उपाध्याय, एम०ए०, गुप्त राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ०७२,७३ प्रथम संस्करण, १९३९

2. "Chandra Gupta II carried on the policy of "world conquest pursued by his predecessor ....
He took measures to wipe out Saka rule in western Malwa and Kathiawar. His efforts were crowned with success as we known from the evidence of coins and of Bana's Harsha Charita".

R.C.Majumdar, H.C.Raychoudhuri & K. Datta.
An Advanced history of India : Page - 149.

3. And Advanced history of India : Page - 49.

काव्य में चारुसेन का चरित्रांकन एक विदूषक की भांति है सन्तोषप्रद है अनुकूल उसमें गम्भीरता का अभाव है।

(४) ध्रुवदेवी ऐतिहासिक पात्र है। बाण के 'हर्षचरित' में स्त्रीवेष में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा किसी शक राजा को नष्ट करने का उल्लेख प्राप्त होता है। शंकर ने, हर्षचरित में उल्लिखित शकारि के युद्ध के विषय में टीका करते हुए, चन्द्रगुप्त द्वितीय के भ्रातृजाया ध्रुवस्वामिनी का वेष धारण करने का उल्लेख किया है। ध्रुवस्वामिनी पहले भ्रातृजाया थी और पीछे चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी हो गई। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अपने भाई रामगुप्त के मरने पर चन्द्रगुप्त ने उसकी विधवा स्त्री ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लिया।[1] निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इस कथा में रामगुप्त ध्रुवदेवी तथा चन्द्रगुप्त सम्बन्धी अनेक प्रसंग इतिहाससम्मत हैं। यह बात दूसरी है कि बहुत से इतिहासकार इन उल्लेखों को अभी संदिग्ध मानते हैं।[2] कुबेर नागा के साथ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का विवाह हुआ था

१- वासुदेव उपाध्याय एम०ए०, गुप्त राज्य का इतिहास, द्वितीय खंड, पृ०२४३, २४४

2. Some recent writers have traced hints in literature of uncertain date and in inscriptions of the ninth and tenth centuries A.D., that the immediate successor of Samudra Gupta was his son Ram Gupta, a weak ruler, who consented to surrender his wife Dhruvadevi to a Saka tyrant. The honour of the queen was saved by Chandra Gupta, younger brother of Rama Gupta, who killed the Saka, replaced his brother on the imperial throne and married Dhruvadevi..........
The matter should therefore be regarded as subjudice and can only be decided when contemporary evidence confirming the story is forthcoming".

R.C. Majumdar,
H.C. Raychoudhuri &
K. Datta.
An Advanced History of India : Page - 148, 149.

यह ऐतिहासिक घटना है[1]।

इस ऐतिहासिक दृष्टि के साथ कवि ने कल्पना का खास सम्मिश्रण किया है। बारहवीं सदी के इतिहास ग्रन्थ 'मुजमलुत्तवारीख' में रामगुप्त तथा ध्रुवदेवी के सम्बन्ध में वर्णन मिलता है और इस वर्णन का मूल आधार 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक है जो छठीं शताब्दी में विशाखदत्त द्वारा रचित अनुमान किया जाता है[2]। यह नाटक अप्राप्य है। 'विक्रमादित्य' के कवि की कथा अधिकांशतः मुजमलुत्तवारीख की कथा से ही साम्य रखती है[3]। 'विक्रमादित्य' के कवि ने चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा ध्रुवदेवी की प्रेम कहानी के वर्णन में कल्पना का उपयोग अधिक किया है। कहीं-कहीं ध्रुवदेवी की प्रेम विह्वलता उपन्यासात्मक भी हो गई है। 'ध्रुवस्वामिनी' (जयशंकरप्रसाद) में जो गाम्भीर्य चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी के प्रणय व्यापार में प्राप्त होता है उसका 'विक्रमादित्य' में अभाव है। शकपति के यहाँ उत्सव चन्द्रगुप्त द्वारा नाटक खेलना, कुबेरनागा

---

1. "Political marriages occupy a prominent place in the foreign policy of the Guptas as of the Haps burgs and Bourbons of Europe....
A further step in the same direction was taken by Chandra Gupta II when he conciliated the Naga cheiftains of the upper and central prāvinces by accepting the hand of the princess Kuberanaga..."

R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta.
An Advanced history of India : Page -149.

२- विक्रमादित्य काव्य के पुरातात्विक आधार ,

३- ,, ,,

और चन्द्रगुप्त का संयोगवश वनप्रदेश में मिलना तथा परस्पर प्रेम हो जाना, कापालिक की घटना, चाणक्य और उनकी पत्नी का परस्पर व्यवहारादि अनेक प्रसंग रोचक हैं। सब मिलाकर विक्रमादित्य मनोरंजक प्रबन्ध काव्य है।

जननायक(१९४९)

गान्धी जी के जन्मकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक के सम्पूर्ण जीवन को रघुवीर शरण 'मित्र' ने 'जननायक' में चित्रित किया है। गांधी जी की शैशव कालीन क्रीड़ाएं, विवाह, शिक्षा, विदेश यात्रा, आत्मतत्त्व निर्माण, चरित्र निर्माण, राजनैतिक जीवन, सामाजिक जीवन, धार्मिक जीवन आदि चलचित्र की भांति चित्रित हैं। सरल सुबोध भाषा तथा वर्णन शैली में लिखा गया यह काव्य इक्कीस सर्गों में समाप्त हुआ है। संघर्ष पूर्ण घटनाओं के वर्णन में भाषा ओजपूर्ण है। भारतीय जनता की दरिद्रावस्था तथा ब्रिटिश शासकों के अत्याचार की कहानी करुण चित्र प्रस्तुत करती है। वर्णन स्थलों की अपेक्षा जिन स्थलों में करुणा-रस का प्रवाह है वे काव्य सौन्दर्य के अधिक समीप प्रतीत होते हैं। गान्धी जी के जीवन का कलात्मक वर्णन काव्य की सम्पूर्ण कथा है।

वर्द्धमान (१९५१)

जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवनवृत्त को आधार बना कर कवि अनूप शर्मा ने 'वर्द्धमान' महाकाव्य की रचना की। वर्द्धमान ऐतिहासिक पात्र है। इनके जीवन के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री का प्रायः अभाव ही है। इतिहास में जो सामग्री उपलब्ध है वह अधिकांशतः श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन मतों की परम्परागत मान्यताओं के आधार पर ही उल्लिखित है। कवि ने प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य तथा जैनागमों में प्रचलित जैन मान्यताओं के अनुसार भगवान वर्द्धमान के जीवन को काव्यबद्ध करने का प्रयास किया है। वर्द्धमान का जीवन बाल्यकाल से वैराग्यपूर्ण था। सुख दुख, आशा निराशा, मानवजीवन के उत्थान पतन तथा घात प्रतिघातों का उनके एकान्तिक जीवन में अभाव था।

ऐसी एकरस नायक के जीवन-चरित में वैविध्य तथा घटना वैशिष्ट्य प्राप्त होना सम्भव नहीं है यही कारण है कि नायक के माध्यम से काव्य में लोक व्यापी वृत्तियों तथा मानव जीवन के अन्तरंग एवं बहिरंग का वह संवेदना-पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकी जो एक महाकाव्य में अपेक्षित है। कथा-वस्तु के अभाव में लेखक ने वर्द्धमान के माता पिता सिद्धार्थ तथा त्रिशला के दाम्पत्य जीवन की सरस झाँकी द्वारा शृंगार रस की परम्परा के पालन के साथ ही वस्तु विस्तार का योजना की है।

सत्रह सर्गों में विभक्त इस काव्य के उत्तरार्ध में प्रारम्भ से वर्द्धमान की माता त्रिशला के रूप गुण तथा नखशिख सौन्दर्य का रसपूर्ण चित्रण, राज दंपति का प्रेमालाप, संयोग तथा संभोग चित्रण तथा गर्भिणी त्रिशला की दासियों द्वारा सेवा सुश्रुषा आदि का वर्णन हुआ है। आठ सर्गों की इस कथा में त्रिशला तथा सिद्धार्थ के ही नायिका तथा नायक होने का भ्रम उत्पन्न होता है। आठ सर्ग के पश्चात् लेखक ने सिद्धार्थ तथा त्रिशला को पूर्णतः छोड़ कर वर्द्धमान को काव्य के रंगमंच पर उपस्थित किया है। बाल छवि वर्णन के पश्चात् वर्द्धमान के आठ वर्ष की आयु के हो जाने का संकेत मिलता है[1]। इसके पश्चात् दीक्षा के पूर्व का उनका जीवन आत्म चिन्तन का जीवन है। कुंडपुर ग्राम के समीप की ऋजु बालिका[2] नदी के किनारे विचरते हुए वर्द्धमान प्रायः जीवन रहस्य के चिन्तन में निमग्न हो जाया करते हैं[3]। दीक्षा के

१- न बाल जाते लगता विलंब है,
छठो गया तो दिन मास भी गये,
तुरन्त बीते बहु पक्ष मास यों
कि देव को अष्टम वर्ष भी लगा। - सर्ग आठ, पृ० २५१

२-इतिहास में इस नदी का उल्लेख है। यहीं महावीर को केवल ज्ञान की भी प्राप्ति हुई थी। इतिहास इसका नाम ऋजुपालिका है।

३-नितान्त एकान्त-निवास-संस्पृही
कुमार को थी अति मोददायिनी,

--शेष-

पश्चात् सिद्धि प्राप्ति के हेतु साधना तथा तपस्या के जीवन का चित्रण हुआ है। सिद्ध शिलाधिरोहण के पश्चात् धर्मार्थ भ्रमण के प्रसंग में मुक्ति के साथ योगी वर्द्धमान के संयोग तथा विवाह की कल्पना द्वारा कवि ने दार्शनिक बोझिलता को कुछ सरस करने का प्रयत्न किया है। अन्त में सत्रहवें सर्ग में भगवान वर्द्धमान के उपदेशों को काव्यबद्ध किया है। जिन धर्म निरूपण में 'देवलोकपितधर्म' की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हुआ है तथा 'अम्बर मध्य जैन-मत की आनन्द कादम्बिनी' के प्रसार की घोषणा के साथ काव्य समाप्त हुआ है[1]। इस सम्पूर्ण कथानक के लिए लेखक ने महाकाव्य की विधा अपनाई है। लक्षण ग्रन्थों के दृष्टिकोण से महाकाव्य की परम्परागत शास्त्रीय मान्यताओं के पालन का पूर्ण आग्रह है किन्तु जीवन की विराट् संवेदना तथा व्यापक दृष्टि का इस महाकाव्य में अभाव है।

काव्य कथा तथा प्रमुख ऐतिहासिक प्रसंग

(१) माँ का नाम त्रिशला तथा पिता का नाम सिद्धार्थ इतिहाससम्मत है।

(२) वर्द्धमान ऐतिहासिक पात्र है।

(३) ऋजुपालिका नदी का नाम इतिहास में उपलब्ध है।

(४) वर्द्धमान को ज्ञान प्राप्त होना ऐतिहासिक सत्य है[2]।

शेषा- कभी कभी या उसके समीप में
विचारते जीवन का रहस्य है --- सर्ग दश, पृ० २६१

१- ऐसा मार्ग प्रशस्त है न जिसमें है भ्रान्ति -शंका कहीं
छायी अंबर-मध्य जैन मत की आनन्द कादम्बिनी
- सर्ग सत्रह, पृ० ५८५

२-इनप्रसंगों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के लिए-
टी.एन.शाह,ऐन्शेन्ट इण्डिया,पृ० १०,११
तथा- एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० ८५

महावीर के विवाह के सम्बन्ध में एक मत प्राप्त नहीं है । श्वेताम्बर मता-नुसार वर्द्धमान का यशोदा नामक कन्या से विवाह हुआ था और उन्होंने कुछ समय गृहस्थ का जीवन भी व्यतीत किया था[1] । परन्तु दिगम्बर मान्यतानुसार वर्द्धमान अविवाहित थे । इन विभिन्न मतों में समन्वय की दृष्टि सम्भवतया लेखक के सम्मुख प्रमुख थी[2] । अतः महावीर के विवाह की योजना स्वप्न में करा दी गई । जागने पर तो वे विवाह की निःसारता के सम्बन्ध में भी विचार प्रकट करते हैं । इस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण काव्य में प्रमुख है । ऐतिहासिक दृष्टि केवल आवश्यकतानुसार ही अपनाई गई है । इतिहास के क्रम में कवि ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया है । वर्द्धमान के जीवन की रूपरेखाओं में कवि कल्पना तथा धार्मिक मान्यता का रंग चटख है[3] । जैन-धर्म के दृष्टिकोण से शान्तरस पूर्ण 'वर्द्धमान' निश्चय ही महत्वपूर्ण महाकाव्य है।

----

1. "According to the tradition of the Svetambara Jains, he married a princess Yasoda. He lived for some time the life of a pious house holder, but forsook the world at the age of thirty".
   R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri, & K. Datta.
   An Advanced History of India : Page - 85.

२-"श्री मनोहरलाल जी भी कानपुर में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर समाजों के समान रूप से अध्यक्ष थे वह चाहते थे कि इन दोनों आम्नायों के कटु विभेद दूर हों, वह अपने दृष्टिकोण को समन्वित कराना चाहते थे मैंने दोनों मतों को युक्तियुक्त समझ कर इस ग्रन्थ को लिखा है"

-वर्द्धमान, लेखक का वक्तव्य, पृ० २३

३-" यदि आप भगवान महावीर की जीवन सम्बन्धी समस्त घटनाओं का और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक परिस्थितियों का क्रमवार इतिहास इस ग्रन्थ में खोजना चाहेंगे तो निराश होना पड़ेगा यह तो एक महाकाव्य है, जिसमें कवि ने भगवान के जीवन और व्यक्तित्व को आधार फलक बना कर कल्पना की तूलिका चलाई है ।"

-'वर्द्धमान' आमुख से ।

तप्तगृह (१९५४)

पाँचवीं शताब्दी ई मगध राज्य के शक्तिशाली शासक महाराजा बिम्बसार के जीवन काल की एक इतिहास प्रसिद्ध मार्मिक घटना को लेकर केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'तप्तगृह' नामक प्रबन्ध की रचना की। बिम्बसार के पुत्र कोणक[1] (अजातशत्रु) ने अपने पिता की हत्या करके राज्य प्राप्त किया था।[2] इस एक घटना के आधार पर कवि ने मानसिक उत्थान-पतन तथा मानवीय दुर्बलताओं एवं सबलताओं का जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण प्रस्तुत किया है वही काव्य का समस्त सौन्दर्य है। कथानक का विस्तार और प्रबन्धात्मकता मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण में है। देवदत्त की ईर्ष्यालु प्रवृत्ति तथा स्वार्थभावना के हाथों का खिलौना बन कर कोणक पिता के प्राण लेकर राज्य सत्ता प्राप्त करता है।[3] कथानक की घटनाओं के मूल में देवदत्त की दुर्भावना तथा बुद्ध के प्रति विद्वेष भाव कार्य कर रहा है। प्रमाद ग्रस्त कोणक का मातृ-पितृ प्रेम, माँ का सोहाग तथा मनुष्यता राज्य-पिपासा तथा शक्ति के मद में डूब कर बह गए हैं। मदान्ध और सत्ता पिपासु इस कोणक का चित्र जहाँ एक ओर उसके प्रति आक्रोश एवं घृणा उत्पन्न करता है वहीं पुत्र प्रेम की अनुभूति

१- अजातशत्रु कुणिक के नाम से भी जाना जाता है।

R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta,
An Advanced History of India : Page - 59.

2. "Tradition affirms that in his old age the king was murdered son, Ajatsatru".

An Advanced History of India : Page - 59.

3. "In religious tradition Ajatsatru is remembered as a patron of Devadatta, the schematic cousin of the Buddha".

An Advanced History of India : Page - 60.

ईर्षापीड़ित होकर मां के चरणों को अश्रुओं से धोता हुआ कौणक हृदय की समस्त करुणा बटोर लेता है। मांग का सिंदूर पोंछ कर वैधव्य की अमिट रेखा भरने वाले हृदयहीन पुत्र किन्तु आत्मग्लानि तथा मार्मिक क्षोभ से भरे हुए उस पुत्र के प्रति मां की प्रतिहिंसा की ज्वाला स्वमेव बुझ गई। कौणक, कुरुला, बिम्बसार तथा देवदत्त का चरित्र चित्रण कवि की तीव्र अनुभूति के प्रमाण हैं। इतिहास के बिम्बसार तथा अजातशत्रु भले ही विस्मृत हो जांय किन्तु काव्य के बिम्बसार, कौणक, कुरुला और देवदत्त कवि की कल्पना और भावना का स्पर्श प्राप्त करके मानो अमर हो गये। वर्णन शैली में स्वाभाविक गम्भीरता तथा तीव्रता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा प्रवाहपूर्ण वर्णन की दृष्टि से `तथागत` एक सशक्त प्रबन्ध काव्य है।

सन् १६५५ से लेकर १६६० तक के आलोच्यकाल में सन् १८५७ की प्रसिद्ध राष्ट्रीय क्रान्ति पर अनेक महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्यों का निर्माण हुआ। `झांसी की रानी` (श्यामनारायण प्रसाद,१६५५) `तांत्याटोपे` (लक्ष्मीनारायण शुक्ल कुशवाहा,१६५७), `झांसी की रानी` (आनन्द मिश्र,१६५६)

तांत्याटोपे— तांत्याटोपे बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नानासाहब के कुशल सहायक सेनापति थे। १८५७ की क्रान्ति के समस्त नेताओं में तांत्याटोपे की द्रुत कार्यशीलता की समता सम्भवत: कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता[१]। आनन्द-मिश्र ने इस वीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व को आधार बना कर `तांत्याटोपे` प्रबन्धकाव्य की रचना की। `तांत्याटोपे` वीर-रस पूर्ण काव्य है। इसमें राष्ट्रीय क्रान्ति के भावों का सशक्त चित्रण हुआ है।

१- डा० ईश्वरीप्रसाद : भारत का इतिहास, भाग २, पृ० ४८२

इक्कीस आहुतियों में विभाजित यह काव्य तत्कालीन क्रान्तिकारी भावनाओं से ओतप्रोत है ।

झाँसी की रानी (१९५५)

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगना झाँसी की लक्ष्मीबाई की इतिहासप्रसिद्ध तथा लोकप्रसिद्ध जीवन कथा कोआधार मान कर श्याम-नारायण प्रसाद ने `झाँसी की रानी` प्रबन्ध काव्य का निर्माण किया। इसमें लक्ष्मीबाई के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक की सम्पूर्ण जीवनलीला काव्यबद्ध हुई है । लक्ष्मीबाई के जन्म निर्भीक बाल्यावस्था, विवाह, झाँसी की महारानी, पुत्रोत्पत्ति, पुत्र वियोग, पतिवियोग, वीरतापूर्ण सैनिक जीवन, नारी सैन्य संगठन, ब्रिटिश शक्ति से कठोर संघर्ष तथा अन्त में स्वतंत्रता के लिए बलिदान के परिवेश में सम्पूर्ण काव्य कथा की योजना हुई है । घटनाएं प्राय: सुनियोजित हैं परन्तु कहीं कहीं उपकथाओं की योजना निरर्थक प्रतीत होती है । जैसे सगर सिंह डाकू की कथा काव्य में विशेष महत्त्व नहीं रखती। बावन हुंकारों में लिखे गये इस काव्य का उद्देश्य महारानी लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण तथा संघर्षमय जीवन की विराट् झाँकी प्रस्तुत करना है ।कवि ने अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलताप्राप्त की है । काव्य के निम्न प्रमुख प्रसंग ऐतिहासिक हैं --

(१)मोरोपन्त के यहां मन्नूबाई का जन्म शैशवावस्था में माता की मृत्यु ,मोरोपन्त का बिठूर आकर बाजीराव पेशवा का आश्रित होना,बालिका के रूप में मन्नूबाई की वीरता।

(२) मन्नूबाई झाँसी के महाराज गंगाधरराव से विवाह,पुत्रोत्पत्ति , पुत्रवियोग,गंगाधर राव का स्वर्गवास, आनन्दराव को गोद लेना।

(३) महारानी का सैनिक अंग्रेजों से संघर्ष, फाटक के अधिकारियों का विश्वासघात,महारानी का काल्पी पहुंचना,काल्पी में संघर्ष,महारानी का काल्पी से बच निकलना,महारानी का ग्वालियर पर अधिकार,अन्त में नए घोड़े के नाले पर अटक जाने के कारण संघर्ष करते हुए रानी की वीरगति।बाबा गंगादास की कुटिया में अन्तिम संस्कार आदि घटनाएं तथा

काव्य के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हैं।[1] इन घटनाओं को काव्य का रूप देने के लिए कवि ने आवश्यक कल्पनाओं की योजना की है। काव्य के प्रारंभ में मोरोपन्त के दाम्पत्य जीवन की सुखद झांकी प्रस्तुत करते हुए भगवती पत्नी के स्वप्न की कल्पना में कवि ने श्रद्धा वश लक्ष्मीबाई के चरित्र में दिव्य शक्ति का आरोप किया है।[2] इस कल्पना के द्वारा आगामी कथानक में चरित्र की प्रमुखता का संकेत स्पष्ट है। इसी प्रकार मनुबाई का पिता से वादविवाद, नाना सिंह आदि की उपकथा, रानी का सुन्दर तथा मुन्दर से वार्तालाप तथा अन्य छोटे छोटे प्रसंग यहाँ कथानक के विस्तार में सहायक हैं वहाँ मनुबाई तथा बाद की लक्ष्मीबाई के चरित्र चित्रण में भी सहयोग देते हैं। वीर रस की प्रधानता होने के कारण लक्ष्मीबाई के वार्तालापों में स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना सर्वत्र हुई है। सुबोध किन्तु अलंकृत शैली तथा विविध छन्दों का प्रयोग काव्य में हुआ है। श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' तथा 'जौहर' काव्य शैली के अनुकरण पर इस काव्य की रचना हुई है। काव्य में लक्ष्मीबाई का सम्पूर्ण जीवन संवेदना की प्रतिमूर्ति है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी कवि का सम्पूर्ण ध्यान लक्ष्मीबाई के चरित्र चित्रण में ही केन्द्रित है अन्य पात्र गौण हैं। रस दृष्टि को अधिक व्यापक रूप प्रदान किया जाता तथा

१- इन सभी घटनाओं की ऐतिहासिकता के लिए-

- सिपाही विद्रोह या सन् सत्तावन का गदर, सम्पादक-ईश्वरी प्रसाद।
- डा० ईश्वरीप्रसाद, भारत का इतिहास, भाग(२)

२- लेकर सित घोड़े पर निज असि
चमकी वह देवी बाला सी।
नव-दिव्य-प्रभा बन कौंध गई
घन में बिजली की माला सी।

- चतुर्थ हुंकार, पृ० ३३

महारानी के जीवन संघर्षों को अधिक गम्भीरता से प्रस्तुत किया जाता तो सम्भवतः `झाँसी की रानी` उच्चकोटि के महाकाव्यों की श्रेणी में स्थान पा सकता ।

आनन्द मिश्र ने महारानी झाँसी की उपर्युक्त जीवन कथा को ही आधार बना कर `झाँसी की रानी` प्रबन्ध काव्य की रचना की है । इसमें कवि ने लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण चरित्र का वर्णन आलंकारिक भाषा में किया है ।

आलोच्यकाल की उपर्युक्त बृहद् ऐतिहासिक काव्य रचनाओं के अतिरिक्त बाद में भी यह काव्य-धारा प्रवहमान हुई है । सन् १९६० के पश्चात् अनेक प्रबंध-काव्यों (प्रतापसिंह, वीर शिवाजी, प्रियदर्शी अशोक आदि) का निर्माण हुआ है । ऐतिहासिक काव्य-रूपों में विकसित अनेक काव्य शैलियों के बीज यहीं बोले के प्रारम्भ में ही प्रस्फुटित होकर विकसित होने की स्थिति में पहुँच गए हैं । इस दृष्टि से महाकाव्यों की शैली बहुत बाद में अपनाई गई जब कि `प्रियप्रवास` महाकाव्य की रचना द्विवेदी युग के द्वितीय दशाब्द के पूर्वार्द्ध में की जा रही थी। इसका एक कारण हो सकता है । मध्यकाल से यहाँ रासो युग हिन्दी के भक्ति परक पौराणिक आख्यानक काव्यों की सुदृढ़ परम्परा यहीं रही है कवियों को प्राप्य थी परन्तु इतिहास को विषय बना कर बृहद् काव्य लिखने की परम्परा में उल्लेखनीय काव्य सुदूर आदि काल में रचित पृथ्वीराज रासो ही उपलब्ध होता है । इस इतिहास ग्रन्थ में अतिशयोक्तियों की भरमार होने के कारण यह अनेक आलोचनाओं का विषय भी रहा है । रीतिकाल मूलतः मुक्तक युग था । भक्ति के आवरण में राधा कृष्ण के गुणगान की कथाओं का भी इस युग में प्राधान्य रहा । इस युग के राष्ट्रकवि भूषण तथा गोरेलाल ने शिवाजी तथा छत्रसाल को आलम्बन बना कर कतिपय महत्वपूर्ण काव्यों का निर्माण किया । बृहद् काव्य की दृष्टि से गोरेलाल कृत `छत्रप्रकाश` महत्वपूर्ण है परन्तु काव्य की अपेक्षा इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक मूल्य अधिक है । इस काव्य ग्रन्थ के अतिरिक्त रीति काल की अधिकांश ऐतिहासिक रचनाओं में युद्धों का वर्णन तथा शौर्यवर्णन अधिक हुआ है इस प्रकार यह सम्भव हो सकता है

कि ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों को कोई सुदृढ़ पूर्व परम्परा प्राप्त न होने के कारण महाकाव्य की शैली में ऐतिहासिक सन्दर्भों को लेकर काव्य रचना करने का साहस कवियों को बहुत बाद में उत्कर्ष काल में भी हुआ कि भाषा नूतन अभिव्यंजना शैली से पूर्ण होकर विविध भावों की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण समर्थ हो गई। महाकाव्य की शैली आरम्भ होने पर भी किन्तु वैसे इस विधा को एक परम्परा सा आधार भी मिल गई। यद्यपि ऐतिहासिक सन्दर्भों को लेकर रचित अनेक वृहद् काव्य रचनाओं में साहित्य मर्मज्ञों के मतानुसार महाकाव्यत्व की दृष्टि से अनेक न्यूनताएं हैं तथापि महाकाव्य की शैली में निर्मित अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों में जीवन की वह विराट् संवेदना अवश्य प्राप्त होती है जो महाकाव्य की शैली के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त काव्य रूपों को देखते हुए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सन्दर्भों का निर्माण जिन विभिन्न काव्य शैलियों में हुआ है, वे भविष्य में ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के विकास की सूचक हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आधुनिक हिन्दी कवियों ने ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत न करके कवियों ने उनमें कल्पनाशीलता का समावेश किया है जिससे ऐतिहासिक तत्व कवि की कला तथा भावना का स्पर्श प्राप्त करके सुन्दर एवं प्रखर रूप में प्रस्तुत हुए हैं। शैली की दृष्टि से विभिन्न रूपों में अतीत गौरव की झांकी तथा समसामयिक युग चेतना की कलापूर्ण अभिव्यक्ति इन ऐतिहासिक सन्दर्भों की अन्तश्चेतना है। ऐसा ज्ञात होता है कि इतिहास की समस्त प्रेरणाएं साहित्य के अन्तराल में अन्तर्भुक्त हो गई हैं।

चतुर्थ अध्याय

ऐतिहासिक सन्दर्भगत दृष्टिकोण

खड़ी बोली हिन्दी काव्य में ऐतिहासिक सन्दर्भों के चित्रण में कवियों के विभिन्न दृष्टिकोण परिलक्षित होते हैं । आलोच्यकालीन पृष्ठभूमि का इन सभी पर विशेष प्रभाव रहा प्रतीत होता है । ऐतिहासिक काव्यों के निर्माण के मूल में युग विशेष की सामाजिक ,राजनैतिक,धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण प्रेरणा का कार्य किया है । सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल नवजागरण का काल था । इसी जागरण के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन चेतना संचरित हो रही थी । जातीय अभिमान एवं आत्मविश्वास का स्वर विशेष रूप से ऊंचा था । सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत (राजाराममोहन राय,स्वामी दयानन्द,स्वामी विवेकानन्द आदि) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीयों की सुप्त आत्मा को जगाने की चेष्टा कर रहे थे । समाज का सर्वाधिक प्रबुद्ध वर्ग तथा कवि समुदाय,समय की इस संघर्षपूर्ण स्थिति से विशेष प्रभावित हुआ । असंतोष,अशान्ति,आत्महीनता की प्रबलता देख कर यह स्वाभाविक ही था कि कवि-हृदय उस युग का ऐसा चित्र प्रस्तुत करने की ओर झुक जाय जिसके द्वारा वह वर्तमान ह्रासोन्मुख जीवन को प्रेरणा भी दे सके तथा युग-भावना का भी सम्यक् चित्रण भी कर सके । इस उद्देश्य पूर्ति की कामना में ही ऐतिहासिक काव्य के निर्माण में कवि के विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिपादन हुआ । जीवनगत आदर्शों के स्वस्थ स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए उसने विभिन्न ऐतिहासिक चरित नायकों के आदर्शमय जीवन का गान किया । फलत: लगभग सभी ऐतिहासिककाव्यों में आदर्श निरूपण की दृष्टि विशेषरूप से परिलक्षित होती है । वर्तमान के ह्रासोन्मुख सांस्कृतिक जीवन को उसने अतीत के गौरव का दर्शन कराया । देश भक्त वीरों के प्रति उसकी श्रद्धा कहीं पूजा-भावना के रूप में मुखरित हुई तथा कहीं प्रशस्तिगान के रूप में । राष्ट्रीय भावना की चेतना का अभ्युदय आलोच्यकाल की प्रमुख धारा के रूप में दृष्टिगत हुआ । अत: ऐतिहासिक सन्दर्भों से सम्बन्धित रचनाओं के निर्माण में विभिन्न ऐतिहासिक जातियों की राष्ट्रीय-भावना का निरूपण हुआ है । निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सन्दर्भों को आधार मान कर काव्य रचना करने से

केवल मनोरंजन अथवा कथा-वर्णन ही कवि का ध्येय नहीं है । अनेक ऐतिहासिक काव्यों की भूमिकाओं में स्वयं काव्यकारों ने अपनी सन्दर्भ गत दृष्टि का उल्लेख किया है जिसके द्वारा भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है । यहां ऐतिहासिक सन्दर्भगत दृष्टिकोण की इस विविधता पर विचार करना समीचीन होगा ।

(क) अतीत गौरव :

ऐतिहासिक आख्यानों के निर्माण में कवि का सर्वप्रमुख दृष्टिकोण अतीत-गौरव का चित्रण करना ही रहा है । अतीत के गौरव का चित्रण सांस्कृतिक महत्ता की वस्तु है । किसी भी देश अथवा जाति के अधोन्मुख वर्तमान के लिए उसका गौरव पूर्ण अतीत ही समुचित प्रेरणादायक सिद्ध होता है[१] । आलोच्यकाल में भी भारतीय समाज की अवस्था किसी भी दृष्टि से विशेष अभिमान करने योग्य नहीं थी[२] । हां, यह अवश्य सत्य है कि भारतीय समाज में जागृति के चिन्ह प्रकट हो रहे थे तथा जनमानस राजनैतिक ,सामाजिक तथा सांस्कृतिक और सभी अन्यान्य क्षेत्रों में आत्माभिमान के रक्षा-हित कटिबद्ध हो रहा था। जहां एक ओर धार्मिक महापुरुषों ,समाज सुधारकों एवं राजनैतिक नेताओं की वाणी भारतीय जनता को प्रेरित कर रही थी वहां दूसरी ओर साहित्यिक क्षेत्र में कवि की शक्तिशाली लेखनी भारतीय समाज तथा हिन्दू-जाति के विगत

१-"कुछ लोगों की राय है कि 'पुराने गीत गाने से क्या लाभ ?' परन्तु मेरी तुच्छ सम्मति में उनसे लाभ है, और विशेष लाभ है । यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है ।" -मैथिलीशरण गुप्त,मौर्यविजय कीभूमिका से।

२-देखि दुखद है वर्तमान का
यह असीम पीड़ा सहना
कहीं सुखद इससे संस्मृति में
है अतीत की रत रहना -'दिनकर','पाटलीपुत्र की गंगा से ।

गौरव का गान करके वर्तमान में उस गौरव को मूर्त रूप में देखना चाहती थी। जातीय स्वाभिमान की जागरूक चेतना से प्रोत्साहन देने वाली कवि की यह उमंग बड़ी ही उत्कट थी । खड़ी बोली के अनेक ऐतिहासिक काव्यों में हिन्दू-जाति का यह गौरवपूर्ण अतीत मूर्त रूप लेकर वर्तमान की भाव भूमि पर अव-तरित हुआ है । `भारत भारती` के अतीत खंड में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के विगत गौरव का विशद गान किया ।नारी तथा पुरुष की श्रेष्ठता एवं उच्चता का गान किया तथा ऐतिहासिक शूर वीरों के महान कार्यों की सुन्दर झांकी प्रस्तुतकी । केवल पुरुष ही नहीं, ऐतिहासिक युगों की नारियां भी आत्मबल तथा शरीर बल दोनों में ही अतिशय थीं[१] । जहां एक ओर जीवित चिता में कूद पड़ना उनके आत्मबल का परिचायक है वहां समरभूमि में जाकर शत्रु से लोहा लेना भी उन वीरांगनाओं ने सीखा था । राजस्थान का इतिहास नारियों के इस आत्मबल तथा शरीर बल की अमर गाथाओं से परिपूर्ण है ।

क्षत्राणियां भी शत्रुओं से हैं यहां निर्भय लड़ीं
इतिहास में जिनकी कथाएं हैं अनेक भरी पड़ीं ।[२]

नेत्रों में अश्रु किन्तु अधरों पर एक दृढ़ मुस्कान लेकर राजपूत नारियां अपने जीवन धन पतियों को युद्ध में भेज दिया करती थीं तथा जीवन और मृत्यु के उन कठोर क्षणों में अपूर्व आत्मदृढ़ता का परिचय दिया करती थीं। महावीर स्वामी, भगवान बुद्ध ,सम्राट् चन्द्रगुप्त,अशोक,विक्रमादित्य,पृथ्वीराज,राणा संग्राम सिंह, राणा रत्नसिंह,राणा हमीर,महाराणा प्रताप,आदि युग पुरुष;महारानी

१- केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था
गृह देवियां भी थीं हमारी देवियां ही सर्वथा
देकर विदा युद्धार्थ पति को प्रेमवल्ली सी खिलीं
यदि फिर न भेंट हुई यहां तो स्वर्ग में झट जा मिलीं।--भारत भारती,अतीत खण्ड

२- भारत भारती, अतीत खण्ड

करुणा, महारानी पद्मिनी, वीरांगना वीरा, आदि अनेक वीरांगनाएं; पंजाब की गौरव गरिमा को अक्षुण्ण रखने वाले दसों गुरु तथा महाराजा रणजीत सिंह आदि भारतीय अतीत के गौरव चरित्र हैं। `भारत भारती` में कवि मैथिली शरण गुप्त ने इन सभी की गौरव-गरिमा का सुन्दर गान किया है। अन्य ऐतिहासिक काव्यों में भी विभिन्न कवियों ने इतिहास के आधार पर तथा कल्पना के रंगों द्वारा इन महान् पुरुषों के गौरव को मूर्त रूप दिया है। `आत्मार्पण` `सती सारन्धा` `सती पद्मिनी`, `वीरांगना वीरा` `चित्तौड़ की चिता`; `वीरांगना तारा`, `जौहर`, `झांसी की रानी` आदि आख्यानक काव्यों में हिन्दू नारी के जीवनगत गौरव की विजय का चित्रण हुआ है, `रंग में भंग` काव्य में जन्म-भूमि तथा आत्माभिमान की सुरक्षा के गौरव का चित्रण हुआ है, मौर्यविजय` `प्रणवीर प्रताप` `वीर हमीर` `हल्दीघाटी`, विक्रमादित्य` आर्यावर्त` आदि में आर्य जाति के वीरत्व के गौरव का दर्शन कराया गया है। अनेक काव्यों के प्रारंभ में तो कवियों ने स्वयं अपने पाठकों को अतीत की गौरव गाथाओं की ओर ले चलने अथवा गौरव गाथाएं सुनाने का स्पष्ट उल्लेख भी किया है। कवि गोकुल चन्द्र शर्मा हल्दी घाटी के उस प्रण-स्थल की ओर ले चलने के लिए उत्सुक हैं कि जहां--

प्राणवान् प्रणवीर शूर के
साथ रणस्थल देखें,
चलो महाराणा प्रताप का
पूत प्राणस्थल देखें।
देखें चलो, वीर जननी की
घाटी वह बलिदानी
मातृभूमि पर मतवालों की
देखें अमिट निशानी।[1]

जिसे निरन्तर बढ़ने की धुन थी, जो शत्रु-समूह में गजराज की भांति दहाड़ता था, जिसके मुख की लालिमा अनेक आपदाओं में भी जगमगाती रहती थी, जो नितान्त

१- प्रणवीर प्रताप, पृ० २२

अकेला भी अपनी शक्ति एवं साहस से शत्रु की असंख्य वाहिनी को पराजित करने का उत्कट भाव लिए, निरन्तर गतिशील रहता था[1], कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने उसी वीर प्रताप की अमर वीरता का गौरव-गान किया-

आज उसी की अमर-वीरता
व्यक्त करूंगा गानों में।
आज उसी के रण कौशल की
कथा कहूंगा कानों में।[2]

कवि श्यामनारायण प्रसाद ने भी अपने काव्य के प्रारम्भ में इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है-

बीते युग की है बात, किन्तु
इसको ही आज सुनाना है।
इस वीर मंत्र से भारत के
कण कण को आज जगाना है।[3]

१- अरावली उन्नत शिखरों पर
सजता रहा रणों को।
अपने शोणित से धोया था
मां के मृदु-चरणों को।।

\+ +

रक्षा की तलवार उठा कर
समर किया लाखों से
पोंछ दिए आंसू प्रताप ने
माता की आंखों से। -- हल्दी घाटी, पृ० ८

२- हल्दी घाटी, पृ० २६

३- झांसी की रानी, पृ० २७

इसी प्रकार `विथोड़ की चिता``तक्षशिला` आदि अन्य ऐतिहासिक काव्यों में भी अतीत गौरव के चित्रण की दृष्टि को स्वयं कवियों ने ही व्यक्त किया है। अब हम ऐतिहासिक काव्यों के कतिपय उन स्थलों का अवलोकन करेंगे जिनमें अतीत गौरव का महत्वपूर्ण चित्रण हुआ है।

`मौर्य विजय` का कवि संस्कृति,सभ्यता,ज्ञान, तथा वीरत्व के चरमोत्कर्ष की पृष्ठभूमि में अतीत गौरव गान करता है-

> साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं,
> जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं।
> शत्रु हमारे कहां नहीं भय से भागे हैं,
> कायरता से कहां प्राण हमने त्यागे हैं ?
>
> हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय,
> फिर एक बार हे विश्व तुम गाओ भारत की विजय ।।
>
> कहां प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा ?
> दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा।
> बतलाओ, वह कौन जो नहीं हमसे हारा
> पर शरणागत हुआ कहां कब हमें न प्यारा ?
> बस युद्ध मात्र को छोड़ कर कहां नहीं हैं हम सदय ?
> फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय। (पृ०३१)

इस सम्पूर्ण विजय-गीत में अतीत के गौरव का एक रेखा-चित्र प्रस्तुत हुआ है। `तक्षशिला` के कवि ने पंचनद प्रदेश के प्राचीन गौरव तथा वैभव का विस्तृत वर्णन किया है।[१] भारत-भू पर झलक रहे उज्ज्वल इतिहास की छटा कवि दिखा रहा है ---

---

१- तक्षशिला नामक इस काव्य के लिखे जाने का कारण प्राचीन एशियाई तथा भारत की प्राचीन संस्कृति की महत्ता दिखाना ही है।`
-उदयशंकर भट्ट,तक्षशिला की भूमिका से।

स्वर्ग-छटा की स्वच्छ-छवि सा
दामिनी रमणी का मृदुहास
फलक रहा है भारत-भू पर
जिसका उज्ज्वल सा इतिहास

'भारत भारती' के पश्चात् ऐतिहासिक काव्यों में 'तक्षशिला' के कवि ने भारत के अतीत की उज्ज्वल फांकी का महत्पूर्ण चित्रण किया-

जिसकी वैभव पूर्ण कहानी
मानी ज्ञानी का संहार
जिसके भृकुटि विलास हास्य पर
न्यौछावर होता संसार

इसी काव्य के प्रथम स्तर में पंजाब के गौरवपूर्ण महत्व का प्रतिपादन करते हुए कवि ने ऐतिहासिक महापुरुषों यथा-- नानक देव, तेगबहादुर, गुरुगोविंद सिंह तथा बन्दा वैरागी आदि के गौरव तथा यश का वर्णन किया है ।

'प्रणवीर प्रताप' में कवि अतीत के ज्ञान तथा आर्य संस्कृति के उद्भव की कहानी सुनाता हुआ सांस्कृतिक जीवन की उच्चता का उल्लेख कर रहा है-

इसी मध्य भू को आर्यों ने
आर्यावर्त बनाया
यहीं भरत से पौरुषवत-पूजित
भारतवर्ष कहाया ।
ऋषियों के मस्तक से निकली
यहां प्रबुद्ध प्रणाली
यहीं आर्य-संस्कृति ने अपनी
अनुपम आकृति ढाली [१]

१- प्रणवीर प्रताप ,

गौरव वर्णन की यह शैली मैथिलीशरण गुप्त के `भारत भारती` काव्य-ग्रन्थ से विशेष प्रभावित हुई प्रतीत होती है । अन्य अनेक कवियों ने गौरवपूर्ण ऐतिहासिक आख्यानों के द्वारा भी अतीत का चित्रण किया तथा अतीत की सांस्कृतिक महत्ता एवं उज्ज्वलता के दर्शन कराए । चारित्रिक गौरव भी अतीत के समग्र गौरव का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रतीत होता है । उदाहरणतया - `चन्द्रगुप्त मौर्य` में भारतीय राष्ट्रवीर का गौरवपूर्ण स्वरूप ही प्रस्तुत हुआ है । महाराणा के रूप में सच्चे राजपूतों के चारित्रिक गौरव की अभिव्यक्ति हुई है ।

रामधारी सिंह `दिनकर` की ऐतिहासिक कविताओं में भी अतीत गौरव के चित्रण की दृष्टि बड़े ही स्पष्ट रूप में उभरी है । कवि की `मगध महिमा` (पद्य नाटिका) इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय रचना है । अतीत के तीन चित्रों में भारत के गौरव का अंकन नाटकीय ढंग से प्रस्तुत हुआ है । भगवान बुद्ध, चन्द्रगुप्त मौर्य, तथा अशोक भारत के गौरव हैं जिनकी महत्ता का सुन्दर प्रतिपादन इस कविता में हुआ है । अतीत के द्वार पर कविता में वर्तमान के प्रति क्षोभ तथा आक्रोश से कवि भर गया है तथा किसी प्रकार का अतीत के गौरव को वह वर्तमान के लिए मांग लेना चाहता है[१] । वर्तमान की दलितावस्था की पृष्ठभूमि में अतीत के गौरव का स्मरण किया गया है । इस प्रकार कवि के अतीत गौरव स्मरण में वर्तमान के प्रति खिन्नता एवं निराशा का स्वर विशेष रूप से मुखरित हुआ है ।

१- जय हो खोलो अजिर द्वार
मेरे अतीत ओ अभिमानी !
बाहर लिये खड़ी नीराजन
कब से भावों की रानी ।
+ +
वर्तमान का आज निमंत्रण
देह धरो आगे आओ
ग्रहण करो आकार देवता
यह पूजा प्रसाद पाओ - रामधारी सिंह `दिनकर`, अतीत के द्वार पर

मोहनलाल द्विवेदी ने विगत युग के उस गौरव की झलक प्रस्तुत की है जो इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है, जिस गौरव को युग-कवि कालिदास की वाणी भी प्राप्त हुई थी-

जब था जीवन का स्वर्ण काल
तब प्रात प्रथम था मुसकाया
शिप्रा की लहरों में हँसकर
कुंकुम का जल था लहराया
आलोक अलौकिक छाया था
वरदान धरा ने पाया था
विक्रमादित्य के व्याज स्वयं
आदित्य तिमिर में आया था ।[१]

इसी प्रकार प्राचीन स्थापत्य कला के गौरव के प्रतीक विभिन्न वैभवपूर्ण भवन, जिनके भग्नावशेष आज भी हमें समय की संघर्षमयी कहानी सुना रहे हैं तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थान, काव्य के विषय बने परन्तु इन सभी में भारत के अतीत गौरव का वर्णन ही प्रमुख है । खण्डहरों की भग्नावस्था पर शोक प्रकट करता हुआ कवि अनायास ही इनके अतीत के वैभव वर्णन की ओर उन्मुख हो उठा है । इस दृष्टि से `इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों से,`[२] `सीकरी`[३] `नालन्दा के खंडहर`[४] `सारनाथ के खंडहरों से`[५], फतहपुरसीकरी`[६] `कुतुब मीनार`[७] व पाटलि के कंकाल

१-`विक्रमादित्य`प्रभाती संग्रह से।
२- मोहनसिंह सेंगर
३- मुंशी अजमेरी-विशाल भारत, मई १९३२
४- श्री केसरी - ,, ,, दिसम्बर १९३३
५- श्री सुरेन्द्र - ,, ,, जनवरी १९३४
६- विश्वम्भरनाथ -,, ,, जुलाई १९३७
७- गिरिजाशंकर मिश्र- ,, ,,फरवरी १९३८

कौल[1], दिल्ली[2], दिल्ली[3], हिमालय पर लिखी हुई अनेक रचनाएं[4] आदि देखी जा सकती है। विगत वैभव के आकर्षण तथा सौन्दर्य की स्मृति दिलाता हुआ `फतेहपुरसीकरी` का भवन जिसमें वर्मा अबुलफजल तथा फ़ैजी रहा करते थे तथा सूरदास, तानसेन, बीरबल आदि की कलात्मक शोभा को इसने अपने नेत्रों द्वारा देखा था। सलीम तथा जोधाबाई इसी भवन में रहा करते थे। कवि ने वर्तमान की दुरावस्था से क्षुब्ध होकर शोक प्रकट करने के साथ ही उसके अतीत के वैभव का भी स्मरण किया है-

मोगल कुल की गौरव गरिमा तू अब एक कहानी है
दीन छलाही तेरे मन की उज्ज्वल विमल निशानी है
अरी सीकरी की दीवारो मौन खड़े कुछ बोलो तो
वह अनुपम छवि देख सकें अपना घूंघट पट खोलो तो

काव्य के आगे के अन्य छन्दों में कवि ने उसका घूंघट पट खोल कर उसकी विगत अनुपम छवि के दर्शन कराए हैं। `नालन्दा के खंडहर` रचना में भी अतीत भारत के सांस्कृतिक गौरव के दर्शन होते हैं।

इस भांति उपर्युक्त समस्त रचनाओं से यह भली भांति स्पष्ट है कि इतिहास के ऐसे अनेक सन्दर्भ काव्य का विषय हुए हैं जिनमें अतीत के गौरव-चित्रण की दृष्टि ही सर्वप्रमुख है अथवा किन्हीं रचनाओं में अतीत के गौरव का चित्रण ही कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है। किन्तु अधिकांश रचनाओं में, विशेषत: प्रबन्ध रचनाओं में चरित्र-चित्रण के रूप में, कथानक की पृष्ठभूमि के रूप में अथवा मूलकथानक के द्वारा ही अतीत के ऐतिहासिक गौरव का चित्रण हुआ है।

१- श्री अरविन्द, विशालभारत, अप्रैल, १९३९

२-`निराला` - सरस्वती, अप्रैल, १९२४

३- रामधारी सिंह`दिनकर`

४- हिमालय`चयन द्वारा महादेवी, प्रथम संस्करण, [illegible]

(ख) आदर्श निरूपण :-

`भारत भारती` में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

सम्भव है आज का काव्यकार अथवा समालोचक इन पंक्तियों का विरोध करे, परन्तु काव्य में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अभिव्यक्ति करने वाला कलाकार तथा सत्यं शिवं सुन्दरं का समन्वय खोजने वाला समालोचक इन पंक्तियों के सत्य की उपेक्षा किसी भी युग में नहीं कर सकेगा। `सत्य देव` की सुन्दर झांकी द्वारा यदि कला के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है कि शिव के स्पर्श से उसमें प्राणों की प्रतिष्ठा होती है। सत्यं तथा सुन्दरं के उपासक कवि की वाणी में शिवं की प्रतिष्ठा स्वमेव होती रही है। आदि-काव्य रामायण द्वारा राम-राज्य के उच्चादर्श की अभिव्यंजना हुई, तुलसी के `मानस` का प्रत्येक पात्र जीवन के किसी न किसी आदर्श की व्यंजना करता हुआ प्रतीत होता है। `प्रिय प्रवास` के कृष्ण और राधा लोक-सेवक तथा सेविका का उच्चादर्श प्रस्तुत करते हैं। `कामायनी` इच्छा, ज्ञान और कर्म के समन्वय से अनुप्राणित है। वहीं बोली के ऐतिहासिक काव्यों में भी आदर्श निरूपण की दृष्टि स्पष्ट रूप में लक्षित होती है। अतीत के वीर-चरित्र तथा महान् विभूतियां जन-जीवन के आदर्श बन काव्य में अवतरित हुए।

`रंग में भंग` तथा `विकट भट` में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने जहां एक ओर राजपूतों की बात ही बात में तलवार खींच लेने की अहंकारपूर्ण संकुचित प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है वहीं दूसरी ओर इन काव्यों में आन-मान केहेतु प्राण न्योछावर कर देने का उच्च आदर्श भी अंकित है-- हाड़ा सरदार के चरित्र में यही आदर्श द्रष्टव्य है-

है न कुछ विचार यह बूंदी इसे अब मानिए ?
मातृ भूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिये ?

कौन मेरे देश को फिर नष्ट कर सकता कहो ?
मृत्यु माता की जगत में शत्रु भी सकता लिखे ?[1]

'मौर्य विजय' में देश प्रेम से ओत प्रोत वीरत्व का आदर्श भाव मुखरित हुआ है। आत्म विश्वास से भरी वीरता के मार्ग में कोई भी वस्तु गतिरोध उत्पन्न नहीं कर सकती ---

हम सैनिक हैं हमें जगत में किसका डर है ?
रणक्षेत्र ही सदा हमारा प्यारा घर है ।
हृदय हमारा विपुल वीरता का आकर है
आंगन सा है हमें भुवन प्रकटित सब पर है ।[2]

'प्रणवीर प्रताप','हल्दीघाटी',में कवि गोकुल चन्द्र शर्मा तथा श्यामनारायण पाण्डेय ने 'प्रताप' के चरित्र द्वारा स्वाधीनता की रक्षा के लिए आत्मबलिदान करने का ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया[3]। उस कर्मवीर स्वतंत्र सिपाही में स्वाधीनता तथा वीरता का आदर्श मानों पुंजभूत हो ----

---

१- रंग में भंग, छन्द ११६

२- सर्ग द्वितीय, छन्द ३

३- 'हल्दी घाटी लिख कर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा'
- श्यामनारायण पाण्डेय,'जौहर'के अग्नि कण से

+ +

' इस महात्मा का पवित्र-चरित्र देश भक्ति स्वाधीनता स्वाभिमान स्वावलम्बन और आत्मत्याग आदि अनेक सद्गुणों के अपूर्व आदर्शों का आकार है । ऐसे अनुकरणीय आदर्श-चरित्र द्वारा मैं भी अपनी मन्द लेखनी को पुनीत करना चाहता हूं ।'
-गोकुल चन्द्र शर्मा,'गांधी गौरव'की भूमिका से ।

वीर-धर्म की झांकी झांकी उस प्रताप में देखी,
कर्म-साधना की लौ उसके तीव्र ताप में देखी ।
दुख सुख समर रण करता जीवन आदर्श विलोकी,[1]
मरने का मानापमान पर शिव संघर्ष विलोकी ।

अरावली के उन्नत शिखरों पर रह कर उसने मां भारती के पावन चरणों को अपनी शोणित-धाराओं से धोया था-

अरावली उन्नत शिखरों पर
अकेला रह रणों को
अपने शोणित से धोया था[2]
मां के मृदु चरणों को ।

राणा प्रताप के जीवन का यह आदर्श अनेक कवियों की इस सन्दर्भ में लिखी रचनाओं में विविध प्रकार से गुम्फित हुआ है ।

मैथिलीशरण गुप्त ,सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों की प्रताप सम्बन्धी रचनाओं में प्रताप के जीवन के आदर्श की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

वीर-धर्म के विरुद्ध क्षण भर के लिए भी पति के हृदय में उत्पन्न कायर भाव सहन न कर सकने का राजपूत नारी-आदर्श `आत्मार्पण` और `वीरांगना वीरा` द्वारा अभिव्यक्त हुआ है । नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम में लालायित हुए पति को युद्ध के मैदान में उत्साह प्रदान करने के हेतु हाड़ा रानी द्वारा स्वयं अपना सिर काट कर देने तथा क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान करने का अभूतपूर्व आदर्श जीवन में उत्तेजना प्रदान करता है ।मोह, वीर-कुल की कीर्ति का काल है अत: ---

`चाहती हूं , आप उसमें मत पड़ें,
मोह तज कर विकट विक्रम से लड़ें

१- प्रणवीर प्रताप,वीर धर्म,छन्द २७

२- हल्दीघाटी, पृ० ८

अस्तु अब चिंता न मेरी कीजिए
लीजिए या शीश मेरा लीजिए ।[1]

राणा उदयसिंह युद्ध से मुंह मोड़ कर भिक्षा मांग लेने के पक्ष में है उपपत्नी वीरा की भर्त्सना में कवि ने राजपूत नारी के जीवनादर्श की व्यंजना की है-

यह पहन लो मम चूनरी धरि नारि के सम वेश में
शृंगार कर सित सेज पर बैठो सँवारो केश भी
अरु भेंट यह निज हाथ का खड्गेश मुझको दीजिए
यों बचिए मम लाज को निज लाज धारण कीजिए।[2]

राजपूत वचन देकर कभी पीछे नहीं हटते । सूर्यवंशी राजाओं ने 'प्राण जाहिं पर वचन न जाहिं' के आदर्श का सदैव पालन किया । राजपूत सरदार हमीरदेव ने वचन-बद्धता के रक्षार्थ सर्वस्व न्यौछावर कर दिया किन्तु शरणागत की रक्षा अन्तिम श्वास तक की... 'वीर हमीर' में रामकुमार वर्मा ने हमीरदेव के इसी आदर्श की अभिव्यक्ति की है ---

मैं सदा तैयार हूं तुमको बचाने के लिए ।
है उसे धिक्कार जो अपने लिए जग में जिए ।।
एक पशु भी जानता किस भांति निज रक्षा करे।
है वही मानव सदा जो दूसरों का दुख हरे ।।[3]

'सती पद्मिनी';'चित्तौड़ की चिता','जौहर'सती सारन्धा'आदि काव्य-ग्रन्थों में सतीत्व धर्म की रक्षा के आदर्श के साथ ही जीवन के गौरव की विजय का उज्ज्व

१- आत्मार्पण, सर्ग चतुर्थ,छन्द ४०

२- वीरांगना वीरा, पृ० २५

३- वीर हमीर, शरणागत,परिच्छेद ।

आदर्श गुम्फित हुआ है[1]। जौहर की ज्वालाओं में कूद कूद कर प्राणों की भेंटें चढ़ा देने तथा सिरों पर कफ़न बांध कर युद्ध की भीषण लपटों के आलिंगन करने का ज्वलन्त आदर्श राजस्थान को छोड़ कर विश्व के इतिहास में मिलना दुर्लभ है -

ललनाओं ने कहा एक स्वर से- कोई परवाह नहीं
जाओ जूझ कर लड़ो समर में करो किसी की चाह नहीं।
रोक हमारी कोई सकता अनल विनिर्मित राह नहीं
शत्रु शूल से बढ़ कर हो सकती ज्वाला की दाह नहीं ।[2]

चित्तौड़ की ललनाओं के पातिव्रत का उत्कर्ष तथा मान पर मर मिटने का आदर्श साधारण नहीं है --

लखो स्वाभिमान का मान
    उच्च पातिव्रत का उत्कर्ष
मान पर मरने का आदर्श
    हमारे कर्तव्यों का ज्ञान ।[3]

१- 'उसने संसार के सामने यह आदर्श रखना चाहा कि क्रूर से क्रूर आक्रमणों के आगे जीवन के गौरव की विजय हो सकती है। और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। पठानों और मुगलों ने अपनी सैन्य शक्ति से चित्तौड़ को झुकाना चाहा। चित्तौड़ के किले को तो उन्होंने तोड़ दिया, पर वे चित्तौड़ की आत्मा को छू भी न सके।'

--डा० रामकुमार वर्मा, चित्तौड़ की चिता, परिचय से

२- सती पद्मिनी, सर्ग ६, पृ० ६१

३- चित्तौड़ की चिता, सर्ग २

वंशाभिमान तथा सतीत्व की रक्षा हित प्राण विसर्जन करने के इसी आदर्श की व्यंजना निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है-

इसलिए मैंने इसी निश्चय किया,
जल मरेंगी वंश के अभिमान पर ।
साथ ही पतिदेव ने भी तय किया
मर मिटेंगे गुहिल कुल की आन पर ।[१]

रावल रतन सिंह के कथन द्वारा मानो सम्पूर्ण मेवाड़ तथा राजपूती मान-मर्यादा तथा वीरता के आदर्श का प्रतिनिधित्व हुआ है --

मेरे मरने के पहले
अभिमान न मर सकता है ।
मेरे मिटने के पहले
सम्मान न मिट सकता है ।[२]

राज्य मदान्धता तथा स्वार्थपरता के विरोध में कवि केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'तप्तगृह' में मानव प्रेम तथा अहिंसा के आदर्श की स्थापना की । पिता के रक्त से हाथ रंजित करने वाले ,नृशंस के की राज्य-लिप्सा की अन्तिम परिणति, आत्मग्लानि से पूर्ण होकर, मानव प्रेम के शाश्वत् सत्य की शरण में हुई :--

सत्ता से श्रेष्ठ है
विश्व में मनुष्यता
जिसके स्वरूप की
शोभा पर रीझ कर
गौतम के नेत्र से
करुणा को देखते ।[३]

१- 'जौहर' पृ० १६२
२- वही पृ० १२८
३- तप्तगृह, पृ० १४४

'आर्यावर्त', तथा 'झाँसी की रानी' प्रबन्ध काव्यों में राष्ट्र प्रेम के उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। सम्राट् पृथ्वीराज, कवि चन्दबरदाई तथा आधुनिक वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई के चरित्रों में राष्ट्रीयता का आदर्श मूर्त हो उठा है। सम्राट् पृथ्वीराज की आँखें मोहम्मद गोरी ने निकलवा ली थीं।[1] पृथ्वीराज के लिए समस्त विश्व अंधकार पूर्ण हो गया परन्तु आँखें फूटने का शोक होने के स्थान पर मातृभूमि के शत्रु द्वारा पददलित न देख सकने के परितोष में राष्ट्रप्रेम के जिस उदात्त आदर्श की व्यंजना हुई है वह मार्मिक होने के साथ साथ अद्वितीय भी है-

> 'धन्यवाद गोरी- यह अच्छा किया तुमने,
> देख मैं सकूंगा नहीं अब इस जन्म में
> तेरे द्वारा दलित पवित्र मातृभूमि को।'[2]

झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन की समस्त अभिलाषाएं मातृभूमि के उद्धार की उत्कट अभिलाषा में केन्द्रीभूत हो गई थीं। एक ओर असहाय विधवा एवं अल्प वयस्क महारानी तथा दूसरी ओर विकराल मुंह फाड़े ब्रिटिश गोरों की दुर्दमनीय शक्ति; परन्तु इस वीरांगना ने सभी आपदाओं को कुचलते हुए मातृभूमि के उद्धार का महान् आदर्श प्रस्तुत किया-

> शपथ है जीवन में मधुमास,
> शपथ जीवन में कंचन-कगार।
> शपथ वैभव का है उपभोग
> करूंगी माता का उद्धार।[3]

स्वाधीनता, देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता के वीरतापूर्ण उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में सामान्य-जीवन से सम्बन्धित उच्च

१- कतिपय इतिहासकारों ने ऐसा माना है। पृथ्वीराज रासो में इस घटना का उल्लेख हुआ है।

२- आर्यावर्त, पृ० २८

३- झाँसी की रानी, पृ० १२५

आदर्श की अभिव्यक्ति भी उल्लेखनीय है।

`सिद्धार्थ` महाकाव्य में सिद्धार्थ के जीवन द्वारा हिंसा के विरुद्ध अहिंसा, करुणा तथा जीव मात्र के प्रति करुणा के आदर्श की व्यंजना हुई है। भगवान् बुद्ध के आदर्शपूर्ण सिद्धान्तों में करुणा का स्वर सर्व प्रमुख है। तृतीय सर्ग में सिद्धार्थ की शस्त्र-विद्या की परीक्षा के एक प्रसंग में लक्ष्य-वेध हेतु पक्षी को लक्ष्य न बनाने के विनीत विरोध में सिद्धार्थ की स्वभावगत करुणा के आदर्श की व्यंजना दर्शनीय है-

> विनय है इतनी यदि ध्यान दें
>
> सदय भूरि कृपा अब मैं करें।
>
> अभय-दान दुना नृप-धर्म है,
>
> विहग आश्रित है भवदीय है।[१]

`वर्द्धमान` में कवि ने महारानी त्रिशला तथा महाराज सिद्धार्थ के माध्यम से प्रेम एवं विवाह के आदर्शों की अभिव्यक्ति की है। `वर्द्धमान` के एकाकी जीवन द्वारा भी साधना के उच्च आदर्श की अभिव्यंजना की गयी। प्रेम की व्यापकता एवं विवाह की पवित्रता के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं --

> अनन्त भाण्डार अगाढ़ प्रेम का न सिक्त होता जब भूमि में कभी।
>
> वहीं महा मार्दव युक्त भावना यही क्ष महा उत्तम राज भोग है।[२]

`नूरजहाँ` तथा `विक्रमादित्य` काव्य ग्रन्थों में प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति का भाव प्रमुख है। `नूरजहाँ` में पति-पत्नी के प्रेम केआदर्श की व्यंजना करने के लिए ही, प्रतीत होता है, `गुरुभक्त सिंह भक्त` ने सर्व सुन्दरी पात्र की कल्पना की है। नूरजहाँ के वैवाहिक जीवन में पत्नी के आदर्श ~~की~~ पूर्ण प्रेम की अभिव्यक्ति का ही प्रयास है। विवाह बंधन का नाता अमर है। जन्म जन्मान्तर में भी वह टूटने नहीं पाता।

१- सर्ग तृतीय पृ० ४६

२- छन्द ३६

पत्नी का सेवा-भाव तथा त्याग। निश्चय ही सीता-सावित्री भारतीय दाम्पत्य जीवन के आदर्श हैं। स्वयं नूरजहाँ के निम्न कथन द्वारा विधाता सम्बन्ध से जन्म-जन्मान्तर की कल्पना में भारतीय दाम्पत्य जीवन के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है--

मेरा धर्म आत्म-बन्धन का नाता अमर बनाता है।
जन्म-जन्म में भी जो नाता नहीं टूटने वाला है।[1]

कारागार से छूट जाने के बाद शेर अफ़गन और मेहर के दाम्पत्य जीवन की झाँकी इस आदर्श को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है-

निष्फल करो पाप सब छूटा आयेगा अब सुख साम्राज्य।
अपने बालों पहनाऊँगी तुम्हें प्रणय का सुन्दर ताज।
तुम स्वतंत्रता सिंहासन पर बैठो चँवर डुलाऊँ मैं।
तेरी एक प्रेम चितवन पर फूलों वर्षा लगाऊँ मैं।[2]

'गुरुकुल' तथा बापू सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों में मानव-प्रेम तथा जन-कल्याण का आदर्श एवं प्रस्तुत है। अन्यायी से घृणा करने के स्थान पर उसके अन्याय से घृणा करने का आदर्श सिक्खों के दस गुरुओं तथा आधुनिक युग में विश्ववंद्य बापू ने स्थापित किया। यद्यपि समस्त सिक्ख-जाति, धर्मान्ध मुसलमानों की शत्रु थी, तथापि गुरुओं की शरण में आए मुसलमानों ने उनसे प्यार तथा स्नेह की अजस्रधारा सदैव प्राप्त की। गुरु नानक ने मानव-मात्र को एक परम-पिता की सन्तान मान कर परस्पर प्रेम पूर्वक रहने का अमर सन्देश दिया-

परम पिता के पुत्र सभी
कोई नहीं घृणा के योग्य।[3]

१-नूरजहाँ, सर्ग ग्यारह, पृ० ८६
२- वही, सर्ग पंद्रह, पृ० ११२
३- गुरुकुल,

गुरु गोविन्द सिंह तथा बन्दा बैरागी मुसलमानों के घोर शत्रु थे। इस क्रूर जाति से संघर्ष करते हुए गुरु-परिवारों ने अनेक बलिदान किए, किन्तु बन्दा बैरागी द्वारा आततायिता के प्रति घृणा एवं मनुष्यत्व के प्रति प्रेम की घोषणा करा कर गुप्त जी ने मानव प्रेम के आदर्श की महत्ता का दिग्दर्शन कराया है --

हिन्दु मुसलमान कोई हो
जो सच्चा है वही मनुष्य[१]

और...

हिन्दू हो या मुसलमान हो
नीच रहेगा फिर भी नीच
मनुष्यत्व सब के ऊपर है
मान्य महीमण्डल के बीच।[२]

बापू ने सत्य, अहिंसा तथा प्रेम का एक उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। बापू की विशाल भुजाओं की छत्रछाया में शत्रु हो अथवा मित्र, सभी ने विश्राम प्राप्त किया। उनके जीवनादर्शों के सम्मुख ब्रिटिश राज्य की दुर्दमनीय शक्ति को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। 'गांधी गौरव' (गोकुलचन्द्र शर्मा), 'बापू' 'महामानव' 'जगदालोक' 'जननायक' 'बापू' आदि काव्यग्रन्थों तथा अनेक मुक्तक रचनाओं में बापू के इस महान् आदर्श की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण ढंग से हुई है। 'कुणाल' तथा 'यशोधरा' में दो विभिन्न आदर्शों का परिपाक हुआ। आत्म-संताप द्वारा धर्म-भ्रष्ट, तिष्यरक्षिता माँ को सन्मार्ग पर लाने का आदर्श कुणाल के जीवन का महानतम् आदर्श बन कर काव्य में प्रतिष्ठित हुआ है। कुणाल के जीवन की महत्ता राज्य-त्याग में नहीं वरन् त्याग की उस उदात्त भावना में है जो अनायास ही भगवान राम के आदर्श का स्मरण कराती है। मैथिली शरण गुप्त, सोहन लाल द्विवेदी तथा अनूप शर्मा कृत कुणाल ---------------

----

१- गुरुकुल, पृ० २३०

२- वही पृ० २३७

सम्बन्धी वाक्यों में इसी आदर्श की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है -

मैंने जो यह मार्ग लिया है
माँ को सदय वियोग दिया है
करके वे अनुताप शुद्ध हों यह पाप बन पानी ।[1]

'यशोधरा' में कवि ने भारतीय कुलवधू, माँ तथा पत्नी के आदर्शों की एक साथ ही अभिव्यक्ति की । पति-वियोग की पीड़ा से परितप्त होते हुए भी यशोधरा सास श्वसुर से धैर्य-धारण करने की प्रार्थना करती है । 'वधू वंश की लाज देव ने इसी पर डाली थी । यह स्वीकार करके यशोधरा ने अपना कर्तव्य पथ निश्चित किया । पति के सिद्धि लाभ करके लौटने की अभिलाषा में कवि ने पत्नी के त्यागपूर्ण कर्तव्य के आदर्श की व्यंजना की-

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,-
सिद्धि लाभकरके वे लौटें शीघ्र वन से।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक सन्दर्भों को आधार मान कर लिखे गए काव्य ग्रन्थों में ऐतिहासिक पात्रों के जीवन-गत आदर्शों की अभिव्यक्ति करना भी कवि का ध्येय है । पात्रों के ही माध्यम से कहीं-कहीं कवि अपने आदर्श विचारों की अभिव्यक्ति करता हुआ भी प्रतीत होता है । नवीन पात्र अथवा नवीन घटना की परिकल्पना द्वारा जीवनके अनेक आदर्शों को मूर्त रूप देने का प्रयास भी दृष्टिगोचर होता है । आदर्श निरूपण की इस दृष्टि के द्वारा निश्चय ही ऐतिहासिक काव्यों में शिवम् भावना की

१- मैथिलीशरण गुप्त, कुणाल गीत, गीत सं० ३३

२- यशोधरा, पृ० ३०

स्थान प्राप्त हुआ है।[1] 'सौन्दर्य' की भूल में है जाकर उसके अनुकूल बनने की प्रेरणा ग्रहण करना तथा काव्य में चित्रित करके उस 'सौन्दर्य' को एक शाश्वत रूप प्रदान करना निस्सन्देह श्लाघनीय है।

(ग) वीर पूजा :-

हृदय की अगाध श्रद्धा की चरम परिणति पूज्य भावना में होती है। यह पूजा-भावना जब जाति तथा राष्ट्र के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले वीरों के प्रति प्रस्फुटित होती है तो इसे वीर पूजा की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। आधुनिक युग की बौद्धिक जागरूकता से पूर्व अतिमानवीय अलौकिक तथा अवतारी व्यक्तित्व ही जन-पूजा एवं कवि-पूजा के पात्र हुआ करते थे। वीरों के गुणगान करने की परम्परा हिन्दी साहित्य में बड़ी प्राचीन है परन्तु राष्ट्रनायकों तथा कर्मवीर व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा अर्चना का भाव आधुनिक युग की ही देन है।[2] खड़ी बोली का ऐतिहासिक काव्यकार देव-पूजा की संकुचित परिधि लांघ कर ऐतिहासिक महापुरुषों तथा वीरांगनाओं की पूजा अर्चना की ओर उन्मुख हुआ। सिद्धार्थ, चन्द्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य, पृथ्वीराज,

---

१- प्रताप ऐतिहासिक व्यक्ति है, वैसे ही सिकन्दर, बुद्ध, अशोक, -- और आज भी सभी हमारे आदर्श हैं। उनमें किसी दिशा में एक में पूर्णता थी। वह हममें नहीं, अत: हम उन्हें आदर्श समझते हैं। ऐसे आदर्श सदा शक्ति देने वाले, अपने मार्ग में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने वाले, पलायन के भाव को दूर करने वाले होते हैं। उनसे हमारे उदाहरणों की असमर्थता दूर होती है, उनमें दृढ़ता और साहस आता है। उनका दर्शन ही आगे बढ़ाने का मार्ग मिलता है।' -डाक्टर नगेन्द्र, 'कला कल्पना और साहित्य'

२-'विजयिनी विजय वैजयन्ती' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्वप्रथम आधुनिक युग में इन वीरों को अपने भावसुमन अर्पित किए हैं।

कित पोरस कित चन्द्र कित पृथ्वी राज हमीर
कित सवाई विक्रम किते अमरसिंह नरपाल
कित अभिमन्यु नर वीर रनजीत सिंह भुपाल। -श्री हरिश्चन्द्र कला से पृ० २

हम्मीरदेव, आल्हा ऊदल, महाराणा प्रताप, शिवा, गुरुगोविन्द सिंह, जौहर ज्वाल पर बलिदान करने वाली रानी नारियाँ, वीरत्व की प्रतिमूर्ति देवी महारानी लक्ष्मीबाई तथा आधुनिक स्वतंत्रता संग्राम के अग्र सेनानी, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, सुभाषचन्द्र बोस तथा महात्मा गांधी आदि महापुरुष तथा राष्ट्रवीर हैं। उनकी अर्चना में अर्पित किए भाव-सुमनों में वीर-पूजा की भावना ही प्रधानत: दृष्टव्य है -- 'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने चन्द्रगुप्त की वीरता के प्रति श्रद्धा प्रकट की -

जिसने हटाया न एक भी जिसकी सिकन्दर ने कहीं
वह चन्द्रगुप्त महीप था वैसा अपूर्व महाबली।
जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था ही गया
कान्धार आदिक देश देकर निज सुता भी दे गया

'वीरपंचरत्न' में कविवर लाला भगवानदीन ने विश्वविख्यात मध्ययुगीन शूरवीरों को ही नहीं, अनेक अन्य वीरों को भी अपने भावसुमन अर्पित किए। प्रताप के अतिरिक्त, वीरत्व के मूर्तरूप आल्हा और ऊदल के प्रति मानो कवि की भावधारा स्वत: छंदों में विभक्त होकर प्रवाहित हुई है -

वीरत्व से ही जिसने अक्षय कीर्ति कमाई
निज देश को निज शक्ति की करतूत दिखाई
उसका ही सुयश रूप तो है वाणी का सहारा।
लिखने में कलम मोद से है मस्त हमारा ।।

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप तो अनेक कवियों की पूजा के पात्र बने। छोटी-छोटी भाव-सुमन मालाओं की तो गणना ही नहीं, प्रबन्ध काव्यों तथा खंड काव्यों के रूप में भी कवि ने श्रद्धा एवं वन्दन अर्पित कर अपनी पूजा भावना का परिचय दिया है-

निकल रही जिसकी समाधि से
स्वतंत्रता की आगी।
यहीं कहीं पर छिपा हुआ है
वह स्वतंत्र वैरागी ।।[१]

१- श्यामनारायण पाण्डेय, हल्दीघाटी, पृ०८

आज यहाँ इस सिद्ध पीठ पर
फूल चढ़ाने आया हूं।
आज यहाँ पावन समाधि पर
दीप जलाने आया हूं।[1]

इसी स्वर से स्वर मिला कर पूजा करने वालों में गोकुलचन्द्र शर्मा, मोहनलाल द्विवेदी, पं० वागीश्वर विद्यालंकार, रामचरित उपाध्याय, लाला भगवान दीन, जयशंकर प्रसाद प्रभृति महाकवियों के ऐतिहासिक काव्य में प्रथम पुष्प वीर शिवाजी तथा वीर प्रताप के चरणों में अर्पित हुए हैं --

-- प्रताप --

हे प्रताप! अब तव प्रताप के डंके बजते निशंक
जिनके घोर नाद से होते थे तव शत्रु सशंक
रोगी बन तुम वन में रहे
घास पात खा कर दुख सहे
प्रण रक्षा निमित्त अकबर से तुमने युद्ध मचाया था
बीस वर्ष निरन्तर लड़ कर विजय अन्त में पाया था।

--शिवाजी --

शिव समान शिव राज छत्रपति साधु वीर वर भूप
जिसके यश की विमल पताका फहरा रही अनूप
कीर्ति विशाल प्रताप विशाल
शशी सूर्य सम उज्ज्वल भाल
मातृ भूमि के कारण जिसने कष्ट असंख्य उठाया था
यवनानल को ठण्डी करके सुखमय वायु बनाया था।[2]

१- श्यामनारायण पाण्डेय, हल्दी घाटी, पृ० २५

२- उमाशंकर द्विवेदी, पूर्व पुरुषों के प्रति, सरस्वती १९०३

कामताप्रसाद गुरु तो वीरों की पूजा के लिए घोषणा सी करते दिखाई पड़ते हैं-

उचित यही है करें वीर पूजा मिल सब हम,
यही धर्म है सत्य यही है सच्चा कर्तव्य,
भारत पर अति कठिन विपद आती है जब जब,
ऐसा ही अवतार प्रभु लेते हैं तब तब[1] ।।

इन प्रारम्भिक रचनाओं ने भविष्य के बड़े ओजस्वी ऐतिहासिक काव्यों में वीर पूजा के लिए मानो प्रेरणा का कार्य किया है । जयशंकर प्रसाद ने उस वीर की पूजा-अर्चना में अपनी लेखनी को भी धन्य माना है साथ ही देशवासियों को भी उस 'महत्वमय नामकरण' का उपदेश देना नहीं भूला है-

होगी पवित्र यह लेखनी
लिख कर स्वर्णाक्षर में नाम 'प्रताप' का।

+ +

अरे ! कृतघ्न कभी मत उनको भूल के
यह महत्व मय नाम स्मरण करते रहो ।[2]

मध्य युग के इन शूर वीरों के अतिरिक्त आधुनिक युग के राष्ट्र नायकों के प्रति भी कवि की यह भावना उल्लेखनीय है । ब्रिटिश शासकों की नृशंसता पर तथा शारीरिक कष्टों की चिन्ता न करते हुए आगे बढ़ कर नेतृत्व करना तथा प्राण होम कर देना इन देश भक्तों की जीवनसाध बन गई थी । इस आदर्श पूर्ण वीरता के प्रति जन जन का मन तथा कवि का हृदय अनायास ही श्रद्धा से भर उठा । महाकवि 'दिनकर' तो महायात्रा की ओर जाते हुए बापू के पैरों को भी पकड़ने के लिए विह्वल हो उठे-

---

१- कामताप्रसाद गुरु, 'शिवाजी' सरस्वती, अक्टूबर १९०७

२- महाराणा का महत्व, पृ० ६

सोहनलाल द्विवेदी मानो जनभावना का प्रतिनिधित्व करते हुए गांधी-मन्दिर बना कर पूजने के लिए आतुर हैं-

हम देख रहे सुदूर भविष्य का
वह उज्ज्वल अतिशय आज,
गान्धी मन्दिर होंगे गृह गृह
होगा स्वदेश में जब स्वराज्य ।[१]

आधुनिक राष्ट्र वीरों में महात्मा गांधी विशेष पूजनीय हुए । देश हित प्राण न्यौछावर करने वाले देश भक्त सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी की पूजा सियाराम शरण गुप्त तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने क्रमशः आत्मोत्सर्ग, आत्मार्पण में की। इसी प्रकार भावनाभिभूत होकर राष्ट्र वीरों की पूजा अर्चना करने वालों में मैथिलीशरण गुप्त, पद्माकर शुक्ल, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी आदि आदि अनेक कवि हैं जिन्होंने कहीं आदर सम्मान प्रकट करते हुए तथा कहीं शोक श्रद्धांजलि के रूप में राष्ट्रवीरों की पूजा अर्चना की ।[२]

इन वीरों के अतिरिक्त यहां कवियों के ऐतिहासिक काव्याकार की यह पूजा-भावना चित्तौड़ की सतियों के लिए भी प्रकट हुई है । ऐसा प्रतीत होता है कि आत्म सम्मान तथा सतीत्व-गौरव की रक्षा हेतु ज्वालाओं में लिपट जाने वाली इन वीरांगनाओं के प्रति कवि श्रद्धा मात्र से तृप्त नहीं हो पाता । भाव विह्वल होकर वह श्रद्धा पात्र के चरणों में अपनी असीम भावना का दोना लुटा

१- प्रभाती से

२- तिलक था ! भाल-तिलक
लूट दिया जिस अकरुण-कर ने
वह शोभालंकार !!
जाति की आशा का संचार
पुरातन वेदों की झंकार ।

-सुमित्रानन्दन पन्त, 'वीणा' संग्रह से

देना चाहता है। `जौहर` में `पुजारी` की निश्छल पूजा में श्यामनारायण पाण्डेय का उत्कृष्ट पूजाभाव ही व्यंजित हुआ है-

चरणों पर फूल चढ़ा कर
घी दीप जलाया रोते।
अधिकाधिक पद पूजन की
उर भाव विकल है होते।

नैवेद्य धूप मधु चन्दन
अक्षत है पद-पूजा की।
मानस की श्रद्धा उमड़ी
रुक और मही की झांकी।[१]

झांसी की वीरांगना लक्ष्मीबाई की गौरवगाथा सुभद्राकुमारी चौहान ने गाई थी ;`झांसी की रानी` महाकाव्य में कवि श्याम नारायण [illegible] प्रसाद ने जन-मानस की पावन मधुमाल महारानी के चरणों में अर्पित की-

पाठक हो जाओ सावधान
रानी का मंत्र सुनाना है
मानस की पावन मधुमाला
चरणों पर आज चढ़ाना है।[२]

आलोच्यकाल जातीय चेतना का युग रहा है। शताब्दियों से दासता के बन्धन में जकड़े हुए भारतीय जन स्वाधीनता प्राप्त करने की उमंग से भर उठे हैं। जन-जीवन का एक मात्र उद्देश्य था स्वाभिमान की रक्षा तथा स्वतंत्रता प्राप्ति।

१- जौहर, पृ० ४८

२- प्रथम हुंकार, पृ० २८

फलतः अतीत मे जिन वीरों ने सर्वस्व होम करके भी जातीय स्वाभिमान की रक्षा की थी, स्वाधीनता को प्राणों से बढ़कर प्यार किया था, तथा वर्तमान में भी जो राष्ट्रवीर परिवार तथा प्राणों का मोह छोड़कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए तथा जातीय स्वाभिमान की रक्षा में सर्वस्व होम रहे हैं उनके प्रति जन-जन का हृदय श्रद्धा से पूर्ण हो जाना स्वाभाविक ही था। अतः यह कहा जा सकता है कि युग-भावना के दिग्दर्शन के साथ साथ कवि की धार्मिक श्रद्धा भी ऐतिहासिक काव्यों में स्थान-स्थान पर वीर पूजा के रूप में प्रस्फुटित हुई है।

(घ) प्रशंसात्मक :-

प्रशंसा तथा वीर पूजा कुछ अंशों में सम्मिलित से भाव हैं। दोनों में प्रशंसनीय एवं पूजनीय व्यक्ति के प्रति श्रद्धा की भावना ही प्रधान रहती है। हिन्दी खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में अनेक प्रशस्तिमूलक मुक्तक रचनाएं प्राप्त होती हैं। इन रचनाओं में कहीं वीरत्व की प्रशंसा हुई है तो कहीं व्यक्तिगत गुणों की, कहीं उच्च आदर्शों की प्रशंसा है तो कहीं आधुनिक युग के नायकों की कर्मठता की। प्रबन्ध काव्यों में भी कहींकहीं नायक नायिकाओं के गुणों की प्रशंसा हुई है। यों तो प्रबन्ध काव्य की सम्पूर्ण कथा में चरित-नायक तथा नायिका के प्रति प्रशंसा की भावना प्रच्छन्न रूप में रहती है परन्तु किन्हीं स्थलों पर कवि की दृष्टि मात्र प्रशंसा करना ही है। 'सिद्धार्थ' महा-काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने शाक्य नरेशों की प्रशंसा की है-

विनय-युक्त उदार गंभीर थे
अति सहिष्णु तथा अति धीर थे
परम न्याय-परायण वीर थे,
सतत-संयत भूपति शाक्य के ।[१]

१- सिद्धार्थ, पृ० प्रथम

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय' में चन्द्रगुप्त मौर्य के अतुल बल तथा विक्रम की प्रशंसा की-

भारत-भूपति चन्द्रगुप्त हैं तेजोधारी
 शासन उनका प्रजा वर्ग को भी सुखकारी
हैं वे सद्गुण शील और बल-विक्रम वाले
 पद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने हैं कर डाले ।[१]

आर्य जाति के गौरव, देश भक्त वीरप्रताप के गुणों की अभिव्यक्ति भी अनेक प्रकार से हुई । आलोच्य काल में महाराणा प्रताप कवि-वाणी का शृंगार बन कर राशि-राशि छन्दों में प्रशंसित हुए-

आर्य्य जाति के तेज-सा !
देश भक्त, जननी का सच्चा पुत्र है,
भारतवासी ![२]

इस महान देशभक्त की प्रशंसा को वाणी देने वालों में, मैथिलीशरण गुप्त, लाला भगवान दीन, सोहनलाल द्विवेदी, गोकुलचन्द्र शर्मा, श्यामनारायण पाण्डेय, आदि हैं । श्यामनारायण पाण्डेय तथा गोकुल चन्द्र शर्मा ने तो प्रबन्ध काव्य लिख कर प्रताप की वीरत्व की प्रशस्ति गाई । मध्य युग में अन्य वीरों तथा वीरांगनाओं की प्रशस्ति में खड़ी-बोली के ऐतिहासिक काव्यकारों ~~की-प्रशस्ति~~ ने अनेक ऐतिहासिक रचनाओं का निर्माण किया । कामताप्रसाद गुरु (शिवाजी, चांद बीबी) लाला भगवान दीन (वीरपंचरत्न) सुभद्राकुमारी चौहान (झांसी की रानी) आदि कवियों की रचनाओं में वीरपूजा के साथ-साथ प्रशंसात्मक दृष्टि भी स्पष्ट है ।

प्रशस्तिमूलक रचनाओं की दृष्टि से आलोच्यकालीन राष्ट्रनेताओं के ऐतिहासिक व्यक्तित्व के गुणों की प्रशंसा में निर्मित मुक्तक काव्य विशेष महत्व-

----

१- मौर्य विजय, प्रथम सर्ग

२- जयशंकर प्रसाद, महाराणा का महत्व

पूर्ण है । इस काव्य में प्रशंसा की भावना अधिक स्पष्ट है । ऐसा प्रतीत होता है कि युग के ऐतिहासिक नेताओं तथा राष्ट्रवीरों की प्रशस्ति में रचनाओं की एक लहर सी इस युग में उठी थी । लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, वीर सेनानी सुभाषचन्द्र बोस, पं० जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी आदि पर कविता लिख कर यहां वालों के प्रत्येक कवि ने अपनी लेखनी पवित्र की । कवि बच्चन के `सूत की माला` में बापू के बलिदान सम्बन्धी अनेक गीत संकलित हैं । बच्चन जी की कविताओं में बापू के प्रति प्रशंसा का भाव ही प्रमुख है । गांधी जी के त्याग की प्रशंसा निम्न पंक्तियों में हुई-

बेशक वह सब से ऊंचे पद का अधिकारी,
कर दे उस पर अपना सब वैभव बलिहारी,
रोकेगा, पर, उन पर, कब तक यह संसारी
उसने सीखा है
सुख संपत्ति को
ठुकराना ।[1]

बापू पर लिखी कविताओं में कवि भावना गुण वर्णन करते करते अनायास ही अपने देवता के चरणों में न्यौछावर हो जाने के लिए उत्सुक हो उठती है । अत: गांधी जी के प्रति पूजा का भाव ही विशेष रूप में प्रस्फुट हुआ है, परन्तु अन्य राष्ट्रवीरों के प्रति पूजा की अपेक्षा प्रशस्ति का भाव ही प्रमुख है । पं० माधव शुक्ल ने लोकमान्य तिलक की वन्दना की तथा उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा की।[2]

श्रीधर पाठक ने `गोखले गुणाष्टक` तथा `गोखले प्रशस्ति` में गोपाल कृष्ण गोखले के सौम्य व्यक्तित्व तथा कर्मशीलता का गुणगान किया । इसी प्रकार एक भारतीय आत्मा ने भी अनेक राष्ट्रवीरों को भाव सुमन अर्पित किए । `जय हिन्द` का नारा लगाने वाले नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के कीर्तिगान में कवियों ने अनेक रचनाएं कीं।

१- सूत की माला से ।

२- जागृत भारत ।

जयशंकर प्रसाद, श्यामनारायण पाण्डेय, बालकृष्ण शर्मा नवीन, बच्चन, गोपाल सिंह नेपाली, रामधारी सिंह दिनकर, सुधीन्द्र एम०ए०, आदि अनेक कवि कंठों ने उन्मुक्त स्वर से सुभाष बोस का जयगान किया है[1]। सुभाष बोस द्वारा प्रचलित किया गया `जयहिन्द का नारा` भारतीय जन तथा कवि का नारा बन गया था---

है `जयहिन्द` हमारा नारा
जनता ने है आज पुकारा ।
जिस दिन वीर सुभाष हमारा
बना अग्नि के पथ का राही
उस दिन भारत की पलकों में
नाची स्वतंत्रता मन चाही ।[2]

सुभाष चन्द्र बोस के संकेत पर प्राण न्योछावर करने के लिए सैकड़ों हजारों प्राण प्रस्तुत थे । भारत का जन-मानस अपनी खोई स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सुभाष बाबू की ओर बढ़ा आ रहा था, किन्तु सुभाष न जाने कहाँ विलीन हो गए, आज भी उषा नित मालाएं लेकर खड़ी होती है न जाने वह स्वतन्त्र सिपाही किस दिन लौट कर आए-

हिमालय रजत कोष ले खड़ा
सिन्धु सागर ले खड़ा प्रवाल ।
देश के दरवाजे पर रोज
खड़ी होती उषा ले माल ।।
कि जाने तुम आओ किस रोज,
बजाते नूतन रुद्र-विषाण ।।[3]

१- इन सभी तथा अन्य कवियों की सुभाष से सम्बन्धी रचनाएँ `जयहिन्द` संग्रह में संगृहीत हुई हैं । - प्रथम संस्करण १९४६

२- सुधीन्द्र एम०ए०, `जयहिन्द` संग्रह से।

३- फलेगी डालों में तलवार ;जयहिन्द` संग्रह से।

सुभाष के विद्रोही व्यक्तित्व की कीर्ति कवि वाणी का शृंगार बनी ।

कवि अपने उस विलुप्त नेता की खोज करना चाहता है-

अमर ! कहां हो ! आज चाहते लाखों तेरे हैं दीवाने
अमर कहां हो ! आज चाहते लाखों तेरे हैं परवाने ।[1]

और कवि का अमिट विश्वास है कि उसकी अमर कहानी युगों युगों तक आह्लादित करेगी।' उसकी अमर निशानी पथ पर युग युग तक निर्माण करेगी।' इन असंख्य स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त गोपाल प्रसाद व्यास ने इस 'आजादी के परवाने' की जीवन कथा पर आधारित 'कदम कदम बढ़ाए जा' खंडकाव्य की रचना की । इस कर्मठ वीर की कथा कहने के पश्चात् कवि सरल एवं भाव पूर्ण शब्दों में पूछ उठा-

नेता जी तुम कहां छिपे हो ? याद तुम्हारी आती,
भारत के बच्चे-बच्चे की भर-भर आती छाती ।
'दिल्ली चलो' तुम्हारा नारा कैसे पूर्ण हुआ है
परदेशी का भाग्य सितारा पिस कर चूर्ण हुआ है।[2]

मध्ययुगीन एवं आधुनिक राष्ट्रवीरों के प्रति प्रशंसित भाव के अतिरिक्त ऐतिहासिक स्थानों में 'हल्दीघाटी' 'चित्तौड़' तथा 'हिमालय' के प्रति भी अनेक कवियों का प्रशंसात्मक भाव रहा है ।

इस भूमि की पूजा की
वीरों ने रण की चालों से
मां बहनों ने जौहर से
दीनों ने अपनी आहों से[3]

१- बलजीत सिंह 'विरागी'

२- गोपालप्रसाद व्यास 'कदम कदम बढ़ाए जा'

३- हल्दी घाटी, पृ० १०

`जौहर` का पुजारी न काशी जाने की अभिलाषा रखता है न रामेश्वर, उसके लिए तो चित्तौड़ ही तीर्थराज है जहाँ के दर्शन के लिए उसके नेत्र प्यासे हैं --

मुझे न जाना गंगासागर
मुझे न रामेश्वर काशी
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को
मेरी आँखें प्यासी[१]।

इसी भाँति चित्तौड़ सम्बन्धी अन्य रचनाओं में भी इस तीर्थराज के प्रति प्रशंसा से पूर्ण भाव लक्षित होते हैं। हिमालय पर लिखी गई कविताओं में इस दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त की `हिमाद्रि` विशेष उल्लेखनीय है। हिमालय की नैसर्गिक शोभा से प्रभावित होकर कवि उसका यश वर्णन करता है। स्वर्णिम किरणों से मण्डित शिखरों के सौन्दर्य से लेकर नीली नीली छाया की आभा, रंग रंग के चित्रित पक्षी, मेघों की छाया के संग संग भरत घाटियां का पिव धारा गौरा पार्वती के शैशव का गान तथा देवदारु से युक्त शिखर पर शंकर की समाधिस्थ प्रतिमा आदि सभी कुछ कवि की कोमल कल्पना में साकार हुए और अन्त में कवि हिमालय के महत्व का प्रतिपादन करता हुआ उसके सौन्दर्य की प्रशंसा में कह उठा-

" और पूछता मैं मन से क्या यह धरती रह सकती जीवित।
जो तुम स्वर्गिक गरिमा भू पर बरसाते रहते न अपरिमित।
शिखर शिखर ऊपर उठ तुमने मानव आत्मा कर दी ज्योतित।
हे असीम आत्मानुभूति में लीन ज्योति शृंगों के भू भृत।

घनीभूत अध्यात्म तत्व से जिससे ज्योति सरित शत निःसृत
प्राणों की हरियाली से स्मित पृथ्वी तुमसे महिमा मंडित
संग सौध से स्थिर शोभा के नाग दन्त शृंगों से कल्पित
स्वर्ग खण्ड तुम इस वसुधा पर पुण्य तीर्थ से देव प्रतिष्ठित।"

१- श्यामनारायण पाण्डेय, `जौहर` पृ० ४

उपर्युक्त प्रशंसात्मक सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि प्रशस्ति गान में गुण वर्णन की दृष्टि ही मुख्य रही है । विशेष रूप से प्रताप अथवा महात्मा गांधी के प्रति प्रशंसात्मक दृष्टि में भी पूजा का समावेश अनायास ही हो गया है केवल प्रशंसा से मानों कवि तृप्त नहीं हो पाया, शेष रचनाओं में मुख्यत: प्रशंसा के भाव ही की अभिव्यक्ति हुई है ।

(ड०) राष्ट्रीयता :-

(१) राष्ट्रीय चेतना के विकास की पीठिका:-

भौगोलिक एकता, सांस्कृतिक एकता एवं राजनीतिक एकता, इन तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र के भव्यस्वरूप का निर्माण होता है । इन तीनों एकताओं की दृष्टि से देखने पर भारत की राष्ट्रीय भावना के विकास की अनेक स्थितियां दृष्टिगोचर होती हैं। भौगोलिक एकता की कल्पना अत्यन्त प्राचीन है । प्रागैतिहासिक युग से लेकर आलोच्य काल तक, सम्पूर्ण भारत देश, हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक, एक भरतखंड के रूप में देखा गया है । भारतीय ऐतिहासिक सम्राटों के `चक्रवर्ती सम्राट` होने की कल्पना में भारत की भौगोलिक एकता का स्वर ही गूंजता हुआ सुनाई देता है । छठीं शताब्दी ई०पू० हिन्दू गणराज्यों की स्थापना के कारण `राष्ट्र` का अर्थ `राज्य` में संकुचित हो गया था परन्तु यूनानी आक्रमण के विरोध में चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में ही उठा था । प्राचीन युग में मौर्य एवं गुप्त सम्राटों ने भारत के खंड-राष्ट्रों को एक राष्ट्र में गूंथने के अनेक प्रयत्न किए परन्तु समय-समय पर भारत के खंड-राष्ट्र अपना अस्तित्व बनाए ही रहे। यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण मध्ययुग एवं बीसवीं शताब्दी से पूर्व का भारतीय इतिहास खंड - राष्ट्रों की ही कहानी है ।

यवन शासन काल में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से राष्ट्रीयता को गहरा आघात पहुंचा । एक विदेशी शक्ति के द्वारा भारत-भूमि पर पदाघात हुआ। सातवीं शताब्दी में सिन्ध विजय के साथ ही भारत में यवनों के प्रवेश के चिह्न दिखाई पड़ते हैं । परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह घटनाएं विशेष महत्वपूर्ण

नहीं था[१]। महमूद गजनवी का उद्देश्य भारत के धन को ही लूटना था । अतः मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि लगभग ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत के अनेक हिन्दू खंड राष्ट्रों की राष्ट्रीय भावना किसी महत्वपूर्ण विदेशी शक्ति के प्रभाव से ग्रस्त नहीं थी । मोहम्मद गौरी तथा राजपूतों का संघर्ष राष्ट्र की राजनीतिक एकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । पृथ्वीराज चौहान के नेतृत्व में भारत के खंड-राष्ट्रों ने इस विदेशी आक्रामक का भरपूर सामना किया, परन्तु जयचन्द की देश-द्रोहिता के परिणामस्वरूप भारत, एक राष्ट्र के रूप में उठा हुआ दिखलाई नहीं देता । मोहम्मद गौरी की विजय ने उत्तर भारत में मुस्लिम राज्य की नींव रख दी[२] तथा भविष्य में उत्तर भारत के खंड-राष्ट्रों की प्रदेशगत राष्ट्रीय भावना को संघर्ष की ओर उन्मुख किया । पृथ्वीराज के नेतृत्व में हुए राष्ट्रीय संघर्ष के तीन साढ़े तीन सौ वर्षों उपरान्त एक बार फिर राष्ट्रीय वीर महाराणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में भारत के राजपूत वीर बाबर के रूप में एक नई मुस्लिम शक्ति से टक्कर लेने के लिए उठे परन्तु दुर्भाग्य वश राष्ट्रीय स्तर का यह प्रयत्न भी निष्फल हो गया । इस प्रकार शताब्दियों के लिए राष्ट्र एक शक्तिशाली मुगल शासकीय सत्ता की अधीनता में आ गया।

---

1. The Arab conquest of Sind did not immediately produce any far-reaching political effect, and it has been described by Mr. Stanley Lane-Poole as "an episode in the history of India and of Islam, a triumph without results".

   R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. Datta,
   An Advanced History of India
   Page - 275.

2. The victory of Muhammad was decisive. It laid the foundation of Muslim dominion in Northern India.

   R.C. Majumdar,
   H.C. Raychaudhuri &
   K. Datta
   An Advanced History of India

   Page - 278

चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर महाराणा संग्राम सिंह तक, विदेशी शक्तियों के विरोध में हुए तीनों अभियान राष्ट्रीय अभियान कहे जा सकते हैं । उत्तर मध्य युग में महाराणा प्रताप तथा छत्रपति शिवाजी द्वारा किए गए विरोधात्मक प्रयत्नों में राष्ट्र की राजनीतिक चेतना प्रबुद्ध नहीं होने पाई । महाराणा प्रताप के विरोध का लक्ष्य मुख्यत: अपने व्यक्तिगत राज्य अथवा धर्म-राज्य की रक्षा करना था । सम्भवत: अनेक राजपूत राजाओं की देश द्रोहिता के कारण उस समय किसी राष्ट्रीय युद्ध का सूत्रपात न हो सका । महाराज शिवाजी के समय में भी अनेक हिन्दू-राज्य राष्ट्र की राजनीतिक एकता के विच्छेदक बने रहे। इस प्रकार मध्ययुग में एक राष्ट्र की चेतना धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों तक ही सीमित रही । इस ~~प्रकार मध्ययुग~~ में अपने अपने खंड राज्यों की सुरक्षा तथा स्वाधीनता ही देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता थी । आधुनिक युग में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सन् १८५७ की क्रान्ति में अनेक देशी रियासतों के सम्मिलित विरोध में, उस राष्ट्रीय चेतना का स्वर फूटा जो बीसवीं शताब्दी में आकर एक व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होता है । उन्नीसवीं शताब्दी की राष्ट्रीयता मुख्यत: धर्म तथा संस्कृति प्रधान थी । अनेक धार्मिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन अपने अपने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करने के भाव से हो उठे थे इसीलिए भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय चेतना में राजभक्ति का स्वर भी मिला हुआ है।हां, यह सत्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन ही आगे चल कर राजनीतिक राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि बने । परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी में धार्मिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक चेतना के रूप में एकनवीन राष्ट्रीय चेतना के विकसित तथा उज्ज्वल रूप के दर्शन होते हैं । गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय जन की वाणी से अनुप्राणित होकर यह राष्ट्रीयता सर्वांगीण बन गई । भारत के जन जन में अपना राष्ट्र, अपना राज्य ,अपनी भाषा ,अपनी वेशभूषा का स्वर गूंज उठा । इस प्रकार आधुनिक युग में उस राष्ट्रीय चेतना का जन्म तथा विकास हुआ जो अनेक शताब्दियों तक भारतीय जन जीवन से बहुत दूर रही थी तथा सदियों की पराधीनता के कारण जिसका स्वरूपभारतीय जन की कल्पना में भी नहीं आ सका था । आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना में हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारण

जो साम्प्रदायिकता का स्वर फूटा है वह विदेशी शक्ति की ही एक कूटनीति का फल कहा जा सकता है। अन्यथा भारतीय राष्ट्रवादियों के द्वारा इस साम्प्रदायिकता को कुचलने के लिए गए अनेक प्रयास भी राष्ट्रीय भावना के ही परिणाम कहे जा सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक राष्ट्रीय चेतना तथा भावना के विकास के अनेक रूप रहे हैं। खड़ी बोली के अधिकांश ऐतिहासिक काव्य में राष्ट्रीयभावना का चित्रण युगीय राष्ट्रीयता के रूप में हुआ है। मध्ययुगीन ऐतिहासिक संदर्भों को लेकर रचे गए काव्य में तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का स्वर ही मुखरित हुआ है।

(२) खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में राष्ट्रीयता :

आलोच्यकालीन देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर जिन कवियों ने मध्ययुग के देश भक्तिपूर्ण ऐतिहासिक सन्दर्भों को लेकर जो काव्य-रचनाएं कीं, उनमें तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का स्वर ही विशेष रूप से प्रस्फुटित हुआ है। यह बात दूसरी है कि कुछ लेखकों ने तत्कालीन राष्ट्रीयता को भी समसामयिक राष्ट्रीय भावना का व्यापक रूप प्रदान करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। (आर्यावर्त में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है) आधुनिक युग के ऐतिहासिक सन्दर्भों को लेकर निर्मित काव्य रचनाओं में राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता की उस पूर्ण धारणा का स्पन्दन प्राप्त है जो आधुनिक युग में ही प्रस्फुटित हुई थी। हिन्दी-कविता के लिए भी राष्ट्रीयता का यह स्पन्दन नितान्त नवीन था। वीरगाथा-काव्यों का उपजीव्य शौर्य था, भक्ति काव्यों में भक्ति और ज्ञान की महिमा का गान ही प्रधान रहा, रीतिकाव्यों का मुख्य लक्ष्य सामन्त नरेश थे तथा उपलक्ष्य शृंगार था, परन्तु आलोच्यकाल के ऐतिहासिक काव्य का ध्येय राष्ट्र हुआ। इस परिप्रेक्ष्य मे खड़ी बोली के मुख्य ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में राष्ट्रीय भावना का अवलोकन करना आवश्यक है।

सुविधा की दृष्टि से इतिहास के महत्व को दृष्टि में रखते हुए आलोच्य

वाहीन ऐतिहासिक काव्य में राष्ट्रीयता के विकास को निम्न रूपों विभक्त किया जा सकता है-

(अ) प्राचीन युग

(ब) मध्य युग

(स) आधुनिक युग

(अ) प्राचीन युग में मौर्य तथा गुप्त सम्राटों के काल में राष्ट्रीय चेतना के विकास का स्वरूप `मौर्य विजय` तथा `विक्रमादित्य` में उपलब्ध होता है। `मौर्य विजय` में सैनिकों के गानों में सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम की भावना का चित्रण निम्न पंक्तियों में हुआ है-

पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी
माता के समक्ष मातृ भूमि है हमको प्यारी।
सबको ही क्या हमीं जगत को है यह प्यारी
इसकी गुरुता और कहीं क्या गई निहारी।
यह वसुन्धरा सर्वोत्कृष्ट है क्यों न कहें फिर हम यही
जय जय भारतवासी कृती जय जय जय भारत मही ।[१]

इसी प्रकार `विक्रमादित्य` में युवकों का देश प्रेम अत्यन्त महान है । वह सम्पूर्ण देश को एक राष्ट्र नायक की छत्रछाया में देखने को इच्छुक है-

एक छत्र छाया में होता मेरा प्यारा देश सकल
खंड खंड साम्राज्य न होता नहीं विभाजित होता देश
इस अखंड भारत पर करता शासन मेरा गुप्त नरेश
तब तो भारत के बाहुबल का छा जाता जग पर आतंक
थर थर विश्व कांप उठता यदि हो जाता भारत पूर्वक [२]

१- सियारामशरण गुप्त, मौर्य विजय, पृ० ८

२- गुरुभक्त सिंह भक्त, विक्रमादित्य ,पृ० ५५

अन्त में सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भारत को एक राष्ट्रमाला के रूपमें गूंथने में सफल होते हैं ।

(ब) जातीय स्वतंत्रता की रक्षा करना, स्वाभिमान हित मर मिटना, तथा आततायियों पर बलिदान हो जाना मध्ययुगीन वीरों की राष्ट्रीय भावना थी । कवि गोकुलचन्द्र शर्मा ने `प्रणवीर प्रताप` में मध्ययुगीन राष्ट्रीयता के अर्थ का वर्णन किया है । हिन्दू राजागण उस समय एक राष्ट्र की कल्पना से अपरिचित थे -

भारत एक महान् राष्ट्र हो, हों सब एक इकाई,
नहीं कल्पना इसकी तब तक किसी हृदय में आई।
अंग अंग पर विजय प्राप्त कर पहले शत्रु भगाना,
देश-भक्ति का सबसे बढ़ कर यही मर्म था माना ।[१]

हिन्दुत्व की मान मर्यादा तथा रक्षा में ही राष्ट्र की प्रतिष्ठा समझी जाती थी -

भारतीयता हिन्दू एक थी एक देश के वासी,
वंश वंश के विरद विपुल थे उनके धर्म उपासी।
रक्षा में हिन्दुत्व -मान की, सम थी सब की निष्ठा,
उसकी मर्यादा ही में थी रहती राष्ट्र-प्रतिष्ठा ।[२]

उस समय जननी - जन्म-भूमि ही राष्ट्र का द्योतक थी तथा उसके लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देना राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा प्रमाण था-

था हिन्दुत्व राष्ट्र का द्योतक नहीं धर्म का केवल
हिन्दू था, थी हिंद-भूमि में जिसकी निष्ठा निश्चल
कर देना सर्वस्व निछावर उस पर एक प्रथा थी
उसके हित प्राणों की गाथा प्रस्तुत रही सदा थी।[३]

१- पृ० ८०
२- पृ० ८१
३- पृ० ८१

भारतीय शासकों के रूप में मुगल जाति सदैव राजपूतों की शत्रु रही । राजपूतों की स्वाधीनता प्रियता तथा स्वाभिमान इस शत्रु जाति के लिए एक चुनौती सिद्ध हुए । अतः मुगल बादशाह राजपूतों को कुचलने के लिए कटिबद्ध रहते थे। राजपूत वीर भी तन मन धन से शत्रु का विरोध करने और अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए प्रस्तुत रहे । स्वाभिमान की भावना तो इतनी प्रबल हो उठी थी कि ये शूरवीर बात-बात में परस्पर भी लड़ जाया करते थे । तत्कालीन राष्ट्रीय भावना का चित्रण अनेक आलोच्यकालीन ऐतिहासिक काव्यों में हुआ है । जननी-जन्मभूमि की मान मर्यादा का अतिक्रमण न होने पाए, चाहे कितने ही प्राण चले जांय, परन्तु चित्तौड़ प्रदेश की रक्षा अवश्य होगी-

न मरने की है कुछ परवाह
रहे माता का केवल मान
रहे मर्यादा का अभिमान
नहीं धन वैभव की है चाह ।[1]

जहां तक हो अपनी शुभ शक्ति
रहे रक्षित चित्तौर प्रदेश ।
हृदय में अब भर लो आवेश
शक्ति के सहित रहे भू-भक्ति ।[2]

'रंग में भंग' काव्य में हाड़ा सरदार कुम्भ का जन्मभूमि के प्रति प्रेम अत्यन्त उत्कट है । उसके रहते उसकी मातृभूमि की ओर कोई आंख उठा कर भी नहीं देख सकता । वह चाहे जहां रहे किन्तु मातृ-भूमि का उ अपमान वह सहन नहीं कर सकता-

'जन्मदायी, धात्रि ! तुझसे उऋण होना, अब मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे ?
मैं रहूं चाहे जहां हूं किन्तु तेरा ही सदा
फिर भला कैसे न रक्खूं ध्यान तेरा सर्वदा ?[3]

१- रामकुमार वर्मा, चित्तौड़ की चिता, पृ० २६
२- वही वही पृ० २७
३- मैथिलीशरण गुप्त, रंग में भंग, पृ० २९

`वीरांगना मीरा` में भी जातीय रक्षा की राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखर है । महाराणा उदय सिंह की पत्नी पति को शत्रुओं से प्रतिरक्षित करती हुई कह रही है--

निज देश रक्षा का अभी जिसको नहीं कुछ ध्यान है
प्राणेश ! वह पशु तुल्य है म्रियमाण मृतक समान है
प्रिय देश सेवा ही विभो ! शुभ आपका स्वधर्म है
संग्राम में अरि मारना ही क्षत्रियों का धर्म है ।[1]

`हल्दीघाटी` एवं `जौहर` में भी मध्ययुगीन राष्ट्रीयता का आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है । महाराणा प्रताप के जीवित रहते मेवाड़ को शत्रु पददलित नहीं कर सकते-

मेवाड़-देश, मेवाड़-देश
समझो यह है मेवाड़ देश
जब तक दुःख में मेवाड़-देश
वीरों, तब तक के लिए क्लेश ।[2]

इसी प्रकार `प्रणवीर प्रताप`,`आत्मार्पण` `वीर हमीर` `तारन्या` `गुरुकुल` आदि में भी मध्ययुगीन राष्ट्रीय भावना का ही चित्रण हुआ है ।

(स) आधुनिक युग की राष्ट्रीय भावना के चित्रण की दृष्टि से `गांधी-गौरव`,`बापू` `आर्यावर्त`,`झांसी की रानी`,`महामानव` `जननायक` `जगदालोक` आदि अनेक ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं । इन काव्यों में पात्रों के माध्यम से आधुनिक राष्ट्रीयता के भाव का महत्वपूर्ण चित्रण हुआ है । `आर्यावर्त` में मध्ययुगीन कथानक अपनाते हुए भी कवि ने राष्ट्रीयता के व्यापक भाव का चित्रण किया है । पृथ्वीराज तथा चन्दबरदाई उत्कट देशानुरागी हैं । भारत की स्वतंत्रता के लिए प्राणोत्सर्ग करके इन्होंने राष्ट्रीय भावना के उज्ज्वलतम रूप की झांकी प्रस्तुत की है ।

१- ठाकुर भगवत सिंह विशारद, वीरांगना मीरा, पृ० ६

२- श्यामनारायण पाण्डेय, हल्दीघाटी, पृ० ८८

गौरी द्वारा आँखें निकलवाने से पूर्व भारत-भूमि को भी भरकर देख लेने की सम्राट पृथ्वीराज की आकांक्षा में राष्ट्रीय भावना का अपूर्व रूप निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

पृथ्वीराज बोले हाय भारत वसुंधरे ,
आर्यभूमि, आर्यावर्त, आर्य प्रतिपालिता।
एक बार देख लूं तुम्हारी सौम्य मूर्ति मैं
आंखें भर, संभव नहीं है इस जन्म में
देखूंगा तुम्हारा शस्यश्यामला स्वरूप मैं,
फैले दूर- दूर तक श्वेत मनभावने
स्वर्णमय शस्य पर संध्या के समीर का
खेलना ,उठाना हाय लहरें समुद्र-सी
मानो लहराता स्वर्ण अंचल तुम्हारा भी।[१]

'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई मानो राष्ट्रीयता की सजीव प्रतिमा ही थीं। शैशवावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक राष्ट्रप्रेम की गंज उसके रोम रोम में गुंजरित होरही है। सम्पूर्ण भारत के विराट् प्रांगण में वह स्वाधीनता का स्वाद लेना चाहती है -

उच्च हिमालय के मस्तक पर
चमकेगा जब चमचम ताज।
अन्तरिक्ष से अवनी-तल तक
होवेगा अपना ही राज।
कन्या से नागा पर्वत तक
कृष्णा से अफगानिस्तान।
एक राग जब गूंज उठेगा
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान।[२]

१- मोहनलाल महतो वियोगी, आर्यावर्त , पृ० २६,२७
२- श्यामनारायण ~~पाण्डेय,~~ प्रसाद, झांसी की रानी , पृ० २८०

`आत्मोत्सर्ग` में हिन्दू तथा मुसलमानों को भ्रातृत्व का संदेश देते हुए गणेश शंकर विद्यार्थी के कथन में राष्ट्रीय भावना का स्वर ही प्रमुख है-

हिन्दू-मुसलमान दोनों ही
एक डाल के हैं दो फूल ,
और एक ही है दोनों का
बड़ा बनाने वाला मूल ।[१]

गांधी जी तो राष्ट्रीयता के प्रतीक ही थे ।धार्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से वे भारत की राष्ट्रीय भावना के अवतार थे.. भारतीय जन के शोषण का विरोध करके उन्होंने भारतीय जनताको विदेशी सत्ता से मुक्ति दिलाई ।जननी जन्मभूमि के आंसू पोंछने चल पड़े-

अब न लौटेंगे चरण ये पुन: इस पथ पर
प्राण ये सन्देश लेकर उड़ेंगे सत्वर
मैं मिटूंगा गंध बन कर दलित प्राणों की
और सूनी देख ओगी क्षुब्ध लहरों पर[२]

`गांधी गौरव`, `बापू`,`जगदालोक`,`जननायक` आदि तथा अन्य गांधी सम्बन्धी काव्यों में इसी राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

ऐतिहासिक मुक्त रचनाएं भी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं । मैथिलीशरण गुप्त, पं० माधव शुक्ल, एक भारतीय आत्मा,रामधारी सिंह`दिनकर`,सोहनलाल द्विवेदी ,अनूप शर्मा आदि की ऐतिहासिक मुक्तक रचनाएं विशेष महत्वपूर्ण हैं । इनमें भारत के अतीत का उज्ज्वल रूप दिखा कर कवि वर्तमान की अवनति और अधोगति का चित्र आंकता है । कभी वर्तमान भारत का दारिद्रय उसे उदास करता है, और कभी सामाजिक नैतिक पतन उसे क्षुब्ध कर देता है । वह अनेक ऐतिहासिक

१- सियारामशरण गुप्त, आत्मोत्सर्ग, पृ० ६६
२- ठाकुर प्रसाद सिंह, महामानव, पृ० १३६

उल्लेख करके वर्तमान के जीवन को प्रेरणा देना चाहता है। इस प्रकार मुक्तक काव्य की राष्ट्रीयता में कवि का अपना राष्ट्र भाव भी प्रमुख हो उठा है। अनूप शर्मा की 'चित्तौड़ दर्शन' 'विराट् संग्राम', रामधारी सिंह दिनकर की 'अतीत के द्वार पर', 'बसन्त के नाम पर', 'पाटलीपुत्र की गंगा से', 'वैशाली' आदि तथा मैथिली शरण गुप्त की 'भारत भारती' कविताएं उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य में राष्ट्रीयता के विकास का एक महत्वपूर्ण रूप दृष्टिगोचर होता है। मौर्य काल से आलोच्य काल तक के विभिन्न ऐतिहासिक युगों की राष्ट्रीय भावना का चित्रण ऐतिहासिक काव्यों में हुआ है।

(च) प्रेमोपाख्यान :

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में केवल दो काव्य ही ऐतिहासिक प्रेम-कथा पर आधारित हैं, गुरुभक्तसिंह कृत 'नूरजहां' तथा 'विक्रमादित्य'। 'नूरजहां' में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर नूरजहां तथा सलीम की प्रेम कथा का विकास हुआ है। नूरजहां के संघर्षपूर्ण जीवन के चित्रण के पश्चात् अन्त में सलीम के प्रेम की विजय के साथ काव्य की समाप्ति होती है[१]। 'विक्रमादित्य' ध्रुवदेवी तथा विक्रमादित्य के प्रेम की कहानी है। काव्य का प्रारम्भ ही ध्रुवदेवी के द्वारा चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के प्रति प्रेम निवेदन से हुआ है। ध्रुवदेवी केवल अपने प्रेम के ही कारण चन्द्रगुप्त को नहीं अपनाना चाहती वरन् राज्य का हित चन्द्रगुप्त के सम्राट् बनने में ही निहित है अत: वह चन्द्रगुप्त को पति के रूप में पाने के साथ साथ सम्राट् के रूप में भी देखना चाहती है। उसका प्रेम देश भक्ति तथा त्याग की भावना से पूर्ण होने के कारण रोमांटिक प्रेम कथाओं की भांति नहीं है। प्रेम मदान्धता में वह अपना

१- नूरजहां की कथा के सम्बन्ध में इस शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में विचार किया गया है।

कर्तव्य विस्मृत नहीं करती। वह सदैव चन्द्रगुप्त को राज्य तथा देश की अवस्था से अवगत कराती रहती है। कापालिक के यहाँ भी चन्द्रगुप्त से अकस्मात् मिलने पर वह राज्य की दुरावस्था की ओर संकेत करना नहीं भूलती[1]। ध्रुवदेवी के इस प्रेमिका रूप में देशभक्ति की यह उत्कट भावना उसे मात्र प्रेमिका नहीं रहने देती। फलतः 'विक्रमादित्य' में देश प्रेम का स्वर भी सुदृढ़ रूप में मुखरित हुआ है[1]। इन दो प्रेम-कथाओं के अतिरिक्त खड़ी बोली में ऐतिहासिक आधारपर कोई अन्य प्रेमोपाख्यान काव्यबद्ध नहीं हुआ। जायसी ने 'पदमावत' में पद्मिनी तथा रत्नसेन की कथा को प्रेम कथा के रूप में चित्रित किया है। खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में वह कथा प्रेम कथा के उस रूप में किसी भी कवि ने नहीं अपनाई। इन काव्यों में पद्मिनी तथा रत्नसेन की कहानी का केवल वही अंश कवि प्रेरणा का विषय बना है जिस अंश से राजपूत नारियों के जीवनगत गौरव की विजय तथा राजपूतों की वीरता के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है। लाला भगवान दीन, आनन्दी प्रसाद तथा जयशंकर प्रसाद आदि कवियों ने ऐतिहासिक आधार लेकर अनेक आख्यानक कविताओं की रचना की है किन्तु इन कविताओं में एक भी प्रसंग ऐसा उपलब्ध नहीं हुआ है जिसमें किसी प्रेम कथा का वर्णन हुआ हो। ऐतिहासिक आख्यानक काव्यों में नायक नायिकाओं के संयोग-वियोग का चित्रण प्रसंग-वश अवश्य हुआ है परन्तु मात्र शृंगार के चित्रण का ध्येय किसी भी काव्य में लक्षित नहीं होता। प्रेम-कथाओं की ओर दृष्टि न जाने के दो कारण सम्भव हो सकते हैं -- एक यह कि सामाजिक तथा राजनैतिक संघर्षपूर्ण अवस्था एवं जातीय स्वाभिमान तथा स्वाधीन चेतना की जागरूकता के इस युग में, जब कि समाज जीवन तथा मृत्यु के संघर्ष की स्थिति से जूझ रहा हो, समाज की वाणी का प्रतिनिधित्व करने वाला कवि प्रेम और शृंगार

१- साम्राज्य वही क्या देखोगे आर्यों का होते नाश आज ?
अपना गौरव मिट्टी में मिल जाने दोगे क्या, वीर ! त्रास ?
हो गई अवस्था शोचनीय निर्बल सेनानायक पाकर
कठपुतली राजा होने से रिपुओं ने पुनः उठाया सिर
उस बंगदेश के शरद भूप विद्रोही हो स्वाधीन बने
हो गये विदेशी पुनः आज जो दबे हुए थे दीन बने।

के गीत कैसे गाता ? दूसरे रीतिकाल की अति-श्रृंगारिकता के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया का होना भी उल्लेखनीय है। कवि ने अतीत के उन आख्यानों को ही स्वर दिया जो राष्ट्र निर्माण तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रेरक हैं।[1] निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के कवि द्वारा ऐतिहासिक प्रेम-कथा सम्बन्धी सन्दर्भ अपनाने की दृष्टि का अभाव सा ही है।

इस प्रकार इतिहास के वर्णन में कवि के विभिन्न दृष्टिकोण रहे हैं। अतीत गौरव का दर्शन ऐतिहासिक काव्यों की एक सामान्य विशेषता है। आदर्श निरूपण के द्वारा महापुरुषों के जीवनादर्श प्रस्तुत किए गए हैं। द्विवेदी युग के अधिकांश काव्यों में यद्यपि आदर्श निरूपण का दृष्टिकोण उपदेशात्मकता से आच्छन्न है तथापि शूरवीरों के जीवन के जिन आदर्शों का वर्णन इस काल के ऐतिहासिक काव्यों में हुआ है, उपदेशात्मकता से पूर्ण होते हुए भी वे समसामयिक जीवन को सबल बनाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में आलोच्यकालीन राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति बहुत स्पष्ट है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सन्दर्भों के द्वारा जिन विभिन्न दृष्टिकोणों का प्रतिपादन हुआ है आलोच्यकालीन पृष्ठभूमि को देखते हुए वे महत्वपूर्ण हैं।

पंचम अध्याय

ऐतिहासिक काव्य-चरित्र-सौंदर्य

तथा

उसके विविध पार्श्व

(क) चरित्र सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा चरित्र के प्रकार

ऐतिहासिक सन्दर्भों के अन्तर्गत प्रबन्ध काव्य तथा खंडकाव्य शैलियों में चरित्र-चित्रण विशेष महत्व की वस्तु है। इस विधा में कथावस्तु की सम्पूर्ण घटनाएं, क्रिया-कलाप तथा संघर्ष आदि पात्रों से सम्बद्ध होकर ही काव्य का रूप ग्रहण करते हैं। कवि के आदर्श उसकी कल्पनाएं पात्रों के द्वारा मूर्त रूप धारण करती हैं। अत: किस दृष्टि से कवि पात्रों का निर्माण करता है यह देखना भी आवश्यक हो जाता है। प्राचीन काल से ही विशिष्ट व्यक्तित्वों से प्रभावित होकर कवि गण उनके व्यक्तित्व का सम्यक् रूप प्रस्तुत करने के लिए प्रबन्ध काव्य की रचनाएं करते आए हैं।

" भारतीय काव्य शास्त्र की प्रतिष्ठित परम्परा के अनुसार तो काव्य के रूप में ऐसे ही व्यक्ति के प्रति कवि श्रद्धा प्रवाहित होनी चाहिए जो मानवोत्तर हों, दूसरे अर्थों में वे अवतार अथवा देव-पुरुष या दिव्य जन हों....... मध्ययुगीन विचारों ने आभिजात्य की यह लक्ष्मण रेखा खींची थी, पर अब कवि उसका उल्लंघन करने लगे।.... जो व्यक्तित्व अपनी दूरस्थता में प्रागैतिहासिक अथवा पौराणिक हो गए हैं वे ही महान् और उच्च आदर्श हैं तथा 'प्राकृत-जन' जनमन को प्रेरणा भी नहीं दे सकते यह भी एक शास्त्रीयगतानुगतिकता ही थी। अत: इसका स्वत: उच्छेदन हुआ और उत्तर भावी ऐतिहासिक युगों के उच्च व्यक्तित्व भी जीवन की विविध दृष्टियों से प्रेरणादायक हुए।"[1]

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में भी ऐसे महामहिम पुरुषों की जीवन गाथाएं प्रस्तुत हुईं जो लौकिक दृष्टि से विशिष्ट व्यक्तित्व के अधिकारी थे तथा जिन्होंने जीवन के किसी न किसी आदर्श की स्थापना की थी।

१- हिन्दी कविता में युगान्तर, प्रो० सुधीन्द्र, पृ० १८१

चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में सामान्यत: दो कोटियां निर्धारित की गई हैं- आदर्शवादी तथा यथार्थवादी । जिन चरित्रों के सम्बन्ध में परम्परागत मान्यताएं स्थापित हो गई हैं उनके चित्रण में आदर्श का अधिक आग्रह रहता है किन्तु जो परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए जीवन-निर्माण करते हैं उनके चित्रण में यथार्थ के रंगों का मिश्रण अधिक गहरे रूप में किया जाता है । आलोच्य-कालीन कवि ने ऐतिहासिक वीर पुरुषों के चित्रण में आदर्श और यथार्थ का आकर्षक मिश्रण करके उनके जीवन के उत्थान और पतन, उत्कर्ष और अपकर्ष का प्रभाव पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में केवल वर्धमान ही ऐसे पात्र हैं जो आदि से अन्त तक पूर्ण आदर्शवादी चरित्रों की कोटि में आते हैं । सिद्धार्थ यद्यपि 'ईश्वर' के रूप में चित्रित किए गए हैं तथापि उनके वैवाहिक जीवन में लौकिक प्रेम के गहरे रंगों की रेखाएं खींच कर कवि ने यथार्थ का स्पर्श कराने का पूर्ण प्रयत्न किया है । आज के वैज्ञानिक युग में आदर्श और यथार्थ की परम्परागत मान्यता स्वीकार नहीं की जा सकती । मानव के प्रति देव और दानव की कल्पना -मूलक दृष्टि के विरुद्ध एक जीवन्त तथा सत्य से पूर्ण दृष्टि की स्थापना हुई है । मनुष्य अपने 'अच्छे' और 'बुरे' रूप में ही स्वाभाविक है अन्यथा वह केवल कल्पना की वस्तु है । सम्भवत: आधुनिक काव्य-साहित्य पर स्वच्छन्दतावादी तथा क्रान्तिकारी विचार धाराओं के परिणाम-स्वरूप ही कवियों ने यह दृष्टि अपनाई है[१]। आधुनिक युग के इस आग्रह ने ही परम्परागत मान्यता के विरुद्ध कृष्ण के देवत्व को भी महापुरुषत्व की पंक्ति में ला खड़ा किया है[२]। ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र चित्रण में आलोच्यकालीन कवि ने अधिकांशत: आदर्श और यथार्थ के इसी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया है ।

१- हमें स्वच्छन्दतावादी और क्रान्तिवादी दोनों मनोवृत्तियों का वर्तमान कविता में प्रभाव दिखाई पड़ता है... कवियों को गतिशील जीवन में विश्वास है ।

-डा० केसरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, पृ० २१२

२- आजकल के महाकाव्यों के नायक भी लोक प्रतिष्ठा प्राप्त महापुरुष ही हैं किन्तु उनका अतिमानवीय रूप विलीन हो गया है । इन पर वर्तमान बुद्धिवाद का अधिक प्रभाव है ।

-गुलाबराय- काव्य के रूप , पृ० ११०

(ख) आदिकालीन ऐतिहासिक काव्य (वीरकाव्य) में चरित्र-चित्रण की दृष्टि:-

आधुनिक युग के खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य और हिन्दी साहित्य की आदि कालीन ऐतिहासिक वीर गाथाओं में चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विभिन्नता बहुत स्पष्ट रूप में लक्षित होती है ।वीरगाथाओं के अधिकांश कथा भाग में नायक की विरुदावली को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है । नायक के वीरत्व का प्रदर्शन,आदर्श का गान, गुण-कथन तथा उसके विलासी जीवन का आकर्षक चित्रण इतनी बहुलता से किया गया है कि सम्पूर्ण कथानक मात्र नायक से ही आच्छादित हो उठता है अन्य पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास ही नहीं हो पाता और नायक के जीवन के भी अन्य चित्र उभर ही नहीं पाते । `पृथ्वीराज रासो` के उद्धरण से इस कथन की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाएगी । रासोकार ने जिन घटनाओं का अधिक विस्तार सहित वर्णन किया है वे निम्न लिखित हैं --

(१) पृथ्वीराज के शौर्य
(२) पृथ्वीराज के विवाह
(३) पृथ्वीराज के आखेट
(४) पृथ्वीराज के विलास[१]

घटना-विस्तार के इन चार स्थलों को देखने से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक रूप में पृथ्वीराज की गुणगाथा,शौर्य और वीरता का ही प्रदर्शन कवि ने किया है । किन्तु खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में और आदिकालीन वीरगाथाओं में मूल भूत अन्तर है । आलोच्य कालीन कवि ने नायक के गुणकथन अथवा वीरत्व प्रदर्शन के साथ-साथ उसके जीवन के अन्य विविध पार्श्वों का चित्रण भी किया है । सिद्धार्थ,महाराणा प्रताप,विक्रमादित्य ,महात्मा गांधी, तथा नायिका-प्रधान काव्यों में पद्मिनी,झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ,आदि चरित्रों के चित्रण में जीवन की यह विविधता स्पष्ट रूप में लक्षित होती है ।

१- डा० रामकुमार वर्मा,हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १५७,१५८

(ग) खड़ी बोली के ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य और चरित्र-चित्रण :

प्रबन्ध-काव्य के दो रूप माने जाते हैं - खंडकाव्य और महाकाव्य। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में दोनों प्रकार की रचनाएं पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुई हैं। दोनों रूपों में चरित्र-चित्रण की भिन्न दृष्टि होती है। खण्ड काव्य में चरित्र-चित्रण पार्श्व रूप से किया जाता है। उसका क्षेत्र सीमित होता है अतः नायक का जीवन भी सीमित रूप में ही सन्मुख आ पाता है। कवि की दृष्टि नायक के जीवन के किसी एक पक्ष के चित्रण में केन्द्रित रहती है। कहीं केवल वीरत्व का प्रतिपादन होता है, कहीं जीवन के किसी आदर्श की स्थापना होती है और कहीं जीवन की करुणा ही विशेष प्रभावपूर्ण रूप में चित्रित की जाती है। `रंग में भंग`, `मौर्य विजय`,`सती पद्मिनी`,`आत्मार्पण`,`वीर हमीर``चित्तौड़ की चिता`आदि खंडकाव्यों में राजपूत वीरों तथा वीरांगनाओं के जीवन के इसी एक पक्षीय चारित्रिक उत्कर्ष का चित्रण हुआ है। दूसरी ओर महाकाव्य में जीवन की समग्रता प्रतिपादित होती है और विशिष्ट चरित्रों का व्यक्तित्व महाकाव्य ही की दिशा में विशेष सुविधा रहती है। इसके विस्तृत रंगमंच पर नायक अनेक रूपों में प्रकट होता है। मानव जीवन के कोमल और कठोर स्पर्शों का, विविध परिस्थितियों में जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष का चित्र विस्तृत परिधि में नायक द्वारा प्रस्तुत होता है।

ऐतिहासिक काव्यों में नायक के चरित्र की रूपरेखा कवि को इतिहास से प्राप्त होती है कल्पना के रंगों द्वारा वह उन इतिहाससम्मत पात्रों के चारित्रिक उत्कर्ष को गहरा करने का कार्य करता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऐतिहासिक सत्य का पालन न करके कवि अपने उद्देश्य के अनुकूल अथवा किसी विशिष्ट आदर्श के निरूपण हेतु पात्रों को प्रस्तुत करता है। गुरुभक्तसिंह के `विक्रमादित्य` में चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में यही दृष्टि उदात्त रही है। वस्तुतः ऐतिहासिक पात्रों के चित्रण में कलाकार इतनी ही छूट ले सकता है जिससे चरित्र सम्बन्धी ऐतिहासिक सत्य की नितान्त अवहेलना न हो[1]। ऐतिहासिक काव्यों में `सप्तगृह`

१- काव्य में इतिहास तथा कल्पना के सम्बन्ध में इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में विचार किया गया है।

तथा 'यशोधरा' एक मात्र ऐसे काव्य हैं जिनमें इतिहास को केवल पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण करके कल्पना के आश्रय से चरित्र-चित्रण किया गया है किन्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सत्य भी कल्पना में भी मुखरित हुआ है। खड़ीबोली के ऐतिहासिक काव्यों के नायकों तथा अन्य पात्रों पर विचार करते समय उनकी विशेषताओं तथा यथार्थवादी और आदर्शवादी दृष्टिकोण की समता पर निम्न-प्रकार से विवेचना की जा सकती है :-

(१) ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों के नायक पात्र

'सिद्धार्थ' तथा 'यशोधरा' में — सिद्धार्थ

अनूप शर्मा के 'सिद्धार्थ' काव्य में सिद्धार्थ का चरित्र जन्म से लेकर निर्वाण तक की परिधि में विकसित हुआ है। 'यशोधरा' में सिद्धार्थ की वैराग्य-वृत्ति का ही उल्लेख हुआ है जो यशोधरा के चारित्रिक उत्कर्ष की पृष्ठभूमि के रूप में देखी जा सकती है। भगवान् सिद्धार्थ बौद्धधर्म के प्रवर्तक हैं। बौद्ध धर्मावलम्बियों की धार्मिक आस्थाओं को ध्यान में रखते हुए कवि ने भगवान् बुद्ध के अवतार रूप की ही प्रतिष्ठा की है। काव्य में अनेक स्थलों पर बुद्ध के ईश्वरत्व की घोषणा हुई है।[1] 'महाप्रहारक, भुवनरक्षक' 'विश्वतारक' ने जन्म लिया है। शैशव की क्रीड़ाओं का वर्णन करने से पूर्व भी कवि ने यही संकेत किया है। समस्त आदि अनंतता प्रतिभा तजकर, उच्च उपाधिविहीन होकर भुवन मोहन जननी क्रोड़ में क्रीड़ा कर रहे हैं। सिद्धार्थ

१- सिद्धार्थ में कवि ने गौतम बुद्ध के मानवी कृत्यों को ईश्वरीय कृत्य का रूप दिया है। कवि के लिए गौतम बुद्ध मनुष्य रूप में ईश्वर हैं।

-डा० केसरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, पृ०२२४

२- तज समस्त अनादि-अनन्तता,
अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन मोहन बाल-स्वरूप से
प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोड़ में। (सर्ग तीन, उन्मेष)

सम्पन्न युवक, दयावान वीर युवराज, जन्मजात चिन्तक, प्रेमी पति, विरक्त आत्मा तथा अन्त में ज्ञान प्राप्त विशुद्ध आत्मा के रूप में चित्रित किए गए हैं। सिद्धार्थ का जीवन संघर्षों के घात-प्रतिघातों से पूर्ण है।[१]

~~सिद्धार्थ~~ आहत हंस के उद्धार और शस्त्र-नैपुण्य की परीक्षा द्वारा सिद्धार्थ के चरित्र के स्वाभाविक गुण दया तथा करुणा की अभिव्यक्ति हुई है। वृक्ष की डाल पर बैठे हुए पक्षी को शर द्वारा वेध कर वह अपनी शस्त्र निपुणता दिखलाना नहीं चाहते। इसी प्रकार देवदत्त द्वारा आहत किए गए हंस को वे दौड़ कर गोद में उठा कर गले से लगा लेते हैं —

कुमार दौड़े सुन हंस की व्यथा,
उगा दया भाव दया निधान के
निकाल नाराच तुरन्त पक्ष से,
लगा गले से पुचकारने लगे।[२]

सिद्धार्थ जन्मजात चिन्तक हैं खाते-पीते, शयन करते, मोद मनाते हुए, वैभवपूर्ण प्रासादों में सिद्धार्थ कुमार प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं किन्तु अनायास ही कभी कभी वे चिन्ता से पूर्ण हो उठते हैं। सांसारिकता के प्रति उनका हृदय विरक्ति की भावना से भर उठता है। वे जीवन और जगत के सम्बन्ध पर विचार करते हुए चिन्ता निमग्न हो जाते हैं। उनकी विरक्ति को आसक्ति में परिवर्तित करने का समाधान नारी के प्रणय और सौन्दर्य में खोज गया। यशोधरा रूप और गुणों की साक्षात् अवतार, उन्हें पत्नी रूप में प्राप्त हुई। `सिद्धार्थ` के

१- भगवान बुद्ध के चरित्र में यह विशेषता है कि वह उत्तरोत्तर उन्नत होता चला गया है। हम उनके चरित्र में मनुष्य की आत्मा का पूर्ण विकास पाते हैं। किस प्रकार एक विशुद्ध आत्मा संसार के घातों से प्रतिघात पाती हुई निःश्रेयस की ओर बढ़ती है तथा किस प्रकार उसको सफलता प्राप्त होती है, यही बुद्ध चरित्र की विशेषता है।

— ~~लेखक~~ `सिद्धार्थ` दो शब्द :

२- सर्ग ३

सिद्धार्थ का दाम्पत्य जीवन सम्पूर्ण सुखों से परिपूर्ण है । यशोधरा के लिए सिद्धार्थ सम्पूर्ण गुण सम्पन्न स्नेही पति है । वे स्वीकार करते हैं कि यशोधरा को पत्नी रूप में प्राप्त करके वे धन्य हो गए हैं । `पुरातन प्रीति` की कथा कह कर वे जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध जोड़ते हैं । यशोधरा के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति में कवि ने सिद्धार्थ को सौन्दर्य प्रिय प्रेमी पति के रूप में चित्रित किया है ।इस मानवीय स्पर्श से अनूप के सिद्धार्थ का चरित्र आकर्षक हो उठा है। चकोर के लिए चन्द्रमा का जो सुख है वही सिद्धार्थ अनुभव करते हैं --

हृदय-वांछित प्राप्त हुआ मुझे
मिल गई मुझको हृदयेश्वरी,
तुम मुझे सुखदा इस भांति हो
जिस प्रकार शशांक चकोर को ।[1]

किन्तु आसक्त-पति से अधिक सिद्धार्थ विरक्त-चिन्तक हैं । सम्पूर्ण रागरंग भी उन्हें आकर्षित नहीं कर पाते ।जरा, मरण,व्याधि देख कर वे भव के बन्धनों से मुक्ति प्राप्ति के हेतु व्याकुल हो उठते हैं । सकल जग के प्राणियों को घोर सन्ताप से घिरे हुए देख कर वे विश्व का ताप खोने को कटिबद्ध हो उठते हैं । उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान है अत: अब वे जीवन का मार्ग निर्धारित कर लेते हैं ---

~~हृदय-वांछित प्राप्त हुआ मुझे~~

" आया हूं मैं विपत्ति हरने विश्व का ताप खोने
देखूं कैसे विफल बनती प्रार्थना प्राणियों की
शर्वाणी जो जगत-सुखदा मंगला मोदिनी है
कल्याणी है,अमर जननी है, न कैसे सुनेगी ?"[2]

सिद्धार्थ के इस जन कल्याणी रूप की अभिव्यक्ति 'अभिनिवेदन' सर्ग १२ में बहुत स्पष्ट रूप में हुई है ।

१- सर्ग, छः

२- सर्ग बारह

महाभिनिष्क्रमण से पूर्व यशोधरा से प्रेम की शाश्वतता का वर्णन करते हुए सिद्धार्थ विचारक के रूप में चित्रित किए गए हैं । पति-पत्नी के प्रेम की आध्यात्मिकता तथा शाश्वतता में विश्वास करने वाले सिद्धार्थ कुमार भयभीत यशोधरा के हृदय में उत्पन्न प्रेम के प्रति अविश्वास के भाव को नष्ट करते हुए कहते हैं —

विषय आगम हो यदि स्वप्न का
  अमर भी यदि चंचल हो उठे,
यदि मिटे जग-मुक्ति विभावना
  तदपि भिन्न न हो सकते कभी[१] ।

प्रेम के प्रति इस दृढ़ता का प्रतिपादन तथा दाम्पत्य जीवन के प्रति आस्था करने वाले भावी भगवान बुद्ध लोक प्रतिष्ठित महापुरुषों की श्रेणी में खड़े दिखलाई पड़ते हैं । सकल जग के कष्ट निवारण हेतु तथा जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति हेतु सिद्धार्थ गृहत्याग करके साधना मार्ग की ओर चले जाते हैं घोर तपस्या के उपरान्त किसी फल की प्राप्ति न होने पर भी बोधि वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ साधना-निमग्न हो गए । समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण विजय प्राप्त करके एक दिन उन्हें ज्ञान के आलोक में महासंबोध की प्राप्ति हुई । सिद्धार्थ भगवान् बुद्ध बन गए[२] । ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् जन कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर हुए । इस प्रकार 'सिद्धार्थ' में भगवान् बुद्ध का कवि ने परम्परागत चित्रण किया है । गृह-त्याग से पूर्व का चरित्र-चित्रण मानवीय स्पर्श की दृष्टि के कारण यथार्थ के बहुत समीप है । किन्तु निर्वाण के समय प्रस्तुत वातावरण के द्वारा

१- सर्ग , १२

२- तुरन्तही आश्रय-ज्ञान हो गया
      लखी सभी संस्थिति लोक-लोक की
   अखंड ब्रह्मांड समेत मह की
      सुदृश्य मस्तामलक -स्वरूप था ।

– सर्ग चतुर्दश

भगवान के अवतारी रूप की पुन: स्थापना हुई । प्रभु निज धाम चल दिए। समस्त भूमण्डल प्रकाशमान हो उठा, लौकिक कीर्ति को त्याग कर प्रभु अपने निज रूप में स्थित हो गए---

> अमरता उनके प्रतिश्वास से
>
> अनुप्रवेश तथा करने लगी।
>
> अमर कीर्ति बिछाय नृ लोक में
>
> चल दिये प्रभु यों निज धाम को।[१]

खड़ी बोली में 'सिद्धार्थ' भी ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें भगवान बुद्ध के विशद चरित्र चित्रण का प्रयास किया गया । कवि की सौन्दर्य प्रिय दृष्टि ने शृंगार की अबाध धारा में भी भगवान बुद्ध के शान्त तथा गरिमापूर्ण व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण स्थापना की है ।

'हल्दीघाटी' तथा 'प्रणवीर प्रताप' काव्य में — महाराणा प्रताप :-

आधुनिक खड़ी बोली में महाराणा प्रताप 'हल्दीघाटी' तथा 'प्रणवीर प्रताप' में नायक के रूप में चित्रित किए गए हैं । महाराणा देशभक्त, स्वाधीनता, प्रेमी, स्वाभिमानी तथा शौर्य एवं वीरता के प्रतीक के रूप में स्मरण किए जाते हैं। 'प्रणवीर प्रताप' में गोकुल चन्द शर्मा ने इन सभी गुणों का उल्लेख किया है किन्तु चरित्र-चित्रण में प्रताप के वीरत्व की ओर विशेष रूप से दृष्टि केन्द्रित रही है । 'हल्दी घाटी' के कवि ने महाराणा प्रताप को उनके सम्पूर्ण गुणों के साथ प्रस्तुत करते हुए मानवीय दुर्बलताओं के स्पर्श से उनके शौर्य पूर्ण आदर्श चरित्र को यथार्थ की दृष्टि से देखने का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया है । आखेट के प्रसंग में महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व कुछ शिथिल है । शक्ति सिंह से झगड़ते हुए महाराणा की वीरता के चित्रण में श्यामनारायण पाण्डेय ने वस्तुत: आवेश से काम लिया है । यह सत्य है कि महाराणा का स्वाभिमान इतना

१- सर्ग अष्टम,

ऊँचा है कि वह किसी के सम्मुख पराजित होकर झुक नहीं सकता । किन्तु शक्ति के मद से उन्मत्त सिंह के व्यवहार की प्रतिक्रिया में महाराणा प्रताप का आवेश में आकर भाई के शोणित से प्यास बुझाने को आकुल हो जाना[1] प्रताप की गौरव गरिमा के उपयुक्त प्रतीत नहीं होता । शक्तिसिंह के क्रोधी व्यक्तित्व के लिए भले ही उसका उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार उपयुक्त है । महाराणा प्रताप निर्भीक हैं (मानसिंह की शक्ति से भयभीत होकर सत्य बात कहने में चूकते नहीं[2] । राजपूतों का गौरव इसी में है और भावी विपत्ति की चिन्ता न करते हुए महाराणा प्रताप ने उस गौरव की रक्षा की है। राजभवन का सुख छोड़ कर महाराणा स्वाधीनता की रक्षा के लिए आत्म व्रत धारण करते हैं। महाराणा के त्यागपूर्ण जीवन की तपस्या आरम्भ हो गई --

पद पर जग-वैभव लोट रहा
वह राज-भोग सुख-साज शपथ।
जगमग जगमग मणि-रत्न-जटित
अब मैं मुझको यह ताज शपथ ।।
जब तक स्वतंत्र यह देश नहीं
है कट सकता नख केश नहीं ।
मरने कटने का क्लेश नहीं
कम हो सकता आवेश नहीं ।[3]

१- पीने का है यही समय इच्छा
भर शोणित पी लो तुम ।
बढ़ो बढ़ो अब वक्षस्थल में
घुस कर विजय अमर हो तुम --- सर्ग प्रथम

२-अरे तुर्क बकवाद करो मत
खाना हो तो खाओ
या बचना का ही शीतल-जल
पीना हो तो जाओ । -- सर्ग पंचम

३- सर्ग सप्तम

युद्ध की जलती हुई लपटों में कूदने से पूर्व महाराणा आत्म बलिदान का प्रण करते हैं। जीवनाहुति की प्रतिज्ञा कर लेने पर उन्हें न समर का भय है और न ही पराजय की चिन्ता है। महाराणा का व्यक्तित्व अद्भुत आत्मविश्वास से पूर्ण है इस ज्योति के प्रकाश में ही वे निरन्तर निरसंग शत्रु-वाहिनी से टकराने के लिए प्रस्तुत हैं[1]- परन्तु निर्भयता, त्याग, आत्मविश्वास, वीरता तथा दृढ़ता से पूर्ण महाराणा के लौह कवच के नीचे स्पन्दनशील पितृ हृदय भी है।

तो भी उस वीर-व्रती का
था अचल हिमालय -सा मन
पर हिम-सा पिघल गया वह
सुन कर कन्या का क्रन्दन

आंसू की पावन गंगा
आंखों से फर फर निकली
नयनों के पथ से पीड़ा
सरिता-सी बह कर निकली[2]।

पथभ्रष्ट भाई के प्रति स्नेहसिक्त ममतापूर्ण उद्गार भी हैं[3]। रात्रि और दिवस के सहचर चेतक के वियोग में अश्रुपूर्ण शोक विह्वल सिसकियां हैं[4]। आदर्शवादिता की लौह चट्टान में स्थित इन कोमल दरारों में से झांकता हुआ प्रताप का यह मानवोचित दुर्बल पक्ष बहुत आकर्षक प्रतीत होता है।

राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी नीति का व्यवहार में ले आना राजनीतिक पटुता के रूप में ग्रहण किया जाता है किन्तु महाराणा प्रताप की व्यक्तिगत नीति आदर्श के धरातल पर आधारित है। साम दाम दण्ड भेद के जाल में उनका आदर्शपूर्ण व्यक्तित्व न उलझता है, न ही उलझने की

१- यह तो जननी की ममता है
 जननी भी सिर पर हाथ न दे।
 मुझको इसकी परवाह नहीं
 चाहे कोई भी साथ न दे।- सर्ग सप्तम

२- सर्ग पंचदश   ४- सर्ग तेरह पृ० १५१,१५२

३- सर्ग तेरह

शिक्षा देता है। मानसिंह भीलों द्वारा बन्दी बना लिए गए। उद्दण्डता और देशद्रोह का दण्ड देने के लिए इससे अधिक उपयुक्त अवसर प्रताप के लिए दूसरा नहीं था। किन्तु महाराणा का शौर्यपूर्ण उच्च व्यक्तित्व हुंकार उठा। वीर राजपूत के इतिहास में धोखा देना उसके सम्मान के विरुद्ध है। उसके वीरत्व के आदर्श पर कलंक है। राजपूत युद्ध के मैदान में शत्रु से भेंट करते हैं, छिपकर नहीं-। आदर्श की उच्चता के कारण ही महाराणा प्रताप सम्पूर्ण राजपूताने के इतिहास में अलग खड़े हुए दिखलाई देते हैं[1] उनका कठोर प्रतिद्वन्द्वी भी उनके प्रखर व्यक्तित्व के सम्मुख नत है। उसकी दृष्टि में प्रताप साकार प्रताप है। उस प्रताप के सम्मान में बादशाह अकबर कह उठता है--

जिसका यह जलता अभिशाप
जिसका इतना भैरव ताप
कितना उसमें भरा प्रताप
अरे! अरे! साकार-प्रताप[2]

जीवनगत आदर्शों से प्रभावित होकर महाराणा प्रताप के प्रति 'महाराणा का महत्व' में भी शत्रु द्वारा इस प्रकार की प्रशंसा हुई है। वस्तुत: स्वतंत्रता के लिए आत्मत्याग और आदर्शपूर्ण वीरता का ऐसा उदाहरण असम्भव तो नहीं किन्तु भारतीय इतिहास में दुर्लभ अवश्य है। महाराणा के वीरतापूर्ण चरित्र चित्रण में कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने कहीं-कहीं आवेश से भी कार्य लिया है किन्तु जिस व्यापक भावभूमि पर महाराणा प्रताप के चरित्र की ओजपूर्ण झांकी 'हल्दीघाटी' में अंकित हुई है वह महत्वपूर्ण है।

१- प्रात: स्मरणीय हिन्दू पति वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप सिंह का नाम राजपूताने के इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण और गौरवास्पद है। राजपूताने के इतिहास को इतना उज्ज्वल और गौरवमय बनाने का अधिक श्रेय उसी को है।

-रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, जि३ पृ० ८८४

२- सर्ग तृतीय

आर्यावर्त काव्य में — चन्दबरदाई :-

हिन्दी के आदि महाकाव्य `पृथ्वीराज रासो` के निर्माता महाकवि चन्दबरदाई को नायक रूप में प्रस्तुत करने वाला उसी शैली में `आर्यावर्त` प्रथम ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य है । मोहनलाल महतो वियोगी की राष्ट्रीय भावना ने महाकवि को भी राष्ट्रवीर तथा महान् योद्धा के रूप में देखा है। युद्ध स्थलों में उपस्थित रह कर युद्ध की भीषणताओं का सजीव वर्णन करने वाला कवि स्वयं भी एक महान देश प्रेमी योद्धा अवश्य ही होगा । यही सम्भावना चन्दबरदायी के चरित्र चित्रण का आधार है । पराजित वीर सैनिक से लेकर प्राणोत्सर्ग करने वाले आदर्श मित्र के परिवेश में महाकवि का चरित्र चित्रण हुआ है । श्री समरसी तथा कवि चन्द के मध्य हुए प्रथम सर्ग के वार्तालाप में, पराजय के कष्ट से पीड़ित चन्द ,देश प्रेम से पूर्ण एक योद्धा के रूप दिखलाई पड़ते हैं-

`एक बार खोजूं चल कर महाराज को
वीर श्रेष्ठ कान्ह को महान सेनापति को
एक भी मिला तो फिर सेना का संगठन कर
खल अरिदल को खदेड़ूंगा स्वदेश से[1] ।

चन्दबरदाई वीर सैनिक है । पृथ्वीराज और मोहम्मद गोरी के मध्य हुए घोर संग्राम में उसने वीरता का परिचय दिया था समरसिंह के कथन द्वारा इस सत्य की पुष्टि कवि ने की है ---

`कवि , क्या नहीं थे तुम युद्ध में स्वयम् भी
आर्यपति पृथ्वीराज वीर की कमुक में ?
तुमने नहीं क्या वीर , भगदड़ मचायी थी
शत्रु के सिपाहियों में प्रबल प्रहारों से ?[2]

१- सर्ग प्रथम
2- वही "

कौन था समर्थ जो खड़ा हो एक क्षण भी
सम्मुख तुम्हारे घोर वज्राघात बाणों के ?[1]

चन्दबरदाई मुख्य रूप से कवि है किन्तु काव्य में उनके कवि रूप को विशेष महत्व नहीं दिया गया है । पंचम सर्ग में एक स्थल पर संकेत अवश्य किया है। महाकवि चन्दबरदाई सैनिक संगठन करके बन्दिनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराना चाहते हैं । हताश होकर चुपचाप नहीं बैठ सकते हैं । अपने इस प्रयत्न के मैं मृत्यु का भी आलिंगन करने से भयभीत नहीं होंगे । किन्तु उन्हें अपने महाकाव्य की पूर्ति की चिन्ता है । पुत्र जल्हन द्वारा अधूरे काव्य को पूर्ण करने का वचन देने पर वे निश्चिंत होकर अपने स्वामी की खोज में तथा जननी जन्म भूमि की सेवा में संलग्न हो जाते हैं[2]। इस प्रसंग में कवि ने बड़े नाटकीय ढंग से चन्दबरदाई के कवि रूप से परिचित कराया है ।कवि, वीर सैनिक और देश भक्त के अतिरिक्त चन्दबरदाई आदर्श मित्र है । महाराज पृथ्वीराज के समकालीन कवि होने के साथ ही चन्द महाराज के अभिन्न मित्र भी थे । सम्राट् पृथ्वीराज शत्रु के यहां बन्दी हैं । आर्य कभी बन्दी नहीं होते ।`जय` या `मरण` सिपाही का यही धर्म है । सम्राट् पृथ्वीराज आर्य पहले हैं सम्राट पीछे, अत: चन्द किसी भांति`आर्य` को मुक्त करना चाहते हैं ।

मुक्त मैं करूंगा महाराज पृथ्वीराज को,
मुक्त कारागार से या मुक्त भव पाश से।[3]

पृथ्वीराज की मुक्ति के प्रयत्न में चन्दबरदाई की नीति निपुणता तथा बौद्धिक कौशल का परिचय प्राप्त होता है । नृशंस मोहम्मद गौरी का विश्वास पात्र बन कर युक्ति से कार्य करना सहज काम नहीं था किन्तु देश प्रेम,मित्र प्रेम तथा

१- सर्ग प्रथम
२-`पुत्र जल्क,चिंता मिटी, भार-मुक्त हो गया।
लेखनी संभालो तुम, लूंगा तलवार मैं
भारती से आज मेरी अंतिम विदाई है । --- सर्ग पंचम
३- सर्ग दशम

राष्ट्र प्रेम की उमंग से पूर्ण कवि चन्द को अपने महान् उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई । राष्ट्र हित की बलिवेदी पर प्राणों की भेंट चढ़ा कर वह भारतीय वीर के रूप में अमर हो गए-

—— कवि ने
बाहर निकाले दो कृपाण, फेंक कम्बल ।
चमक उठीं दो शाणदार्थ दाण भर में,
नीचे गिरे दोनों वीर कट कर साथ ही ।[१]

एक महाकवि को नायक बना कर राष्ट्रवीर के रूप में प्रस्तुत करने का यह प्रयत्न श्लाघनीय तथा महत्वपूर्ण है ।

विक्रमादित्य काव्य में — चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य :-

गुरुभक्तसिंह के 'विक्रमादित्य' का नायक 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' ऐतिहासिक पात्र है । वह निर्भीक, पराक्रमी तथा कुशल शासक है किन्तु काव्य में उसका चरित्र चित्रण इतिहास से कुछ परिवर्तित रूप में हुआ है । 'विक्रमादित्य' का चन्द्रगुप्त अधिकांशत: आदर्शवादी भाव-भूमि पर स्थित है । ध्रुवदेवी अनेक बार प्रणय निवेदन करती है किन्तु चन्द्रगुप्त धर्मभीरुता तथा आदर्शवादिता के कारण उसे स्वीकार नहीं कर पाता । वह धर्म-भीरु, प्रेमी, मर्यादावादी, कुशल सैनिक तथा अन्य उच्च शासक की परिधि में काव्य में चित्रित हुआ है । वह सैनिक है, राजनीति के कांटों में उलझा हुआ है । ध्रुवदेवी के कोमल भाव की उपेक्षा नहीं करता, व्यंग भी करता हुआ अपनी चारित्रिक दृढ़ता की घोषणा स्वयं करता हुआ दिखाई देता है—

मैं निज धुन में बढ़ता जाता लखता नहीं उधर मैं भूल
कूल दुकूल भरे फूलों से तटिनी का आलिंगन पाश ,
नहीं मुझे बंदी कर पाया नहीं लुभा पाया अलि-रास

१- सर्ग त्रयोदश

नहीं मधुप सा सीखा मैंने सुमन सुमन से रस लेना
तरु सा नारि का बदन परस कर सरस फल बरसा देना
अनिल गुदगुदी से पंकज कलिका मुसका कर मुझे निरख
चाह भरी जब दृष्टि डालती कर कटाक्ष चंचल कर चख
तब कितनों का कठिन उरस्थल पानी पानी हो जाता
पर शंकर सा अचल रहा मैं उनके केसर झर जाता[1]।

इन पंक्तियों में चारित्रिक दृढ़ता के प्रति अहंकार की गन्ध स्पष्ट अनुभव होती है। वह आत्माभिमानी है। ध्रुवदेवी,राजशक्ति का भय दिखला कर अपने प्रेम पर विजय प्राप्त करना चाहती है। वह चन्द्र के प्रति विश्वासघात का दोष लगाती है। सम्पूर्ण दरबार में उसके चरित्र पर दोषारोपण करती है और प्राणदण्ड से भयभीत करके उसे क्षमा मांगने तथा प्रायश्चित करने के लिए कहती है[2]। ध्रुवदेवी के इस व्यवहार से चकित चन्द्रगुप्त का आत्मसम्मान तिलमिला उठा। रामगुप्त के सम्मुख उसने प्रतिवाद करना चाहा किन्तु उसकी बात अनसुनी कर दी गयी। ध्रुवदेवी ने अपने प्रभाव का जाल फेंका किन्तु स्वाभिमानी चन्द्रगुप्त ने कठोर उत्तर देकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की --

केहरि घास नहीं खा सकता हां हो सकता 'नहीं' नहीं
बेच आत्मा प्राण बचाने वाले होंगे और कहीं[3]।

निर्वासन काल में चन्द्रगुप्त की चारित्रिक विशेषताएं प्रस्फुटित हुई हैं। निरन्तर भटकते रहने के कारण वह जीवन की विषमताओं से परिचित हो गया। इससे पूर्व वह अहंकारी,कठोर हृदय व्यक्ति था। प्रजा के जिस निम्न वर्ग के प्रति उसका भाव सदैव उपेक्षित रहा था, कष्टों में उन्हीं का आश्रय प्राप्त करके वह

१- पृ०९,१०
२- यह सम्पूर्ण प्रसंग कवि कल्पना है। इतिहास में इस प्रकार के चरित्र अथवा घटनाओं का वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं है। प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' में भी ऐसी कल्पना कहीं नहीं हुई। चन्द्रगुप्त के चरित्र में इस प्रसंग से जहां एक ओर कवि ने उत्कर्ष दिखाया है वहीं ध्रुवस्वामिनी को वह बहुत निम्न स्तर पर ले आया है।
३- पृ० १६

उनके निष्कपट सरल प्रेम का मूल्य समझ सका ---

आज जला कर इस ज्वाला ने मुझको खरा बनाया है
तपा तपा कर अहंकार ममता का मैल जलाया है
मानव आज हुआ हूं मैं तो भरा भरा समतल मैदान
पहले अपने को समझा था किंव आच्छादित शृंग महान

+ +

अब देखा कृषकों का जीवन समझी उनकी मूक व्यथा
अचल पसीज उठेगा सुन कर बेचारों की करुण कथा[१]

अंत में ध्रुवदेवी की लगन, उसके प्रेम एवं त्याग के द्वारा वह राज्य प्राप्त करता है। रामगुप्त स्वयं ध्रुवदेवी तथा राज्य को चन्द्रगुप्त को समर्पित करके स्वयं मृत्यु की गोद में चला जाता है[२]। `विक्रमादित्य` का चन्द्रगुप्त निर्भीक है, किन्तु उसकी आदर्शवादिता, मर्यादापालन तथा धर्मभीरुता ने उसके चरित्र को अनेक स्थलों पर कृत्रिम बना दिया है। शासक के रूप में ही वह इतिहास से कुछ साम्य रखता है अन्यथा कवि कल्पना उसकी स्वाभाविक गंभीरता का चित्रण कर सकने में असमर्थ रही है। निर्वासन-काल में वन-वन भटकने और अनेक स्थलों पर ध्रुवदेवी से उसकी भेंट होने में भी चरित्र चित्रण की दृष्टि से कोई महत्ता दृष्टिगोचर नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि `विक्रमादित्य` के नायक का चरित्र-चित्रण करने में कवि -कल्पना किसी विशेष महत्वपूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। चन्द्रगुप्त न प्रेमी ही बन पाया है और न ही ऐतिहासिक सम्राट होने की गौरव गरिमा का ही अधिकारी हो सका है।

१- पृ० २४

२- भाई की हत्या करके चन्द्रगुप्त ने राज्यप्राप्त किया था। `ध्रुवस्वामिनी` नाटक में भी इसी सत्य की कल्पना प्रसाद जी ने की है। `विक्रमादित्य` के कवि ने आदर्शवादिता के निरूपण हेतु चरित्र चित्रण में ये नवीन कल्पनाएं की हैं।

वर्द्धमान काव्य में— वर्द्धमान महावीर :-

भगवान् महावीर जैन धर्म के इतिहासप्रसिद्ध प्रवर्तक हैं। `वर्द्धमान` काव्य में महावीर के चरित्र-चित्रण में अनूप शर्मा ने यद्यपि कल्पना की विशेष सहायता ली है तथापि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन मतों की मान्यताओं के अनुसार तथा दोनों मतों में समन्वयात्मक दृष्टिकोण को आधार लेकर वर्द्धमान का चरित्र चित्रण हुआ है। काव्य की अपेक्षा धार्मिक दृष्टि से वर्द्धमान के महावीर का विशेष महत्व है। वे जन्मजात चिन्तक हैं। एक साधक के प्राय: सब गुण उनकी शैशवकालीन अवस्था में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। केवल आठ वर्ष की अवस्था के जीव मात्र के प्रति दया, प्रेम तथा रक्षा के भाव जागृत हो जाते हैं। समाज के कष्ट निवारण के लिए वर्द्धमान प्रारम्भ से प्रयत्नशील हैं। प्रचंड दावानल देख कर साथियोंसहित वन में खेलते हुए बालक वर्द्धमान कह उठते हैं ---

मनुष्य पक्षी कृमि जीव जन्तु की
सदैव रक्षा करना स्व धर्म है
अत: चलो कानन में विलोक लें
कि कौनसी व्याधि प्रवर्द्धमान है (सर्ग नवम)

नवें सर्ग के`भय विवेचन` में वर्द्धमान के उत्साहपूर्ण निर्भीक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। भगवान् महावीर के जीवनसे सम्बन्धित चमत्कारिक जनश्रुतियों को, कवि ने काव्य में अधिक स्थान नहीं दिया है।[1] एकदो घटनाओं का संकेत मात्र है। अहिमर्दन के प्रसंग में वर्द्धमान के अतिमानवीय स्वरूप तथा दिव्य शक्ति का परिचय मिलता है। इस घटना के पश्चात् वर्द्धमान महावीर की संज्ञा से विभूषित किए गए। दीक्षा से पूर्व का महावीर का जीवन आत्म-चिन्तन का जीवन है। उनके चिन्तन शील जीवन में शृंगार जैसे कोमल भाव की अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है।[2] श्वेताम्बर तथा दिगम्बर मान्यताओं को इस प्रसंग में विशेष महत्व

१- वर्द्धमानकी भूमिका में,कवि
२-`मानव जीवन में सबसे अधिक गंभीर व्यापक प्रभावशाली,उत्तेजक और सक्रिय वृत्ति रही है। नायक वर्द्धमान के जीवन में इसके लिए स्थान ही नहीं है।

दिया गया है । शैशवावस्था से ही ऋजु-बालिका नदी के तीर जाकर वे मनुष्य जीवन के रहस्यों पर विचार करते हुए चिन्तन में लीन हो जाया करते थे -

नितान्त एकान्त-निवास संस्पृही
कुमार को थी सरि मोद दायिनी,
कभी कभी आ उसके समीप वे
विचारते जीवन का रहस्य थे[१]

बारहवें सर्ग में कुमार वर्द्धमान की विवाह योजना के प्रसंग में स्वप्न में पत्नी (यशोदा) और पुत्री (प्रियदर्शना) के दर्शन और प्राप्ति करा करके कवि ने इस प्रसंग को भी चिन्तन से पूर्ण बना दिया है । जागने पर महावीर, दिव्य विवाह में मुक्ति के पाणि ग्रहण की ही घोषणा करते दिखाई देते हैं -

विवाह हो ? दिव्य विवाह क्यों न हो ?
बरात हो ? देव समाज क्यों न हो ?
बने नहीं पाणि गृहीत मुक्ति क्यों
न देव हों चीवर मंजुवेश क्यों ?[२]

दीक्षा के पश्चात् सिद्धि प्राप्ति के हेतु साधना तथा तपस्या के जीवन का चित्रण हुआ है । और सिद्ध शिलारोहण के पश्चात् मानव जीवन के लिए भगवान् के सरल स्पष्ट विचारों का प्रतिपादन हुआ है । महावीर के मानवीय रूप को न अपना कर कवि ने उनका परम्परागत आदर्शवादी अतिमानवीय रूप ही अपनाया है महावीर के चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक दृष्टि का अभाव है ।

शेष) कवि ने इसकी पूर्ति वर्द्धमान के पिता महाराज सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के जीवन-चित्र से करनी चाही है । इस योजना से काव्य में सरसता तो आ गयी है, किन्तु पाठक का समाधान नहीं होता, वह तो अपने काव्य नायक के जीवन में प्रेम हर्ष विषाद करुणा घृणा उत्साह आदि लोकव्यापी वृत्तियों के उचित विधान को देख कर रस मग्न होना चाहता है।'-डा० रामचन्द्र तिवारी: सुकवि अनूप की महान कृति वर्द्धमान, अनूप: शर्मा: कृतियां और कला पुस्तक, पृ० १४५

१-- सर्ग दस
२- सर्ग बारह

तप्तगृह काव्य में — कौणक :-

केदारनाथ मिश्र `प्रभात` के `तप्तगृह` में कौणक नायक के रूप में चित्रित हुआ है । कौणक इतिहास में कुणीक तथा अजातशत्रु के नाम से जाना गया है। यद्यपि कौणक ऐतिहासिक पात्र है तथापि `तप्तगृह` में कौणक का चरित्र चित्रण एक घटना के आधार पर कवि-कल्पना-प्रसूत है । कौणक का चित्रण पूर्ण मनोवैज्ञानिक है । उसके जीवन के अपकर्ष और उत्कर्ष में मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि ने कार्य किया है । देवदत्त की मानसिक विकृति का खिलौना बना हुआ कौणक, राज्य सत्ता के मद से मदान्ध हो गया । पिता के रक्त से हाथ रंगने के उपरान्त पितृ हृदय की कोमल अनुभूति स्वयं पिता बनने के पश्चात् उत्पन्न हुई किन्तु तब केवल पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रह गया था । `तप्तगृह` के चरित्र चित्रण में कवि ने ठोस यथार्थवादी धरातल अपनाया है । परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों से टक्कर लेता हुआ कौणक एक दिन मानव हृदय के शाश्वत सत्य को समझने में समर्थ होता है और तब हिंसा, क्रूरता, रणोन्मत्तता से विमुख होकर वह मानव जीवन के लिए अनिवार्य, मानवता के पथ की ओर अग्रसर होता है । कौणक का चित्रण रणलिप्सु , हिंसक ,क्रूर पुत्र, पुत्र प्रेम के स्पन्दन से पूर्ण पिता तथा अन्त में पश्चाताप की ज्वाला में जलते हुए माँ के चरणों को आँसुओं से धोते हुए आत्म विह्वल पुत्र के परिवेश में हुआ है । सत्ता के मद से पूर्ण कौणक का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने उसके हिंसक तथा कठोर व्यक्तित्व की झांकी दी है ---

कौणक रण लिप्सु था
उग्र उदण्ड था
हिंसक प्रवृत्ति का
पोषक प्रचण्ड था
शहुण उसे प्यारा था ।[१]

१- सर्ग चार

किन्तु पुत्रोत्पत्ति की सूचना प्राप्त करके पुत्र प्रेम की अनुभूति ने कौणक के जीवन की धारा को मोड़ दी । वह उल्लास उमंग और अनिर्वचनीय आनन्द से भर उठा । वह भी पुत्र है, उसकी उत्पत्ति पर भी किसी पिता का हृदय ऐसे ही असीम सुख से आप्लावित हो उठा होगा । उसने भी कभी पिता का हृदय इसी प्रकार आन्दोलित किया होगा- उसका अन्तर पुकार उठा-

माता के दुध भरे
अंचल की स्नेह से
मुझ पर प्यार कर
एक दिन उठाया था
तुमने भी ऐसा ही
ज्वार बिम्बसार के
उर में उमंग भरे
उत्सव की धूम वह ।[१]

भावावेग से वह भर उठा । केवल एक प्रश्न बार-बार उसके हृदय स्थल को बेध रहा था । आज वह जानने के लिए उत्सुक हो उठा—

प्रश्न यही बार बार
उठता था ज्वार सा
प्यार पिता करते थे
हाय मुझे कितना[२]

पश्चाताप की अवश कचोट से पूर्ण कौणक का यह चित्र मार्मिक तथा करुण है। निर्दयी कौणक का चित्र जहां एक ओर आक्रोश और घृणा के भाव जाग्रत करता है वहीं अन्त में मां के चरणों से लिपटा हुआ कौणक पाठक की समस्त संवेदना संचित कर लेता है ।

१- सर्ग नवम

२- सर्ग ग्यारह

`गांधी गौरव`,`महामानव`,`जननायक` `जगदालोक` आदि काव्यों में— महात्मा गांधी:-

आधुनिक राष्ट्र-नेताओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरित्र महात्मा गांधी का है । अहिंसा,करुणा,दया,कर्मवीरता,ध्येयनिष्ठता,निर्भीकता तथा जन-कल्याण के भाव उनके व्यक्तित्व में साकार होकर विकसित हुए हैं । महामानव, जननायक ,जगदालोक में गान्धी जी को नायक बना कर कवियों ने उनके चारित्रिक गुणों का चित्रण किया है । मध्ययुग के राजपूत वीरों की वीरता शारीरिक शक्ति की वीरता थी । युद्ध संघर्षों में प्राणोत्सर्ग करने की जननी-जन्म-भूमि की रक्षा करने के सन्दर्भ में उनके वीरत्व की परख होती थी । आधुनिक युग में युद्धीय संघर्षों की अपेक्षा कर्म संघर्ष एवं आत्म बल की विजय मानव वीरता की प्रमुख कसौटी है। आधुनिक युग में इस नवीन चेतना का सूत्रपात करने वाले महात्मा गांधी थे । गांधी जी स्वयं आत्म-बल से पूर्ण थे,उन्हें कोई झुका नहीं सकता था, कोई शक्ति डिगा नहीं सकती थी ।विस्मृत भारतीय जन को उन्होंने निम्न शब्दों में प्रेरणा दी था-

साहस दृढ़ता आत्म-शक्ति
का अर्थ सफलता जीत
बढ़ो एक ही राह बची
पर मिटें न हों भयभीत[२]

सत्ता और शक्ति के मदान्ध विदेशी शक्ति के अत्याचार देख कर बापू का हृदय हाहाकार कर उठा । दलित वर्ग की असहाय अवस्था से क्षुब्ध होकर वे मृत्यु के दंशन से `भू लुंठित हिन्दुस्तान` की रक्षा के करने के लिए आतुर हो उठे।सुप्त राष्ट्र में स्वाभिमान का स्वर फूंकने के लिए,मानव को आत्मशक्ति से पूर्ण करने के लिए तथा विदेशी शक्ति की क्रूरता से टक्कर लेने के लिए बापू कर्म पथ पर दौड़ पड़े-

तुम रुक न सके उठ कर बापू चल पड़े मिटाने अंधकार
जिन स्थानों पर गहरी घाटी थे किये वहीं पर्वत उभार

१-आज शस्त्र के साथ युद्ध
मानव का, मानव मन का
बढ़ो विजय की राह गिर
रहा सुप्त जागरित जन का । महामानव, सर्ग आठवां

मानव ने बोल बदल डाली मिट्टी बन गयी वज्र पल में
लहरें उठ दौड़ीं ओज भरी सागर के शान्त पड़े जल में[1]

अपमान और हिंसा की चोट से क्षत-विक्षत मानव हृदय पर बापू ने करुणा और सेवा का सुखद शीतल लेप किया-

सेवा की बन वायु घूमते
घायल डगर डगर पर
बरसे बापू तुम करुणा
के मेघ गगन से झर झर[2]

राजनीतिक व्यक्तित्व से पृथक् उनका एक ~~एक~~ सामाजिक व्यक्तित्व था जिसकी छत्र छाया के नीचे भारतीय जन ने विश्राम किया था । उनके विशाल बाहुओं के घेरे में सम्पूर्ण प्राणी समा गए थे । वहां मानव मानव में भेद नहीं था । प्रत्येक भारतीय जन ने बापू के हृदय की धड़कनों का स्पन्दन भी मानो अनुभव किया था-

जहां न बन्धन जाति पांति का
था न भेद मानव का
उमड़ हृदय से मिला हृदय
विजयिनी बनी मानवता[3]

बापू का व्यक्तित्व बहुत महान् है । सत्य और अहिंसा के शाश्वत सिद्धान्तों की भीत्ति पर आधारित यह असीम व्यक्तित्व काव्यों में अपने चरम रूप में चित्रित हुआ है । कहीं कहीं कवि की भावुकता में गांधी जी को अति मानवीय रूप देने का प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होता है । मोहनदास के जन्म लेने में निराकार

१- महामानव , सर्ग प्रथम

२- वही , सर्ग द्वितीय

३- वही , सर्ग द्वितीय

है साकार रूप ग्रहण करने का विश्वास कवि ने प्रकट किया है।[१] आधुनिक वैज्ञानिक युग में जब कि राम और कृष्ण[२] के अवतारी रूप की अपेक्षा उनके लोक नायक रूप की प्रतिष्ठा हो रही है तब गांधी जी को अलौकिक और निराकार की संज्ञा देना सम्भवत: भावी युगों के लिए एक प्रश्न उत्पन्न करना है।गांधी जी महापुरुष है,महामानव है और निस्सन्देह महान् आत्मा है। काव्य में उनकी प्रतिष्ठा मानवीय परिवेश में ही की जानी चाहिए।

१-`करमचन्द``पुतलीबाई` के मन मोहन ने जन्म लिया है
ईश्वर ने सारी दुनिया को युग युग का वरदान दे दिया
जैसे तीनों लोक गोद में, खिला उजाला अन्धकार में
संवत उन्निस सौ पचास में रूप धरा उस निराकार ने

--- जननायक ,प्रथम सर्ग

२- प्रियप्रवास के नायक कृष्ण में न तो भक्तिकालीन आध्यात्मिकता है न रीतिकालीन वासनात्मकता। उसमें एक ऐसी नवीनता है जो प्राचीन श्रद्धा-भावना को विकसित और कामुकता को खण्डित करती है।...................... यहां कृष्ण लोकनायक हैं परम्परायुक्त अवतारी परब्रह्म नहीं।

-डा० श्यामनन्दन किशोर ,आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान, पृ० २१२

(२) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों के अन्य पुरुष पात्र :-

नायकों के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्यों में अन्य पुरुष पात्रों के चरित्र-चित्रण सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी देखना आवश्यक है । इन पात्रों के सहयोग से जहां एक ओर प्रधान पुरुष पात्रों के व्यक्तित्व का अनेक विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है वहां काव्य कथा के निर्माण में इनका महत्व-पूर्ण योगदान है ।

`नूरजहां` काव्य में सलीम प्रधान पुरुष है किन्तु नायिका के प्रभाव तथा महत्ता के कारण काव्य में उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप में विकास नहीं हो पाया है । वह केवल आत्मविह्वल प्रेमी है । अनारकली के प्रेम में उसकी वियोग दशाओं का वर्णन हुआ है । मेहर के प्रेम में वह उन्मत्तता तक की अवस्था तक पहुंच जाता है । उसने विवाहिता मेहर से भाग चलने के लिए कहा है । किन्तु मेहर के पत्नीत्व की दृढ़ता के कारण उसकी यह योजना सफल नहीं होती। अंत में मेहर को प्राप्त करने के लिए वह पापपूर्ण कृत्य की ओर अग्रसर हुआ । जहांगीर बन जाने पर शेर अफगन को मरवा कर मेहर को अना बना करके उसे शाही महलों में बुलवा कर रखा और अन्त में अनेक प्रयत्न करने पर छः वर्ष उपरान्त प्रेयसी को विजित करने में सफल हुआ । सलीम एक ओर जहां उत्कट प्रेमी है वहां प्रेम के कारण शेर अफ़गन की हत्या करने के पापपूर्ण कृत्य से उसका नाम सदैव कलंकित रहेगा ।

`सिद्धार्थ` में महाराजा शुद्धोदन तथा छन्दक ये दोनों पात्र ऐतिहासिक हैं । कवि ने आरम्भ में ही विदेह राजाओं की प्रशंसा करते हुए सिद्धार्थ के पिता महाराजा शुद्धोदन का यशगान किया है --

विनय-युक्त उदार गभीर थे,
अति सहिष्णु तथा अति धीर थे,
परम न्याय-परायण वीर थे,
सतत-संयत भूपति शाक्य के । (सर्ग प्रथम)

'यशोधरा' के शुद्धोदन पुत्र प्रेम से विह्वल पिता के रूप में चित्रित हुए हैं। यशोधरा श्वसुर से धैर्य धारण करने की प्रार्थना करती है किन्तु शुद्धोदन पुत्र वियोग सहन करने में असमर्थ हैं —

तू है सती, मान्य रहे इच्छा तुझे पति की
मैं हूं पिता, चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की।
भूला वह मोती उठा रक्खूं क्या उपाय मैं ? (पृ०३१)

उसे फूलों की भांति पाल रहे थे किन्तु कुमार सिद्धार्थ गर्भ। कुल त्याग कर चले गये। महाराज पुत्र की वियोग-पीड़ा से आकुल हो रहे हैं--

उसे फूल सा रक्खा पाल,
गया गन्ध -सा वह इस काल।
यह विष-फल, कांटे-सा साल,
फला गया रे फला गया रे।
छला गया रे छला गया। (पृ० २६)

छन्दक सेवक है। 'यशोधरा' का छन्दक सिद्धार्थ के वनगमन के समय के उनके वेष की सूचना देने के लिए काव्य में अवतरित हुआ है किन्तु सिद्धार्थ में वह सेवक, सखा, तथा जीवन और मृत्यु के रहस्यपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने वाला शिक्षित तथा विद्वान् सारथी है। नगर-भ्रमण तथा राज्य-भ्रमण के अवसर पर व्याधि, जरा, मरण आदि देख कर सिद्धार्थ कुमार के मन में नाना प्रकार की विचारधाराएं प्रवाहित होती हैं। जगत तथा जीवन के सम्बन्ध में वे अनेक प्रश्न छन्दक से पूछते हैं और छन्दक सभी का सहज स्वाभाविक उत्तर देता हुआ कुमार की शंकाओं का समाधान करता है[१]। मृत्यु को प्राप्त होते हुए एक व्यक्ति की शोचनीय अवस्था देख कर उसकी उस दशा का कारण कुमार पूछते हैं छन्दक एक दार्शनिक तत्ववेत्ता कीभांति कहते हैं --

----

१- अभिनिवेदन के प्रसंग सर्ग ग्यारह में कवि ने छन्दक और कुमार के वार्तालाप का विस्तृत वर्णन किया है।

विविध तत्व मिलें क्रम से सदा
समझते सब जीवन हैं उसे,
जब कभी उनमें व्यतिरेक हो
मरण संज्ञक है घटना वही` (सर्ग ग्यारह)

अकबर ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में महत्वपूर्ण पात्र है। `हल्दीघाटी`, `प्रणवीर प्रताप`, नूरजहां`आदि काव्यों में वह एक महत्वाकांक्षी मुगल बादशाह के रूप में आता है। वह कामुक है, कूटनीतिज्ञ, सहिष्णु तथा सहृदय भी है। सभी काव्यों में उसका कामुक रूप बहुत स्पष्टता के साथ चित्रित हुआ है।[1] `नूरजहां` में अनारकली से अकबर ऐसा ही व्यवहार करता है। बन्दिनी अनारकली से सलीम से प्रेम करने की बात छोड़ कर वह उसे अपने हृदय की सम्राज्ञी बनने का अनुरोध करता है --

यदि राज्य भोग ही करना तो मेरे उर में आओ।
तुम राज करो रानी बन जीवन को सफल बनाओ।।
तेरे इंगित के ऊपर संसार नाचता होगा।
तेरे करुणा की कोरों पर राज नाचता होगा।। (सर्ग चतुर्थ)

`प्रणवीर प्रताप` में राजपूत नारी किरण के प्रसंग में उसके कामुक रूप का उल्लेख हुआ है। `हल्दीघाटी` में अकबर का चरित्र-चित्रण विस्तृत रूप में हुआ है। किरण देवी से कामुकता पूर्ण व्यवहार का प्रसंग इस काव्य में भी आया है।[2] अकबर बादशाह कूटनीतिज्ञ था। समस्त प्रजा को अपना विश्वासपात्र बनाने के लिए वह सभी धर्मों से समान व्यवहार करता था। इस कार्य में जहां एक ओर उसकी धार्मिक सहिष्णुता प्रकट होती है वहीं धर्म के सम्बन्ध में उसकी कूटनीति का आभास भी मिलता है--

----

१- अकबर नौ रोज़ के उत्सव में मीनाबाजार लगाया करता था यह ऐतिहासिक सत्य है मीना बाजार में केवल नारियां सब काम करती हैं। इस शोध के तृतीय अध्याय में इस कथन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के विषय में विचार किया गया है।

२- सर्ग द्वितीय

कभी तिलक है शोभित भाल
साफा कभी शीश पर ताज
मस्जिद में जाकर रविनोद
पढ़ता था वह कभी नमाज (सर्ग चतुर्थ)

अकबर महाराणा प्रताप का घोर प्रतिद्वन्द्वी था । वह किसी भी प्रकार उसे अपनी अधीनता स्वीकार कराना चाहता था । वास्तव में महाराणा प्रताप अकबर के लिए चुनौती स्वरूप थे--

एक बार भी मान समान
मुकुट नवा करता सम्मान
पूरा हो जाता अरमान
मेरा रह जाता अभिमान (सर्ग तृतीय)

अकबर के इस भाव की अभिव्यक्ति गोकुल चन्द्र शर्मा ने प्रणवीर प्रताप में की हुई है [१]। ईर्ष्या भाव की अपेक्षा शत्रु की प्रशंसा करना अकबर बादशाह के सहृदय होने का प्रमाण है ।

मानसिंह राजपूत वीर है किन्तु मुगल शक्ति से प्रभावित होकर वह अकबर की अधीनता स्वीकार करके बादशाह का सर्वाधिक विश्वासपात्र सेनाध्यक्ष बन जाता है ।बादशाह अकबर की प्रसन्नता तथा उसके साम्राज्य विस्तार के हित उसने अपने ही राजपूत वीरों के रक्त से अपने हाथ रंजित किए । महाराणा प्रताप के स्वाभिमान के प्रति उसे ईर्ष्या थी,वह प्रताप के स्वाभिमान को तोड़ कर उसे नीचा दिखाना चाहता था । उसे अपने ही स्तर तक ले आना चाहता था [२]

१- छन्द १७८ पृ० ६६

२- युद्ध महाराणा प्रताप से
मेरा मचा रहेगा
मेरे जीते जी कलंक से
क्या वह बचा रहेगा --- हल्दीघाटी,सर्ग पंचम

महाराणा प्रताप द्वारा भोजन के इंकार करने पर तो मानों वह उस स्वाभिमानी को नष्ट करने के लिए व्यग्र हो उठा--

मानसिंह-दल बन आयेगा
जब भीषण रण-पागल
ऐ प्रताप तुम झुक जाओगे
झुक जाएगा सेना-दल ।[१]

मानसिंह यद्यपि वीर सेनापति था तथापि इतिहास में उसका स्मरण देशद्रोही के नाम से किया जाता है। ऐतिहासिक काव्यों में भी वह देशद्रोही राजपूत के रूप में ही चित्रित किया गया है ।

'हल्दीघाटी' में झाला माना' तथा 'जौहर' के वीर आल्हा-ऊदल जाति की रक्षा तथा स्वामी के सम्मान के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले अपूर्व वीर हैं । झाला माना ने अपने प्राणों पर खेल कर महाराणा प्रताप की रक्षा की थी ---

तब तक झाला ने देख लिया
राणा प्रताप है संकट में ।
बोला 'न बाल बांका होगा
जब तक है प्राण बचे घट में ।' (सर्ग द्वादश)

+ +

झाला को राणा जान मुगल
फिर टूट पड़े वे झाला पर ।
मिट गया वीर जैसे मिटता
परवाना दीपक ज्वाला पर । (वही)

१- सर्ग पंचम

गोरा बादल :'हठी पद्मिनी' और 'जौहर' में गोरा-बादल वीरों के शौर्य उत्साह और वीरता का चित्रण हुआ है । गोरा-बादल भी वीरत्व के प्रतीक बन कर काव्य में अवतरित किए गए हैं । महारानी पद्मिनी की ललकार सुन कर गोरा बादल दोनों उठ कर खड़े हो गए । उनका रक्त खौल उठा-

रानी की बातें सुन कर
दो बालक आगे आये ।
बोले मां तेरी जय हो
संगर के बादल छाये
यदि हम गोरा बादल तो
वैरी दल दलन करेंगे
बन्दी को मुक्त करेंगे ।
क्षण भर भी कल न करेंगे ।[1]

अन्य छोटे बड़े सरदारों का चित्रण वीरता की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है । महाराज पृथ्वीराज, जयचन्द तथा मोहम्मद गोरी का चित्रण भी 'आर्यावर्त' काव्य में महत्त्वपूर्ण है । कवि की राष्ट्रीय भावनाओं ने जयचन्द के चरित्र चित्रण में एक नवीन उद्भावना की है । देशद्रोही जयचन्द अपनी भूल पर पश्चाताप करता है । संयोगिता तथा चन्दबरदाई के नेतृत्व में दूसरी बार हुए आक्रमण में देश-प्रेम की उमंग से पूर्ण होकर भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ता हुआ प्राण न्योछावर कर देता है । जयचन्द के चरित्र का यह उत्कर्ष मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । आर्यभूमि के नाश का कारण वह अपने को समझता है । आर्यभूमि उसके घोर पाप में डूब गई है । वह यह स्वीकार करता है कि उसके द्वारा लगाई हुई अग्नि वैभव और विनाश की ज्वालाएं सुलगा दी हैं । किन्तु अपने कृत्यों से वह स्वयं लज्जावनत भी रहा है । अपने मुख पर लगी हुई पाप-कालिमा को वह अपने ही रक्त से धोने के लिए आकुल है ---

---

1- सातवीं चिनगारी

कह दें कवीन्द्र, आप जाके महारानी से
देश-द्रोही जयचंद भस्मीभूत हो गया ।
आर्य जयचंद अब प्रकट हुआ यहाँ
नंगी तलवार लिये - जब तक देश की
बेड़ियाँ कटेंगी नहीं तब तक प्रण है,
रक्खेगा न यह ये कृपाण कभी म्यान में ।[१]

<u>सम्राट् पृथ्वीराज</u> अभूतपूर्व योद्धा तथा उत्कट राष्ट्र प्रेमी हैं । उनका सम्पूर्ण चरित्र देश प्रेम की भावना से ओत:प्रोत है । मातृभूमि के प्रति आत्मीयवत्सलता पूर्ण उद्गार अनेक स्थलों पर मुखरित हुए हैं । तन,मन,धन मातृभूमि पर अर्पण करने वाला यह वीर ऐसे योद्धा के रूप में काव्य में अवतरित हुआ है जिसकी वीरता से प्रभावित होकर शत्रु भी प्रशंसा किए बिना नहीं रहता । सिंह के समान रणभूमि में दहाड़ने वाला नितान्त अकेला शत्रु को भयभीत करने के लिए पर्याप्त है । मोहम्मद गोरी पृथ्वीराज की शूरवीरता से प्रभावित है-

धन्य हुआ मैं तो महावीर पृथ्वीराज को
पाके शत्रु-रूप में भी भेजूं उन्हें गजनी,
भारत की वीरता का उज्ज्वल नमूना है ।[२]

देशभक्त पृथ्वीराज के नेत्र निकाल लिए गए । महाराज चक्षुविहीन हो गए । मोहम्मद गोरी उन्हें उनकी मातृभूमि से दूर गजनी भेज रहा है । निम्न पंक्तियों में मातृभूमि भारत की मिट्टी के प्रति पृथ्वीराज के भावनापूर्ण विचारों की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत है ---

----

१- सर्ग सप्तम

२- सर्ग अष्टम

बोले महाराज 'एक बात वीर मानोगे,
सीमा हो समाप्त जहां मेरी मातृभूमि की
कह दें मुझे वे मैं तनिक उस भूमि की
मिट्टी चूम लूंगा बस , इतनी विनय है
अंधा हूं, सकूंगा नहीं देख मातृमूर्ति मैं [1]

अन्त में पृथ्वीराज शब्द-वेध के प्रसंग में शत्रु को मार कर स्वयं भी उत्सर्ग हो गए । पृथ्वीराज के निर्भीक व्यक्तित्व की झांकी गोरी के साथ वार्तालापों में प्राप्त होती है । उनके वीरत्व की हुंकार उनकी भाव भंगिमा में मूर्त हो उठी है। सम्राट् पृथ्वीराज के प्रभावशाली व्यक्तित्व का भावपूर्ण चित्रण उस समय आकर्षक रूप में हुआ है जब शब्द-वेध का चमत्कार दिखलाने के लिए उन्हें दुर्ग से लेजाया जा रहा है ।गज़नी के नर नारी उत्सुकता पूर्वक भारत के इस वीर के दर्शनार्थ अपार संख्या में एकत्रित हैं । सैकड़ों तलवारों से घिरे हुए महाराज पृथ्वीराज गजराज पर बैठे हैं । बन्दी रूप में होने पर भी शत्रु के मन की सीमा नहीं ।भीमकाय विशाल सौन्दर्य युक्त व्यक्तित्व देख कर गज़नी की जनता धन्य हो उठी । कवि कल्पना ने शत्रु पक्ष की जनता के हृदय में भारतीय वीर के प्रति भावपूर्ण उद्गारों की झांकी देखी—

सोचा जनता ने —' आह गौरव है कितना
होना प्रजा ऐसे देवतुल्य नरनाह की ।'

गज़नी के प्रत्येक वर्ग के नर-नारी ने अपने-अपने भावानुसार सौन्दर्य तथा वीरता के चरम दर्शन पृथ्वीराज ने किए [2] । पृथ्वीराज के चरित्र-चित्रण में इतिहास तथा कल्पना का महत्वपूर्ण योग हुआ है ।

१- सर्ग अष्टम

२- सर्ग द्वादश

मोहम्मद गोरी सम्राट पृथ्वीराज का प्रतिद्वन्द्वी तथा भारतीय स्वाधीनता का हरण करने वाला शत्रु है । मोहम्मद गोरी वीर है । 'आर्यावर्त' में कवि ने प्रतिद्वन्द्वी का चित्रण पूर्ण उदात्त भावनाओं के साथ चित्रित किया है । वह नृशंस है किन्तु साथ ही सहृदय भी है । सम्राट् पृथ्वीराज का घोर शत्रु होते हुए भी वह उनके वीरत्व से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा करता है । वह वीर पूजक है और वीरता का सम्मान करना जानता है -

पूजक हूं वीर का, मैं आप भाग्यवान हैं ।
धन्य है स्वदेश-भक्ति आपके हृदय में

अपने व्यवहार के लिए वह पृथ्वीराज से क्षमा तक मांग लेता है जो उसके सहृदय होने का परिचायक है ----

किन्तु निरुपाय हूं क्षमा का अधिकारी हूं ।

क्रूर राजनीतिक चालों से पृथक् मोहम्मद गोरी का यह वार्तालाप उसके मानव हृदय की उदात्त भावनाओं की झलक प्रस्तुत करता है । वह वीरता की पूजा को भगवान की पूजा स्वीकार करता है ---

मैंने यह सत्य सीखा पूर्वजों की बात से
वीरता की पूजा भगवान की ही पूजा है[१]

आर्यावर्त के चरित्र-चित्रण के लिए निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि ने यथार्थ-आदर्श तथा मानव-मनोविज्ञान को दृष्टि में रखते हुए चरित्र-चित्रण किया है । जयचन्द, मोहम्मद गोरी आदि चरित्रों से यह स्पष्ट है ।

'जौहर' में यद्यपि महाराणा रत्नसिंह का चरित्र अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक विकसित है किन्तु महारानी के प्रभाव में ही रत्नसिंह के चरित्र का विकास हुआ है । रत्नसिंह आन और मान पर मिटने वाले वीर राजपूत के रूप में

१- सर्ग अष्टम

चित्रित हुए हैं । वंश गौरव की रक्षा के हेतु राणा तन-मन-धन-राज सुख-वैभव, सभी कुछ न्यौछावर करने के लिए कटिबद्ध हैं । विदाई के प्रसंग में रानी तथा महाराणा क्षण भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में आ जाते हैं दोनों के सम्मुख चिर वियोग तथा प्राणोत्सर्ग की काली रात्रि मंडराती है किन्तु कर्तव्य-बोध होते ही दूसरे ही क्षण महाराणा वीरता की प्रतिमूर्ति बन गए । उनके ओजपूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में हुई ---

बोला , न प्रिये देरी कर,
व्रत-भंग न होने पाये।
जो भी पर जौहर-व्रत का
आदर्श न खोने पाये ।।

मैं चला, साथ सखियों के
तू भी धीरे- धीरे चल ।
मैं मिटूं और तू भी अब
जौहर की ज्वाला में जल ।।[1]

सती मान पर, आन-बान पर तथा सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण गंवा कर रावल रत्न सिंह अमर हो गए । वंश गौरव के अभिमानकी रक्षा हुई ।

`विक्रमादित्य` में रामगुप्त तथा वीरसेन का चरित्र-चित्रण भी देखना आवश्यक है ।ये दोनों ऐतिहासिक पात्र हैं[2] । रामगुप्त तत्कालीन सम्राट है । चन्द्रगुप्त से पहले यही सिंहासनारूढ़ हुआ था । गुरुभक्त सिंह ने दोनों के चरित्र चित्रण में कल्पना का अधिक उपयोग किया है । रामगुप्त विलासी, भीरु-हृदय सम्राट् था । शक दम्पत्र से भयभीत होकर ध्रुवदेवी को उसे देना स्वीकार कर लेता है । ध्रुवदेवी उसकी रसिकता तथा भोग विलास की जिन्दगी से घृणा करती थी । रामगुप्त में शासन करने की योग्यता नहीं थी ।`विक्रमादित्य` के कवि ने अन्त में

१- सोलहवीं चिनगारी

२- रामगुप्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का अग्रज था इसकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विचार हो चुका है ।

रामगुप्त को सचेत होते हुए तथा अपनी गलतियों पर पश्चाताप करते हुए दिखाया है । वह निर्वासित भाई चन्द्रगुप्त से भेंट करने के लिए आतुर है। जीवन के अन्तिम क्षणों में वह ध्रुवदेवी तथा साम्राज्य चन्द्रगुप्त को सौंपना चाहता है।वह ध्रुव देवी तथा चन्द्रगुप्त के प्रति सदैव सन्देह करता रहा । वह नहीं चाहता था कि ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त से प्रणय व्यापार करे । वह इस सत्य से परिचित न था कि वह शक्ति के बल पर ध्रुवदेवी को स्वयंवर से तो ले आया है किन्तु वह उसके हृदय पर विजय प्राप्त नहीं कर सका ।जीवन के अंतिम समय में वह इस सत्य को स्वीकार करता है —

पातकी नीच घृणित मैं आज
भार हो रहा मुझे यह राज
कर्म का भोग
रहा संयोग
बना मैं उसका जीवन भार
नष्ट करके उसका संसार
अहो मम तात
बिना कुछ बात
दिया निर्वास तुम्हें कर भूल
लगा अभियोग झूठ निर्मूल[१] ।

निर्वासित चन्द्रगुप्त की खोज कराके रामगुप्त राज काज तथा चन्द्रगुप्त के ही साथ आई हुई ध्रुवदेवी को उसे सौंप देते हैं --

तिलक दे दिया , मुकुट ली धार,
चन्द्र की बोली जय जय कार[२]

+ +

१- खण्ड २४
२- खण्ड ३६

और--

महादेवी का पकड़ो हाथ
छोड़ना मत तुम इनका साथ,
बने यह साम्राज्ञी सिर मौर
नहीं कुछ इच्छा मेरी और।[१]

रामगुप्त के चरित्र की यह उदात्तता कवि कल्पना है। ऐतिहासिक सच्चाई है तथा प्रसाद जी के नाटक ध्रुवस्वामिनी में रामगुप्त भिन्न रूप में दृष्टि-गोचर होता है। चन्द्रगुप्त ने भाई की हत्या करके राज्य तथा ध्रुवदेवी को प्राप्त किया था ऐसा संस्कृत साहित्य से संकेत मिलता है और क्योंकि इस सम्बन्धमें अन्य कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है अतः इस सत्य को ही स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में गुरुभक्तसिंह की रामगुप्त के चरित्र के सम्बन्ध में तथा चन्द्रगुप्त के राज्य प्राप्त करने के सम्बन्ध में यह उदात्त कल्पना पूर्व संस्कृत साहित्य से भिन्न होते हुए भी आकर्षक है।

वीरसेन :वीरसेन ऐतिहासिक पात्र है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सचिव के रूप में इतिहास में यह नाम उपलब्ध होता है। वीरसेन अवश्य ही एक वीर सैनिक भी रहा होगा क्योंकि पूर्वी मालवा में और विजय के हेतु गये हुए चन्द्रगुप्त के साथ वीरसेन भी था[२]। काव्य में वीरसेन अधिकांशतः रसिक चारण और साम्राज्ञी ध्रुवदेवी के विश्वासपात्र के रूप में चित्रित हुआ है। रसिक चारण के रूप में प्रभाव शाली होने की अपेक्षा वीरसेन का चरित्र एक विदूषक से अधिक कुछ नहीं हो पाया है। वह युद्ध भूमि से भयभीत होने वाला है.... शक - क्षत्रप की पुत्री से वह यह कह कर अपना परिचय देता है -

कवि कौतुक कंपते हैं घोड़े मैं तो परदेसी हूं देवी
सेना से मुझको अर्थ नहीं मैं तो वाणी का हूं सेवी[३]

१- खण्ड २६

२- The king marched to eastern Malwa accompanied by his Minister Virsena - Saka - R.C.Majumdar, H.C. Raychaudhuri & K. K. Datta
An Advanced History of India, Page - 149.

३- खंड दस पृ० ४६

वीरसेन का अपनी पत्नी से भयभीत होना और उसके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक पात्र से उसका व्यवहार बहुत हास्यास्पद हो गया है । गुप्त गुप्त साम्राज्य की एकछत्र सम्राज्ञी से वह जिस प्रकार का वार्तालाप करता है उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है..... वीरसेन सम्राज्ञी द्वारा चन्द्रगुप्त की खोज के लिए भेजा जाता है ।शक बाला के साथ रंगरलियां मनाते हुए देख कर वह चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध में स्वामी ऐसी बातें बताते हुए नारियों के विषय में अपनी सम्मति दे रहा है-

जो आज्ञा हो पर मेरी सम्मति में ऐसा किसे निदेश,
प्राणवल्लभा और महादेवी को छोड़ नारियां शेष,
इनको सब एक बड़े गर्त में ले जाकर गड़वा दी जांय,
अथवा पाषाणों से पैरों में बांध बांध डुबवा दी जांय,[1]

सामान्य रूप से देखने पर वीरसेन का चित्रण हास्यास्पद है । न वह कवि के रूप में हो आ पाया है और न ही उत्तरदायित्वपूर्ण सचिव ही हो सका है । वह केवल विदूषक है । अन्त में शक क्षत्रप की पुत्री कुमारी वीणा से उसका विवाह कराके उसे और भी अधिक रसिक रूप में प्रस्तुत किया गया है । भूधर , पौलेनाथ धाँधल आदि अन्य पात्रों से वस्तु विस्तार में सहायता प्राप्त हुई है । शक क्षत्रप रुद्रसिंह महत्वाकांक्षी के रूप में चित्रित हुआ है । वह युद्धप्रिय एवं कूटनीतिज्ञ है।

`वर्द्धमान`काव्य में वर्द्धमान के अतिरिक्त विदेहराज सिद्धार्थ ऐतिहासिक पात्र है और काव्य के पूर्वार्द्ध में कवि ने इनकी प्रशंसा में अनेक छन्द कहे हैं । ये दानवीर हैं किन्तु दो वस्तुएं इन्होंने कभी किसी को दान में नहीं दी । कवि ने सिद्धार्थ की चारित्रिक दृढ़ता तथा वीरता की अभिव्यंजना कलात्मक ढंग से की है -

परंतु जो सर्वद सर्वदा उन्हें
विचारते थे वह यों निराश थे
न पीठ पाई अरि-वृन्द ने कभी
न वक्ष देखा पर नारि ने तथा[2]

१- खण्ड ग्यारह,पृ० ५५

२- सर्ग प्रथम

विदेहराज सौंदर्यप्रेमी है । महारानी त्रिशला अद्वितीय सुन्दरी है । उनके सौंदर्य के प्रति सिद्धार्थ महाराज की मुग्धता निम्न पंक्तियों में हुई है -

शरीर की यष्टि लता-समान थी
उरोज थे श्री-फल से लसे जहां
प्रसून से अंग विलोक भूप भी
मिलिन्द से मुग्ध बने अहर्निशा[१]

'तप्तगृह' में बिम्बसार का चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक है तथा नव कल्पना की उद्भावना है । महाराज बिम्बसार विचारक हैं । राजनीतिक उलट फेर का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली कुशाग्र बुद्धि से विभूषित हैं । कोणिक के नृशंस तथा अमानवीय व्यवहार के प्रति उन्हें तनिक भी क्षोभ अथवा आक्रोश नहीं है । राज्य क्रान्ति उनके रक्त का दान मात्र रही । राज्यक्रान्ति को कोई रोक नहीं सकता। वे अपनी भेंट देने को सहर्ष प्रस्तुत हैं ---

कोणिक की राज्य क्रान्ति
मांगती पुकार कर
दान मेरे रक्त का
प्रस्तुत हूं मैं सहर्ष
भेंट यह देने को ।[२]

अपने प्रति सामाजिक सहृदयता की बिम्बसार न आशा करते हैं न ही उपेक्षा । उन्हें अपना विगत जीवन स्मरण हो आता है । बिम्बसार अपना चित्र स्वयं प्रस्तुत करते हैं जब वे राज्य-शक्ति से उन्मत्त होकर मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते थे । कभी समाज कल्याण की ओर ध्यान नहीं दिया था-

मैंने समाज की
सेवा की कौन-सी ?
संकट ही क्लेश ही
दुःख ही अशान्ति ही

१- सर्ग प्रथम
२- सर्ग आठ

मैंने समाज को
पुकारा था प्रेम से
मैंने समाज के
आंसू का मोल दिया
आंसू था अपना ?   (सर्ग अष्टम   )

राजा बिम्बसार का पुत्र प्रेम महान है । कोणक द्वारा किए गए व्यवहार में वे कोणक का दोष न मान कर अपने कर्मों को दोषी ठहराते हैं । रक्त-पिपासु पुत्र के प्रति ऐसा क्षमाशील हृदय, तथा उदात्त भाव मानव इतिहास में आदर्श का प्रतीक है । प्रतिहिंसा की ज्वाला से पूर्ण कोणक को भी दुलारा है भी । वे यही कहते हैं कि-

कोणक के जीवन का
उज्ज्वल भविष्य ही
साधना रही   की
कर्तव्य हो तुम्हारा   (सर्ग अष्टम   )

वात्सल्य का आदर्श बिम्बसार में अपने चरम रूप में चित्रित हुआ है ।

देवदत्त ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का व्यक्ति है । महात्मा बुद्ध के प्रभाव को नष्ट करना चाहता है । वह यह नहीं चाहता कि बुद्ध के प्रभाव में तत्कालीन जनपद राज्य रहें । चचेरा भाई होने के कारण भी यह ईर्ष्या भावनाधिक बलवती हो उठी थी ।[१]... देवदत्त का उल्लेख इतिहास में भी प्राप्त होता है । कोणक के हृदय में पिता के प्रति विद्वेष की अग्नि भरने तथा राज्य सत्ता का मोह उत्पन्न करने का अधिकांश दायित्व देवदत्त के ऊपर था । अपनी ईर्ष्या के साधनों का खिलौना बना कर उसने कोणक को अपने प्रभाव में लाना चाहा था । उसकी यह अभिलाषा पूर्ण हुई ।

१- Among his converts was his cousin Deva Datta who subsequently broke away from him and founded a rival sect that survived in part of Oudh and western Bengal till the Gupta period.

R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta
An Advanced History of India, Page - 88.

कुणाल ऐतिहासिक पात्र है । कुणाल संडकाव्यों में, `कुणाल गीत` तथा `तक्षशिला` में कुणाल के जीवन के त्याग और पितृ भक्ति के आदर्श का चित्रण हुआ है । ऐतिहासिक घटना के आधार पर कुणाल के व्यक्तित्व का आकर्षक निर्माण हुआ है ।

गुरुकुल में मैथिलीशरण गुप्त ने सिक्खों के दस ऐतिहासिक गुरुओं के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का परिचय प्रस्तुत किया हुआ है चरित्र चित्रण की दृष्टि से वह प्रभाव पूर्ण है । गुरु नानक की दया, गुरु अर्जुन तथा गुरु हरगोविन्द का धर्म-रक्षार्थ आत्मबलिदान गुरु गोविन्द की निर्भीक वीरता गुरुओं के आकर्षक व्यक्तित्व की परिचायक है ।

आलोच्यकाल में सम्राट् अशोक के जीवन से सम्बन्धित एक भी उल्लेखनीय प्रबन्ध काव्य उपलब्ध नहीं है । तक्षशिला एवं कुणाल सम्बन्धी काव्यों में उनके जीवन के सम्बन्ध में केवल उल्लेख ही प्राप्त हुए हैं

`अशोक की चिन्ता`, कलिंग विजय`, अशोक की हिंसा से विरक्ति` `मगध-महिमा`-- ये मिल कर अशोक के व्यक्तित्व की एकपक्षीय झांकी प्रस्तुत करती है । सिंदूर मज्जित भाल तथा गोदियों के लाल लूटता हुआ एक ओर `भूमिका मानो महीप ` क्रूर `अशोक` है , दूसरी ओर मानव हत्या का नग्न नृत्य देख कर आत्मदंशन की व्यथा एवं परिताप से पूर्ण बुद्ध के सन्देश की शरण में जाता हुआ वह मानवता का सबसे बड़ा पोषक `अशोक` है ।

`झांसी की रानी` में गंगाधर राव अल्प समय के लिए काव्य के रंग मंच पर अवतरित हुए । उनका व्यक्तित्व बहुत धूमिल है । वे नारी स्वातंत्र्य के विशेष पक्षपाती नहीं हैं । नारी परिवार की शोभा है ऐसा वह मानते हैं... सैनिक शिक्षा का नारियों के लिए उनकी दृष्टि में कोई उपयोग नहीं -

ऐसी शिक्षा पाकर जग में
क्या कर सकती है उपयोग ?
इनको तो पति-गृह में रह कर
करना है सुख का उपभोग । (उठी हुंकार)

गंगाधर राव में साहस और शक्ति का अभाव है । ब्रिटिश शासकीय सत्ता से उन्हें भय है । वे चुपचाप विरोधरहित, राज्य का पंचम अंश ब्रिटिश सरकार को देना स्वीकार कर लेते हैं और अपने आत्मबल की हीनता को 'कुटिल भवितव्यता की प्रबलता' कह कर छिपाना चाहते हैं -

राज्य अंश के देने से है
मेरे उर में भी आघात ।
किन्तु कुटिल भवितव्य प्रबल है
वह न किसी के वश की बात ।(छठी हुंकार)

झांसी नरेश में आत्मबल तथा शरीर बल दोनों का अभाव था।पुत्र वियोग के कारण वे अधिक समय तक जीवित न रह सके ।

ऐतिहासिक काव्य में पुरुष पात्रों के अतिरिक्त नारी पात्रों का विश्लेषण करना भी आवश्यक हो जाता है ।

(घ) ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में नारी पात्र

भारतीय समाज में नारी का उच्च स्थान था । वह पढ़ी-लिखी विदुषी होती थी । राजनैतिक जीवन में उसका प्रवेश था । मध्यकाल में मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व भी नारियों की अवस्था प्राय: उच्च ही थी । हां, प्राचीन काल की अपेक्षा परिस्थिति अनुकूल परिवर्तन अवश्य उपस्थित हो गए थे परन्तु मुसलमानों की भोगविलासी प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन नारियों की दशा में विशेष परिवर्तन हुआ । सतीत्व रक्षार्थ अनेकानेक सामाजिक बन्धन उसे प्राप्त हुए । साहित्य में भी कतिपय सिद्धान्तों के आधार पर या तो वे आदर्श रूप में चित्रित हुई अथवा भोग और शृंगार का उपकरण बन कर प्रस्तुत हुईं । आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाव के कारण नारी की स्थिति में एक उल्लेखनीय क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ[१] । नारी-स्वातन्त्र्य के विचारों ने उसे एक नितान्त नवीन पथ

१- वीरगाथाओं के समय से १६ वीं शताब्दी तक- लगभग ७ शताब्दियों तक-एक

(शेष-

पर ला खड़ा किया । यहाँ हमारा तात्पर्य केवल यही है कि आधुनिक समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है । वह कवि की भी असीम श्रद्धा की पात्र है । आलोच्य कालीन ऐतिहासिक काव्य में वह नायिका के प्रमुख पद के अतिरिक्त अन्य रूपों में भी चित्रित हुई है ।

(१) ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में नायिका पात्र :

'नूरजहाँ' काव्य में — नूरजहाँ :-

नूरजहाँ का चरित्रचित्रण विस्तृत परिवेश में हुआ है ।इस प्रबन्ध-काव्य में वह प्रधान पात्र है । सलीम के चरित्र का विकास भी नूरजहाँ के चरित्र की पृष्ठभूमि में ही हुआ है ।इतिहास तथा कल्पना के सहयोग से नूरजहाँ के चरित्र चित्रण में पर्याप्त आकर्षण उत्पन्न हुआ है । जन्मकाल से लेकर सम्राज्ञी बनने तक का जीवन काव्य में चित्रित हुआ है ।परि-स्थितियों से प्रभावित होता हुआ नूरजहाँ का चित्र यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित है । वह अनिन्द्य सुन्दरी,भोली प्रेमिका,पतिव्रता पत्नी,स्नेहमयी माँ, तथा निर्भीक युवती के रूप में प्रस्तुत हुई है । उसके अनन्त सौन्दर्य से प्रभावित होकर सलीम तन मन से उस पर न्योछावर है । प्रेम प्रसंग में उसके स्वभाव का भोलापन भी दृष्टिगत होता है । जमीला की ईर्ष्या और द्वेष का तुषारापात होते ही सलीम तथा मेहर की प्रेम लता टूट गई । जमीला के ईर्ष्यागत व्यवहार में भवितव्यता को स्वीकार करने वाली सहनशील नूरजहाँ की झाँकी उपलब्ध होती है । क्षण भर के लिए दुखित तथा विचलित हुई नूरजहाँ दूसरे ही क्षण नियति की क्रूरता सहन करने के लिए कटिबद्ध हो गई-

---

शेष---
ही सी नारी भावना काव्य में अभिव्यक्त होती रही थी।धार्मिक और काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कवियों ने निश्चित आदर्शों को बना कर नारी को देखा था--- परिवर्तन की वास्तविक रूप रेखाएं तो बीसवीं शताब्दी में ही स्पष्ट हुई । --डा० शैलकुमारी, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना,पृ० २५५

तब क्या जीवन है पत्नी के सुख दुख दोनों हैं पर ?
क्या बहती जीवन सरि इन दो कूलों से होकर ?
यदि काया का धर्म यही है तो चुपचाप सहूंगी ।
जैसे भी रक्खेगा सुख में दुख में पड़ी रहूंगी ।।[१]

विवाह हो जाने के उपरान्त अपने पूर्व प्रेम को विस्मृत करके वह शेर अफ़गन की पतिव्रता पत्नी है । सलीम को फटकारते हुए वह एक कुलवधू के रूप में उपस्थित होती है.... उसकी उत्तेजना में भारतीय विचारधारा की अभिव्यक्तिहुई है ---

है वह कौन मेरे जीते जो उन पर हाथ लगावे ।
कभी न होगा लाखों ही का सर चाहे गिर जावे ।।
दोनों में से एक यहां पर पहिले सो जावेगा ।
तब ही बाल एक भी बांका उनका हो पावेगा ।।[२]

शेर अफ़गन के हार्दिक प्रेम की छाया में नूरजहां सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करना चाहती है किन्तु शेर अफ़गन की हृदय हीनता के कारण मेहर के कोमल स्वप्न टूट गए । सहनशीलता की पराकाष्ठा होने पर उसका विद्रोही व्यक्तित्व उभरा है । युग की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से पूर्ण आधुनिक नारी का स्वर उसकी वाणी में मुखरित हुआ है-

है कर्तव्य नारियों का कुछ तो उतना ही है अधिकार ।
बहुत हो गया हृदयहीन पति का पत्नी पर अत्याचार।।
नहींपरस्पर प्रेम तथा सद्भाव पूर्ण है यदि व्यवहार ।
तो निकाह क्या है अबलाओं को ठगने का है व्यापार।।[३]

१-सर्ग आठ , पृ० ६४
२- सर्ग नौ
३- सर्ग ग्यारह, पृ० ८७

उसका आत्माभिमानी मन निश्चय करता है ---

> नहीं आत्म गौरव को मेरे कोई यों ठुकरावेगा
> नहीं आज से कोई मुझको आँखें लाल दिखावेगा।।[१]

उसका यह विद्रोही व्यक्तित्व ही उसके चरित्र की सत्यता नहीं है शेरअफ़गन की कठोरता की प्रतिक्रिया स्वरूप ही मेहर विद्रोही हो उठी थी, सर्वसुन्दरी द्वारा पतिव्रत-धर्म का महत्व समझाए जाने पर वह उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है। अपने आवेश के लिए उसे पश्चाताप होता है। सर्वसुन्दरी के समक्ष वह अपनी भूल स्वीकार करती है। इस प्रसंग में उसके चारित्रिक उत्कर्ष के साथ ही नारी जीवन के आदर्श की झलक भी मिलती है। यह कहना कि नूरजहां के चरित्र में आदर्श नहीं है[२] उसके प्रति अन्याय करना है। वह स्नेहमयी मां भी है। पिता की कठोरता तथा शुष्कता से सहमी हुई लैला को मां का सम्पूर्ण ममत्व प्राप्त हुआ है। वह लोरी सुना-सुना कर उसे सुलाती है। इस ममत्व ने मेहर के व्यक्तित्व को अधिक कोमल तथा आकर्षक रूप प्रदान किया है। शेरअफ़गन की मृत्यु के पश्चात् मेहर का जीवन दुख और संघर्ष का जीवन है। जहांगीर के साधनापूर्ण प्रेम को वह किसी भी भांति अपना नहीं पाती। शेर अफ़गन को विस्मृत करना उसके लिए कठिन हो रहा है। धर्म संकट में पड़ी हुई मेहर का यह दुविधापूर्ण चित्र वस्तुत: करुणापूर्ण है। वह सलीम को हृदय से प्यार करती थी और जीवन की उथल-पुथल के पश्चात् भी वह उसके प्रति कोमल है, सहृदय है, परन्तु उसका कर्तव्य उसे विवाह की आज्ञा नहीं दे पाता। क्रोध पर विजय प्राप्त करके अपने भाग्य को दोष देती हुई वह सलीम को क्षमा कर देती है। वह सहृदय प्रेमिका है --

---

१-सर्ग ग्यारह, पृ० ८८

२-`नूरजहां के चरित्र में आदर्श तो है ही नहीं`

-श्यामनन्दनकिशोर - आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २५७

'नत मस्तक उस जहांगीर को मेहर उठा कर बोली
दोष भाग्य का ही है मेरे होनी थी सो हो ली '
-(सर्ग १९, पृ० १३२)

जहांगीर के सभी प्रयत्न विफल होते हैं । मेहर का पत्नीत्व सदैव विजयी होता रहा । विवाह के अतिरिक्त, उसके लिए कुछ भी अदेय नहीं । इस सन्दर्भ में उसके मन की दुर्बलता का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण कवि ने किया है । मेहर को अपने सती मन पर पूर्ण विश्वास है पति का रक्त बहाने वाले की इच्छा पर वह स्वयं बहना नहीं चाहती । मन के किसी भी उत्पात से बचने के लिए वह एक दिन सचमुच ही मृत्यु स्वीकार करने का निश्चय करके चल देती है ----

इसीलिए मैं मौन भाव से मरने को थी जाती
जिससे विजय न मुझ पर पावे कोई मन उत्पाती (सर्ग १७)

किन्तु अन्त में कर्तव्य पराजित हुआ । जहांगीर के साधनापूर्ण निश्छल प्रेम की विजय हुई । बड़े नाटकीय ढंग से कवि मेहर के नूरजहां बनने का दृश्य प्रस्तुत करता है छ: वर्षों के उपरान्त मेहर सती मेहर पर विजय प्राप्त कर लेती है । आरम्भ में आदर्श की उच्चता को लेकर चलने वाले चरित्र की पूर्णता यथार्थ की ठोस धरातल पर निर्मित हुई है । विवाह की अपेक्षा प्रेम की सत्यता में कवि का अधिक विश्वास है ।

'यशोधरा' और 'सिद्धार्थ' काव्यों में -- यशोधरा :

'सिद्धार्थ' तथा 'यशोधरा' में बुद्ध भगवान की पत्नी यशोधरा क्रमश: नायिका तथा प्रधान पात्री के रूप में चित्रित हुई है । सिद्धार्थ में अपूर्व सौन्दर्य से युक्त कुमारी गोपा के रूप में वसन्तोत्सव के अवसर पर यशोधरा के दर्शन होते हैं[१] ।गौतम यशोधरा के रूप पर मुग्ध हो उठे ।गोपा सर्वसुन्दरी थी। उसके

१- रह गई बस एक यशोधरा,
बंट चुका सबको उपहार था ।

शेष-

सौन्दर्य ने उनका मन-कुरंग बेध दिया-

कुटिल भौंह शरासन-सी लसी

बन गये दृग लोचन व्याध-से

मन कुरंग-समान कुमार था

हत हुआ शर तुल्य कटाक्ष से[1]

विवाहोपरान्त यशोधरा तथा सिद्धार्थ आमोद-प्रमोद में मग्न हो जाते हैं परस्पर प्रेम पूर्ण वार्तालापों में अनेक मास व्यतीत होते गए-

"तुम प्रिये, मम अध्रुव चित्त के

चलित तारक को ध्रुव-सी हुई,

मम समस्त-विचार-तरंगिणी

धंस गई तव रूप समुद्र में ।"

परन्तु सिद्धार्थ के विरक्त भावों से भी यशोधरा अवगत है । वह कभी भी ऐसा अवसर प्रस्तुत नहीं होने देती जब सिद्धार्थ किसी प्रकार के वैराग्य भाव से घिर जांय । सुन्दरी होने के साथ ही यशोधरा चित्त-वृत्ति अनुवीक्षण पंडिता भी है --

वे जानती सकल भाव कुमार के हैं

वे चित्त-वृत्ति अनुवीक्षण पंडिता हैं

राजीव के व्यजन-चालन से सुलातीं

श्रीखण्ड के पवन-दोलन से जगातीं ।[2]

शेष- पहुंच के वह पास कुमार के

विपुल -विभ्रम युक्त खड़ी हुई,

दृग मिला कर, चंचल भौंह से

'कुछ मिले' मुस्काती कहती हुई ।-सर्ग पांच,पृ० ७१

१- सर्ग पांच, पृ० ७५
२- सर्ग सात, पृ० १०२

किन्तु सिद्धार्थ का वैरागी मन अन्त में सत्य की खोज में निकल ही पड़ा है । यशोधरा विलाप करती हुई मूर्छित हो गई । भगवान् सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् 'सिद्धार्थ' की यशोधरा के विलाप और विरह दशा का वर्णन ही अधिक हुआ है । सत्रहवें सर्ग में सिद्धि प्राप्त हुए भगवान् बुद्ध के दर्शनों के साथ वह उनके चरणों में समर्पित हो जाती है—

सिसकती 'पति,आर्य' पुकारती
गिर पड़ी प्रभु के पद पद्म पै ।[१]

इस प्रकार कुमारी गोपा के शृंगार ,दाम्पत्य विहार ,विरह वर्णन तथा अन्त में भगवान् के चरणों में समर्पिता के रूप में यशोधरा का सम्पूर्ण चरित्र समाविष्ट हुआ है ।

मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' में भी यशोधरा प्रमुख पात्र है । यहां कवि की सम्पूर्ण दृष्टि यशोधरा के चरित्र चित्रण में ही केन्द्रित है । यशोधरा का जितना व्यापक, उदात्त तथा गौरव गरिमा से पूर्ण चित्रण कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में किया है,उसका 'सिद्धार्थ' में सर्वथा अभाव है यद्यपि 'सिद्धार्थ' में भगवान् सिद्धार्थ का चरित्र चित्रित करना कवि का प्रमुख उद्देश्य है । यशोधरा सिद्धार्थ से सम्बन्धित होकर ही काव्य में आई है अत: सम्पूर्णता की आशा नहीं भी की सकती, तथापि जितना चित्रण हुआ है उससे भी यशोधरा के चारित्रिक गौरव की अभिव्यक्ति नहीं हो सकी । 'सिद्धार्थ' में यशोधरा का कामिनी रूप कुछ अधिक प्रखर है । सिद्धार्थ के जीवन में वह रंगों की छटाएं लेकर प्रवेश करती है । शृंगार -सुख तथा यौवन के मद से, उनके जीवन को भरने के पूर्ण प्रयास में लगी रहती है । शृंगार की इस अधिकता के कारण ही किसी-किसी स्थल पर यशोधरा बहुत हल्के स्तर पर चित्रित हुई है ।रात में सिद्धार्थ के अकस्मात् उठ जाने पर वह अनेक प्रकार के हाव-भाव करके उन्हें रिझाने का प्रयास करती है --

---

१- सर्ग सत्रह

सिद्धार्थ जाग पड़ते ‿ यदि यामिनी में
 तो राग-रंग रच के बल यों रिझातीं,
उन्मत्त रवीय, रव पै बन कोकिला-सी
 वीणा -मृदंग पर मंजुल गान गातीं ।
झंकार रंग-गृह में कर घुंघुरू की
 जंघा-नितंब-कुच बाहु हिला हिला के,
वे हाव-भाव युत नेत्र नचा-नचा के
 हैं नाचती सुभग साज मिला-मिला के ।[1]

यशोधरा के इस रूप में रीतिकालीन नायिकाओं के हाव-भाव की झलक बहुत स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आती है । गुप्त जी की `यशोधरा` में यशोधरा के इस अतिविलासी रमणी रूप का कहीं संकेत भी नहीं हुआ है। यह ठीक है सिद्धार्थ तथा यशोधरा के दाम्पत्य जीवन की झांकियां प्रस्तुत करना यशोधरा काव्य का विषय नहीं है परन्तु यशोधरा की स्मृति में पूर्व संयोग के जो चित्र उभरे हैं[2] उन चित्रों के द्वारा दाम्पत्य जीवन की उज्वलता का संकेत भी मिल ही जाता है । गुप्त जी की यशोधरा में मातृरूप प्रधान है । वह कुल वधू है । भारतीय नारी की आदर्श प्रतिनिधि है ।`सिद्धार्थ` महाकाव्य में यशोधरा का विरह वर्णन भी मानो विरह दशाओं के चित्रण को उद्देश्य बना कर ही हुआ है ।उसमें हृदय की उस अनुभूति पूर्ण भावना का अभाव है जो एक बार ही संवेदना से भर दे । वर्ण परंपरा पालन का मोह अधिक है । यशोधरा विरहिणी `नायिका` ही बन सकी, स्नेहमयी विह्वल मां नहीं । वह मात्र पति वियोग से पीड़ित है ,उस पीड़ा में राहुल के ममत्व को स्थान नहीं मिल पाया है ।निरन्तर छ: वर्षों तक यशोधरा पति वियोग में आंसू प्रवाहित करती रहती है और उसे राहुल का विचार तक नहीं आता ।

१- सर्ग सात, पृ० १०२

२- यशोधरा, पृ० २३

यहां कवि की मनोवैज्ञानिक दृष्टि का भी अभाव है । इसके विपरीत 'यशोधरा' में राहुल यशोधरा की वेदना को संवेदनीय रूप प्रदान करता है । वियोग की पीड़ा से आकुल होकर गुप्त जी की यशोधरा मरने का विचार तक नहीं कर सकती क्योंकि वह केवल गौतम पत्नी ही नहीं है, राहुल जननी भी है --

फिर भी गोपा के कपाल में कहां आज यह योग ?
प्रियतम का क्या, यम का भी है दुर्लभ उसे सुयोग ?
बनी जननी भी आयारी
मरण सुन्दर बन आयारी [1]

राहुल जननी की पीड़ा को बहलाने के लिए एक मात्र राहुल है ।[2] उसकी अटपटी उत्सुकतापूर्ण बातों तथा शैशव की क्रीड़ाओं में गोपा की अधीर पीड़ा बहल जाती है -

राहुल बेटा विचित्र तेरी क्रीड़ा
तनिक बहल जाती है
उसमें मेरी अधीर पीड़ा क्रीड़ा [3]

१- यशोधरा, पृ० ४०

२- गौतम और यशोधरा के मध्य में राहुल को एक मध्यम कड़ी के रूप में रख कर कवि ने यशोधरा की अन्तर्दशाओं के सम्यक् प्रत्यक्षीकरण तथा उसके मान अनुराग की व्यवहारात्मक व्याख्या के लिए जो स्वाभाविक वातावरण तैयार कर दिया है उसकी तो अति प्रशंसा हो ही नहीं सकती । राहुल की बाल सुलभ क्रीड़ाओं के सहारे मान या अनुराग से अनुप्राणित जो उद्गार यशोधरा के हृदय से निकल पड़ते हैं वे प्रसंगवश अनायास ही निकल जान पड़ते हैं । ऐसी ही अभिव्यक्ति को कला की संज्ञा दी जाती है ।

-केसरी कुमार रघुवंश लाल, गुप्तजी और उनकी यशोधरा,

३- पृ० ४६

उसे केवल वियोग का रोना नहीं रोना है, वह पीड़ा तो अन्तरतम में समा ही गयी है अब तो उस दिन की भी प्रतीक्षा है जब उसका राहुल बड़ा होगा, जब उसकी अभुसिक्त आशा का अंकुर फलेगा। और राहुल जब बड़ा होकर जब पिता के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें पूछता है तो गोपा हृदय पर पत्थर रख कर उसकी बाल-सुलभ शंकाओं का समाधान करती है। राहुल को देख कर वह तुरन्त आंसू पोंछ कर बरबस मुस्काने का प्रयत्न करती है। इस चित्रण में पाठक के मानस चक्षुओं के समक्ष एक सौन्दर्य कृशांगी कोमल तरुणी का चित्र उभर कर चतुर्दिक करुणा का हाहाकार करता हुआ प्रतीत होता है। उसके स्वामी सिद्धि प्राप्त करने गये हैं, इससे अधिक गौरव की बात गोपा के लिए दूसरी नहीं है, किन्तु गोपा के प्रति अविश्वास मन में धारण करके चुपचाप रात में चले जाने का उसे महान दुःख है। यशोधरा में स्थित नारी के त्याग को समझने में गौतम भी असमर्थ रहे --

मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहचाना ? (पृ० २४)

क्षात्र-धर्म की पुकार पर स्वयं अपने हाथों से सुसज्जित करके राजपूत नारियां अपने अपने जीवन धन को वहां भेज देती हैं जहां पर पग मृत्यु मंडराती हुई पीछे रहती है। वहां वे हंसती हुई, कितने बड़े त्याग का परिचय देती है, किन्तु गोपा के हाथ से तो यह गौरव भी स्वयं उसके पति ने ही छीन लिया है। वह गा-गा कर उन्हें विदा देती। वह गौरव से पूर्ण होकर वियोग के इस असहनीय भार को झेलती। परन्तु वह सभी बातों से वंचित कर दी गई। पति के अविश्वास का व्याघात सदैव उसके हृदय को सालता रहेगा। निम्न पंक्तियों में यह व्याघात मान का कैसा अद्भुत रूप धारण करके गोपा के समक्ष खड़ा हो जाता है.... गोपा की कल्पना भविष्य की गहराई में उतर कर उस स्थिति में अपने को असमर्थ पाती है जब ----

गये स्वयं वे मुझे लजा कर,
लूंगी कैसे वाद्य बजा कर।

हँसेंगे जब उनको सब लोग[१]।

वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् भगवान् के आने की सूचना प्राप्त होते ही उसकी निष्ठा, उसका आत्मविश्वास, उसकी भक्ति एक साथ फलीभूत हो उठे । इस प्रसंग में मानिनी के मान और मानिनी के नारीत्व का जो चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है यशोधरा के चरित्र में वह अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है । अन्त में मान की ही विजय होती है । भव भव के भगवान का स्वागत करते हुए यशोधरा धन्य हो उठी । भगवान ने नारी के महत्व के प्रति, उसके सम्मान के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उसकी अर्चना की-

दीन न हो गोपे सुनो हीन नहीं नारी कभी....

गोपा का मानयुक्त नारीत्व और पत्नीत्व दोनों गद्गद् हो गए । अन्त में तो अनूप तथा गुप्त दोनों की ही यशोधरा भगवान् के चरणों में समर्पित हो जाती है किन्तु अनूप की यशोधरा, यशोधरा की उस गौरव गरिमा को प्राप्त नहीं हो पाई जो 'बुद्ध की पत्नी' के उपयुक्त हो सके । प्रत्येक परि-स्थिति में वह रीतिकालीन नायिका का ही स्मरण दिलाती हुई दृष्टि-गोचर होती है । 'सिद्धार्थ' की यशोधरा के पूर्वार्द्ध के चरित्र में से यदि कतिपय स्थलों की अवहेलना करतेहुए उसे गुप्त जी की यशोधरा के सम्पूर्ण चरित्र में समाविष्ट कर दिया जाय तो मानों बुद्ध-पत्नी यशोधरा अपने साकार एवं सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत हो जाती है ।

हल्दीघाटी काव्य में — महारानी

महाराणा प्रताप की पत्नी के वीरतापूर्ण तथा निर्भीक व्यक्तित्व को कवि ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है । जिस प्रकार बुद्ध की जीवन गाथा में गोपा के त्याग पूर्ण व्यक्तित्व को कविगण भूल गए थे उसी प्रकार

१- यशोधरा, पृ० ३५

महाराणा की पत्नी के निरन्तर संघर्षों से पूर्ण जीवन की गौरव गाथा भी काव्य में, महाराणा के शौर्य पूर्ण व्यक्तित्व में ही समाहित हो कर रह गई है[1]। 'हल्दीघाटी' के कवि द्वारा उस आदर्श तथा वीर नारी की एक हल्की-सी झलक दिखलाने का प्रयत्न अवश्य ही श्लाघनीय है। राजपूत नारी ने अपने वीर पति का पथ सदैव प्रशस्त किया है। परिस्थितियों से पराजित होकर चट्टान के समान दृढ़ व्यक्तित्व भी भले एक बार जीवन में पराजय स्वीकार कर ले किन्तु इतिहास साक्षी है कि राजपूत नारी के आदर्श चरित्र में, कभी सपने में भी स्खलन उत्पन्न नहीं हुआ। महाराणा प्रताप का पितृ हृदय क्षुधातुर बच्ची की करुण पुकार सुन कर डांवाडोल हो गया। अकबर से सन्धि करने का विचार क्रियान्वित हुआ, किन्तु समीप ही बैठी हुई महारानी ने पति का हाथ थाम लिया। इतिहास की एक सम्भावित घटना को उसने साकार रूप ग्रहण करने से रोक दिया[2]। उसकी मीठी फटकार ने महाराणा के मोहावरण को भेद कर पुनः उसके कर्तव्य के प्रति जागरूक किया। महारानी ने महाराणा को सचेत करते हुए कहा--

तू भारत का गौरव है
तू जननी -सेवा-रत है
सब कोई मुझसे पूछे ।[3]
तो तू ही तू भारत है ।[4]
...   ...
यदि तू ही कायर बन कर
वैरी से सन्धि करेगा ।
तो कौन भला भारत का
बोझा माथे पर लेगा ।[5]

१- सन्धिपत्र की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में तृतीय अध्याय में विचार किया गया है।

२- डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक ~~'एक रात का रहस्य'~~ 'प्रभिषेक पर्व' में महारानी के गौरवपूर्ण चरित्र का आकर्षक चित्रण हुआ है।

३-सर्ग, पंचदश   ४- वही   ५- वही

लुट गये लाल गोदी के
तेरे अनुगामी होकर ।
कितनी विधवाएं रोतीं
अपने प्रियतम को खो कर।[1]

और निम्न पंक्तियों में तो महाराणा के सम्पूर्ण वीर व्यक्तित्व को उसने मानो एक चुनौती सी दे डाली--

तू सन्धि पत्र लिखने का
कह कितना है अधिकारी
जब बन्दी मां के दृग से
अब तक आंसू हैं जारी[2]

जननी जन्मभूमि की पीड़ा से पीड़ित होकर वह स्वयं शत्रु की विशाल सेना के सम्मुख प्रस्तुत होने के लिए कटिबद्ध हो गई । महाराणा यदि समर से श्रान्त हो चुके हैं तो जन्मभूमि की रक्षा का भार वह अपने कन्धों पर लेने के लिए प्रस्तुत है । वह चण्डी बन कर समरांगण में कूदने के लिए तैयार है --

'थक गया समर से तो अब
रक्षा का भार मुझे दे ।
मैं चण्डी सी बन जाऊं
अपनी तलवार मुझे दे ।'[3]

१- सर्ग पंचदश
२- वही
३- वही

महारानी के वीरत्व की झलक इन पंक्तियों से अवश्य प्राप्त होती है किन्तु उसके चरित्र की उदात्त वीर भावनाओं के व्यापक रूप में चित्रण की आवश्यकता अभी शेष है ।

आर्यावर्त काव्य में — संयोगिता :-

आर्यावर्त में संयोगिता का चरित्र चित्रण कवि-कल्पना प्रसूत है । आर्यावर्त की राजपूत जाति को अपने नेतृत्व में संगठित करके वह पुन: विजयी शत्रु मोहम्मद गौरी के विरुद्ध जूझने के लिए कटिबद्ध होती है । महारानी संयोगिता -भारत अधीश्वरी,वीरांगना वेष धारण किए युद्ध स्थल की ओर प्रयाण कर रही है कवि कल्पना ने उस समय का चित्रण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया है —

मानो गिरीनंदिनी
असुरविदारिणी का लेके रूप रोष में,
जा रही है खेलने रणांगन में तारिणी।

+ +

जिन अंगों में फूल पीड़ा पहुंचाते थे ,
और गड़ जाती थीं पगों में भी पंखुरियां,
दुर्वह था भार अंगों के लिए शोभा का,
आज वही रानी संयोगिता कृपाण ले
जूझने को प्रस्तुत है ज्वाला मय युद्ध में । (पृ० १०२)

वीरत्व के इस परिवेश में संयोगिता के चरित्र के प्रति यह दृष्टि सर्वथा नवीन है । उसका यह वीरांगना रूप इतिहास में अपरिचित है । रण में धनुष-बाण लिए हुए वह शत्रु-शीश छेदने में रत है --

रण-चंडिका-सी ले धनुष निज कर में।
कौन था समर्थ ऐसा वीर अरिदल में
टिक पाता जो लिये शीश एकक्षण भी । (पृ० १०७)

काव्य के अन्तमें कवि संयोगिता के द्वारा राज्य कार्य सम्पन्न किए जाने का संकेत भी करता है --

> शेष कर राज-काज भारत अधीश्वरी
> बैठ गयी जाके उद्यान में थकी हुई । (पृ० १५५)

कवि की राष्ट्रीय भावना ने संयोगिता को देश प्रेमिका महारानी के रूप में चित्रित करके चरित्र चित्रण की परम्परागत स्थापनाओं में परिवर्तन का संकेत किया है

जौहर तथा सती पद्मिनी काव्यों में-पद्मिनी :-

चित्तौड़ के महाराणा रत्नसिंह की अनिन्द्य सुन्दरी पत्नी महारानी पद्मिनी का चारित्रिक विकास`जौहर` में चरमोत्कर्ष पर है । जायसी कृत `पद्मावत` की पद्मिनी ,जौहर में एक भिन्न रूप लेकर प्रस्तुत हुई है । उसके चारित्रिक उत्कर्ष को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने अनेक कल्पनाओं का सहयोग लिया है जिसके कारण पद्मिनी का वीरत्व,सतीत्व,त्याग,बलिदान, और उसके जीवन की करुणा, काव्य की एक-एक पंक्ति में मूर्त हो उठे हैं । विवाह हुए अभी कुछ मास ही हुए थे कि महारानी के सौन्दर्य पर काली घटाएं घिर आयीं। फूल सी सुकुमारता, कमल दल सी मृदुता,पावन कंचन सा अप्रतिम सौन्दर्य, अभिशाप बन गया । पद्मिनी केवल सौन्दर्य का चित्रण श्रीनाथ सिंह की`सती पद्मिनी`में हुआ है ।कवि ने रानी की सुन्दरता का चित्र प्रस्तुत करते हुए उसके एक-एक अंग को मूर्त करना चाहा है[१]। उसका यही सौन्दर्य तत्कालीन यवन बादशाह रूप-पिपासु अलाउद्दीन की तृष्णा का कारण बना ।चित्तौड़ अलाउद्दीन की विशाल सेना से घिर गया--

---

१- उसके मुख मयंक में कुछ कुछ थी रवि की आभा आई।
मेघा वृत काली रजनी थी केश-राशि बन कर छाई ।।
+ +
पीपल की कोमल कोपल सी थी उठती गिरती पलकें
बौरानियां उतनी ही काली थीं जितनी काली अलकें ।

शेष-

हा विधना, हा क्यों मैंने
इतनी सुन्दरता पायी
हा मेरे लिए बनी है
सुन्दरता ही दुखदायी ।[1]

आखेट करते हुए रावल रत्नसिंह को अलाउद्दीन के गुप्तचरों ने बन्दी बना लिया, यह सूचना प्राप्त होते ही वह सिहर उठी । सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि भी सौन्दर्य देवियां थीं । सौन्दर्य के कारण सीता ने स्वयं कष्ट सहन किया था किन्तु पद्मिनी के लिए तो नियम ही उलटा हो गया।[2] क्षण भर के लिए रानी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई । अपमान और वियोग ने उसे चेतना हत कर दिया ।[3] रानी के अन्तर ने उसकी इस कायरता का विरोध किया। गौरव से पूर्ण तथा महिमामण्डित चित्तौड़ की यह राजधानी और उसकी यह कायरता एक साथ कैसे ?[4] क्षण भर पूर्व की अबला सबलतम रूप लेकर उठी----

----

शेष१--जो नन्हीं मछली की थपकी सा कमल कली जो खिलती है
छवि उसकी कुछ कुछ नयनों की चन्चल गति से मिलती है।
-सती पद्मिनी

१- जौहर, सातवीं चिनगारी

२- सीता सुन्दर थीं, तो थीं
बन्दी रावण के घर में।
पर यहां नियम उलटा है
पति ही वैरी के कर में ---- सातवीं चिनगारी

३- यह सोच बिलखती रानी
मुख पर दुख बरस रहे थे ।
आंखों से सावन के घन
अंचल पर बरस रहे थे -- वही-वही

४- इस वीर किले पर पहले
यह कायरता आई है
धिक पहले पहल किले पर
क्षत्राणी मुरझाई है -- वही--वही

बन गया वदन ईंगुर-सा
भौंहें कमान सी लरकीं ।
लोहित अधरों में कम्पन
रानी की आंखें फरकीं ।[1]

कस लिया वक्ष अंचल से
कटि में कटार कर बांधी
करवाल करों में चमकी
दरबार चली बन आंधी[2]

मृदुता और कोमलता, महिषमर्दिनी महाकाली की गरज बन गई। वह महाप्रलय की ज्वाला बन कर धधकने लगी । उसकी शक्ति और बुद्धि का परिचय देकर कवि ने रानी को नवीन रूप प्रदान किया है । वह राजपूत नारी है । उसका पति यवन शिविर में बन्दी है और राजपूत सरदार विचार विमर्श में उलझे हुए हैं । उसमें स्वयं इतनी शक्ति है कि वह अकेली ही यवन के बन्धन से पति को छुड़ालायगी । महारानी की ललकार में जीवन्त प्रेरणा थी । सरदार, सती धर्म की रक्षा और आन पर मिटने के लिए फड़कने लगे । रानी ने पति की मुक्ति के लिए जो योजना की उससे उसकी राजनीतिक बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है --

तो क्या अधिकार, करो पर
तुम भी अब छल चतुराई
सीधे से और से बोलो,
अन्तर में भर कुटिलाई।
कह दो कि सात सौ सखियां
उसके संग संग रहती हैं

१- सातवीं चिनगारी

२- वही वही

उसकी तन-पीड़ा को ले
अपने तन पर सहती हैं
उसके पति को छोड़ें तो
अपनी सहचरियों को ले,
वह शोभित मण्डल करेगा
ले साथ सात सौ डोले ।[१]

मुक्त कराने के पश्चात् भी शत्रु के पुनः आने का भय बना रहा । ~~मध्यरात्रि~~ एक वर्ष उपरान्त अलाउद्दीन का आक्रमण हुआ ।इस प्रसंग में कवि ने महारानी के करुण जीवन का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है । भावी चिरवियोग की आशंका और भय ने संयोग के क्षणों में ऐसी वेदना भर दी है कि करुणा का सागर ही छलछला उठा है । क्रूर शत्रु की विशालवाहिनी के सम्मुख मुट्ठी भर राजपूत कब तक ठहरते ? अन्त में सतीत्व के रक्षार्थ महारानी ने अन्य वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला में प्राण समर्पित कर दिए ।

`जौहर` की चिनगारियों में विकसित महारानी का सम्पूर्ण चरित्र अत्यन्त मार्मिक है । उसका वीरत्व भी मानो उसकी वेदना की कहानी कहता हुआ ही प्रस्तुत हुआ है । उसके सतीत्व का चरम रूप निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है--

मैं जलूं तो राख को तू
दे उड़ा दिशि से गगन पर
पातकी रज छू न पावे
नभ लिखे मेरे निधन पर[२]

प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व से पूर्ण सोलहवीं तथा सत्रहवीं चिनगारी में महारानी के चरित्र ने एक ऐसे मौन तथा अश्रुसिक्त वातावरण का निर्माण किया है,

----

१- सातवीं चिनगारी
२- आठवीं चिनगारी

कि पाठक भावविभोर होकर इस सती नारी के चरणों में, एक दो अश्रु सुमन चढ़ाए बिना नहीं रह सकता । वस्तुत: पद्मिनी के चरित्र चित्रण में 'जौहर' का कवि पाठक को अपनी अनुभूति की गहराई तक ले जाने में पूर्ण सफल है ।महारानी पद्मिनी जैसी नारियों के ही इस आत्मोत्सर्ग और वीरतापूर्ण व्यक्तित्व की क्रोड़ में आज चित्तौड़ की क्या, सम्पूर्ण राष्ट्र का नारी-गौरव सुरक्षित है ।

'विक्रमादित्य' काव्य में — ध्रुवदेवी :-

ध्रुवदेवी विक्रमादित्य काव्य की नायिका है । इसका चरित्र आदि से अन्त तक प्रेम, भावुकता, त्याग के आदर्श, तथा राष्ट्रप्रेम की सामान्य धाराओं में प्रवाहित हुआ है । हृदय से चन्द्रगुप्त को चाहते हुए भी दुर्भाग्यवश इसे सम्राट् रामगुप्त की पत्नी बनना पड़ा, किन्तु चन्द्रगुप्त की पूजा में अर्पित उसका हृदय सम्राट् के प्रति कभी प्रेम पूर्ण न हो सका । चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम निवेदिता के रूप में, आवेश और आवेग के मिश्रित भावों के कारण, काव्य में ध्रुवदेवी का चरित्र, आरम्भ में कुछ हल्कापन लिए हुए है । 'प्रसाद' की ध्रुवस्वामिनी की उदात्तता तथा गंभीरता का यहां सर्वथा अभाव है ।चन्द्रगुप्त की उदासीनता उसे खिन्न कर देती है । वह प्रेम के स्थानपर शक्ति के भय से उस पर विजय प्राप्त करना चाहती है, किन्तु प्रयत्न में उसे खो कर वह पश्चाताप करती है । यहां से उसका चरित्र उत्कर्ष की ओर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है और अन्त तक पहुंचते पहुंचते वह त्याग तथा राष्ट्रप्रेम की भावनाओं से ओत प्रोत नारी के रूप में प्रतिष्ठित हुई है ।

वह प्रेम की सच्ची पुजारिन है । स्वयंवर के अवसर पर प्रथम दर्शन में ही चन्द्रगुप्त को अपना हृदय दान कर देती है---

पर मेरा मन माना तुमसे पा निजत्व का आकर्षण
जिसने मचा दिया मानस में मेरे अद्भुत संघर्षण—
मानस सिंहासन पर निज सम्राट बिठा मैंने तत्काल
श्रद्धायुत निज हृदयेश्वर को दी पहना मधुक की माल (पृ० १)

अपने इस प्रेमी मन के वशीभूत होकर वह मानसिक कष्ट की परिधि में बंध जाती है। मर्यादाशील चन्द्रगुप्त अग्रज की पत्नी के प्रति आकर्षित नहीं होना चाहता। परन्तु ध्रुवदेवी अपने आराध्य को प्राप्त करने के सम्पूर्ण प्रयत्नों में अपूर्व धैर्य का परिचय देती है। प्रेम निवेदन में हल्केपन के साथ ही अन्य स्थलों पर उदात्त प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति भी दर्शनीय है। अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने पर भी चन्द्रगुप्त के तटस्थ रहने पर ध्रुवदेवी अत्यन्त मार्मिक हो उठी है-

अथवा मुझे प्रेम करने को नहीं रहा मन माना हो ,
तब भी मानवता के नाते मिलते जुलते रहो सदा,
भूले भटके दर्शन मुझको दिया करो तुम यदा कदा
यदि तुमको कुछ लगन और है इधर नहीं झुकने की टेक
तो मैं मार्ग नहीं रोकूंगी ग्यारह बनें मिलें दो एक
तुल्यांतर दोनों रेखाएं विलग रहें पर साथ कहें
दोनों मिल कर एक न हों पर युगल मिलाये हाथ कहें ।[1]

ध्रुवदेवी को आत्मसम्मान बहुत प्रिय है। रामगुप्त शक क्षात्रप को उसे देना स्वीकार कर लेते हैं तो उसका नारीत्व फुफकार उठता है। वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए कटिबद्ध हो जाती है -

मुझे दूसरे को देने का नहीं किसी को है अधिकार,
यदि हां कर दी कायरता से तो भेजो यह शीश उतार,
छू न सकेगा मुझको कोई लाशें सर गिर जावेंगे,
जब इस तन पर शीश न होगा तब वे मुझको पावेंगे ।[2]

१- पृ० ६

२- पृ० ५६

दूत रूप में शक दाजप के शिविर में जाने तथा चन्द्रगुप्त से भेंट करने में ध्रुवदेवी की निर्भीकता का परिचय मिलता है । राज्य त्याग कर प्रेम पथ की पुजारिन बन कर वह निर्वासित चन्द्रगुप्त को खोजती फिरती है। अन्त में अपने प्रेम की एकनिष्ठता द्वारा वह उसे प्राप्त करने में सफल होती है । ध्रुवदेवी त्याग मयी प्रेमिका है । अनेक कष्ट तथा साधना के पश्चात् प्राप्त हुए चन्द्रगुप्त पर भी वह अपना एकाधिकार रखने की आंकाक्षा नहीं रखती । पूर्वविवाहिता किन्तु विस्मृत पत्नी कुबेरनागा को वह सहर्ष चन्द्रगुप्त की पत्नी बना देती है । निम्न पंक्तियों में इस त्यागपूर्ण भाव की अभिव्यक्ति हुई है ---

बहुत ही धन्यवाद है देवि भेंट यह करती हूं स्वीकार,
खोज कर तेरा खोया पति तुझे मैं देती हूं उपहार,
विलोको नहीं चकित होकर गई उसका रहस्य सब जान,
शाप वश शकुन्तला को नहीं सका दुष्यन्त आज पहचान,
उठो प्रिय देव! न झिझको अब, स्वपत्नी को आ अपना लो
न सकुचो तुम `कुबेरनागा` तुरत तुम जयमाला डालो[१] ।

`तप्तगृह` के काव्य में -- महारानी कुशला :-

महारानी कुशला का चित्रण ऐसी परिस्थिति में हुआ है जो आदि से अन्त तक उसे संघर्ष की चक्की में पीसती रहती है । नारी मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर आधारित यह चित्र अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण है । सहनशीलता और दया नारी के स्वाभाविक गुण हैं । महारानी त्रिशला सहनशीला हैं किन्तु पुत्र द्वारा अपने सोहाग को उजड़ता हुआ देख कर वह उसके रक्त की प्यासी हो उठी । उसका अपना ही रक्त जब उसका भविष्य नष्ट करने के लिए प्रस्तुत हो गया है, तो वह भी शोणित का बदला शोणित से चुकाना चाहती है ---

----

१- पृ० २९६

आती हुई आंधी की
गति को संभालूंगी
बुझने न दूंगी मैं
सूर्य भी मगध के (पृ० १८)

और भी ----

मैं भी चाहती हूं रक्त
कोणक का, क्या हुआ
यदि है उत्पन्न वह
मेरी ही कोख से ?
शोणित का शोणित से
जाता चुकाया है
मूल्य इस जग में।
मेरी पुकार सुन
आज राजगृह की
मिट्टी नहाएगी
शोणित में कोणक के। (पृ० १८)

प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलते हुए मातृत्व को गति ने बचाया। नारी सर्व प्रथम मां है। बिम्बसार कुशला को उसके जननी रूप के प्रति सचेत करते हैं। उन्माद में मातृत्व नारी भले ही विस्मृत कर बैठे किन्तु वह उसकी नितान्त अवहेलना कभी नहीं कर सकती। यही कारण है कि सचेत किए जाने पर कुशला की हिंसा अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाती। महाराजा बिम्बसार की मृत्यु के पश्चात् उसकामातृत्व , पत्नीत्व को पीछे करके, स्वयं आगे आ खड़ा होता है। वह अपने में परिवर्तन अनुभव करती है। वह स्वयं देख रही है कि जिन आखों में एक दिन प्रतिहिंसा और क्रोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी थी आज उनमें से ही मातृत्व झांक रहा है। उसका हृदय अवश सा रो उठा, उसने अनुभव किया कि---

पत्नी नरेश की
कुशला न आज है

आज वह माता है
माता ही केवल है
स्मृति के उदास और
निर्जन प्रदेश में
आज पत्नीत्व धूलि-
कण है बटोरता
और मातृत्व रहा
झांक इन्हीं आंखों से
जिनमें अमर्ष था
कांप उठा एक दिन । (पृ० १३५)

कुशला की नारी में कवि ने दो महत्वपूर्ण विचार धाराओं का प्रतिपादन किया है। विवाह के पश्चात् नारी का जीवन पत्नीत्व और मातृत्व इन दो अंगुलियों को पकड़ कर चलता है। दोनों के लिए ही वह प्राण न्यौछावर करती है दोनों से उसे जीवन से अधिक प्यार है किन्तु यदि एक अंगुली दूसरी अंगुली के तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो जाय तो... यहीं कवि ने नारीजीवन की ममता को महत्वपूर्ण रूप प्रदान करते हुए उसके मातृत्व की विजय का प्रतिपादन किया है। नारी के चिर-कल्याण-मय जननी-रूप की विजय, महारानी कुशला के पत्नीत्व की पराजय होते हुए भी, नारी जीवन की उच्चतम अभिव्यक्ति है।

`झांसी की रानी` काव्य में — महारानी लक्ष्मीबाई.

श्यामनारायण प्रसाद तथा आनन्द मिश्र द्वारा निर्मित दो महाकाव्यों की नायिका है। दोनों काव्यों में महारानी का चरित्र राष्ट्र प्रेम की ज्योति से जगमग है। वह आत्मगौरव तथा आत्माभिमान से पूर्ण है। महारानी का चरित्र जन्म से लेकर मृत्यु तक की परिधि में विकसित हुआ है। झांसी की युवा रानी लक्ष्मीबाई मन्नूबाई के रूप में निर्भीक तथा उत्साही बालिका है[1]। उसकी

१- घोड़े को रोक मनू बोली
`नाना साहब ! अब रुक जाओ।

शेष-

बौद्धिकता सम्पन्न विचारशीलता की अभिव्यंजना, पिता मोरो पन्त से हुए वादविवाद से हुई है । तनिक से घाव से नाना साहब का परिवार चिन्तित हो उठा है । स्वयं नानासाहब मूर्छित हो गए हैं । वे राजपूत, युद्ध क्षेत्र जाकर अस्सी-अस्सी घाव शरीर पर झेलने वाले पूर्वजों के शौर्य का अनुकरण किस प्रकार कर सकेंगे, यह बात उसकी भोली समझ में नहीं आती । उस शौर्य को अतीत युग की बातें कह कर मोरोपन्त उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं । उत्तर में वह जो अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती है उससे अल्पायु में ही उसके बुद्धि वैभव का परिचय मिलता है--

हे तात ! वही आकाश धरा
हम सब का भी है रूप वही
नभ में है अभी वही रवि शशि
तारों का वेश अनूप वही । 1

उस वीर शिवा की जन्म-भूमि
शिवनेरी का है दुर्ग वहीं ।
है वही अभी हल्दी घाटी
चित्तौर दुर्ग है खड़ा वहीं । 2

शेष- हो रोक राव साहब । भाला
आगे न बढ़ो तुम रुक जाओ।
देखूंगी किस का बाजि आज
विजयी होता है भालों में।
पर्वत के उन्नत शिखरों पर
बरछी, भाले, करवालों में ।। - दुर्गा हुंकार

1- दुर्गा हुंकार

2- वही

मानवता के उत्कट उत्साह तथा कर्मशीलता की कहानी उसे स्मरण है। वह अपने समय में भी मानव को उसी रूप में देखने की इच्छुक है ---

मानव ने हिमगिरि को लांघा
जलनिधि को गण्डुलि परपीया
अन्तक की छाती कंपा-कंपा
अवनी पर युग युग तक जीया।[१]

झांसी की रानी बन कर यह मन्नूबाई विचारशीला, धैर्य सम्पन्न, आशावादी तथा राष्ट्र पर सर्वस्व न्योछावर करने वाली प्रेरणापूर्ण वीरांगना के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। महारानियों के वैभव और रागरंग से पूर्ण परम्परागत जीवन को अपनाना उसके लिए कष्टकारी है। साधारण परिवार में पोषित मन्नूबाई को महलों के राजसीवैभव का आकर्षण कर्तव्य पथ से विमुख नहीं कर सका। ध्येयनिष्ठ लक्ष्मीबाई साजसज्जा में जीवन व्यतीत नहीं कर सकती जब कि---

धरा पर हो पतझड़ का राज
भूमि का लुटता हो नव-साज।
और मैं बैठ दासियों बीच
सजाऊं अपना नूतन साज ?[२]

वह अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है। उसका व्यक्तित्व आत्म-विश्वास की अटूट भीत्ति पर आधारित है। उसके आत्माभिमान पर यदि प्रकृति कटाक्ष भी करे तो उसे चिन्ता नहीं, क्योंकि वह अपना पथ निश्चित कर चुकी है--

भले ही हंसे गगन मुंह मोड़
समझ कर यह कोरा अभिमान
चढ़ा कर बलि वेदी पर शीश
करूंगी मातृभूमि का गान[३]

१- दुधारी हुंकार
२- पांचवीं हुंकार
३- वही

इसी आत्मविश्वास और कर्तव्यनिष्ठा के कारण वह झाँसी के नरेश, पति गंगाधर राव के विचारों का विरोध करती है । उसे यह कदापि सहन नहीं है कि ब्रिटिश शक्ति से भयभीत होकर महाराज राज्य का पंचमांश देना स्वीकारकरें।अपनी आत्मशक्ति की हीनता को नियति की देन मान करके उसे छिपाने का प्रयत्न करें। वह मीठी फटकार सुनाते हुए उन्हें कर्तव्य के प्रति जागरूक करने का प्रयत्न करती है । अंग्रेजों द्वारा घातक मित्रता के रूप में दिए गए इस अपमान पूर्ण सम्मानकी घूंट पीकर चुपचाप बैठने में उसे सर्वनाश की ज्वालाएं दिखाई देती हैं । इन ज्वालाओं का प्रतिरोध केवल वीरतापूर्ण संघर्ष में है --

जो पुन: केसरिया बाना
हय पर दौड़े कुशल-सवार
युद्ध छोड़ कर चमचम चमकें
बरछी भाले,तीर, कटार ।।
रनिवासों में रानी जागे
तज कर अपना भोग-विलास
रंग भवन के कदा-कदा में
हो हथियारों का ही वास ।।[१]

वह नारी की आत्म-निर्भरता की भी पक्षपाती है । वह चाहती है तन और मन दोनों प्रकार से नारी सबल बने। पुरुषों के आश्रय में रहते हुए भी वह आत्मिक और शारीरिक शक्ति से पूर्ण हो । इस कथन की पृष्ठभूमि में आधुनिक युग के वैज्ञानिक युग की नारी का स्वर गूंजता हुआ सुनाई देता है ---

इसीलिए मैं भी कहती हूं
सखियों को देकर तलवार।

१- उठी हुंकार

कभी न नर बन सक पावेगा
नारी लज्जा की पतवार ।[1]

विचार और कार्य दोनों रूपों में लक्ष्मीबाई का वीरत्व साकार हुआ है । कवि उसके वीरत्व से सर्वाधिक प्रभावित है । युद्ध क्षेत्र में भवानी का रूप धारण किए दोनों हाथों में तलवार लेकर संघर्ष रत रानी का एक चित्र प्रस्तुत है --

दांए बांए दो हाथों से
रानी थी रिपु सिर काट रही
स्वातंन्त्र्य -भवन की नई नींव
थीशत्रु मुण्ड से पाट रही ।[2]

+ +

केवल इतना कह पाते थे
रानी आई, रानी आई
तब तक सिर धड़ से अलग लोट
भू पर कहता रानी आई ।।[3]

एक और रानी का यह दृढ़ चट्टान सा व्यक्तित्व है दूसरी और पुत्र शोक में विलख बिलख कर रोती हुई वह भारतीय गृहस्थ की एक साधारण नारी के रूप में चित्रित हुईहै । आत्म निर्भरता के मूल मंत्र को धारण करके चलने वाली लक्ष्मीबाई पुत्र के आश्रय से विहीन,कैसे जीवन व्यतीत करेगी। कौन उसकी लाठी का सहारा होगा, यही स्मरण करके महारानी वेदना व्यथित हो उठती है--

कौन आंख का तारा बन कर
विमल प्रकाश दिखावेगा ?
कौन हाथ की लकुटी बन कर
पथ पर मुझे बढ़ावेगा ?

१-छठी हुंकार
२- बाईसवीं हुंकार
३- वही , वही

तब मैं लाल कहूंगी किसको
मां कह कौन पुकारेगा ?
श्रवण कुमार-सदृश कांवर पर
लेकर कौन उबारेगा ?[1]

परन्तु मां की यह विह्वलता अधिक विकसित नहीं हो पाई । युद्ध की विकरालता में प्राचीन पुस्तकालयों का विध्वंस देख कर वह रो पड़ती है। स्वतंत्र भारत को अपनी आँखों से देखने की अभिलाषा में उनकी स्वाभाविक मानवीय कामना मार्मिकता के साथ व्यक्त हुई है । शत्रुकी गरजती हुई तोपों के समक्ष प्रखर संघर्ष में रक्त रानी अरि-मुण्डों से भूमि पाटती हुई विचलित नहीं होती, परन्तु स्वामि-भक्त घोड़े की मृत्यु पर वही रानी असंख्य अश्रु बहाती है --

रो रही थी बैठ रानी
बाल साथी रो रहा था
स्वामि भक्ति प्रतीक निश्चल
भूमि रज पर सो रहा था ।[2]

यद्यपि यह करुणा अधिक समय तक महारानी के जीवन में व्याप्त नहीं रहती, उसकी कर्तव्यनिष्ठा उसके वीर रूप को ही अधिक साकार कर पाई है, तथापि इस स्वाभाविक मानवीय दुर्बलता ने उनके चरित्र को अधिक संवेदनापूर्ण बना दिया है । अन्त में श्वास के अन्तिम बिन्दु तक यह वीरांगना गोरों की सम्मिलित शक्ति से वीरतापूर्वक जूझती हुई राष्ट्र के लिए, स्वतंत्रता के लिए तथा देश प्रेम के हित उत्सर्ग हो गई । कवि ने महारानी के सम्पूर्ण जीवन का वस्तुत: मार्मिक किन्तु ओजपूर्ण चित्रण किया है ।

१- सातवीं हुंकार

२- अट्ठारहवीं हुंकार

चित्तौड़ की चिता तथा अन्य काव्यों में —

राजपूत नारियों ने भारतीय इतिहास में सती धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग करने तथा अवसरउपस्थित होने पर वीरतापूर्वक युद्ध में आकर शत्रु से जूझ जाने के प्रसंग में विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है । `चित्तौड़ की चिता` में महारानी करुणा ने सती धर्म के हेतु प्राणोत्सर्ग का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है । राजस्थान के नारी सौन्दर्य को प्राप्त करने की प्रेरणा से प्रेरित होकर कामपिपासु यवन सत्ताधारी अनेक बार राजस्थान के सुदृढ़ किलों की ओर बढ़े किन्तु इतिहास साक्षी है कि उन्हें अपने अभियान में भले ही सफलता प्राप्त हुई परन्तु सतीत्व पर मिटने वाली वीरांगनाओं को वे देख भी नहीं पाते थे ।`चित्तौड़ की चिता` में महारानी करुणा के कथन द्वारा इस सत्य की पुष्टि हुई है । सैनिकशक्ति की दृष्टि से उसका राज्य असहाय है तो क्या हुआ?आत्मबल में बड़े से बड़ा साम्राज्य, उसकी और उसके किले की वीरांगनाओं की समता नहीं कर सकता-

छीन कर मुझसे सब चित्तौर
करे वह शीघ्र हजारों यत्न
किन्तु उड़ जायेगा पिक रत्न
भले ही ले वह सारा और ।[1]

महारानी राजपूत नारी के कार्य को जानती है । उनके सतीत्व पर आंच नहीं आ सकती । शत्रु राज्य के धन को लूट लेगा किन्तु भवन के भीतर घुस कर मुट्ठी भर राख के अतिरिक्त और कुछ उसके हाथ नहीं लगेगा-

रहेगा रत्न सतीत्व अम्लान
रत्न ढेरों ला कर ले यवन
घुसेगा जब वह भीतर भवन
देख लेगा ललना बलिदान ।[2]

१- सर्ग ग्यारह, पृ० ६६
२- वही पृ० ६६

राजपूत नारी सम्मान सहित जीना जानती है, तो सम्मान सहित मरना भी जानती है । श्रीनाथ सिंह की सती पद्मिनी, रामकुमार वर्मा की चित्तौड़ की चिता, ठा० भगवतसिंह विशारद की वीरांगना वीरा, द्वारकानाथ गुप्त की आत्मार्पण, तथा सती सारन्धा आदि खंडकाव्य रचनाओं में राजपूत नारी के इसी आदर्श पूर्ण चरित्र की अभिव्यक्ति हुई है ।

(२) ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में अन्य नारी पात्र :-

इन विशिष्ट पात्रों के अतिरिक्त ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में कुछ ऐसे नारी पात्रों का चित्रण भी हुआ है जो चरित्र चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्वहीन होते हुए भी प्रधान पात्रों के गुणों के विकास में सहायक हैं । ये पात्र भिन्न-भिन्न मानवीय मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं ।

`नूरजहां` काव्य की कमीला काल्पनिक पात्र है । ईर्ष्या की प्रतिमूर्ति है । मेहर और सलीम के प्रेमपूर्ण जीवन में बाधा बन कर वह अपनी वासनात्मक मनोवृत्ति का नग्नचित्र प्रस्तुत करती है । सर्व सुन्दरी एक आदर्श महिला के रूप में काव्य में आई है । पातिव्रत धर्म के विचारों का प्रतिपादन उसी के द्वारा हुआ है ।

`यशोधरा` काव्य की गंगा तथा गौतमी गोपा की सखियां हैं । गोपा के सुख दुख में स्वयं सुखी तथा दुखी होने वाली चतुर और कुशाग्र बुद्धि से पूर्ण हैं। यशोधरा के चारित्रिक गुणों के विकास में सहायक हैं । चित्रा और विचित्रा यशोधरा की आज्ञाकारी दासियां हैं ।

`झांसी की रानी` काव्य में सुन्दर मुन्दर लक्ष्मीबाई की साहसी निर्भीक तथा देश प्रेम की बलिवेदी पर शीश भेंट में चढ़ा कर वीरता का प्रतिनिधित्व करने वाली सखियां हैं ।

`आर्यावर्त` की कविरानी देश प्रेम से पूर्ण पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली साहसी तथा निर्भीक नारी है । हताश चन्द को प्रेरणा देते हुए वह उसे जीवन कर्तव्य से विमुख नहीं होने देती । वह साहस को जीवन और हत-आशा को मृत्यु की संज्ञा देती है --

बोली कविरानी-' आर्य इतनी हताशा आज
शोभा नहीं देती आप जैसे धीर-वीर को ।
भाग्य क्या है निर्बलों का तुनुक सहारा है,
और निर्माता है स्वयं निज भाग्य के ।[1]

इस प्रकार आलोच्यकालीन ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों का चरित्र चित्रण की दृष्टि से विवेचन करने पर सामान्य रूप से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं - चरित्रचित्रण में खड़ी बोली के कवि ने ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए पात्रों के जीवन के विविध पार्श्वों का उद्घाटन किया है । काव्यगत व्यक्तित्व की स्थापना में मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनाई है । देव और दानव की परिधि को लांघ कर चरित्रों में आदर्श और यथार्थ का आकर्षक समन्वय हुआ है ।नायक नायिकाओं के निर्वाचन की दृष्टि से भी मान्यताएं बदलीं[2] । प्राय: सभी महत्वपूर्ण नारी और पुरुष पात्र युग की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में अवश्य करते दिखलाई पड़ते हैं ।'जयचन्द'संयोगिता चन्दबरदाई आदि चरित्रों से यह स्पष्ट है कि कवियों ने ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्रों में कुछ ऐसी नवीन परिवेश जोड़ दिए हैं जिनसे उनके चरित्रों का यह परिवर्तित रूप मानव स्वभाव की एक विशेष परिणति के रूप में प्रस्तुत हुआ है । चरित्र चित्रण में नाटकीय तत्वों के समावेश द्वारा एक विशिष्ट प्रभविष्णुता के दर्शन होते हैं ।



१- सर्ग पंचम, पृ० ६०

२- आधुनिक युग में नायक नायिकाओं की मान्यता और भी साधारण तल पर उतर आई । प्रत्येक जातीय वीर और राष्ट्रीय वीर नायक था । सत्याग्रह आन्दोलनों ने सत्याग्रही के रूप में एक नया वीरादर्श दिया ।

-रामरतन भटनागर, हिन्दी साहित्य :एक अध्ययन , पृ० २६७

षष्ठ अध्याय

ऐतिहासिक सन्दर्भों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

हिन्दी खड़ी बोली के ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है । केवल मात्र वस्तु वर्णन अथवा नायकों के शौर्य एवं विक्रम का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करना कवि को अभीष्ट नहीं है तथा ऐतिहासिक पात्रों के स्थूल सौन्दर्य का कलात्मक चित्रण भी उसका ध्येय नहीं है । उसने पात्रों के बाह्य क्रिया-कलाप अथवा स्वभावगत गुणों का ही वर्णन नहीं किया है । किन्हीं विशेष क्षणों के प्रतिक्रिया स्वरूप जो सूक्ष्म भाव -लहरी ऐतिहासिक पात्रों के जीवन तथा विचार जगत् को आन्दोलित करती रही है उसका सम्बन्ध पात्रों के मनोजगत से है । कवि-दृष्टि ने उसका भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है ।पात्रों के बाह्य जीवन की रूपरेखा के साथ साथ उनकी मानसिक प्रक्रियाओं के उतार चढ़ाव के सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा कवि ने पात्रों के मानस जगत् की विविध झांकियां भी प्रस्तुत की हैं । मानव मनोविज्ञान की विभिन्न स्थितियां होती हैं । इस प्रकरण में भावना तथा कल्पना ,अन्तर्द्वन्द्व, आत्म-बलिदान एवं उत्सर्ग भाव की परिधि में काव्यगत ऐतिहासिक सन्दर्भों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

(क) भावना तथा कल्पना :

काव्य में भावना तथा कल्पना का अर्थ सामान्यत: कवि की भाव प्रवण शैली से ग्रहण किया जाता है । काव्य का विहंग भावना और कल्पना के पंखों द्वारा असीम आकाश में विहार करता हुआ मानव जीवन की सुन्दर से सुन्दर झांकी प्रस्तुत करता है । ऐतिहासिक काव्यों में भाव सौन्दर्य की दृष्टि से स्थिति किंचित भिन्न है । इन काव्यों में पात्रों का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व मिलता है । कवि उस व्यक्तित्व के बहिर्जगत् एवं अन्तर्जगत् का चित्रण करके पात्रों के विविध भावों को साकार रूप प्रदान करता है । इस प्रकार ऐतिहासिक कथा-काव्यों में पात्रगत् भावना विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है । खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में काव्यकारों ने पात्रों के इसी भाव जगत की ओर संकेत करके चारित्रिक सौन्दर्य को उत्कर्षता प्रदान किया है तथा इसी सौन्दर्य को पात्रों के मनोविज्ञान की पीठिका के रूप में उपस्थित करके चरित्रगत उत्कर्ष की प्रतिष्ठा

भी की है । यहाँ कतिपय उद्धरणों से उपर्युक्त कथन स्पष्ट करना आवश्यक है ।

'मौर्य विजय' में कवि सियाराम शरण गुप्त ने चन्द्रगुप्त तथा हेलेना के प्रेम-भाव का सुन्दर चित्रण किया है जिससे चन्द्रगुप्त तथा हेलेना के व्यक्तित्वों के कोमलतम रूप की अभिव्यक्ति हुई है । दो प्रेमियों के पारस्परिक आकर्षण का चित्र निम्न पंक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है —

देव-सुन्दरी-सदृश लिये शोभा मन भाई,
हेलेना भी उन्हें उसी क्षण दी दिखलाई ।
तब बाला का आलोकमय अनुपम रूप निहार के
वे मुग्ध हो गये चित्त में अपनी दशा बिसार के
नृपवर ने दी एक बार उसकी अवलोका
किन्तु संभल कर शीघ्र उन्होंने मन को रोका ।

वार्तालाप करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त लौटने लगे । उनका हृदय न माना, जाते-जाते भी सम्राट्-

हेलेना को एक बार फिर भी निहार के
नृप वहाँ से चले गये गम्भीरता धार के ।
हाँ वे ले गए एक आशा-बन्धन को
छोड़ गए वे किन्तु वहीं पर अपने मन को ।

देखा की मूर्ति-समान सब हेलेना व्यापार यह,
ले एक दीर्घ नि:श्वास फिर, संभली किसी प्रकार वह ।

'रंग में भंग' काव्य में नकली किले की कल्पना में हाड़ा सरदार के बलिदान का चित्रण जहाँ एक ओर राजपूत जाति के चारित्रगत गुणों की ओर संकेत करता है वहीं उसमें हाड़ा सरदार कुम्भा की उस भावना का भी आभास भी मिलता है जो बिना कुछ सोचे समझे अपनी जन्म-भूमि के कल्पित रूप पर मर मिटने के लिए प्रस्तुत है ---

उस समय बूंदी-निवासी भृत्य राना का भला
    वीर हाड़ा कुम्भ था आखेट से आता चला ।
साथियों के सहित जब आया वहां पर वह कृती,
    देख उसकी भी पड़ी उस दुर्ग की वह प्रतिकृति ।।

तब कुतूहलवश लगा वह पूछने कारण सभी,
    किन्तु उसके जानने पर पूर्व-सी न दशा रही ।
हो गया गम्भीर मुख, सम्पूर्ण आतुरता गई,
    भृकुटि कुंचित भाल पर प्रकटी प्रभा तेजोमयी ।।

वीर-कुम्भ न सह सका यह मातृभूमि-तिरस्क्रिया
    क्षात्रोचित धर्म ने उसको विमोहित कर दिया ।
यदपि, कृत्रिम, किन्तु वह भव-भूमि ही तो थी अहो।
    स्वाभिमानी जन उसे फिर भूलता कैसे कहो ?

शीघ्र रक्त प्रवाह उसकी देह में होने लगा
    बीज विद्युद् वेग से वीरत्व का बोने लगा ।
मातृभूमि-स्नेह-जल विश्वल हृदय धोने लगा,
    मान मन की मद करके- मृत्यु भय सोने लगा ।।

तन-मन की दशा विस्मृत करके हाड़ा सरदार जन्मदात्री-धात्री के ऋण से उऋण होने के लिए कटिबद्ध है ।.महाराणा लाखा अपने कुछ सैनिकों सहित नकली बूंदी के किले के तोड़ कर अपने प्रण की पालना के लिए वहां आए ।वीर कुम्भा सरदार के वीर-भाव उत्तेजित होने लगे । उसके वदन पर स्वेद-जल बहने लगा, कवि ने इस प्रसंग में वीर-भाव से उत्पन्न संवेगों का मार्मिक चित्रण किया है । महाराणा ने उसके वीरोचित भावों की प्रशंसा की तथा समझाया परन्तु हाड़ा सरदार जननी जन्मभूमि का अनादर सहन नहीं कर सके । देखते ही देखते शस्त्र चल पड़े और ----

उष्ण शोणित धार से धरती धर्म की धो गई
कुम्भ के इस कृत्य से कृतकृत्य बूंदी भी गई ।
इस तरह उस वीर ने प्रस्थान सुरपुर को किया
राजपूतों की धरा को कीर्ति धवलित कर दिया ।।

इसी भांति `गुरुकुल` में गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों के बलिदान के प्रसंग में कवि ने दोनों बच्चों की भावना का आकर्षक चित्रण प्रस्तुत किया है । वजीर खां का लाख समझाना भी बच्चों को अपने पथ से नहीं डिगा सका । मर्मान्तक पीड़ा का भय उन्हें विचलित नहीं कर सका और वे हंसते हुए तथा वजीर खां द्वारा दिए गए प्रलोभनों की उपेक्षा करते हुए ईंट और चूने की दीवारों में बन्द हो गए ।

औरंगजेब के विवाह प्रस्ताव के विरोध में प्रभावती ने जो दृढ़ निश्चय करके महाराणा राजसिंह को पत्र लिखा था, `आत्मार्पण` में प्रभावती के उस भाव की अभिव्यक्ति में उसके मनोभावों का चित्रण हुआ है । मुगल हरम में जाकर बेगम कहलाने की अपेक्षा वह प्राण देना स्वीकार करती है । महाराणा राज सिंह को लिखे गए पत्र में प्रभावती की आकुलता, भय, निश्चय, आशा, निराशा आदि की पृष्ठभूमि में उसकी सतीत्व -रक्षा-भावना की प्रबलता देखी जा सकती है । चतुर्थ सर्ग में सरदार चूड़ावन्त और हाड़ी रानी के वार्तालाप में तथा उसके उपरान्त सिर काट कर देने की घटना में तो ऐतिहासिक पात्र भावना का चरम ही मानों मूर्त हो उठा है । हाड़ी रानी ने अपनी कल्पना में मोहाविष्ट-पति को वीर-धर्म से विरत देख कर भावुकता वश सिर काट कर दे दिया --

चित्त जब मुझमें लगा है तब भला
किस तरह तलवार वे सकते चला ?
कर सकेंगे शाह से संग्राम क्या ?
फिर कुमारी का सधेगा काम क्या ?
यों समझ कर भृत्य से बोली तभी-
शीश देखो काट कर मैं हूं अभी
हस्त में तुम हर्षपूर्वक लीजियो
शीघ्र जाकर प्राण पति को दीजियो।

और उस वीर नारी ने पति के नाम सन्देश देकर अपने को भार्या अपना सिर काट कर भिजवा दिया--

इस तरह संदेश सेवक से कहा,
और उसने कठिन साहस से अहा । —
हस्त में असि-तीक्ष्ण को तत्क्षण लिया
काट पल में सिर अलग निज कर दिया ।

पत्नी का कटा हुआ सिर देखते ही सरदार चूड़ावन्त विंकर्तव्यविमूढ़ हो गया । युद्ध भूमि में लाशों के ढेर लग गए । चूड़ावन्त मानो साकार काल रूप में प्रस्तुत हुआ । विजयश्री प्राप्त हुई, किन्तु उस विजय को लेकर वह जिसके पास लौटता वह तो पहले ही उसके लिए अमर हो गई । उसे प्रतीत हुआ कि उसकी प्राण-प्रिया स्वर्ग में उसकी प्रतीक्षा कर रही है । वह भाव-विह्वल हो उठा । अब वह एक क्षण भी इस पृथ्वी पर रहना नहीं चाहता था । कारण रहित उसने मुगल फौज से पुन: युद्ध करते हुए आत्म बलिदान कर दिया । निम्न पंक्तियों में भावना का यह आवेग दर्शनीय है--

इस असार संसार मध्य फिर
कहिए मैं ठहरूं किस हेतु ?
बुला रही प्रिय वहीं स्वर्ग से
जो दे गई विजय का केतु

और --

जब तक कर चल सके वीर के
किया शत्रुओं को अतिव्यस्त
आखिर कीर्ति प्रकाश छोड़ कर
रवि के साथ हो गया अस्त ।

'पत्रावली' के दोपत्रों में मैथिलीशरण गुप्त ने पृथ्वीराज भट्ट तथा महाराणा प्रताप के भावुक हृदयों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । पृथ्वीभट्ट ने महाराणा को पत्र लिखा कि उन्हें विश्वास नहीं होता कि महाराणा अकबर से सन्धि[1] करने के

१- सन्धिपत्र की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में पीछे उल्लेख किया गया है।

लिए तत्पर हैं । एक पत्र लिख कर वे महाराणा की मानसिक शंकाओं का समाधान करते हैं । यह पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही विशेष महत्व न रखता हो परन्तु पृथ्वी भट्ट की मानसिक उथल-पुथल तथा परोक्ष रूप में आत्म सम्बल ग्लानि के जिस भाव की व्यंजना हुई है, वह दर्शनीय है --

मैं देख तो रहा हूं इस अवसर में घोर आतंक-हीन,
देखा है आज मैंने अकबर मद हुआ, किन्तु संज्ञा-विहीन।
देखा है, क्या कहूं मैं, निपतित नभ से इन्द्र का आज छत्र,
देखा है और भी, हां, अकबर-कर में आपका सन्धि-पत्र ।

+ +

जो है स्वाधीनता की अब हम सब के नाम के हो नरेश
ऊंचा है आप से ही इस समय यहीं ! देश का शीर्ष-देश ।
जाते हैं क्या झुकाने अब उस सिर को आप भी हो हताश ?
सारी राष्ट्रीयता का शिव शिव ! फिर तो हो चुका सर्वनाश।

पृथ्वीराज की कल्पना उस समय का भी अनुमान लगा लेती है जब सन्धि करने के पश्चात् महाराणा स्वयं पश्चाताप करेंगे --

क्या पश्चाताप पीछे न इस विषय में आप ही आप होगा ?
मेरी तो धारणा है कि इस समय भी आपको ताप होगा ।
क्या मेरी धारणा को कह निज मुख से आप सच्चा करेंगे ?
या पक्के स्वप्न को भी सचमुच अब से ताप कच्चा करेंगे ?

अन्त में कवि अत्यन्त भाव विह्वल होकर महाराणा से प्रार्थना करता है कि वे मातृभूमि जननी जन्म भूमि के गौरव हैं । इस प्रकार युद्ध से पथभ्रान्त हो कर अपने कर्तव्य से विमुख न हों । केवल मात्र प्रताप ही हैं जिनसे भावी सन्तति को प्रेरणा एवं आत्म शक्ति मिलेगी । इस पत्र से एक मनोवैज्ञानिक सत्य की भी अभिव्यक्ति होती है ।

अकबर की अधीनता स्वीकार करके जिस अपमान,लज्जा तथा आत्महीनता का अनुभव पृथ्वीराज कर रहे हैं वे नहीं चाहते कि जाति के गौरव महाराणा प्रताप भी उस स्थिति तक पहुंच जांय । अतः अपनी सम्पूर्ण अनुभूति के द्वारा महाराणा को यह बोध करा देना चाहते हैं कि उनके द्वारा किया हुआ कार्य किसी भी प्रकार हितकर न होगा । किसी प्रकार महाराणा के सन्धि-पत्र की बात झूठ सिद्ध हो जाय, सम्पूर्ण पत्र की पृष्ठभूमि में एक यही भय मिश्रित आशा अभिव्यक्त हो रही है ।

'वीर हमीर' में भी पात्रगत भावना का एक मार्मिक चित्र उपलब्ध होता है । महाराणा हम्मीर शत्रु को विजित करके गढ़ की ओर चले आ रहे हैं । उमंग तथा विजय की प्रसन्नता में शत्रु के ध्वज विजयी राजपूत ऊंचे उठाए हुए हैं । यह दृश्य देख कर दुर्ग की राजपूत वीरांगनाओं को शत्रु के विजयी होने की आशंका हुई और वे एक तुरन्त जौहर की ज्वालाओं की भेंट हो गईं -

मातृभूमि ! आज तक तुमसे बड़ा सुख है मिला
    सब सुखों की खान से यह मन-सरोरुह है खिला ।
किन्तु होतीं हैं विलग तुमसे जननि ! हम सब यहीं ।
    क्योंकि अपने धर्म के प्रतिकूल हो सकतीं नहीं ।

मातृ भू की धूल अपने शीश पर धरती हुई
    प्रेम से निज मातृ-भू की जय ध्वनि करती हुई
मिल गईं वैसब अनल में धर्म हित सुकुमारियां ।
    नाम अपना अमर जग में कर गयीं वे नारियां ।।(वीर हमीर)

भावनावश एक कल्पित विचार पर असंख्य प्राण पलक झपकते राख बन गए । इसी प्रकार ऐतिहासिक काव्यों में अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं जहां पात्रों की भावना इतनी प्रबल हो उठी है कि वे उसके वशीभूत होकर कार्य करते हुए परिलक्षित होते हैं । पात्रगत भावना के इस विश्लेषण में चारित्रिक आदर्शों की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त पात्रों के मानस जगत् में किसी घटना विशेष अथवा

किसी कल्पना विशेष के द्वारा जो भावात्मक प्रतिक्रिया होती है मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।[1]

(ब) अन्तर्द्वन्द्व :

मानव मन की क्रियाएं बहुत विचित्र होती हैं । एक ही क्षण में अनेक प्रकार की विचार-प्रक्रियाओं से भी उसका मन घिरा रह सकता है तथा कभी विचारों में स्वाभाविक संतुलन की आभा भी दृष्टिगोचर होती है । वस्तुत: कथन एवं बाह्य क्रियाकलाप के आधार पर ही मनुष्य की प्रकृति का निर्माण नहीं होता प्रत्युत उसके अन्तर्मन की किन्हीं गहराइयों में जो विचार विविध रूप ग्रहण करते रहते है, जिनके विषय में मनुष्य स्वयं भी अनभिज्ञ रहता है, उनका भी महत्व-पूर्ण योग उसकी प्रकृति के निर्माण में होता है । मनोवैज्ञानिकों ने मन की तीन स्थितियां स्वीकार की हैं -- चेतन ,अवचेतन,तथा अर्द्धचेतन[2] । ये तीनों स्थितियां परस्पर सम्बद्ध होती हैं तथा इनमें स्थित विचारों में प्राय: द्वन्द्व चलता रहता है। अवचेतन की स्थिति दूर की बात है । मनुष्य के जीवन को अधिकांशत: चेतन और अर्धचेतन मन ही अधिक प्रभावित करते हुए दिखाई पड़ते हैं[3] । खड़ी बोली के ऐति-

---

१- व्यक्ति से कोई भी आचरण परिस्थिति नहीं कराती,परिस्थिति में जागृत व्यक्ति के उत्प्रेरण कराते हैं । आचरण की नैतिकता अर्थात् चरित्रबल कर्ताओं के उत्प्रेरणों द्वारा निर्धारित होती है, परिस्थितियां तो केवल अवसर मात्र प्रदान किया करती हैं ।` --रामपूर्ति लुम्बा, मनोविज्ञान के क्षेत्र, पृ० १२५

२- देखिए- मनोविज्ञान के क्षेत्र, पृ० ७६,७७ (रामपूर्ति लुम्बा)

३- A man is like the earth itself - he has a thin crust of consciousness and underneath - deep underneath, are the blazing fires of the subconscious self. This explains how a man can be suddenly volcanic - how a quiet, gentle person will in an instant flash into a blaze of either heroism or crime.

Herbert N. Casson
Human Nature, Page - 117.

हासिक काव्य में परिस्थिति विशेष अथवा किसी घटना विशेष के कारण पात्रों के चेतन एवं अर्धचेतन मन में जो द्वन्द्व उत्पन्न होता है, उसका प्रभावशाली चित्रण हुआ है । यहाँ इस दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण सन्दर्भों का विश्लेषण करना समीचीन होगा ।

'मौर्यविजय' में सेल्यूकस के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का एक सुन्दर चित्रण मिलता है । जय-पराजय के निश्चित अनिश्चित भावों से घिरा हुआ सेल्यूकस सिन्धु किनारे घूमते हुए अव्यवस्थित मन से सोच रहा है -

या तो आते नहीं यहां आते तो जीते
कहीं हमारे ये अमूल्य दिन व्यर्थ न बीते ।
यद्यपि शिक्षित सुदृढ़ सैन्य है पास हमारे
जिसके सम्मुख सभी शत्रु अब तक हैं हारे ।
फिर भी अति दुष्कर कार्य है जय करना इस देश का
यदि जय पावें तो फिर [illegible] सोच नहीं कुछ क्लेश का ।

(सर्ग प्रथम)

'आत्मार्पण' में प्रभावती तथा सरदार चूड़ावन्त की द्विविधा जनक स्थिति का कवि ने मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है । विधर्मी औरंगजेब की रानी बन कर मुगल हरम में रहने की अपेक्षा प्रभावती प्राण दे देगी । विवश राजपूत नारी अपने धर्म की रक्षा चित्तौड़ के महाराणा राजसिंह द्वारा चाहती है । एक पत्र लिख कर उसने अपनी असहाय अवस्था से सूचित कराया तथा साथ ही राजसिंह को मन ही मन पति के रूप में स्वीकार भी कर लिया । राजसिंह उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे अथवा नहीं ? रानी न सही दासी बन कर ही वह रह लेगी किन्तु उसके धर्म की रक्षा हो जाय । अपने सम्पूर्ण मानसिक उद्वेलन को उसने मानों पत्र में अंकित कर दिया हो । अन्तिम पंक्तियों में उसके मानस का चित्रण प्रस्तुत है --

किन्तु दीन-दयालु ! दासी बन रहो !
रख न सकते क्या मुझे ! सो तो कहो !

आशा-निराशा के अथाह सागर में डूबते उतरते हुए वह प्रार्थना करती है-

> यदि न मेरी प्रार्थना स्वीकार हो
> करुणा रस का हृदय में संचार हो
> तो कृपा कर काम इतना कीजिये
> हां-नहीं का शीघ्र उत्तर दीजिये । (प्रथम सर्ग)

दक्षिण अफ्रीका में जेल-जीवन की कठोरता का उल्लेख 'गांधी गौरव' में विस्तार सहित हुआ है । सत्याग्रहियों पर ब्रिटिश शासकों ने सत्ता के आतंक का प्रभाव दिखा कर उन्हें पथ विमुख करना चाहा था किन्तु मात्र गांधी जी की वाणी को शिरोधार्य कर वहां की जनता उस दुर्गम कर्म क्षेत्र में कूद पड़ी थी । जेल जीवन के अमानुषिक कष्टों से चिन्तित होकर एक दिन गांधी जी के हृदय में कतिपय विचार उद्भूत हो उठे । दार्शनिक विचार-संघर्ष का चित्रण अत्यन्त ही सजीव हुआ है । गांधी विचारने लगे कि उनकी केवल आवाज़ मात्र पर ये लोग जीवन और मृत्यु से जूझने के लिए प्रस्तुत हो गए हैं, अन्याय का विरोध करने के लिए अपनाया गया यह मार्ग यदि कहीं ग़लत सिद्ध हुआ तो सम्पूर्ण दोष का भागी मैं ही हूंगा । अन्त में ईश्वर से विनती करके वे फिर अपने निश्चय पर आरूढ़ हो गए ----

> मेरे कथन से पा रहा परिताप यह समुदाय है
> किसको पता यह मुक्ति का सदुपाय या दुरुपाया है ।
> यदि उचित मेरा मत नहीं तो पाप पुंज महान हूं
> सर्वसाक्षी हो तुम्हीं मैं सर्वदा नत ज्ञान हूं । (सर्ग ८)

राणा रत्नसिंह अलाउद्दीन के शिविर में बन्दी हैं । महारानी पद्मिनी चिन्तित हो रही हैं । अलाउद्दीन की मांग पूर्ण करना असम्भव है । पति के बाद राजपूत नारी केवल अग्नि का ही आलिंगन कर सकती है । उसके दुविधापूर्ण मन की स्थिति का चित्रण 'सती पद्मिनी' के कवि ने इस प्रकार किया है -

पति के बदले में क्या खिलजी को देना होगा यह तन !
और न कोई यत्न सोच सकता है आज व्यथित यह मन !
पर क्या होगा उचित यही यह राजपूत वर बाला को
पति के बाद पैठ सकती जो जग में केवल ज्वाला को !![1]

'जौहर' के इस प्रसंग तथा अन्य प्रसंगों में पद्मिनी के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति का अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण चित्रण कवि ने किया है। वह सुन्दर है तो उसकी सुन्दरता के कारण उत्पन्न कष्ट वह स्वयं ही क्यों नहीं भोग रहा है--

सीता सुन्दर थीं, तो थीं
बन्दी रावण के घर में।
पर यहां नियम उलटा है
पति ही वैरी के कर में।।

+ +

दमयन्ती भी सुन्दर थीं
सुन्दर थीं ब्रज की राधा
इस तरह कदापि न आयी
उनके सतीत्व में बाधा

+ +

सावित्री की छवि में क्या
सन्देह किसी को होगा
पर उसने पति रक्षा को
यम ने अपना फल भोगा

+ +

१- सतीपद्मिनी, सर्ग ५

कितनी अभागिनी मैं हूं
मैं कुल की एक कला हूं ?
पति मुझसे मुक्त न होगा
क्या सचमुच मैं अबला हूं ?[१]

किन्तु अर्न्तचेतन में राजपूत नारी के अनुकूल शौर्य और साहस भी विद्यमान है। एक क्षण पूर्व की अबला सबला बन गई -

तू सिंह सुता क्षत्राणी,
तुझमें कालों का बल है ।
तू प्रलयानल की ज्वाला,
तू क्यों बनती निर्बल है ।।

तथा अन्त में राजपूत नारी के पराक्रम तथा शौर्य की विजय होती है । निराशा में आशा का संचार हुआ, रानी एक नवीन तेज से प्रदीप्त हो उठी।

अन्तर्द्वन्द्व चित्रण में सर्वाधिक सुन्दर प्रसंग जौहर की ज्वालाओं में कूदने जाती हुई महारानी और राणा रत्न सिंह के क्षणिक मिलन का है । जितना ही करुणापूर्ण है यह प्रसंग ,उतना ही महारानी की मन: स्थिति का मूक चित्र भी लेकर प्रस्तुत हुआ है ।सरल शब्दों में केवल संकेतों द्वारा चित्रित किया हुआ यह द्वन्द्व बहुत प्रभावशाली हुआ है --

पूजा की थाली लेकर
रानी पति सन्निधि आई
क्षण रही देखती पति को
भीतर की रोक रुलाई

१- सातवीं चिनगारी

तो भी भारी पलकों में
अन्तर की पीड़ा झलकी
अन्तिम जीवन की करुणा
आंखों से कुछ से छलकी

हृदय में विचारों का संघर्ष चल रहा है। इस अन्तिम समय में किसी से कोई व्यथा कहे सुने। एक ओर जीवन की अन्तिम विदा का क्षण, दूसरी ओर सतीत्व धर्म की पुकार--

क्षण भीत मृगी सी कांपी
क्षण जलद घटा-सी रोयी।
क्षण ज्यों अचेत हुई क्षण,
कोमल चरणों पर सोयी।

और निम्न पंक्तियों में जैसे सभी आन्तरिक भाव स्पष्ट हो उठे -

क्षण मुख निहारती पति का
क्षण मौन सोचती रानी
आंखों से पति के आंसू
क्षण मौन पोंछती रानी

अन्त में जीवन के कठिन उद्देश्य की प्राप्ति होती है -

पर क्रम क्रम से दोनों में
उत्साहित तेज समाया।
तन-मन की पीड़ा दुबकी
अन्तर में साहस आया।।[१]

१- सोलहवीं चिनगारी

'चित्तौड़ की चिता' में हुमायूं को राखी भेजने के उपरान्त हुमायूं की प्रतीक्षा के समय महारानी कर्णावती की आन्तरिक दशा का चित्रण द्वन्द्व पूर्ण है। शत्रु चढ़ा आ रहा है और आवश्यक है कि हुमायूं उसकी प्रार्थना स्वीकार करेगा अथवा नहीं। विचारों के संघर्ष के कारण निश्चय और अनिश्चय के सम्मिलित भावों से उत्पन्न भाव भंगिमा द्वारा कवि ने मन:स्थिति का चित्रण किया है-- कभी वह अपनी असहाय अवस्था के कारण क्रोधित हो उठती है तथा कभी करुणा के अथाह सागर में डूबने लगती है --

कभी मुख पर आता था क्रोध
कभी आंखों में करुणा भाव
कभी लोचन में आंसू- स्राव
कभी वाणी का भी अवरोध।

विविध प्रकार की विचारधारायें अन्तर के द्वन्द्व को मुख फलक पर चित्रित कर रही थीं--

भाव रंगों का था मिश्रण
हृदय नभ में बिखरा दुख ताप
किया मन ही मन करुणा-प्रलाप
क्रोध करुणा का था यह रण (सर्ग ६)

'यशोधरा' में यों तो प्रत्येक गीत के भावों में मानिनी यशोधरा के अन्तर्मन की आशा, निराशा, तथा व्यथा वेदना का ही चित्रण हुआ है किन्तु साधना के पश्चात् नगर में भगवान् तथागत के आगमन की सूचना प्राप्त करने के उपरान्त मान और मिलन की उत्कंठा में जो द्वन्द्व प्रस्तुत होता है उसका चित्रण वास्तव में अभूतपूर्व है। जिनकी प्रतीक्षा में अनेक वर्ष व्यतीत कर दिए, आज वे पधारे हैं। संयम का बांध टूट रहा है। आत्म निग्रह की पराकाष्ठा हो चुकी है। मान ने पैरों में बेड़ियां पहना दी हैं। अनुराग उमड़ उमड़ पड़ रहा है किन्तु यशोधरा के मान की विजय होती है। निम्न गीत में इस सूक्ष्म मनोगति का सुन्दर चित्रण मिलता है ---

रे मन आज परीक्षा तेरी

विनती करती हूं मैं तुमसे बात न बिगड़े मेरी

\+ \+

यदि वे चल आए हैं इतना

तो दो पद उनको है कितना

क्या भारी वह मुझको जितना

पीठ उन्होंने फेरी

रे मन आज परीक्षा तेरी

सब अपना सौभाग्य मनावें

दरस परस निःश्रेयस पावें ।

उद्धारक चाहें तो आवें

यहीं रहे यह चेरी

रे मन आज परीक्षा तेरी ।

मानसिक अंतर्द्वन्द्व की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद की 'प्रलय की छाया' भी महत्त्वपूर्ण है । सौन्दर्य से उत्पन्न गर्व के कारण आत्म प्रवंचना का यह द्वन्द्वपूर्ण चित्रण प्रसाद काव्य के सर्वोत्कृष्ट स्थलों में से एक है । पद्मिनी जौहर की ज्वालाओं में सो गई । उस बलिदान की प्रशंसा उसके लिए प्रतिक्रिया बन कर उपस्थित हुई । वह अनन्त सौन्दर्य से परिपूर्ण है तथा उस सौन्दर्य शक्ति के आश्रय द्वारा वह पद्मिनी से कुछ बढ़ कर कुछ दिखाने के लिए मचल उठी-

आह कैसी वह स्पर्धा थी ?

स्पर्धा थी रूप की

दिल्ली के रंग महलों में रानी बन्दी बनी बैठी है । पति के प्रतिशोध का निश्चय किया था किन्तु रूप की ज्वाला में जल कर वह निश्चय भी राख भी हो गया । उसके अन्तर में एकविचित्र आकांक्षा का उदय हुआ ---

बन्दिनी मैं बैठी रही

देखती थी दिल्ली कैसी विभव विलासिनी

\+ \+

कभी सौतों से प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर बालती ज्वाला में
सुलगान सी है उस निर्मम हृदय में

† †

सतीत्व रक्षार्थ वह आत्महत्या का भी विचार करती है किन्तु आत्म-प्रवंचना से भ्रमित उसके हृदय ने जीवन की सफलता का अकाट्य तर्क प्रस्तुत किया तथा अन्त में वह सहमत भी हो गई--- रूप के गर्व ने जीवन के प्रति मोह उत्पन्न कर दिया ---

जीवन की स्वर्णमयी किरणें पथ भरी।
जीवन ही प्यारा है जीवन सौभाग्य है।

अचेतन मन में दबी हुई रूप के प्रति गर्व की भावना विजयी हुई । सौन्दर्य की शक्ति द्वारा पुरुषों के हृदय को जीतने की कामना प्रबल हो उठी और महारानी कमलावती अलाउद्दीन की बेगम बन गई ।

जीवन के अन्तिम समय में सौन्दर्य की सत्ता हिम बिन्दु सी ढलक जाने के पश्चात् महारानी के विचारों के संघर्ष का यह चित्रण वस्तुत: मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से काव्य में विशेष महत्वपूर्ण है ।

`हमीर का हठ`(आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव)भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। यवन शत्रुओं को विजित करके हमीर महलों में लौटे किन्तु यवन पताका फहराती हुई देख कर राजपूत नारियों ने जौहर कर डाला । वह हृदय विदारक दृश्य देखकर हमीर चेतनाहीन हो गए। कुछ चेतना आने पर जौहर से पूर्व का समस्त दृश्य स्मृतिपटल पर अंकित होकर हृदय वेधन करने लगा । हमीरदेव को अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगा--

क्या कर लेगा रह कर भू पर
मेरा भाग्य हीन अब माथ ।

भांति भांति के प्रलोभन आ आ कर उन्हें रमकाते हैं। कभी उनके मरणोपरान्त राज्य की सम्भावित दुरावस्था आकर सम्मुख उपस्थित हो जाती है कभी बन्धुओं के सदय स्वभाव का आकर्षण उन्हें रोकना चाहता है। किन्तु उनकी निराश चेतना किसी भी आकर्षण से प्रभावित नहीं होती-

छट छट तू आशा मायाविनी।
अरी निराशे तेरा पाश

अन्तर्वेदना की प्रबलता की विजय होती है। महाराणा अपना शीश काट कर शिव प्रतिमा के अर्पण कर देते हैं।

'नूरजहां' में प्रेम और कर्तव्य के मध्य संघर्ष चित्रण में नूरजहां की आन्तरिक स्थिति का आकर्षक चित्रण हुआ है। श्वसुर गृह जाती हुई मेहर की विदाई के समय के मनोवेगों का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है[१]। विगत का सब कुछ विस्मृत करके वह शेर अफ़गन की पत्नी बन कर जा रही है। निम्न दो पंक्तियों में उसने अपने हृदय की मौन अभिव्यक्ति की है -

ओ भ्रान्ति विदा, ओ शान्ति विदा ओ अपनी भोली भूल विदा।
ओ मेरी मुरझाई आशाओं की समाधि के फूल विदा।

सलीम मेहर से माग करने की बात कहता है। सलीम का पत्नीत्व तड़प उठा प्रेम गौण तो हो गया किन्तु उसकी कोमलता हृदय के किसी कोने में विद्यमान थी। सर्ग दस में कवि ने इस प्रसंग में प्रेम और कर्तव्य के बीच अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किया है -- वह सलीम को जान से मार डालने का भय दिखाती है किन्तु ---

मेहर कभी रह गई वर्षों पर मिली-न बोली चाली।
मौन मूर्ति बन गई लिये कर में करवाल निराली।।
ज्योंही हुआ सलीम निकल कर अन्धकार से बाहर।
छूट गई तलवार हाथ से गिरी अचेत धरा पर।।

१- सर्ग दस

विधवा हो जाने तथा जहांगीर द्वारा महलों में बुलाए जाने के पश्चात् मेहर स्थिर मन नहीं हो पाती । प्रेमिका तथा पत्नी के बीच एक कष्ट पूर्ण संघर्ष जन्म लेता है । अन्त में अपनी दुविधाजनक मन:स्थिति से भयभीत होकर एक दिन वह अपने जीवन का अन्त करने चल पड़ती है । पत्नीत्व की पराजय और अप्रत्यक्ष रूप में प्रेमिका की विजय का एक अत्यन्त ही मनोवैज्ञानिक शब्द चित्र प्रस्तुत है --

ठहरो ! ठहरो ! क्यों पग मेरे बढ़ते ही जाते ।
नहीं आज क्यों कांटे कोई राह रोकने आते ।।
शासन महा करेंगी किस पर आज्ञा उल्लंघन कर ।
जब मेरा मन ही विद्रोही बन है गया सरासर।।
अच्छा तो मत मान अरे हूं अंत अभी कर देती ।
इसी सरोवर के पानी में लाज बचा हूं लेती ।।(कर्म सत्रल)

विजय अन्त में प्रेमिका की होती है ।

'विक्रमादित्य' में कवि ने प्रेम एवं कर्तव्य के बीच चली अन्तर्द्वन्द्व चन्द्रगुप्त के माध्यम से प्रस्तुत किया है । ध्रुवदेवी के प्रति वह आकर्षित है किन्तु मर्यादा वश वह उसे प्रेम को अपना नहीं पा रहा है । निर्वासित चन्द्रगुप्त शक शिविर में दूत रूप में ध्रुवदेवी के शौर्य को देख कर बहुत प्रभावित होता है । शक्ति की महिमा ने हृदय सागर में स्थित उसके प्रेम को धरातल पर ला खड़ा किया । चेतन तथा अर्द्धचेतन मन के पारस्परिक संघर्ष का यह चित्रण भी उल्लेखनीय है --

श्रेष्ठ है सरल स्नेह-संयोग प्रेम पथ है यदि पुण्य पुनीत,
उसे अपनाने में मन मूक हो रहा है क्यों भयभीत ,
वहीं मर्यादा का बस मोह पंथ में देता रोड़े डाल
भाव में ऊंचा नीचा कौन संतुलन कर है मेल निकाल

लौट चला देवि के संग आर्य की आज्ञा के प्रतिकूल
खींच आदर्श शिखर से पांव मान को बटवा देना भूल

किन्तु वाराह रूप को धार विष्णु ने किया धरा उद्धार
मनीषी देख ध्येय परिणाम हेतु पर करते नहीं विचार
अतः जब देश राज्य रक्षार्थ खेलो पर है अपने प्राण
दुहाई मेरी देती हुई वीर रमणी ने चाहा त्राण
नहीं सम्भव है मैं ना करुं त्याज्य हो तो दूंगा योग
निभाऊंगा अपना कर्तव्य कहें जो चाहे मुझको लोग ।(खण्ड १५)

इसके पश्चात् ही कर्तव्य और आदर्श चन्द्रगुप्त का मार्ग रोक कर खड़े हो जाते हैं । उसका आदर्श उसे धिक्कारता है उसका विवेक उसे कर्तव्य का स्मरण दिलाता है--

गिर हा पड़ा एक धक्के में कहां गई गर्व था तेरा
फिसल पड़ा चिकना मिट्टी पर किया भविष्य अंधेरा
क्या मुंह लेकर लौटेगा तू भाई के संमुख फिर
अपने उच्चादर्श, त्याग यों, अकस्मात् नीचे गिर

+ +

प्रेम ने तर्क दिया -

कैसे उसे निराश करुं मैं क्या दूं उसको उत्तर ?
क्या उमंग क्या क्या आशाएं मन में उसके उठ कर
मेरे मुंह को जोह रही हैं हंस अपना लेने को
मूक प्रश्न के उत्तर में दृग से हां कह देने को (खण्ड १५)

किन्तु अन्तम में धीरता और आदर्श की विजय हुई तथा चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी को सुप्तावस्था में छोड़ कर किसी अज्ञात स्थान की ओर चला गया ।

अनूप शर्मा के 'सिद्धार्थ' काव्य के 'महाभिनिष्क्रमण' से पूर्व अधिष्ठान प्रसंग में चिन्तित राजकुमार सिद्धार्थ की मनोदशा के चित्रण से उनके अर्धचेतन मन में व्याप्त वैराग्य वृत्ति का आभास प्राप्त होता है । रंग महल की शोभा के आकर्षण के विरुद्ध एक अज्ञात विकर्षण की वृत्ति से राजकुमार दिन प्रति

दिन घिरते जा रहे हैं । व्योम विहार में हीन स्वतंत्र पक्षियों की भांति वे रंगधाम से दूर हिमाद्रि शृंग पर उड़ते हुए पहुंच कर मनोमुग्ध-कारी प्रभा के दर्शन करना चाहते हैं । मानसिक अशान्ति तथा द्वन्द्व निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है —

व्यथा न जाने किस भांति की नयी
समा गई आज मदीय चित्त में
न शान्ति है, निष्फल रंग गेह है
यशोधरा दर्शन भी दुरैव है ।   (सर्ग ४)

इसी प्रकार भ्रमणार्थ गए हुए सिद्धार्थ जरा, मरण एवं दुःख देख कर चिन्ता-कुल हो उठते हैं । गृहत्याग से पूर्व प्रेम और त्याग की भावना के बीच दारुणिक द्वन्द्व का एक सफल चित्रण कवि ने 'सिद्धार्थ' में किया है । मानवीय स्पर्श के कारण ही 'सिद्धार्थ' में महाभिनिष्क्रमण का यह प्रसंग मनोवैज्ञानिक स्पर्श लिए हुए है ।

'झांसी की रानी' काव्य में मन:स्थिति के चित्रण की दृष्टि से यद्यपि विशेष महत्वपूर्ण नहीं है तथापि दो-तीन स्थलों पर लक्ष्मीबाई के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण हुआ है । 'आर्यावर्त' में कवि कल्पना ने जयचन्द के दरबार में एक वृद्ध तथा उसके द्वारा सुनाए गए स्वप्न की कल्पना की है । स्वप्न में भारत मां की दुर्दशा का जो चित्र बूढ़े व्यक्ति ने देखा था, जयचन्द से कह सुनाया । जयचन्द चिन्तित हो उठा । इस प्रसंग में कवि ने उसके अपराधी मन की स्थिति तथा मन में उत्पन्न तर्क वितर्कों का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है । जो महाराज पृथ्वीराज को नीचा दिखाना चाहता था आज स्वयं इस घोरतम अपराध की ज्वाला में जलने लगा । अपना छल कौशल आज उसे आत्मप्रवंचना प्रतीत होने लगा-

भूलता है द्रोह की आड़ में नरेश को
छल से छिपाना है घृणित आत्मवंचना ।
अंबर से भूमि तक शून्यता है जितनी
आज वह पूरिता है घोर धिक्कार से ।

कैसे मैं छिपाऊं इस अधम शरीर को
कोटि-कोटि रोषपूर्ण जलते नयन हैं ।
कोटि-कोटि उठती उंगलियां हैं-अब क्या
संभव है निज को छिपाना, धिक्कार है ।
मथ कर देखा किन्तु मैंने महारत्न से
बाहर निकाला विष घोर हलाहल को
उसकी विषाक्त घोर ज्वाला में तड़पती
झुलस रही है मातृभूमि, निरुपाय भी ।
हाय, बना मैं भी इस क्लीब नर-सिंह का
पातकी पुरोहित बनूंगा अब लांछित ।

इस मानसिक क्लेश में जयचन्द के उदात्त चरित्र की कल्पना हुई है ।

पात्रों के मानसिक संघर्ष की दृष्टि से 'तप्तगृह' विशेष उल्लेखनीय है । बाह्य क्रिया कलाप की अपेक्षा पात्रों के मन में हुई प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न विचार-संघर्षों का चित्रण ही अधिकांश काव्य की कथा है । महारानी कुशला, महाराजा बिम्बसार तथा कोणक की मन:स्थितियों का चित्रण प्रभावपूर्ण है । महारानी कुशला के हृदय में पत्नीत्व एवं मातृत्व की आंधी वेगपूर्ण है । महाराजा बिम्बसार पुत्र की वर्तमान राज्य लिप्सा में अपनी विगत राज्यलिप्सा का दर्शन करके संतोष और कभी असंतोष से परितप्त हो उठते हैं तथा कोणक राज्य मदान्धता के कारण अपनी हिंसक नीति में औचित्य की झलक देखने के लिए विभिन्न प्रकार के तर्क-कुतर्कों का आश्रय ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है किन्तु अन्त में विजय सत्य की ही होती है । आत्म-प्रवंचना की दल दल से निकल कर कोणक सुपथ गामी बनता है । इस सन्दर्भ में काव्य के सभी अंश उद्धृत करना कठिन है । कुशला के अन्तर्द्वन्द्व से सम्बन्धित एक दो स्थल महत्वपूर्ण हैं । 'तप्तगृह' में महाराजा बिम्बसार बन्दी हैं प्रति दिन उन्हें अमानुषिक कष्ट दिए जाते हैं तथा निर्विरोध भाव से सभी कुछ सहन कर रहे हैं । महारानी कुशला अपनी ही कोख से अपने पुत्र द्वारा की गई पति की कष्टपूर्ण अवस्था देख देख कर क्रोधोन्मत्त हो उठती हैं किन्तु पति के सन्तोष भाव के समक्ष उसे बारम्बार

झुकना पड़ता है। निद्रावस्थित महाराज के मुख फलक पर हृदय के भाव झलक रहे हैं। महारानी का अन्तःकरण विद्रोह की अग्नि में जल उठा, किन्तु फिर भी वह मौन थी।-

दर्पण में आंसू के
देख लिया रानी ने
हृदय बिम्बसार का
चमक उठा पल में जो
भार नमित पलकों पर
नींद मग्न राजा की
और वह मौन रही
शत सहस्त्र आंधियों के
वेग को दबाए हुए
चलते से प्राणों में
और वह मौन रही
रोक कठिनाई से
भीतर के ज्वार को [1]

जागने पर महाराज बिम्बसार अनेक प्रश्न पूछ रहे हैं। कुशला का वेदना व्यथित हृदय टूक टूक हो रहा है। पुत्र के प्रति वह शंकित हो उठा है किन्तु मनोवेग के कारण वह महाराज बिम्बसार की किसी भी बात का उत्तर देने में असमर्थ है। कवि ने उसके अन्तरतम के गहन अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण निम्न पंक्तियों में किया है --

सेवा न बोली आज
साधना न बोली आज
बोली तपस्या नहीं
आज बस आंसू ही
बहाती रही वेदना। [2]

१- सर्ग पांच
२- वही

पिता के रक्त से हाथ रंग लेने के पश्चात् जब एक दिन सहसा स्वयं पिता बन कर कोणिक को अनुभूति को गहरा आघात लगता है तो विगत के प्रति उसका हृदय हाहाकार कर उठता है । आत्मग्लानि से पूर्ण वह अश्रु बहाता हुआ उसी मां के पैरों में लोटने लगता है जिसके सिंदूर की लालिमा को उसने पोंछ दिया था । मां के स्मृति अंगारों से पूर्ण वह विगत अभी भी जीवित है । कोणिक को देख कर उसका हृदय घृणा से भर उठा किन्तु अधिक समय तक वह भाव स्थायी न रह सका । वात्सल्य तथा उजड़े सुहाग की हृदयद्रावक स्मृति के बीच झूलती हुई चेलना की संघर्षपूर्ण मनःस्थिति का चित्रण अत्यन्त ही मार्मिक एवं सजीव ढंग से हुआ है--

भावों से भाव लगे
प्रतिपल टकराने
भीषण संघर्ष था
चेलना अधीर थी
मन के प्राचीर सब
हिलते हैं जिस प्रकार
हिलती तूफान में
भग्न कुटी फूस की ।
सारा अतीत था
अपना अंगार से
मिटता सा दीखता[१]

इसी प्रकार सोहनलाल द्विवेदी के 'कुणाल' खंडकाव्य में भी उपेक्षित होने के पश्चात् तिष्यरक्षिता के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण कवि ने किया है । अपमान की ज्वाला में जलती हुई महारानी अनुताप और प्रतिशोध से पूर्ण हो उठी है । वह सोचती है--

क्यों उठी यह प्रार्थना क्यों वासना का बोल ?
क्यों मेरे उर अजिर में प्रणय रंग से लीन । (पृ०४३)

१- सर्ग ग्यारह

मुझ मैं क्यों बन गई एकान्त ही चुपचाप
व्यक्त करने को अपना स्नेह अपने आप

+ +

क्यों न मैंने ही स्वयं इस विष विटप को तोड़ ?
उर आँगन से उठा कर फेंका न दूर मरोड़

और वह रूप-उपेक्षिता संकल्प कर लेती है --

मैं निर्झरिणी पत्थर हूँगी
अपने हाथों से विष दूँगी (पृ० ९६)

मैं इस छल का बदला लूँगी
प्रतिहिंसा बन कर धधकूँगी (वही)

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अन्तर्गत इन कतिपय काव्यों में चित्रित मानसिक अन्तर्द्वन्द्व पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि केवल बाह्य क्रिया कलाप अथवा घटनाओं का स्थूल वर्णन ही ऐतिहासिक काव्यों का विषय नहीं रहा है । विभिन्न परिस्थितियों में तथा विभिन्न घटनाओं के द्वारा ऐतिहासिक पात्रों के जीवन में जिन विचार-संघर्षों की सम्भावना हो सकती है उनका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण भी हुआ है ।

(ग) उत्सर्ग,आत्मबलिदान: ~~तथा संघर्ष~~

ऐतिहासिक काव्यों में मौर्य युग से लेकर आलोच्य काल तक विभिन्न ऐतिहासिक जातियों तथा देश भक्त वीरों की आत्म बलिदान-भावना का विशद चित्रण हुआ है । देश-प्रेम से प्रेरित होकर स्वाधीनता की रक्षा तथा राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए विदेशी जातियों से युद्ध करने तथा प्राण होम करने में इस भावना का परिचय प्राप्त होता है । मध्ययुग के राजपूत वीरों का यह उत्सर्ग भाव एक अन्य रूप में भी दृष्टिगोचर होता है- वह है आत्म सम्मान तथा स्वाभिमान की रक्षा के हित प्राण न्यौछावर कर देना । मध्ययुगीन राजपूत जातियों में यह मनोभावना उस सीमा का भी स्पर्श

कर चुकी थी, कि शान तथा सम्मान के विरुद्ध छोटी-छोटी बातों के लिए स्थान तथा समय के औचित्य का विचार न करते हुए, ये लोग परस्पर तलवारें खींच कर रक्त की नदियां बहा दिया करते थे। उनकी यह मनोवृत्ति यद्यपि संकुचितता का आभास देती है तथा आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना द्वारा भले ही प्रशंसित न हो सके तथापि प्राणों को तुच्छ समझते हुए बात-बात में उत्सर्ग हो जाने का यह अपूर्व भाव सम्पूर्ण इतिहास में केवल राजपूत जाति में ही उपलब्ध होता है। मैथिली-शरण गुप्त के 'रंग में भंग' खंडकाव्य में इसी भावना का प्रतिनिधित्व हुआ है। यहां हम ऐतिहासिक काव्यों में उपलब्ध आत्म बलिदान की इस भावना को ऐतिहासिक काल क्रमानुसार देखेंगे।

भारतीय वीर प्राणदान करके विजय की ध्वजा फहराते हैं। निरुत्साह एवं आलस्य उनके शब्द कोष में ही पाये नहीं है। मृत्यु के पश्चात् उनके अमर गीत उन्हें जीवन दान देते हैं। इस अमरता को प्राप्त करने के लिए वे सदैव सन्नद्ध रहते हैं। कवि ने मौर्यकालीन इस भावना का दिग्दर्शन कराया--

आओ वीरों आज देश की कीर्ति बढ़ा दें,
सबके सम्मुख मातृभूमि का शीश चढ़ा दें।
शत्रुजनों को मार यहां से अभी हटा दें
उनका घोर घमण्ड सदा के लिए घटा दें।[१]

राजपूतों के लिए जीवन तृण तुल्य था। सर्वस्व देकर वे मातृभूमि के मानवर्धन में जीवन की सार्थकता मानते थे। इसी कारण शत्रु की असंख्य सेना मुट्ठी भर राजपूतों को दहलाने में असमर्थ रहती थी। प्राण हथेली पर रख कर रण में जूझने वाले ये शूरवीर हतोत्साह होना नहीं जानते थे। या तो विजय का सेहरा ही बांध कर लौटते थे या लड़ कर मर मिटने का संकल्प पूरा करते थे। आत्मबलिदान की यह उत्कृष्ट भावना निम्न पदों में अभिव्यक्त हुई है ---.

१- सर्ग द्वितीय

बोला कवि चंद 'शत्रु मारा गया, लीजिए
यह तलवार है, प्रहार करें मुझ पर,
और मैं प्रहार करूं आप पर' कवि
ने बाहर निकाली दो कृपाण, फेंक कम्बल।
चमक उठीं दो दामिनी दाण भर में
नीचे गिरे दोनों वीर कट कर साथ ही।[१]

युद्ध में जाने से पूर्व ही राजपूत सैनिकों को मर मिटने का अमर सन्देश दिया जाता था-

वीरवर रणधीर ने सब राजपूतों से कहा
आज रण नैपुण्य से दो रक्त की नदियां बहा
तुच्छ जीवन दान देकर दुर्ग की रक्षा करो
विजय पाओ आज, या रण क्षेत्र में लड़ कर मरो[२]

यह ज्ञात होते हुए भी कि शत्रु के अथाह सैन्य-सागर के प्रवाह में उनके पैर जम नहीं सकेंगे, पराजय निश्चित है फिर भी धर्म पर बलिदान होने के लिए वे युद्ध की लपटों में कूदना स्वीकार करते हैं ---

उठो कर में ले लो तलवार
धर्म पर हो जाओ बलिदान
तुम्हीं चित्तौड़ भूमि के प्राण
चकित कर दो सारा संसार ।[३]

१- आर्यावर्त सर्ग १३

२- वीर हमीर

३- चित्तौड़ की चिता, सर्ग ३

महाराणा उदयसिंह राजपूती शान तथा आत्मबलिदान -इन भावनाओं के नाम पर कलंक का टीका लगा गए । मातृभूमि की मुट्ठी भर राजपूतों के आश्रय में छोड़ उन्होंने पहाड़ों में मुंह छिपा लिया था । चित्तौड़ के नेतृत्व हीन वीरों ने इस दुविधा के समय में प्राणदान दे के इस चित्तौड़ के सम्मान को अक्षुण्ण रखा । राजपूत वीर सरदार की निम्न वीरोक्ति में बलिदान की उत्कट अभिलाषा कैसी झलक रही है, यह दर्शनीय है ।

उस नीच नर पैशाच अकबर धृष्टता का फल सही,
तत्काल देना ही उचित है प्राण मय निज तज अभी ।
पैशाच अकबर क्या अभी ! यदि काल भी रणाभिमुख बढ़े
क्या प्राण रहते देह में वह एक पग आगे बढ़े ?[1]

मध्य युग में महाराणा प्रताप ने इस भावना का प्रतिनिधित्व किया । स्वयं तो मातृभूमि की रक्षा हित उन्होंने सर्वस्व बलिदान कर ही दिया था अपने राजपूत साथियों को भी वे यों कह कर प्रेरणा दिया करते थे--

तृण-तुल्य जीवन आज निज स्वाधीनता पर दान दो
सर्वस्व देकर शूरवीरों ! मातृ भू को मान दो
इस बार भारत-वीर-विक्रम का नमूना दो दिखा
इन दुष्ट देश द्रोहियों को कर्म का फल दो चखा ।[2]

इस युग के प्रत्येक चित्तौड़ वीर ने मरने और मिटने का संकल्प सा किया हुआ था। झालामाना छाती उठान करके बलिवेदी पर चढ़ जाने के लिए कैसा लालायित है-

राजपूत हूं राजपूत, छाती
उठान करूंगा अब ।
मातृ भूमि बलिवेदी पर
अपना बलिदान करूंगा अब ।[3]

१-वीरांगना वीरा
२- प्रणवीर प्रताप
३- हल्दी घाटी

महाराणा प्रताप की प्रेरणा में भी इसी बलिदान की पुकार है-

रख लो अपनी मुखलाली को
मेवाड़ देश हरियाली को
दे दो नर मुण्ड कपालों को
शिर काट काट कर कालों को[1]।

मैथिलीशरण गुप्त के 'गुरुकुल' में सिक्ख गुरुओं के तथा सिक्ख जाति के धर्म पर बलिदान होने की भावना अत्यन्त प्रबल रूप में अभिव्यक्त हुई है। गुरु अर्जुन देव के बलिदान ने सिक्खों में जातीय भावना को उदात्त किया। धर्मपर बलिदान होने के साथ साथ हिन्दु जाति की रक्षा करने के हित में सिक्ख-गुरुओं ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा उठा कर एक ऐसे संगठन का निर्माण किया था, जो तन-मन-धन, सब प्रकार से न्यौछावर होने के लिए सदैव कृतसंकल्प एवं कटिबद्ध था।

सत्रहवीं शताब्दी में शिवाजी महाराज नेदक्षिण में रणभेरी बजाई थी जिनके नेतृत्व में असंख्य मरहठे हिन्दू वीरों ने मातृभूमि हित प्राण-दान के कठोर मन्त्रकी दीक्षा ली। मैथिलीशरण गुप्त की 'वीर रत्न बाजी प्रभु देशपांडे[2]।' कविता में फाजल खां के विरुद्ध उठे हुए मरहठों में उस युग की आत्म बलिदान भावना का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में ब्रिटिश शक्ति तथा उसके क्रूर अत्याचारों ने उधर भारत में एक ऐसी क्रान्ति उत्पन्न की थी कि उस क्रान्ति की ज्वालाओं में अनेक वीर जल जल कर बलिदान होने की उदात्त भावना लेकर चल पड़े थे। श्यामनारायण पाण्डेय के प्रबन्ध काव्य 'झांसी की रानी' तथा सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झांसी की रानी' में उस तत्कालीन भावना का भी बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। महारानी के उद्देश्य में स्वदेश के लिए शरीर को क्षार कर देने

१- हल्दीघाटी
२- सरस्वती, हीरक जयन्ती संग्रह, १६००-१९५९

की भावना का चित्रण प्रस्तुत है --

पढ़ूंगी इन सतियों का नाम
पढ़ूंगी कर्म योगों का पाठ
बना दूंगी इस तन को राख
सजाऊंगी स्वदेश का ठाठ

लक्ष्मीबाई की सखियों में भी अरि सैन्य से लोहा लेने की अभिलाषा में आत्मोत्सर्ग भावना के ही दर्शन होते हैं -

मोतीबाई झुक कर बोली
मैं ले लूं वीरों की टोली
यदि मिले आपकी आज्ञा तो
अरि सैन्य से खेलूं होली ।

स्वाधीनता,स्वदेश प्रेम , आत्मसम्मान धर्म तथा जाति के हेतु प्राणों का मोह छोड़ कर उत्सर्ग हो जाने की भावना का एक चरण उन्नीसवीं शताब्दी के स्वाधीनता संग्राम की भूमि तक आकर पूर्ण हो जाती है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवीरों तथा देश भक्तों की इस भावना को एक अपूर्व दिशा प्राप्त हुई ।`स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है `सत्य के प्रति आग्रह,आत्म विश्वास तथा अहिंसक भाव इस जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने के उपकरण बने।स्वदेश प्रेम से प्रेरित होकर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आत्म बलिदान करने की इस भावना में तथा पूर्व युगों की भावना में एक मूलभूत अन्तर दृष्टिगोचर होता है । पूर्व मध्य युगीन, मध्ययुगीन तथा पूर्व आधुनिक युग में समरांगण में कूद कर युद्ध के भयंकर संघर्षों में जूझते हुए आत्मविसर्जन के भाव में शत्रु को विनष्ट करने का हिंसक भाव भी समाहित था । आलोच्य काल में हिंसा की यह नीति सर्वथा त्याज्य हुई । शोषण एवं पीड़न से उद्वेलित भारतीय जन आत्मविश्वास तथा आत्म बल से पूर्ण होकर स्वतंत्रता संग्राम का सेनानी बना । दिन प्रतिदिन भारतीय वीरों की क्षीण होती हुई शारीरिक शक्ति को आत्मा का अपूर्व बल प्राप्त हुआ । इस बल के आलोक में तथा गांधी जी के सत्याग्रह से प्रतिरोध की जो नितान्त नवीन दिशा प्राप्त हुई उसमें उत्सर्ग की भावना भी एक

नए रूप में दृष्टिगोचर होती है । भारत मां की जयघोषणा के तुमुल नाद में उत्पीड़न का विरोध करते हुए भारतीय कर्मवीर निरन्तर बढ़ते रहे । अनेक प्राण आहुत हुए, कितने ही अपंग और अपाहिज हो गए किन्तु आत्मोत्सर्ग की बलिवेदी पर हंसते हुए बढ़ने के लिए नित नए वीर प्रस्तुत होते रहे । राष्ट्रवीरों के चरित्र का गान करने वाले ऐतिहासिक काव्यों में उनके उत्सर्ग की इस अनुपम भावना विविध रूपों में चित्रित हुई । `बापू` `आत्मोत्सर्ग` `आत्मार्पण` `महामानव` `जननायक` `सुभाषचन्द्र` `जगदालोक` आदि काव्य भारतीय राष्ट्रवीरों के आत्मबलिदान की इसी नवीन भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं । गणेशशंकर विद्यार्थी के निम्न कथन में इस अपूर्व भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है -

`अच्छी बात, साथ हो हैं तो
बहुत नहीं जन दो या चार,
पर वे न हों मारने वाले
हों मरने को ही तैयार[१] ।

सत्य की बलिवेदी पर आहुत हुए विद्यार्थी जी के मौन आत्मोत्सर्ग के प्रति कवि नमित होकर कह उठा-

आत्मोत्सर्गशीलता , शुचिता,
दृढ़ता अपरिमिता तेरी ।
निखिल विश्व में परिव्याप्त हो,
मति वह सर्वहिता तेरी [२]

`महामानव` के कवि ने आधुनिक स्वतंत्रता के वीर सेनानी शहीदों के इस भाव की अभिव्यक्ति करते सम्पूर्ण वीरों की उत्सर्ग भावना का जैसा आकर्षक तथा चित्रमय वर्णन किया है वह देखना महत्वपूर्ण है-

---

१- आत्मोत्सर्ग , सर्ग २

२- वही , सर्ग ३

ओ शहीद तुम !
ओ शहीद की सेना !
ओ सेनाधिप !
तुम बढ़ गए नदी घाटों पर
पैर बढ़ाते --

+ +

ऊपर नीला आसमान
नीचे धरती असहाय
खड़े लिये तुम शान्त लहर सागर की
भर उन्मेष
उठने दो तुम उन्हें धारा पर-
दुन्द बांध कर
शस्त्र खिलाते
घोष उठाते
खून गिराते
खड़े रहो तुम ओ मेरे आदर्श
कि जैसे गहन यह कांतार
कन्धे सटे लिये नीरवता घोर
उन्हें भौंकने दो संगीने
और चलाने दो मशीनगन
गोला गोली
किन्तु अचल तुम ।[१]

अन्य काव्यों में भी शहीदों के उत्सर्ग का यही भाव विद्यमान है । विभिन्न युगों के ऐतिहासिक वीरों के आत्मोत्सर्ग की भावना के प्रति कवियों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण वास्तव में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा है।

१- सर्ग नवां

(घ) संघर्ष :--

आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर किसी दृढ़ निश्चय के सम्मुख रख मानव मन अधिकाधिक उत्साह से क्रियाशील होता है तथा उस क्रिया के मूल में मानसिक विचारों से उत्पन्न प्रतिक्रिया प्रेरक रूप में विशेष महत्व की वस्तु है[१]। इसका उल्लेख पहले हो चुका है कि स्वातंत्र्य की रक्षा हित उत्सर्ग हो जाने की भावना पूर्व ऐतिहासिक युगों तथा आलोच्य कालीन वीरों के चरित्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। आत्म बलिदान के भाव से प्रेरित होकर ये वीर सेनानी जीवन और मरण के संघर्ष में जूझते हैं। खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में उस संघर्ष की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर देखना आवश्यक है।

'मौर्य विजय' के वीर सेनानी विजय से पूर्व भारत के गौरव का गान करते हैं। भारत भूमि की सर्वोत्कृष्टता पर उन्हें गर्व है। इस पुण्यभूमि का प्रेम उनके तन मन में व्याप्त है। रामकृष्ण की इस भूमि की ओर कोई आंख उठा कर भी नहीं देख सकता। प्राणप्रिय वसुधा की ओर यूनानियों ने तृष्णा की दृष्टि से देखा तो उसकी रक्षा हित भारतीय वीर समर भूमि में प्राणों की बाजी लगा कर कूद पड़े हैं --

शस्त्र चमकने लगे भयंकर समरस्थल में
मरने लगे अनेक वीर गिर कर पल पल में।
उड़ उड़ कर बहु धूल व्योम मण्डल में छाई
इस प्रकार हो उठी वहां पर घोर लड़ाई।

१- मानव मन अर्थात् उसके विचार, भाव उद्देश्य सभी का यह रूप आन्तरिक यांत्रिक मस्तिष्कीय गति ही है। भय और तृष्णा वह आन्तरिक गतियां हैं जिनसे कर्म रूपी परिणाम उत्पन्न होते हैं------अनुभव के विषय का रूप गुण कुछ भी बाह्य अर्थात् अनुभूत पदार्थ में नहीं होता, वह बाह्य पदार्थ के द्वारा मस्तिष्क में उत्पन्न गतियों, उपद्रवों अथवा परिवर्तनों का हमारे मन मन में व्यक्त होने वाला रूप है। --रामपूर्ति लूम्बा, मनोविज्ञान के क्षेत्र, पृ०४, प्रथम संस्करण १९६४

वीरों के हृदयों में विपुल बिजली सी भरने लगीं
जो उन्हें शत्रु संहारहित उत्तेजित करने लगीं ।[1]

'प्रणवीर प्रताप','सती पद्मिनी','आत्मार्पण','वीर हमीर','हल्दी घाटी' 'वीरांगना वीरा' आदि काव्यों के सामरिक संघर्षों की पृष्ठभूमि में,स्वाधीनता की रक्षा, जीवन-गौरव की विजय,अभिलाषा ,वीरधर्म के गौरव की रक्षा हित नवविवाहिता पत्नी का रोमांचकारी आत्मबलिदान,वचन प्रियता के भारतीय आदर्श की रक्षा तथा पति परायणता की भावना मुख्य रूप से प्रेरक रही है । इनमें एक भी संघर्ष ऐसा नहीं हुआ जो राज्य सत्ता की वृद्धि हेतु हुआ हो । फलत: प्रत्येक संघर्ष वीरों के आन्तरिक भावों की प्रेरणा प्राप्त करके जीवन्तरूप में काव्य पट पर अंकित हुआ है । पत्नी के शीश की माला पहने हुए वीर सरदार चूड़ावन्त ने संहारकत्री मूर्ति धारण कर ली, नेत्रों से रोषाग्नि निकलने लगी,शिशोदिया पर्वत के समान निश्चल होकर अड़े रहे -

शिशोदिया पर्वत-सम निश्चल
अड़े रहे दृढ़ता के साथ
शाह सैन्य को रहे काटते
दिखलाए बढ़ बढ़ कर हाथ[2]

'प्रणवीर प्रताप' में जिस संघर्ष का चित्रण हुआ है हल्दीघाटी में वह विशद रूप में प्रस्तुत हुआ है । महाराणा प्रताप तथा उनके सैनिकों के समक्ष केवल एक ही उद्देश्य था, एक ही ध्येय था तथा उसी ध्येय की पूर्ति के लिए वे उन्मत्त होकर अकबर की विशाल सेना से जूझ जाया करते थे ।

उन आग बरसती तोपों के
मुंह फेर अचानक टूट पड़े ।

१- सर्ग द्वितीय

२- आत्मार्पण,सर्ग पंचम

वैरी-सेना पर तड़प-तड़प
मानो शत-शत पवि टूट पड़े।[१]

जो साहस कर बढ़ता उसको
केवल कटाक्ष से रोक दिया।
जो वीर बना नभ-बीच फेंक
बरछे पर उसको रोक लिया।[२]

अरि-सेना से जूझते हुए कल्याण बाबा के शौर्यपूर्ण संघर्षों का चित्रण द्रष्टव्य है--

अपनी तलवार दुधार लिये
भूखे नाहर-सा टूट पड़ा।
कट कट मच गया, अचानक दल
आश्विन के घन-सा फूट पड़ा।[३]

'जौहर' में क्रूर तथा कामुक अलाउद्दीन से सतीत्व की रक्षा के लिए युद्ध करते हुए गोरा बादल ने प्राणों की बाजी लगा दी। राजपूत नारी के मान पर एक कामुक यवन चोट करता रहे और वीरों के वीर मौन रह कर उसे सहन करें, यह सम्भव नहीं हो सकता था। राजपूतनारी-कुल के गौरव के विरुद्ध किए गए आचरण का उत्तर राजपूत वीर युद्ध के मैदान में देते हैं। आत्मसम्मान के भाव से भर कर लड़ते हुए इन वीरों की तेजस्विता का दृश्य प्रस्तुत है ---

परदे उठे सूरमे निकले
मानो निकले सिंह मांद से।
दसों दिशाएं थर थर कांपीं
हर-हर के हुंकार-नाद से।।

१- एकादश सर्ग

२- द्वादश सर्ग

३- वही

एक साथ में सिंह नाद कर
छोड़ दिया धावा गोरों पर
आग बरसने लगी अचानक
फिरंगी के निर्दय घेरों पर ।[१]

ब्रिटिश शासकों की क्रूर दमन नीति तथा राज्य लिप्सा से लक्ष्मीबाई के हृदय में स्वतन्त्रता प्राप्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी, तथा विदेशी शासकों की शक्ति के झुक जाने के लिए उस युवती वीरांगना की प्रेरणा के मूल में वही ज्वाला कार्य कर रही थी । यह संघर्ष किसी अतीत युग की कहानी नहीं है यह कल्पना के पंखों पर उड़ती हुई किसी परिदेश की कहानी भी नहीं है । यह सौ वर्ष पूर्व नारी के जीवित संघर्ष की कहानी है----- युद्ध के क्षेत्र में महारानी लक्ष्मीबाई के वीर रूप की व्यंजना 'झांसी की रानी' में हुई है ---

जब तक घोड़े की टापों की
ध्वनि भी शत्रु सुन पाता था ।
तब तक रानी का खंग तुरत
बन मृत्यु शीश पर आता था ।
दायें बायें दो भागों से
रानी थी रिपु सिर काट रही
स्वातंत्र्य-भवन की नई नींव
थी शत्रु मुण्ड से पाट रही[२]

'आर्यावर्त' में भी देश प्रेम तथा स्वतंत्रता की रक्षा से उद्बुद्ध ऐसे ही सैनिक संघर्षों का चित्रण हुआ है ।

१- दसवीं चिनगारी

२- बारहवीं हुंकार

'नूरजहाँ' प्रेमकाव्य है। अत: रक्तपात और मारकाट की वहाँ स्थान नहीं। 'विक्रमादित्य' में मुख्यत: प्रेम काव्य है अत: विदेशी शक जाति से युद्ध करने में विशेष प्रभावपूर्ण संघर्ष नहीं हो पाया है। चित्रण की अपेक्षा वर्णन अधिक हुआ है। मध्ययुगीन तथा पूर्व मध्ययुगीन संघर्ष से अतिरिक्त आलोच्यकालीन स्वतंत्रता संग्राम के लिए गांधी जी के नेतृत्व में किया गया संघर्ष, वर्तमान इतिहास को लेकर निर्मित काव्यों में द्रष्टव्य है। इस नये युग में युद्ध तथा रक्तपात के स्थान पर गांधी जी ने स्वाधीनता के इतिहास में एक नवीन दिशा निर्धारित की। आत्मबल के अमोघ शस्त्र से सज्जित होकर राष्ट्रवीरों ने समरभूमि में पदार्पण किया। वेशभूषाओं के कष्टपूर्ण जीवन से पराभूत नहीं हुए। विदेशी शक्ति के समक्ष सीना तान कर डटे रहे किन्तु पराजय स्वीकार नहीं की। आधुनिक राष्ट्रवीरों का यह संघर्ष समकालीन चरित-काव्यों में कवि की सम्पूर्ण संवेदना का विषय बना है।

'गांधी गौरव' में जेलों के कठोर जीवन से संघर्ष करते हुए स्वाधीनता प्रेमियों का एक चित्र प्रस्तुत है-

> जिस भांति कैद कड़ी मिली थी काम था करना पड़ा
> पाला प्रथम दिन ही उन्हें मिट्टी कुदालें से पड़ा।
> बरसा रहीं थीं धूप भी अंगार-ज्वाला घोर थी
> थी वार्डर की प्रकृति भी अत्युग्र और कठोर थी।

अनभ्यस्त करों में छाले पड़ गये। कष्ट के कारण अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी-

> था पांव फूला एक का छाले करों में थे पड़े
> उठती कुदाली भी न थी जल कण टपकते थे बड़े।
> गान्धी गिरा ही सान्त्वना देती उन्हें उस काल थी
> हा निरपराधों पर पड़ी कैसी विपत्ति विशाल थी ?

'महामानव' की कथा तो युग के संघर्ष की ही कथा है-

> भूख प्यास फिर धूप
> धूप से जेल, जेल से मृत्यु
> किन्तु प्रसतों की राह रेखा
> मिटे न पा सत मृत्यु [1]

आग उगलती हुई गोलियों के सम्मुख राष्ट्रवादियों का यह संघर्ष पराजित नहीं हुआ-

और तड़पती गोलियों से आग
शान्त उज्ज्वल राजपथ खूनी फाग
उठी छाती चिरी जनता की
रंगी खूनी सड़क दिल्ली की
लड़खड़ा फिर बढ़े दृढ़ पद धीर
चली गोली छातियाँ फिर चीर
यदि रुका न गदर कभी का
क्यों रुके अभियान जनता का[१]

स्वतंत्रता संग्राम के इस भीषण संघर्ष के साथ ही हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के कारण आलोच्य काल में जो भीषण संघर्ष उपस्थित हुआ था वह भी ऐतिहासिक महत्व की घटना है। `आत्मोत्सर्ग` तथा `आत्मार्पण` में यह भाव चित्रित हुआ है। हिन्दू-मुस्लिम परस्पर प्राणों के भूखे हो गये थे ---

बदल पैंतरा-सा फिर लौटा
    विग्रह-दैत्य प्रबल पीवर
क्रुद्ध नेत्र पीकर शोणित से
    जाग पड़ा खुल पलक भी कर।
हुआ इधर `अल्ला हो अकबर`
    हुई उधर जय मारुति की
बर्बरता के अग्नि कुंड में
    भव्य भाव की आहुति-सी।[२]

१- सर्ग सातवां, महामानव

२- खण्ड १, आत्मोत्सर्ग

ऐतिहासिक काव्यों के इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि संघर्ष का जो चित्रण इनमें हुआ है उसके मूल में निहित प्रेरक भाव का सीधा सम्बन्ध मानव मनोविज्ञान से रहा है। संघर्ष केवल संघर्ष के लिए नहीं हुआ करता था इसकी पृष्ठभूमि में निहित उद्देश्य की महानता तथा उमंग की तीव्रता के कारण ही राजपूत वीरों की मुट्ठी भर सेना से समस्त शत्रु पक्ष की सेनाएं घुटने टेक दिया करती थीं। अतः ढोला के काव्य में यह चित्रण सजीव है तथा इनमें युग की भावना के दर्शन होते हैं।



सप्तम अध्याय

ऐतिहासिक सन्दर्भों का काव्यगत सौंदर्य

काव्य सौन्दर्य :-

काव्य जीवन का असीम और अकृत्रिम सौन्दर्य-बोध है । इसके द्वारा मनुष्य एक ऐसे परम सुख एवं अविरल आनन्द का अनुभव करता है जो चिरन्तन है और जिसे समय की गति कभी नष्ट नहीं कर सकती । सौन्दर्य बोध की चेतना प्रत्येक प्राणी में विद्यमान रहती है किन्तु कवि की अनुभूति जब कला के स्पर्श द्वारा, जीवन के सौन्दर्य को काव्य के रूप में प्रस्तुत करती है, तब आनन्द की ऐसी शाश्वत सृष्टि होती है जो अपने सुख की सीमा में जगत के प्रत्येक सुख और आनन्द का अतिक्रमण करती प्रतीत होती है । वह आनन्द-रस, वह सौंदर्य काव्य में कहां स्थित रहता है, यह कह सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । प्राचीन आचार्यों ने काव्य के सौन्दर्य को परखने का प्रयत्न विविध दृष्टिकोणों से किया है । कहीं ललित पदावली, कहीं अलंकृत शैली, कहीं उक्ति चमत्कार, कहीं रस पूर्णता और कहीं रमणीय अर्थ वर्णन में काव्य सौन्दर्य के दर्शन किए गए । वस्तुत: काव्य-सौंदर्य रस अथवा अलंकार किसी एक में स्थित नहीं होता । श्रेष्ठ काव्य के निर्माणमें रस, अलंकार, छन्द और भाषा सभी का सहयोग आवश्यक है । यह बात दूसरी है कि रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है और अलंकार छन्द तथा भाषा आदि रसोत्पत्ति में ही सहायक होते हैं अत: काव्य सौन्दर्य में रस की प्रमुखता स्वत:सिद्ध हो जाती है । यहां हम रस अलंकार छन्द और भाषा के परिवेश में ऐतिहासिक काव्यों के सौन्दर्य का विश्लेषण करेंगे ।

(क) रसात्मक सौन्दर्य :-

काव्य में रस की स्थिति के सम्बन्ध में काव्य-शास्त्र निर्माताओं द्वारा पक्ष एवं विपक्ष में अनेक विचार प्रतिपादित किए गए किन्तु किसी न किसी रूप में रस का महत्व सभी ने स्वीकार किया । सर्वप्रथम भरत मुनि ने 'नाट्य शास्त्र' में एक सूत्र कहा है -'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्ति:' अर्थात् विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है । इसके पश्चात् विभिन्न काव्य-शास्त्र आचार्यों[१] ने कुछ घटा-बढ़ी के साथ

१- आचार्य भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, भोज, मम्मट, वाग्भट, जयदेव, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि।

इस सम्बन्ध में मत स्थापित किए किन्तु भरत मुनि के बहुत पीछे चौदहवीं शताब्दी में साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने `वाक्यं रसात्मकं काव्यम्` कह कर रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया। इस पर भी अनेक आलोचनाएं हुईं और रस कहां होता है, यह प्रश्न जटिल ही बना रहा किन्तु सत्रहवीं शताब्दी में पण्डितराज जगन्नाथ ने एक सूत्र कहा- रमणीयार्थ: प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् । इस सौन्दर्यपूर्ण अर्थ वर्णन से रस की स्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है । वास्तव में रस-- छन्द, अलंकार, भाषा अथवा शब्दविन्यास आदि किसी एक में नहीं होता वह इन सबमें होता है और `रमणीय अर्थ` में इन सभी का समावेश हो जाता है । आधुनिक युग में भी रस की महत्ता स्वीकार की गई है[१]।वस्तुत: रस काव्य की आत्मा है और रस शून्य काव्य की कोई स्थिति ही नहीं। गुलाबराय जी के शब्दों से सहमत होते हुए यह कहा जा सकता है कि-

`कविता में अनुभूति और अभिव्यक्ति का प्राय: समान महत्व है, फिर भी अभिव्यक्ति का महत्व अनुभूति पर निर्भर रहता है[२]।`

इस विचार में भी रस की ही महत्ता स्वीकार हुई प्रतीत होती है । नवरसों के दृष्टिकोण से ऐतिहासिक काव्यों पर विचार करें तो प्रमुखता वीर, शृंगार और करुण रस की मिलती है । वीर गाथाकालीन ऐतिहासिक काव्यों में वीर रस की प्रधानता है शेष रस समय समय पर ही उपस्थित होते हैं[३] ।

१- जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं । -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग १, पृ०१४१

२- काव्य के रूप , पृ० १७

३- इस काल के साहित्य में वीर रस का प्राधान्य है । अपने चरित नायकों के शौर्य और महत्व के वर्णन में वीर रस की अधिक आवश्यकता पड़ी है ।इस वीर रस के क्रोड़ में शृंगार रस भी कभी-कभी दीख पड़ता है ---।विशेष

(शेष--

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में वीरगाथा कालीन काव्यों की भांति नायक के शौर्य और महत्व वर्णन का दृष्टि प्रमुख नहीं है । इन काव्यों में तो नायक के जीवन से सम्बद्ध अनेक प्रसंगों का चित्रण तथा वर्णन हुआ है और चरित्र वर्णन में अधिकांशत: मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि अपनाई गई है। अत: वीर रस की प्रमुखता होते हुए भी अन्य रसों का चित्रण भी महत्वपूर्ण है । उदाहरणस्वरूप`चित्तौड़ की चिता`,`कुणाल` आदि में करुण रस प्रधान है ।`तपस्वृह` में करुण और शान्त रस की प्रमुखता है ।`जौहर` में करुण रस प्रमुख है । सिद्धार्थ और वर्धमान में शान्त रस प्रधान है । रस सौन्दर्य की दृष्टि से कतिपय ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों को देखना आवश्यक है। रंग में भंग, मौर्य विजय,सती पद्मिनी,प्रणवीर प्रताप,वीरपंचरत्न,विक्टभट्ट, आत्मार्पण,वीरहमीर,गुरुकुल तथा वीरांगना वीरा अंककाव्यों में वीर रस प्रधान है । नकली किले की रक्षा करने के प्रसंग में हाड़ा सरदार के वीरता पूर्वक लड़ते हुए बलिदान हो जाने में वीर रस की उद्भावना हुई है --आन-मान-शान के लिए सोच विचार रहित वीरता का यह भाव राजपूत वीरों की ही शोभा थी---

है न कुछ चित्तौर यह बूंदी हमें अब मानिए
मातृभूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिए।
कौन मेरे देखते फिर नष्ट कर सकता इसे ?
मृत्यु माता की कहत में सहन हो सकती किसे ?
(रंग में भंग)

शेष- बात तो यह है कि वीर रस की उमंग के साथ साथ हमें इस काल की कविता में विरह वर्णन भी मिलता है। रौद्र और बीभत्स भी युद्ध वर्णन में पाये जा सकते हैं।शत्रुओं की मृत्यु पर शत्रु नारियों के हृदय में करुणा की धारा भी प्रवाहित हुई है । अतएव हास्य और शान्त रस को छोड़ कर प्राय: सभी रसों का समावेश इस काल के काव्यों में हो गया है,पर प्राधान्य वीर रस का ही है।--डा० रामकुमार वर्मा,हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १८७,१८८

वीर हमीर के कथन में कवि ने ओजपूर्ण वीरत्व का चित्र प्रस्तुत किया है-

राजपूतों रक्त है मेरी शिराओं में भरा,
युद्ध के पहिले हृदय में सोच भी लेना ज़रा ।
समझ लेना यदि कभी भी सिंह छेड़ा जाएगा,
छेड़ने वाला दुखित हो अन्त में पछताएगा ।
(वीर हमीर)

इसी प्रकार अन्य खण्ड काव्यों में भी वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है[1]। जहां कहीं उत्साह भाव की अभिव्यक्ति हुई है अथवा रक्तपात और शस्त्र-संचालन के प्रसंग आए हैं, वीरता ओजपूर्ण रूप में व्यक्त हुई है ।

राजपूत वीर वीरांगनाओं की भाव भंगिमा तथा क्रियाकलाप के चित्रण द्वारा भी काव्यों में वीर रस का परिपाक हुआ। यथा-

बस शब्द हटा दो का पड़ा कान में जिस दम
मुखड़ा हुआ तारा का विकट क्रोध से तमतम
आंखों से झड़ी आग फड़क उट्ठीं भुजा क्रम
घोड़े पै संभल बैठी कहा जाते हैं अब हम
ली खैंच सिरोही व इधर एंड़ लगाई
बिजली से भी कुछ बढ़ के करामात दिखाई ।
(वीर पंचरत्न : 'तारा')

१- धर्म विरोधी मिलें शत्रु जो
कर दो उनका केवल नाश
अरि शोणित से रणचण्डी का
खप्पर भरो आज तत्काल । (आत्मार्पण, सर्ग पंचम, छन्द १६)

... ...

वहां अगर वह वीर सकेगा तीरों की बौछारों को
रोक सकेगा एक साथ छूटी अनेक तलवारों को
तो फिर मुझे कलेजा देख लेगा वह पापी अपनी छाती पर
जैसे दीप शिखा शोभित होती है बुझती बाती पर
- (सती पद्मिनी, सर्ग, पांच, पृ० ४०)

'विकट भट्ट' में वीरत्व व्यंजना नाटकीय शैली में हुई -

निर्भय मृगेन्द्र यथा करता प्रवेश है
वन में ज्यों डाले बिना दृष्टि किसी ओर हो
मौर के मयूखों -सा प्रविष्ट हुआ सामने
बालवीर मन्द मन्द धीर गति से, था
मानो धंसी जा रही थी वदन गंभीर था
उठता शरीर मानो अंग में न आता था
वक्षस्थल देख के कपाट खुल जाते थे (विकट भट्ट)

बापू सम्बन्धी प्रबन्ध काव्यों में वीरत्व का चित्रण कर्मवीरता की पृष्ठभूमि में ही हुआ है । अहिंसा के कठोर मार्ग का अनुसरण करने वाले भारतीय वीर युवक शत्रुपक्ष की गोलियां और लाठियां को अपने वक्ष पर फेलते हुए कर्मक्षेत्र की ओर बढ़ते गए । विश्व के इतिहास में मौन वीरत्व के ऐसे दृष्टान्त भारत को छोड़ कर और कहां उपलब्ध हो सकते हैं ।दक्षिण अफ्रीका संग्राम,दण्डी प्रयाण ,~~असहयोग~~ असहयोग आन्दोलन तथा अनेकों सत्याग्रहों के प्रसंगों में कवियों ने आलोच्य कालीन वीरत्व की व्यंजना की है । यथा-

गोलियों के गान के ही बीच
बरसती पागल गनों के बीच
उछलते फटते बमों के बीच
तड़पती टामीगनों के बीच
जो चले हैं चाल उसकी चाल
जो बढ़े हैं भाल उसकी भाल
जो ढहे फिर भी उठे अश्रान्त
है वही जीवित धरा का लाल ।[१]

१- महामानव :सातवां सर्ग, पृ० ८६

रघुवीरशरण मित्र[1], गोपालशरण सिंह[2], सियारामशरण गुप्त[3] तथा 'दिनकर'[4] आदि कवियों ने राष्ट्रवीरों की ऐसी दुर्लभ कर्मवीरता का चित्रण किया है। शृंगाररस वीररस के अतिरिक्त अन्य रसों का चित्रण भी काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । 'मौर्य विजय' में सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा हेलैना के दृष्टि व्यापार की कल्पना में तथा हेलैना के रूप वर्णन के प्रसंगों में कवि ने सहज ~~स्वर्णिम्मन~~ स्वाभाविक शृंगार के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए-

चन्द्रकला के सदृश वहां पर किए उजाला
छवि को भी कर रही विलज्जित थी वह बाला

और उस चन्द्रकला ने सम्राट् के हृदय तल में चंचलता उत्पन्न कर दी-

उस बाला का आलोकमय अनुपम रूप निहार के
वे मुग्ध हो गये चित्त में अपनी दशा बिसार के[5]

मन की इस चंचलता के चित्रण में एक मर्यादित चित्र ने तो तुलसीदास की के शृंगार वर्णन की मर्यादा से टक्कर ली-

नृपवर ने दी एक बार उसको अवलोका
किन्तु संभल कर शीघ्र उन्होंने मन को रोका ।[6]

रूप चित्रण द्वारा शृंगार का यह वर्णन 'सती पद्मिनी' और 'वीरांगना मीरा' में भी हुआ है । शृंगार के वियोग वर्णन की दृष्टि से 'यशोधरा' तथा 'चित्तौड़ की चिता' उल्लेखनीय है । संयोग का इन खंडकाव्यों में अभाव-सा है ।

१- जननायक
२- कापालिक
३- बापू
४- बापू
५- तृतीय सर्ग, छन्द १४
६- वही पृ० २८

महारानी करुणा के वैधव्य पूर्ण जीवन का बहुत मार्मिक वर्णन हुआ है। क्षणिक मिलन, फिर युद्ध की घटाटोप घटाएं, वीरत्व की फुंकार और फिर चिर-वियोग--

गिर पड़ी करुणा लता समान
नहीं था जिसको कुछ आधार
टूट कर बिखर गया वह हार
नाथ जिस गूंथा जो सुखमान ।[1]

सिसकियों की प्रतिध्वनि से वायु हाहाकार कर उठा । काव्य का षष्ठम सर्ग करुणा की मौन मुखर आहों से आच्छादित है । `सती पद्मिनी` में पद्मिनी के विरह का चित्रण हुआ है । महाराणा को अलाउद्दीन ने अपने शिविर में कैद कर लिया । अलाउद्दीन के प्रति क्रोध और घृणा के भाव के साथ-साथ पति की स्मृति महारानी पद्मिनी को व्याकुल कर रही है -

पीस पीस कर दांत कभी वह दिल्लीपति पर रह जाती
कभी याद कर प्यारे पति को नैनों में भर जल लाती ।[2]

वीर रस के अतिरिक्त करुण रस का चित्रण भी बहुत मार्मिक है ।`चित्तौड़ की चिता` में करुणा का वैधव्यपूर्ण जीवन अत्यन्त करुणाजनक है ।संग्राम सिंह की मृत्यु के पश्चात् करुणा असहाय हो गयी । उधर बहादुर शाह चित्तौड़ पर चढ़ाई करने आ रहा है । इस दोहरे संकट में पड़ कर वह हुमायूं को राखी भिजवाती है और सैनिक सहायता की प्रार्थना करती है किन्तु हुमायूं नहीं आ पाता और करुणा अपनी समस्त वेदना के साथ अग्नि की भेंट हो जाती है । कवि ने करुणा के वेदना व्यथित जीवन का करुण चित्र प्रस्तुत किया है-

`मिलाया लपट करों से हाथ
चिता के अंक हुई आसीन
पहिन लपटों का वस्त्र नवीन
हुई हव्यित स्वाहा के साथ ।[3]

१- पंचम सर्ग, पृ० ४०

२- वही पृ० ४८

३- अष्टम सर्ग, छन्द ३५२

इसी भांति `आत्मार्पण`, `सती पद्मिनी` तथा `कुणाल` काव्यों में भी करुण रस का स्वर प्रमुख है । `कुणाल` तथा `कुनाल` में यद्यपि शान्त रस प्रमुख है तथापि कुणाल का भिक्षुक जीवन राज्य त्याग का प्रसंग तथा निर्वासन काल में गाये गए पद गीत करुणा विगलित हैं । पति के अन्धा किए जाने का समाचार सुनते ही कांचन माला के मौन रुदन में करुणा का उद्रेक है -

वह अश्रुपूर्ण विलखनों से
कांपती रोने लगी
नेत्र अविरल धार से
सारी धरा धोने लगी ।[१]

कुणाल से सम्बन्धित अन्य काव्यों में भी यह प्रसंग बहुत मार्मिक है । `गुरुकुल` में गुरु तेगबहादुर की विदाई का प्रसंग करुणात्मक है । औरंगजेब द्वारा बुलाए जाने का तात्पर्य मृत्यु है यह जान कर स्त्रियों के रुदन और पुत्र गोविन्द की पुकार में कवि ने करुणा का सुन्दर चित्रण किया है-

वीर स्त्रियां विदा देती थीं
रो रो कर गा कर शुभ गान
+ +
बरसे साश्रु -सुमन जय जय से
गूंजा उनका उच्च अलिन्द
पिता ! पिता ! सन्नाटा छाया
गद्‌गद हुए पुत्र गोविन्द (पृ० १००)

आधुनिक इतिहास से सम्बन्धित सन्दर्भों में करुणक रस का चित्रण शोक गीतों के रूप में हुआ है । बापू, तिलक, गोखले, सुभाष, लाजपत राय, जवाहरलाल, गणेश

१- तक्षशिला, पृ० १६५

शंकर विद्यार्थी आदि आलोच्यकालीन राष्ट्र नेताओं के बलिदानों तथा मृत्यु पर अनेक भावनापूर्ण शोकगीत लिखे गये । एक भारतीय आत्मा ने तिलक के लिए आंसू बहाए तो मानो सम्पूर्ण भारतीय जनता उस शोक सागर में डूब गई--

क्यों कह कहना स्वीकार हुआ ? बोलो, बोलो किस ओर चले ?
ये तीस करोड़ किसे पावें, क्यों इन सब के शिरमौर चले ?
क्यों आर्य देश के तिलक चले, क्यों कमजोरों के ज़ोर चले ?
तुम तो सस्ता उस ओर चले, यह भारत मां किस ओर चले ?

बापू के बलिदान पर तो असंख्य शोकगीतों का निर्माण हुआ । मार्च १९४८ की 'सरस्वती' में एक नहीं अनेक शोकगीत विभिन्न कवियों ने 'बापू' के प्रति लिखे।

वीभत्स रस का चित्रण युद्धों की विभीषिका के वर्णनों में ऐतिहासिक काव्यों में हुआ है तथा वीरोक्तियों में वीरता के साथ साथ रौद्र रस का क्रोध भाव व्यंजित हुआ है । यथा-

तुम्हें चुनौती देता हूं मैं
    आ तू और दिखा औचित्य
अपनी उस धार्मिकता का जो
    कर सकती है ऐसे कृत्य [१]

रस की दृष्टि से उपर्युक्त खण्डकाव्यों का विश्लेषण करने पर जो प्रमुख बात दृष्टिगोचर होती है वह यह कि खण्डकाव्यों में मुख्यत: प्रधान रस की अभिव्यक्ति ही प्रभावपूर्ण हो सकी है अन्य रस या तो गौण हैं या विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं । रस की व्यापकता की दृष्टि से कतिपय महाकाव्यों का विश्लेषण करना उचित रहेगा।

१- गुरुकुल, पृ० २०६

नूरजहां शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है । मेहर और सलीम के आकर्षण के सम्पूर्ण प्रसंग में प्रेम के संयोग पक्ष की व्यंजना हुई है-

भोलापन यह देख चकित सी मुख छवि कुछ निहारी।
क्षण भर रहा निरखता एकटक तन की दशा बिसारी।
फिर एक ठंडी सांस खींच कर दौड़ अधर चुम्बन ले ।
ऊपर उठा लिया हाथों पर लगा लिया सीने से ।।[१]

इससे पूर्व अनारकली और सलीम के प्रेम प्रसंग में भी संयोग का चित्रण हुआ है । अनारकली के राज्य से निकाले जाने में वियोग का मार्मिक चित्रण उल्लेखनीय है। यों तो शेर अफगन की मृत्यु के पश्चात् मेहर के छ: वर्षों के वैधव्य पूर्ण जीवन को भी वियोग की कोटि में लिया जाना चाहिए किन्तु वहां वियोग का भाव विशेष पुष्ट नहीं है । जहांगीर के प्रेम की छाया में नूरजहां के वैधव्य पूर्ण जीवन में मान-सिक अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु विरह पूर्ण जीवन के दु:ख का चित्रण नहीं हुआ । अत: मेहर के जीवन में वियोग चित्रण के स्थान पर करुणा की व्यंजना सुन्दर हुई है । मेहर के प्रति शेरअफगन की कठोरता और शुष्कता के कारण मेहर का पत्नी जीवन बहुत मार्मिक हो उठा है । --निम्न पंक्तियों में करुणा और कठोरता की अभिव्यक्ति एक साथ हुई है --

मुझ पर नहीं वार चल सकता क तानो कितना भू तलवार
इन नखरों में फंसने वाला होगा कोई और शिकार
कट कर बस रह गई, दु:ख से मेहर बड़ी फूली फूली
पीती गई आंख में आंसू अपनी देह दशा भूली ।।

अन्य रस भी यथासमय आए हैं । अनारकली और अकबर के वार्तालाप में रौद्र रस है। सर्व सुंदरी की लोरी तथा मेहर का लैला के प्रति प्यार में वात्सल्य की व्यंजना हुई है ।

१- सर्ग ६, पृ० ५०

`सिद्धार्थ` का पूर्वार्द्ध शृंगार से पूर्ण है अन्त शान्त रस में हुआ है किन्तु वर्णन की दृष्टि से मुख्यता शृंगार रस की ही है । काव्य के प्रारम्भ में ही महामाया के पूछे जाने पर सखियों द्वारा उषा वर्णन में कवि ने नव रसों का उल्लेख किया है । शृंगार के अन्तर्गत रूप वर्णन, प्रेम के उत्कर्ष का एवं संयोग-वियोग का अत्यन्त आकर्षक चित्रण हुआ है । रूप वर्णन और प्रेम वर्णन में कवि की चित्तवृत्ति खूब रमी है । बसंत के अवसर पर स्वयंवर के प्रसंग में यशोधरा का रूप चित्रण सोती हुई परिचारिकाओं की भाव भंगिमा के सौन्दर्य का चित्रण उल्लेखनीय है ।प्राकृतिक उपमानों द्वारा कवि ने यौवन के आगमन का आभास दिया है --

उदित यौवन का रवि हो चला
शशि-कला-सम शैशव अस्त था
अब स-युग्म रथांग उरोजिनी
तरलिता तरुणी तटिनी बनी ।[1]

यशोधरा के रूप-चित्रण में कवि की तन्मयता प्रवृत्ति दर्शनीय है-

विमोदिता यौवन भार गुर्विता
अनूप अंगांग -अनंग-अंकिता
चली उगाती सित कंज मार्ग में
वसन्त लक्ष्मी सदृशा यशोधरा[2]

इसी भांति सर्ग बारह में सुप्त परिचारिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में जहां एक और कवि की सौन्दर्य भेदिनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक प्राप्त होता है वहीं उसकी रसिक प्रवृत्ति का भी आभास मिलता है ।[3] `यशोधरा` और `सिद्धार्थ` के

१- सर्ग ५, पृ० ७० २- सर्ग ६, पृ० ८४

३- सोती पड़ी अवनी पै परिचारिकाएं
है गात्र की न जिनको सुधि वस्त्र की भी
आधे-खुले सुघन मंजु उरोज ऐसे
जैसे `अनूप` कवि की कविता खुली हो ।(पृ० १८८)

प्रेमोत्कर्षों के चित्रण में शृंगार रस का परिपाक हुआ है । चकोर बन कर शशांक(यशोधरा)के देखते रहने की सिद्धार्थ की अभिलाषा में रागपूर्ण आकर्षण की मधुर मादकता झलक रही है --और उससे भी अधिक प्रेमोत्कर्ष का एक चित्र प्रस्तुत है----

'हृदय यों कहता नभ भी लखूं
अतुल लोचन से तुमको प्रिया[१]

सर्ग पांच-छः में संयोग सुख का विस्तृत चित्रण किया है । सर्ग तेरह तथा सोलह में यशोधरा के विरह-वर्णन में परम्परागत प्राचीन शैली का अनुकरण किया गया है । वियोग की अनेक दशाओं से पार करती हुई यशोधरा प्रिय मिलन के लिए आतुर है । संदेश प्रेषण,नदी,सरोवर संध्यागमन की कविता आदि से विरह की व्यथा का निवेदन तथा विरह में प्रकृतिगत रागात्मक संवेदन आदि की छाया में विरह वर्णन का विस्तार हुआ है--

यथैव संध्यागम से स-दुःख हू
मलीन होती रवि के वियोग में
तथैव मैं हूं अति दुःख पीड़िता
विषाद मग्ना पति वियोग में ।[२]

पति वियुक्ता यशोधरा के करुण विलाप में भी करुण-रस का संचार हुआ है-

विलप विलप रोई रो गिरी मेदिनी पै
कलप-कलप गोपा मूर्छिता मृत्युप्राया
द्रुत सहचरियों ने वारि से कंठ सींचा
बह जल निकला ही अश्रुधार दृगों से ।[३]

१- सर्ग ६, पृ० ६४

२- सर्ग १६,पृ०२५२

३- सर्ग १३,पृ० १८७

यहाँ गुप्त की यशोधरा और अनूप की यशोधरा की विरह दशा में भारी अन्तर है। गुप्त जी की 'यशोधरा' में गोपा का सम्पूर्ण जीवन ही वेदना व्यथित है। स्मृति, आवेग, उद्वेग, कृशता आदि वियोग दशाओं के चित्रण में परम्परा पालन की दृष्टि भी लक्षित होती है। किन्तु वियोग की पीड़ा गोपा के विवेक को लुप्त नहीं कर पाती। उसकी विरह व्याकुलता में कुल-वधू की लज्जा और गरिमा तथा वात्सल्यमयी माँ के भावपूर्ण प्यार का आकर्षक चित्रण हुआ है। न वह संताप की ज्वाला में जल सकती है न ही मृत्यु की कामना कर सकती है-

स्वामी मुझको मरने का भी देन गये अधिकार
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।[१]

और इस भार को ग्रहण करने के लिए कुल वधू की गरिमा वहन करने के लिए वह सुकुमारी गोपा वज्र से भी कठोर बन जाती है। फिर भी वह नारी और उसके नारी हृदय में वियोग का क्रन्दन स्वाभाविक है। ऋतु परिवर्तन पर एकान्त क्षणों में उसका विरह विदग्ध हृदय पुकार ही तो उठता है-

कूक उठी है कोयल काली।
ओ मेरे वनमाली।

+ +

ढलक न जाय कहीं आँखों का गिर न जाय यह प्याली।
उड़ न जाय पंछी पाँखों का आओ हे गुणशाली।[२]

इसी प्रकार वियोग की अन्य भावदशाओं का चित्रण भी हुआ है किन्तु इस समस्त वियोग पीड़ा के रहते हुए भी वह राहुल की जननी माँ तो है केवल वियोग ही उसका अपना नहीं है, राहुल का प्यार उस वियोग से कहीं अधिक ऊपर उठ गया है। अपने शिशु-संसार में ही वह व्यस्त रहना चाहती है-

मेरा शिशु-संसार वह, दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम, प्रभो रुष्ट या तुष्ट हो।[३]

१- यशोधरा, पृ० ४०
२- वही पृ० ४४
३- वही पृ० ४७

राहुल की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान करती है । बार-बार वह पिता का स्मरण दिलाता है अनेक बातें पिता के सम्बन्ध में पूछता रहता है । पिता घर क्यों छोड़ गए, उन्हें 'परदेश' क्यों अच्छा लगा, यह सब बातें यशोधरा को तनिक भी विचलित नहीं करतीं, आखों के आंसुओं को वह छिपा कर पोंछ लेती है तथा अश्रु प्रवाहित करने के. अपेक्षा वह सिद्धार्थ के गृहत्याग का जो कारण राहुल से कहती है उसमें विरह-विदग्धा नारी की पीड़ा प्रकाशन के स्थान पर, विरह में जिस उदात्त भाव से वह पूर्ण हो उठी है, विरह से अधिक विरह से उत्पन्न वह भाव महत्वपूर्ण है --

बेटा घर छोड़ के गये वे क्या दृष्टि से,
जोड़ लिया है नाता है उन्होंने सब सृष्टि से।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है ।[२]

प्रसंगवश यहां सिद्धार्थ तथा यशोधरा के विरह का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट है कि 'सिद्धार्थ' की यशोधरा एवं 'यशोधरा' की गोपा दोनों एक ही नारी हैं किन्तु भिन्न भिन्न कवि-दृष्टि के कारण दोनों की वियोग दशाओं में रस की दृष्टि से महान् अन्तर है ।

वर्द्धमान का पूर्वार्द्ध शृंगार के प्रेम और संयोग वर्णन से पूर्ण है तथा उत्तरार्द्ध में एकमात्र शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है । महारानी त्रिशला के रूप वर्णन तथा महाराज सिद्धार्थ और त्रिशला के मिलन प्रसंगों में शृंगार रस की उत्कर्षता प्रदान हुई है । कहीं-कहीं संयोग वर्णन में कवि इतना डूब गया है कि मर्यादा की चिन्ता भी नहीं की --

---

२- यशोधरा , पृ० १०५

वसन्त से आम्र-लता छुटी गयी
फंसी कुरंगी क्रूर-व्याध-जाल में
ग्रसा गया इन्दु तुरन्त राहु से
शराग्र से मौक्तिक विद्ध हो गया।[1]

इस प्रकार के वर्णन काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से परिपूर्ण नहीं समझे जायेंगे । नवम सर्ग में अभिमर्दन के प्रसंग में भयानक रस का चित्रण सजीव है-

हल्दीघाटी वीर रस प्रधान महाकाव्य है । वीर रस का जैसा गतिपूर्ण ध्वन्यात्मक और वेगपूर्ण चित्रण इस काव्य में उपलब्ध है वैसा अन्य ऐतिहासिक काव्यों में कम है । वीर प्रताप की हुंकार, झाला मान्ना के आत्मसमर्पण और युद्धों के वर्णन में अपूर्व वीरता का संचार हुआ है । सप्तम, अष्टम और एकादश सर्ग वीरत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

'विषबीज न मैं बोने दूंगा
अरि को न कभी सोने दूंगा ।
पर दूध कलंकित माता का
मैं कभी नहीं होने दूंगा ।।

\+ +

हम राजपूत , हम राजपूत ।
मेवाड़-सिंह, हम राजपूत ।
तेरी पावन आज्ञा सिर पर
क्या कर सकते यमराज-दूत ।[2]

वीरता के स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना पद पद पर हुई है । रौद्र रस की छटा मानसिंह के क्रोध, महाराणा प्रताप की वीरोक्तियों और अकबर बादशाह

१- प्रथम सर्ग, पृ० ६६

२- सप्तम सर्ग, पृ० ६०

है चुनौती पूर्ण कथनों में देखी जा सकती है । यथा-

पर मैं इसका बदला लूंगा,
अभी बन्द दिवसों में,
झुक जाओगे भर दूंगा जब
जलती ज्वाल नसों में ।[1]

समस्त काव्य में वीरता का अद्भुत स्पन्दन है किन्तु वीर के जीवन से जो हृदयद्रावक करुण रस निकलता है वह अत्यन्त मार्मिक है । घास की रोटी का बिलाव के द्वारा छिन जाने पर भूख से तड़पती हुई महाराणा प्रताप की कन्या का रुदन नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित कराने में समर्थ है । महा-राणा प्रताप की असहाय विवश अवस्था और कन्या का करुण क्रन्दन हृदय विदारक है----

सुनती हूं तू राजा है
मैं प्यारी रानी तेरी।
क्या दया न तुझको आती
यह दशा देख कर मेरी ।।

होती थी तो देता था
खाने को मुझे मिठाई ।
अब खाने को होती तो
खाती क्यों मुझे रुलाई ?

वह कौन शत्रु है जिसने
सेना का नाश किया है ?
तुझको, मां को, सब हम को
जिसने बनवास दिया है ?[2]

१- पंचम सर्ग, पृ० ७३
२- पंचदश सर्ग, पृ० १६८

करुण रस की दृष्टि से रावलसिंह के मिलन का प्रसंग तथा बेलव की मृत्यु का प्रसंग भी उल्लेखनीय है ।

'जौहर' काव्य करुण रस की गाथा है ।आदि से अन्त तक करुणगाथा की छाया व्याप्त है किन्तु इसी के साथ राजपूतों के उत्कर्ष और बलिदान में वीर रस का चित्रण भी हुआ है । महारानी पद्मिनी के सौन्दर्यपूर्ण व्यक्तित्व में वीरत्व की स्थापना करके कवि ने सातवीं चिनगारी में उसके चरित्र में एक अन्य आकर्षण उत्पन्न किया है । अलाउद्दीन के शिविर में रत्नसिंह के कैद किए जाने के पश्चात् पद्मिनी के वियोग की अभिव्यक्ति मार्मिक है किन्तु संयोग के भाव का चित्रण भिन्न रूप में हुआ है । रानी पद्मिनी और रत्न सिंह के संयोग-क्षण ,भावी फिर वियोग की आशंका के कारण करुणापूर्ण हो उठे हैं । महारानी पद्मिनी की वीरत्वपूर्ण प्रेरणा में रौद्र और अलाउद्दीन के सजने संवारने तथा पद्मिनी से मिलन की आतुरता में हास्य रस महत्वपूर्ण है । वीभत्स वर्णन युद्ध की वीभत्सता के चित्रण में हुआ है । वीरत्व की व्यंजना में निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं --

प्राण हाथों पर लिये हैं
गर्व से मस्तक उठाये ।
जा न सकती आन चाहे
आन पर ही जान जाये[1] ।

सातवीं चिनगारी में वीर रस की अपूर्व अभिव्यक्ति हुई है । महारानी के कथनों और गोराबादल की प्रतिज्ञा में उत्साह अपूर्व है ---

हम युद्ध जिधर जायेंगे
हम विजय उधर पायेंगे
हम तुमसे सच कहते मां,
हम युद्ध-विजय लायेंगे[2]

१- बारहवीं चिनगारी, पृ० १३७

२- सातवीं चिनगारी, पृ० ७७

रानी की हुंकार में और प्रेरणा में उनका रौद्र रूप प्रकट हुआ है-

इन्कार करो यदि तुम तो
मैं बनूं महाकाली-सी ।
उत्साह न भी तो बोलो,
गरजूं खप्पर वाली सी ।

प्रत्येक पद के पीछे करुणा की एक विह्वल धारा बह रही है किन्तु सोलहवीं और सत्रहवीं चिनगारियों में स्वयं करुणा ही मानो मूर्तिमान हो उठी है। जौहर व्रत की तैयारी हो चुकी है । रानी महलों से बाहर आई, गौरी पूजन के लिए चलीं, परन्तु अब तो वह कभी भी इस महल के दर्शन नहीं कर सकेगी-

केवल अन्तिम कोना पर,
अभिवादन किया महल का।
कुछ बात कही मन ही मन,
कर उठा फूल-सा हलका ।[1]

मृगछौना, शुक दम्पति, महारानी के पालित पशुपक्षी, सभी रो उठे । महलों से बाहर रावल रतन सिंह से अन्तिम भेंट हुई । पति-पत्नी के वियोग के वे क्षण---

क्षण भीत मृगी-सी कांपी
क्षण जलद-घटा-सी रोयी
क्षण क्षमी अचेत हुई क्षण
कोमल चरणों पर सोयी ।[2]

१- १६वीं चिनगारी, पृ० १८५
२- १६ वीं चिनगारी ,पृ० १७८

माँ गौरी के समीप पहुंचते ही रानी के हृदय का बांध टूट पड़ा। वह माँ के चरणों पर गिर कर रो उठी-

किया दूर ही से अभिवादन
शिव प्रतिमा का रानी ने
और सती की चरणों पर
गिर कर रो दिया रानी ने [1]

गौरी पूजा का सम्पूर्ण प्रसंग अश्रुओं से भीगा हुआ है। काव्य के प्रारम्भ से चली आती हुई करुणा यहाँ अत्यन्त द्रावक हो गई है -अश्रुपूर्ण करुणा की उद्दाम सरिता में हास्य की एक पतली धारा का चित्रण भी नवीं चिनगारी में हुआ है --

पन्ना-कलित अंगूठी पहनी,
कामदार नवजूते पहने।
बने पहनते उससे जितने
उसने उतने गहने पहने।

बार बार पानी से धो- धो
मुख पर सुरभित तेल लगाये।
पहन गले में मुक्ता-माला
तन में इतर फुलेल लगाये।। [2]

रस की दृष्टि से `जौहर` ~~करुणापूर्ण~~ उत्साहवर्धक काव्य है। वीरता, उत्साह तथा आत्म-बलिदान से पूर्ण होते हुए भी पद्मिनी का चरित्र करुणा की जिन फुहारों से भीगा हुआ है वह भी वस्तुतः महत्वपूर्ण है।

१- १७ वीं चिनगारी, पृ० २०८
२- नवीं चिनगारी, पृ० ६६

विक्रमादित्य शृंगार रस प्रधान काव्य है । वीर सहयोगी रस है । ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त के प्रणय में शृंगार के संयोग वियोग[1] तथा चन्द्रगुप्त की उत्साह-पूर्ण विजयों में वीर रस का संचार हुआ है । ध्रुवदेवी के वियोग चित्रण में आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि परिलक्षित होती है । प्रिय को खो देने के पश्चात् वह महलों के कक्षा में बैठ कर अश्रुविमोचन नहीं करती वरन् संघर्ष तथा अपने बुद्धि-चातुर्य के द्वारा अन्त में वह चन्द्रगुप्त को प्राप्त करने में सफल होती है । इस प्रकार प्रेम के वियोग तथा संयोग का वर्णन प्रभावशाली है ।

आर्यावर्त आदि से अन्त तक वीररस पूर्ण काव्य है । सम्राट् पृथ्वीराज के व्यक्तित्व तथा देश प्रेम से पूर्ण कथनों में, चन्दबरदाई के संघर्ष में तथा दोनों के आत्म बलिदान के प्रसंगों में वीरत्व की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति हुई। सम्राट् पृथ्वीराज की आँखें निकलवाने का प्रसंग यद्यपि अत्यन्त भावपूर्ण तथा हृदय द्रावक है तथापि कवि ने इसका चित्रण भी वीरता के परिवेश में ही किया है। आर्यावर्त ही ऐसा महाकाव्य है जिसमें राष्ट्रप्रेम से पूर्ण वीरता की अभिव्यक्ति ही कवि का प्रथम उद्देश्य है । भाव भंगिमा के चित्रण द्वारा भी वीरत्व की ही व्यंजना हुई है । रौद्र के क्रोध भाव की व्यंजना भी पृथ्वीराज के चरित्र चित्रण में हुई है ।

चमक रही थी तलवार आर्यपुत्र की
आँखें झुलसती हुई काया के समान ही ।
मानो लिए ज्वालामय वज्र निज कर में
वज्री वीर वासव घिरा हो मेघ-दल से ।[2]

१- हृदय भरा है उमड़ रहे दृग जाने कौन रुलाता है
मीठी पीर उठा करती है हृदय बैठता जाता है
रह रह हिचकी क्यों आती है कौन छेड़ता मानस-तार
याद करेगा अब क्या कोई सब मेरा उजड़ा संसार ।
-विक्रमादित्य पृ० ५०

२- सर्ग द्वितीय , पृ० २५

रौद्र रस सहयोगी रस के रूप में चित्रित हुआ है । मोहम्मद गोरी से महाराज पृथ्वीराज के संवादों में क्रोध की व्यंजना हुई है । वस्तुतः वीरत्व का ओज ही आर्यावर्त का सम्पूर्ण सौन्दर्य है ।

तप्तगृह करुण रस प्रधान काव्य है । कहीं-कहीं भयानक का भी वर्णन हुआ है। महारानी करुणा की पुत्र के प्रतिहिंसा की भावनाओं में रौद्र की अभिव्यक्ति हुई है तथा महाराज बिम्बसार के कष्टों से तड़प कर उनका क्रन्दन और हाहाकार करुणाप्लावित है । देवदत्त भिक्षु के क्रूर अट्टहास में भयानकता का चित्रण हुआ है । यथा-

कपटपूर्ण भिक्षु ने
भीषण अट्टहास किया
अट्टहास करता है
जिस प्रकार बेताल
रक्त युक्त अस्थि और
मज्जा का पान कर
भयानक में श्मशान के ।[१]

अपनी मानवताहीन क्रूरता तथा अपने भ्रम से परिचित होने पर शोणक आत्म-ग्लानि एवं पश्चाताप से भर उठा । उसकी नृशंसता ने पिता के प्राण ले लिए थे । अब वह मां के चरणों पर लोट रहा है --यह करुण चित्रण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर चित्रित हुआ है -

चरणों में लोट गया
दौड़ बड़े वेग से ।
छुलना अवंमित्-सी
मौन रही पूर्ववत्

१- सर्ग द्वितीय, पृ० १८

किन्तु जब कौणार्क के
आंसू से भीग गए
पांव तब नेत्र लगे
उसके भी रोने ।[1]

अन्तिम पृष्ठों में पुत्र प्रेम का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक है ।

झांसी की रानी वीर रस प्रधान काव्य है । मनु बाई वीरता से पूर्ण है और झांसी की रानी का तो सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही वीरता और उत्साह की भावभूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है । प्रारम्भ में ही उसके उत्साह की एक झांकी प्रस्तुत है--

घोड़े को रोक मनू बोली
नानासाहब ! अब रुक जाओ।
लो रोक राव साहब ! भाला
आगे न बढ़ो तुम रुक जाओ ।।
देखूंगी किसका बाजि आज
बिजली होता है चालों में ।
पर्वत के उन्नत शिखरों पर
बरछी मारे कर वालों में ।।[2]

इसी प्रकार जननी जन्म भूमि को स्वाधीन कराने के प्रण और प्रण की पूर्ति के हेतु ब्रिटिश शक्ति से युद्ध के संघर्ष में वीरभाव द्रष्टव्य है -

तलवार किधर कब उठती थी
कब किधर लपालप करती थी
यह भी अरिदल को ध्यान न था
कब किधर लपालप करती थी[3]

१- सर्ग ग्यारह, पृ० १३६
२- दूसरी हुंकार, पृ० ७८
३- ~~[illegible]~~ बाइसवीं हुंकार, पृ० ३२२

रानी का शौर्य, व्यक्तित्व और वीरता की सजीव प्रतिमा है। सुन्दर और मुन्दर के प्रण तथा संघर्षों में भी वीरत्व की झांकी महत्वपूर्ण है। करुणा की धारा का प्रवाह बहुत क्षीण है। जिन प्रसंगों के द्वारा करुणा का उद्रेक सम्भव था कवि ने उनके चित्रण की ओर ध्यान नहीं दिया। पुत्र शोक और पति शोक के प्रसंगों में वह हृदयद्रावक करुणा रस का संचार कर सकता था किन्तु वीरत्व तथा उत्साह चित्रण के मोह में मार्मिक प्रसंगों की अवहेलना करके रस की दृष्टि से काव्य का महत्व कम कर दिया। झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई अपने प्रिय घोड़े की मृत्यु पर शोक विह्वल होती है किन्तु वहां भी मार्मिकता का अभाव है। अन्तिम पृष्ठों में महारानी की मृत्यु और महाप्रस्थान का दृश्य अवश्य करुणाजनक है। वीरता का संचार करने वाली वह अद्भुत शक्ति निष्प्राण, निश्चेष्ट पड़ी हुई है। सम्पूर्ण शरीर घात-विघात हो चुका है दत्तक पुत्र दामोदर राव, जो सदैव मां की लोह-पीठ से बंधा रहता था, बिलख बिलख कर रुदन कर रहा है-

निष्प्रभ शोणित से रंजित मुख पड़ा हुआ था लाल।
फूट-फूट कर बिलख रहा था पार्श्व-भूमि पर लाल।।
आगे-आगे वल्गा पकड़े घोड़े का रघुनाथ।
चले आ रहे थे द्रुत गति में घोर व्यथा के साथ।।[1]

पुत्रोत्पत्ति पर लक्ष्मीबाई में वात्सल्य का केवल प्रस्फुटन ही होता है -

रानी कभी उठा कर शिशु को
कन्धे पर ही बैठाती
कभी सुला कर पलने पर वह
चुम्बन ले-लेकर गाती।[2]

इस मानवीय स्पर्श से रसोत्पत्ति अवश्य हुई है किन्तु रानी प्रसंग विशेष विस्तार नहीं पा सका। उल्लास भरे युद्ध की छन्दों के पश्चात् दो पृष्ठ के बाद ही

१- ~~हुंकार~~ महाप्रस्थान पृ० ३३१

२- सातवीं हुंकार पृ० १४२

पुत्र की मृत्यु का चित्रण कर देना कथावस्तु के संयोजन की दृष्टि से तो त्रुटि है ही रसोत्पत्ति में भी इससे बाधा उत्पन्न होती है । वास्तव में केवल लक्ष्मीबाई के व्यक्तित्व और उनमें वीरता की प्राणप्रतिष्ठा कवि का मुख्य उद्देश्य होने के कारण अन्य रसों को उचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका ।

ऐतिहासिक काव्यों में वात्सल्य रस की दृष्टि से 'यशोधरा' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । अपने छोटे से छौना को देख कर यशोधरा का मातृत्व पुलक-पुलक उठता है । ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अपने शिशु-संसार में उसने पति-वियोग की सम्पूर्ण पीड़ा को निमज्जित कर दिया है । वह उसी के मिस हंसती है, गाती है, रोती है । उसके वात्सल्य में कैसा स्वाभाविक उल्लास प्रकट हो रहा है ।

यह छोटा सा छौना ।
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर-सलौना ।
क्यों न स्वयं रोऊं-गाऊं मैं, लगा मुझे यह टौना ।
आर्यपुत्र, आओ सचमुच मैं दूंगी चन्द-खिलौना ।।[1]

वह छौना अब कुछ बड़ा हो गया । आंगन में भागा फिरता है । मां पीछे पीछे दौड़ती हुई थक जाती है किन्तु राहुल राजा भैया हाथ में नहीं आता मां बेटे की क्रीड़ा का कैसा सुन्दर चित्र है --

टहर बाल-गोपाल कन्हैया ।
राहुल राजा भैया ।
कैसे धाऊं, पाऊं तुझको हार गई मैं दैया
यह दुध प्रस्तुत है बेटा दुग्ध-फेन्सी शैया।
तु ही एक खिवैया मेरी पड़ी भंवर में नैया,
आ, मेरी गोदी में आ आ, मैं हूं दुखिया मैया ?
' मैया है तू कि अथवा मेरी दो थन वाली गैया ?
रोने से यह रिस भी अच्छी, लिली लिली ताथैया ।'[2]

१- यशोधरा, पृ० ४७
२- ,, पृ० ५१

वह अपने बेटे को भांति-भांति की कहानियां सुनाती है कहानी कहने और सुनाने में हा अनेक प्रकार का मान मनौवल की क्रियाएं होती हैं । मां दूध पिलाने के लिए हठ करती है बेटा कहानी सुन लेने के लिए हठ करता है । आनन्द-उल्लास-कंजित मां और बेटे की ममता का कितना आकर्षक चित्रण हुआ है ---

'नहीं पियूंगा, नहीं पियूंगा, पय भी भाई पानी'

'नहीं पियेगा बेटा, यदि तू तो सुन चुका कहानी'

' तू न कहेगी तो कह लूंगा मैं अपनी मनमानी,
सुन, राजा वन में रहता था, घर रहती थी रानी ।'

' और हठी बेटा रटता था - नानी- नानी-नानी ।'

' बात काटती है तू ? अच्छा जाता हूं मैं मानी ।'

' नहीं, नहीं बेटा आ , तूने राम अच्छी हठ ठानी ।
सुन कर ही पीना, सोना मत नई कहूं कि पुरानी ?'[1]

सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही वह बेटे के जगने की प्रतीक्षा करने लगती है । वह नहीं जगता, उसका अधीर हृदय और प्रतीक्षा नहीं करना चाहता, वह गा उठती है ---

किरणों ने कर दिया सवेरा
हिमकण दर्पण में मुख मेरा,
मेरा मुकुर मंजु मुख तेरा,
उठ पंकज पर पड़े पराग ।
जाग दु:खिनी के दुख जाग ।[2]

१- यशोधरा, पृ० ५२
२- वही पृ० ६८

इस प्रकार यशोधरा के वात्सल्य पूर्ण हृदय का एक एक चित्र मानों सजीव हो उठा है, इतना विस्तृत भावभूमि पर केवल 'यशोधरा' में ही वात्सल्य का चित्र चित्रित हुआ है जो रस की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य का रस दृष्टि से विश्लेषण करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वीर, करुण, शृंगार और शांत रस की प्रमुखता है । अन्य रसों में वीभत्स ,रौद्र और वात्सल्य का यथास्थान आकर्षक चित्रण हुआ है । भयानक और हास्य को विशेष स्थान प्राप्त नहीं हो सका । कतिपय उदाहरण अपवाद स्वरूप हैं । रस निरूपण में कवियों ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है । रस के साथ-साथ भाव की व्यंजना की और विशेष दृष्टि रहती है । परिस्थिति, वातावरण और क्षण क्षण परिवर्तित मनोभावों की व्यंजना करते हुए भी रस चित्रण किया गया है । शास्त्रीय पद्धति से प्रेरित होकर रस की योजना करने का भाव कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता । इसी कारण आज के संघर्ष पूर्ण वातावरण के कारण दूसरे ,ऐतिहासिक काव्यों की ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा ओज-पूर्ण वातावरण के कारण आधुनिक ऐतिहासिक काव्यों में हास्य रस को स्थान नहीं प्राप्त हो सका है । यदि कहीं हुआ भी है तो केवल व्यंग्य के रूप में । 'जौहर' के कवि ने अलाउद्दीन के सजने संवरने और उसकी आतुरता की कल्पना द्वारा जिस हास्य की उत्पत्ति की है वह व्यंग्यपूर्ण अधिक है । परंपरागत रस निरूपण की दृष्टि काव्य के अन्तर्गत उन सभी उपकरणों को नियोजित करने की रही है जिनके द्वारा रस परिपाक की स्थिति बिम्ब विधान को प्रस्तुत करने में सहायक होती है किन्तु वर्तमान काल की काव्य रचनाओं में रस की स्थिति कुछ भिन्न है । रस के उपकरण जुटाने की अपेक्षा संवेदनाजन्य भावों को एकत्रित करने की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगत होती है । स्थायी भाव की अपेक्षा संचारी भावों पर ही अधिक बल दिया गया है और उन्हीं के आश्रय से उद्दीपन अथवा अनुभाव की व्यंजना की गई है । कहीं केवल अनुभावों के द्वारा चित्र बिम्बित करते हुए रस की सिद्धि का प्रयास किया गया है । ये अनुभाव अधिकतर मनोवैज्ञानिक उतार चढ़ाव के कारण कहीं लक्षणा के माध्यम

है, कहीं व्यंजना के माध्यम से उपस्थित कर दिए गए हैं अत: आधुनिक ऐतिहासिक काव्यों में रस निष्पत्ति अपने मूल केन्द्र से कुछ हटी हुई ज्ञात होती है और लोकोत्तर आनन्द के स्थान पर रस के द्वारा भावों की अनुभूति जन्य परिणति को प्रस्तुत करने में कवि को सन्तोष हुआ है ।

रस के अन्तर्गत प्रकृति-सौन्दर्य :-

रस निष्पत्ति की दृष्टि से ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति चित्रण का भी बहुत सहयोग रहा है । पाश्चात्य प्रभाव के कारण आलोच्य काल में प्रकृति केवल आलम्बन अथवा उद्दीपन भाव के चित्रण में ही प्रयुक्त नहीं हुई है वरन् अनेक स्वतंत्र रूपों में उसका चित्रण हुआ है जिसके कारण आलोच्यकालीन ऐतिहासिक काव्य में प्रकृति चित्रण द्वारा रस निष्पत्ति एक नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गई है ।

प्रकृति और मानव का प्रगाढ़ सम्बन्ध है तथा काव्य में मानव के पश्चात् प्रकृति को ही विशेष स्थान दिया गया है । भारत के प्राचीन साहित्य में प्रकृति-चित्रण विशद रूप में उपलब्ध होता है । संस्कृत साहित्य में प्रकृति-वर्णन काव्य के आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है । संस्कृत आचार्यों ने महाकाव्यों में नगर, पर्वत, वन, संध्या, उषा आदि प्राकृतिक उपादानों के वर्णन की अनिवार्यता घोषित की थी । कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत के महाकवियों की रचनाओं में प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण मिलता है । कालिदास के 'मेघदूत' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां कवि की प्रकृति-सम्बन्धी सूक्ष्मग्राहिणी दृष्टि अत्यन्त प्रभावशालिनी है । प्रकृति के जिस नैसर्गिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर संस्कृत काल के मनीषियों ने उसकी अभिव्यक्ति की थी, शनै:शनै: सौन्दर्य निरीक्षण की उस सच्ची अनुभूति का लोप होता गया और संस्कृत में ही उत्तरकालीन अधिकांश काव्यों में प्रकृति चित्रण रूढ़िगत हो गया । इधर रीतिकाल में प्रकृति नायक और नायिकाओं के सौन्दर्य का शृंगार बन कर आई । षट् मास और बारह मास का वर्णन तो हुआ किन्तु वर्षा ऋतु में कोकिला की पी पी की पुकार ने प्रिय की स्मृति में लीन नायिका के जिस विरही भाव को उद्दीप्त किया, वह भाव कोकिला की मधुर वाणी के सौन्दर्यचित्रण की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो उठा।

तात्पर्य यह है कि वर्षा के कारण मार्ग नायिका के भी अनुदिन चक्कर काटते रहते हैं। आधुनिक युग में खड़ी बोली काव्य में इस दृष्टिकोण के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उद्दीपन रूप को त्याग कर कवि गण सच्ची अनुभूति की ओर अग्रसर हुए। प्रकृति के आलम्बन रूप का भरपूर चित्रण हुआ। छायावाद के कवियों ने प्रकृति में विराट् सत्ता के दर्शन किए। प्रकृति का कण कण एक अलौकिक स्पन्दन से पूर्ण हो उठा एवं छाया तथा रहस्यवादी कवियों के सम्मुख प्रकृति अनेक रमणीयतम रूप लेकर अवतरित हुई[1]। ऐतिहासिक काव्यों में भी प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा अनेक रूपों में उपलब्ध होती है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से 'नूरजहाँ' से बढ़ कर सम्भवत: आधुनिक युग का कोई अन्य प्रबन्ध काव्य उल्लेखनीय कहा जा सके? द्विवेदी युगीन ऐतिहासिक खंड काव्यों में प्रकृति अपने सौम्य और सरल रूप में दृष्टिगोचर होती है। 'मौर्य विजय' 'महाराणा का महत्व' आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ऐतिहासिक कथानक सम्बन्धी मुक्तक काव्य में कथा की संकुलता के कारण प्रकृति का विशेष महत्त्वपूर्ण चित्रण नहीं हो सका तथापि प्रबन्ध काव्यों में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि की सच्ची अनुभूति के दर्शन होते हैं। आधुनिक खड़ी बोली के काव्य में

१- प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष कोमल कलियां और कठोर शिलाएं अस्थिर जल और स्थिर पर्वत निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत्रेखा मानव की लघुता विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की अनेक रूपता में परिवर्तन शील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।

—महादेवी वर्मा, सान्ध्य गीत की भूमिका, पृ० ३

प्रकृति चित्रण सम्बन्धी विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए आलम्बन,उद्दीपन,अलंकार रूप में, मानवीकरण,पृष्ठभूमि के रूप में, नीति और उपदेश के रूप में, अलौकिक सत्ता के रूप में। इस दृष्टि से भी ऐतिहासिक -काव्य के प्राकृतिक सौंदर्य रस का निरीक्षण करना भी समाधान होगा।

खड़ी बोली के प्रारम्भिक ऐतिहासिक काव्य में प्रकृति के सरल, स्वाभाविक ,आलम्बन रूप का चित्रण हुआ है। कवि उसकी रूप माधुरी से मुग्ध होकर उसका वर्णन करता है। 'मौर्य विजय' में सियाराम शरण गुप्त का सन्ध्योद्रेक बड़ा आकर्षक है —

कल कल करता हुआ सिन्धु नद बहता जाता
रजत कान्तिमय विमल सलिल मन को हरवाता
उसमें निज प्रतिबिम्ब-व्याज से आकर तारे-
क्रीड़ा-सी कर रहे विपुल सुन्दरता धारे।
बालुकेली तट-प्रान्त में जो दृग्गति पर्यन्त है,
वह विधु किरणों से चमक कर हुई रुचिर अत्यन्त है।[1]

+ +

विस्तृत तरु शाखाओं के बीच में
छोटी-सी सरिता थी जल भी स्वच्छ था
कल कल ध्वनि भी निकल रही संगीत सी
व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई...[2]

द्विवेदी युग के बाद के प्रबन्ध काव्यों में भी प्रकृति का यह आलम्बन रूप खूब सुन्दरता के साथ चित्रित हुआ है। कवि की सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि ने एक-एक चित्र ऐसा खोज खोज कर चित्रित किया है कि आश्चर्य होने लगता है। प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति के आलम्बन चित्रण की विशेष

१- मौर्यविजय, पृ० ५

२- महाराणा का महत्व , पृ० ४

सुविधा रहती है । कवि ऐसा यथातथ्य चित्रण करता है कि उसका प्रत्यक्ष रूप साक्षात् होकर दृष्टि के समक्ष मानों नृत्य करने लगता है । ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में वह अपने कोमल और कठोर दोनों रूपों में चित्रित हुई है । इस दृष्टि से 'नूरजहां' 'सिद्धार्थ', 'हल्दी घाटी', 'जौहर' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । यहां प्रकृति चित्रण की दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण प्रबंध काव्यों का विश्लेषण करना भी आवश्यक है।

<u>नूरजहां</u> -- काव्य का आरम्भ ही प्रकृति के सूक्ष्म वर्णन से होता है । समस्त प्रकृति वसन्तोत्सव मना रही है । वसन्तागमन से पूर्व समस्त प्रकृति मानों व्यथा का साकार रूप धारण किए हुए थी, परन्तु आज वह वसन्त की सुषमा में खिल उठी है । ललित लताएं तरु विटपों से लिपटी हुई हैं । भौंरे फूलों पर लाख-लाख जान से न्योछावर हो रहे हैं । चतुर्दिक श्यामायमान शस्यराशि का कालीन बिछा हुआ है । पर्वत उपत्यकाएं विभिन्न रंग के फूलों से रंगीन हो गई हैं । मारुत सुरभित सुरा का पान करके मद मस्त हुआ लोट पोट रहा है। ईरान प्रदेश के इस प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण में कवि-कल्पना भी मानों उस सौंदर्य की ही भांति रसपूर्ण हो उठी है --

मंजुल मंजरियों से मंडित लतिकाओं से मिल मिल कर
नव दल से शोभित शाखाएं झूम रही हैं खिल खिल कर
मारुत सुरभि सुरा में माता लोट पोट है हो जाता
मधु प्रसून चय से गिरवर का दामन भरता जाता[1]

एक नहीं ऐसे ही और इससे भी अधिक आकर्षक वर्णन 'नूरजहां' में भरे पड़े हैं । कहीं काफिले के बढ़ने का वर्णन है तो कहीं सूखे रेगिस्तान में नीरवता सहित बढ़ती हुई ऊंटों की कतार का वर्णन है । यह तो रहा है कि कवि की दृष्टि करील के कांटों में, कलों से भरी झुई झुकती जा रही अरहर की फलियों में, दानों की लड़ियों के भार से दोहरी होती जा रही सरसों में तथा तितलियों

१- सर्ग प्रथम, पृ० २

और भंवरों के सूक्ष्म सौंदर्य चित्रण में अटकी अटकी जाती है[1]।

आलम्बन के अतिरिक्त उद्दीपन रूप में, मनोभावों की पृष्ठभूमि तथा वाता-वरण के रूप में भी सुन्दर चित्र चित्रित हुए हैं। विरहिणी अनारकली प्रकृति के रूप से उद्दीप्त हो उठती है --

> कुछ देर निरखती रही नहीं सुनती अस्फुट-कल-मंत्र-जाप,
> उसके दुकूल पर फिर देखा विहंगों के पग की कूल-छाप।
> 'कायफर' के पीत पुष्प देखे फनारी झुरमुट में फूलों पर।
> फिर दौड़ गई उसकी आँखें तट के ऊपर के फलों पर।[2]

मानवीकरण के कतिपय उदाहरणों में भाव की कोमल तथा प्रेम से पूर्ण सजीव कल्पना द्रष्टव्य है। प्रेम और श्रृंगार के कवि ने प्रकृति में भी रहे प्रेम-व्यापार का चित्रण करने में रसिक - दृष्टि का भी परिचय दिया है-

---

१- "कहते हैं निरपेक्ष पुरुष को लुभाने के लिए- प्रकृति ने संसार का यह जाल फैला रखा है पर नूरजहाँ का कवि वह पुरुष है जो स्वयं प्रकृति के जाल में फंसने को सदा उत्सुक रहता है। उसे एक एक पौधा, एक-एक वृक्ष-उसके पत्र,पुष्प,शाखा,उपशाखा ,एक-एक लता,एक-एक पक्षी ,एक-एक मृग, पद पद पर भावाविष्ट सा बना देते हैं....... इन वर्णनों को पढ़ते समय पाठक का हृदय अपने इर्द-गिर्द बिखरे हुए सौन्दर्य -सागर को, जिसकी वह अब तक उपेक्षा सी करता रहा था, पाकर अचरज में आ जाता है। कुछ कवि के काव्य-चातुर्य से, कुछ स्पर्श सौन्दर्य विरमा-रिणी बुद्धि से, कुछ प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार करके। जी में आता है चिल्ला कर कह दें, यह कवि तो अपने ढंग का अकेला है।

-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, विशाल भारत, जनवरी, १९३६

२- सर्ग पंचम, पृ० ३५

निशा-सुन्दरी ने तारों संग गति में रात गंवाई ।
इन आंखों की पलकों पर लज्जा लाली छाई ।
इतने में ही तो दुनिया जग उठी देखो लाला ।
शरमाती घूंघट देती झट भागी लज्जाशीला ।[1]

सर्ग आठ में मेहर और शेर अफ़गन के विवाह के अवसर पर भी स्वतंत्र विवाह-विधान भी प्रकृति के उपादानों द्वारा प्रस्तुत हुआ है । इसी भांति पृष्ठभूमि के रूप में भी यत्र-तत्र प्राकृतिक वातावरण की योजना हुई है । अनेक स्थलों पर प्रकृति संवेदनात्मक रूप में, अलंकार रूप में तथा कठोर रूप में भी प्रस्तुत हुई है । कहीं-कहीं पर वह प्रेमी-प्रेमिका के रूप में चित्रित हुई है । वस्तुतः प्रकृति चित्रण में `नूरजहाँ` का कवि अत्यन्त सशक्त, सूक्ष्म तथा सौन्दर्यग्राही दृष्टि लेकर प्रस्तुत हुआ है, प्रकृति की ही विस्तृत पृष्ठभूमि पर मेहर और सलीम की कथा पनपी है ।

`सिद्धार्थ` के प्रकृति चित्रण में शास्त्रीय परम्परा का ही पालन हुआ है । आलम्बन, उद्दीपन और अलंकृत रूप में चित्रित हुई प्रकृति हृदय को स्पर्श करने में असमर्थ है । कहीं प्रकृति के परम्परागत उपमानों द्वारा मानवीय सौन्दर्य की वृद्धि हुई है तो कहीं वह कौतूहल का विषय बन गई है, कहीं मानव के सुख-दुःख से विचलित होकर संवेदनापूर्ण हो गई है, कहीं उसकी विराट् सत्ता के द्वारा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है, कहीं दूतिका रूप में उसका प्रवेश हुआ है । तात्पर्य यह है कि प्रकृति काव्य में अपने समस्त सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत हुई है किन्तु सम्पूर्ण चित्रण में शास्त्रीय दृष्टिकोण की ही प्रधानता प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती है ।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से `हल्दीघाटी` तथा `जौहर` भी उल्लेखनीय हैं । आत्म बलिदान की जिस भावना से `हल्दी घाटी` ओतप्रोत है उसी भावना का चित्रण प्राकृतिक उपादानों के द्वारा भी हुआ है । वातावरण निर्माण तथा प्रसंगों की तीव्रता बढ़ाने के हेतु कवि ने प्रकृति की पूरी सहायता ली है । महाराणा का संघर्षमय जीवन प्रकृति की गोद में व्यतीत होता है । अष्टम सर्ग में पर्वतीय

१- सर्ग, सप्तम, पृ० ५६

सौन्दर्य कहीं सौम्य तथा कहीं कठोर रूप में चित्रित हुआ है --

निर्झर की लहरें घुम-घुम
फूलों के वन में घूम-घूम
मलयानिल बहता मन्द-मन्द
बौरे आमों में झूम-झूम ।[1]

... ...

लाली के साथ निरखती थी
पल्लव पल्लव की हरियाली ।
डाली डाली पर बोल रही
थी कुहू कुहू कोयल काली ।[2]

इस आलम्बन रूप के अतिरिक्त प्रकृति अपने संवेदनीय तथा भाव की उत्कर्षा करने के रूप में अधिक आकर्षक है । प्रकृति का कण-कण उत्साह भाव का संचार करता हुआ प्रतीत होता है । 'हल्दी घाटी' का पर्वतीय प्रदेश स्वयं को इसलिए धन्य हुआ है कि उसमें सैनिकों के शोणित से उसका कण-कण पवित्र होगा । इसी के साथ राजपूत कुमारों की भावी विपत्ति का स्मरण करके वह वेदना कम्पित भी हो उठा-

पाषाण हृदय भी पिघल-पिघल
आंसू बन कर गिरता झर-झर
गिरिवर भविष्य पर रोता था
जग कहता था उसको निर्झर ।[3]

अरावली पर्वत का एक-एक कण, एक-एक पत्ती, एक-एक फूल बलिदान होने की प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं । तरुओं पर बैठे हुए पक्षी स्वागत गान गा रहे हैं । निर्झर के कूल पर पलाश के फूले हुए लाल फूल मानों रक्त युद्ध

१- सर्ग अष्टम, पृ०९८
२- वही वही
३- वही, पृ० ९७

का भी सन्देश दे रहे हैं --

केसर के निर्भर -कूल लाल
फूले पलाश के फूल लाल।
तुम भी वैरी सिर काट-काट
कर दो शोणित से धूल लाल ।।[1]

जहां प्रकृति का यह वीरता से पूर्ण प्रेरक रूप प्रस्तुत हुआ है वहां उसके सौम्य मृदुलरूप की फांकी भी आकर्षक है । प्रकृति के संयोग-शृंगार का कैसा सुन्दर तथा सरल चित्र प्रस्तुत हुआ है-

जब तुहिन-भार से भुकता था
धीरे-धीरे मारुत कुमार
तब कुसुम कुमारी देख-देख
उस पर हो जाती थी निसार ।[2]

प्रकृति को युद्ध के परिवेश में प्रस्तुत करने वाला कवि उसके सहज सौन्दर्य तथा कोमल भावनाओं के प्रति उदासीन नहीं है --

लोनी लतिका पर फूल फूल,
बिखराते कुसुम पराग प्यार।
हंस-हंस कर कलियां फांक रहीं,
थीं खोल पंखुरियों के किवार ।[3]

दशम सर्ग में भी प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा दर्शनीय है । सहज स्वाभाविक आलम्बन रूप में वन पर एवं आकाश पर पशु-पक्षियों के नाना कार्यव्यापारों का वर्णन यहां हुआ है । सम्पूर्ण काव्य में वर्षा, शरद, ग्रीष्म, उषा, संध्या आदि का चित्रण भी हुआ है किन्तु प्रबन्ध काव्यों की परम्परागत रूढ़िगत शैली के प्रति कवि ने रुचि नहीं दिखाई है ।

१- सर्ग, अष्टम, पृ० ६६
२- वही पृ० ६८
३- वही वही

'जौहर' में हल्दी घाटी की ही परिपाटी पर प्रकृति का चित्रण हुआ है। मानवीकरण, संवेदनात्मक, आलम्बन रूप में रोचक तथा भयानक रूप में तथा काव्य घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति के सुन्दर चित्र उपलब्ध हैं। यथातथ्य चित्रण का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

है कहीं घूमते विषधर
गोहुवन करइत मतवाले।
हैं कहीं रेंगते बिच्छू
भूरे तन काले काले ।[1]

मानवीकरण का एक उदाहरण-

सर के तीरों पर शीतल तरु
आम नीम की छाया थी ।
दिन के डर से तरु के नीचे
सोयी तम की छाया थी ।[2]

संवेदनात्मक -

रानी के दुख से रजनी
आंसू के मिस रोती थी
वह गन्ने के पत्तों को
आंसू जल से धोती थी ।[3]

'झांसी की रानी' राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण काव्य है । प्रकृति रानी भी जननी की सेवा में प्राण न्यौछावर कर रही है --

ये कुसुम दल हैं सच्चे सेवक
करते जन जन का उपकार।

१- ग्यारहवीं चिनगारी, पृ० १२२
२- सत्रहवीं चिनगारी , पृ० १६३
३- ग्यारहवीं चिनगारी, पृ० १२४

देकर अपने पुष्प प्राण भी
करते माता का श्रृंगार ।।[1]

'झांसी की रानी' में प्रकृति मानव के प्रति स्नेहमय एवं प्रेमपूर्ण भाव से ओत-प्रोत है। महारानी लक्ष्मीबाई के प्रति उसका ही अपूर्व भाव चित्रित हुआ है—

गगन चाहता था धरा पर उतर कर
सजल नेत्र से चूम ले युग्म पद को।
सघन घन घटा में तड़ित चाहती थी
गले से लिपटा ले भवानी के रद को।[2]

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'तप्तगृह' में मानवीय भावनाओं के साथ प्रकृति का तादात्म्य दिखाया है। अनेक स्थलों पर काव्य की परिस्थिति के अनुकूल पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण भी हुआ है ---- राज्य में स्वार्थ तथा हिंसा की विनाशकारी ज्वालाएं धधकती हो रही हैं। सूर्य देव भी मानों अपने ध्वंसक रूप में ही प्रकट हो रहे हैं-

उदित हुआ अम्बर में
भासमान बाल-रवि
मानो कल्पान्त के
ध्वंसक अनल का
लाल-लाल गोला हो।[3]

'यशोधरा' में मैथिलीशरण गुप्त ने प्रकृति को विराट् रूप में देखा है। वह अपने कोमल, कठोर, संवेदनीय तथा उद्दीपन आदि रूपों में प्रस्तुत हुई है। प्रकृति के माध्यम से विरह-वर्णन की शैली भी कवि ने अपनाई है। बसन्त काल में झूमती हुई लता, प्राण भरी हरियाली यशोधरा को उद्दीप्त कर

१- इक्कीसवीं हुंकार, पृ० 302
२- हुंकार सोलहवीं, पृ० २२६
३- सर्ग षष्ठ, पृ० ७७

देती है --

लता कंटकित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली
फूल उठी है लाज ! मान से प्राण भरी हरियाली
ओ मेरे वनमाली ।[1]

इन कतिपय उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक काव्य में प्रकृति अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य सहित मनोहारिता . करती हुई प्रस्तुत हुई है । शास्त्रीय परिपाटी के पालन का मोह एवं लोभ भी ऐतिहासिक काव्यकार को नहीं है । न तो केवल प्रकृति वर्णनों का भरमार है और न ही वह रीतिकालीन उद्दीपन की सीमा में बंधी हुई है । वह मानव की सहचरी है उसके सुख-दुःख में उसका साथ देने वाली है । कवि ने उसके अंतरंग में प्रवेश करके उसके अनेक क्रियाव्यापारों को उद्घाटित किया है । दो बातें विशेष महत्वपूर्ण हैं । एक तो आलोच्यकालीन अधिकांश काव्यों में जिस राष्ट्र प्रेम की भावना का चित्रण हुआ है प्रकृति भी उस भावना से ओत-प्रोत है । दूसरे कवि ने उसके अवसान में बलिदान की भावना का दर्शन किया है एवं राष्ट्र की बलिवेदी पर न्योछावर होने वाले वीरों को भी वह बलिदान की प्रेरणा देती हुई चित्रित हुई है । इस प्रकार अपने वीरतापूर्ण बलिदान रूप में, ऐतिहासिक काव्य में प्रस्तुत हुई प्रकृति, मानव के और अधिक समीप आती हुई प्रतीत होती है ।

००

१- यशोधरा , पृ० ४४

(ख) अलंकारगत सौन्दर्य :-

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से कविता में अलंकारों का महत्वपूर्ण योग है। बिम्ब विधान में तेजस्विता तथा भाषा में आकर्षण उत्पन्न करने के लिए अलंकारों की अनिवार्यता सभी काव्य-शास्त्रियों ने स्वीकार की है किन्तु जब सौन्दर्य सृष्टि करने की अपेक्षा अलंकार भार बन कर आते हैं तो काव्य का सहज सौन्दर्य अवरुद्ध हो जाता है। अलंकारों का यह प्रयोग चमत्कृत तो कर सकता है किन्तु इससे कोई स्थायी प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता है। रीतिकालीन अलंकार-प्रिय कवियों की रचनाएं, यद्यपि भाषा चमत्कार में अद्वितीय हैं, क्योंकि अलंकारों की चित्रशाला सजाने में निस्सन्देह इन कवियों के कौशल का परिचय मिलता है, तथापि भाव सौन्दर्य की दृष्टि से ये उतनी महत्वपूर्ण नहीं रहीं। जिन आभूषणों के पहिनने से आकर्षण की अपेक्षा विकर्षण का भाव उत्पन्न हो, जो मूल सौन्दर्य के ही नष्ट करने का उपकरण सिद्ध हों, तो ऐसे आभूषणों से भी क्या लाभ है? फलत: कविता में भी जहां अर्थ-सौन्दर्य तथा अर्थ स्पष्टीकरण के हेतु, भावोत्कर्ष तथा शैली के गरिमा-मय बनाने के हेतु अलंकारों का प्रयोग किया जाता है वहीं वे अपने वास्तविक उद्देश्य की सिद्धि में सफल होते हैं। खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्यों में अलंकारों का प्राय: बहुत स्वाभाविक एवं रमणीय प्रयोग हुआ है। जहां अर्थालंकारों से भाव-व्यंजना में सहायता प्राप्त हुई है वहां शब्दालंकारों द्वारा भाषा और भाव दोनों में ही सौन्दर्य की अभिवृद्धि हुई है।

द्विवेदीयुगीन ऐतिहासिक काव्य में अधिकांशत: प्रतीकात्मक उपमाओं और अनुप्रास आदि का प्रयोग ही विशेषतया हुआ है। 'रंग में भंग' 'मौर्य विजय', 'प्रणवीर प्रताप' 'गांधी गौरव' आदि काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। प्रतीकात्मक उपमाएं आलोच्यकालीन राष्ट्र वीरों तथा नेताओं की गुण-गान[1] कथन प्रधान रचनाओं में भी उल्लेखनीय हैं। छायावादी युग के ऐतिहासिक

१- प्रतीकों के सम्बन्ध में इस शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में भी उल्लेख हो चुका है।

काव्यों का प्रयोग मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर हुआ है । कवि शब्द साम्य दिखाकर अथवा अर्थ स्पष्ट करके ही नहीं रह जाता वरन् सूक्ष्म अभिव्यंजना के हेतु नवीन उपमानों,उत्प्रेक्षाओं तथा रूपकों की योजना करता है ।उपमाओं के द्वारा कहीं ऐतिहासिक पात्रों के व्यक्तित्व का निरूपण हुआ है तो कहीं वस्तु अथवा भाव के वर्णन में चित्रांकन का समावेश हुआ है । अर्थालंकारों में मुख्यत: उपमा,उत्प्रेक्षा,रूपक उल्लेख दृष्टान्त,तुल्ययोगिता,असंगति विभावना आदि उल्लेखनीय हैं यों न्यूनाधिक रूप में सभी का प्रयोग दृष्टव्य है । यहां प्रमुख ऐतिहासिक काव्यों में अलंकार सौन्दर्य देखना महत्वपूर्ण होगा । पहले हम मुख्य शब्दालंकारों को ही लेंगे -

अनुप्रास -- अनुप्रास शब्दालंकारों में सर्व प्रमुख है । इसके कुछ उदाहरण आलोच्य कालीन ऐतिहासिक काव्य से चुने जाते हैं -

(१) मिल गई चंदन चिता के ज्वाल जाला मोद में (रंग में भंग)
(२) जय जीव ! जाति प्रदीप हिन्दू सूर्य शूर शिरोमणे (प्रणवीर प्रताप)
(३) मेवाड़-मां -सतपुत्र सत्य प्रतिज्ञ,स्नेह सुधा सने (,,)
(४) कुल-धर्म-धर पालन प्रजा का नीतियुत नित कीजिए (,,)
(५) रावणारि रघुवंश कमल रवि (मौर्य विजय)
(६) कल कल करता हुआ सिन्धु नद (,,)
(७) करि कर सम कर बीच लिए करवाल है (महाराणा का महत्व)
(८) मन मोहती थी मदन का वह मदन मोहन की कला (गांधी गौरव)
(९) विकलता कलपी कल थी नहीं (तक्षशिला)
(१०) दला दर्प दम्भी प्रभा हीन सा (,,)
(११) चमकी चपला सा चमक कृपाण (चित्तौड़ की चिता)
(१२) नहीं पियूंगा नहीं पियूंगा पय हो चाहे पानी (यशोधरा)

यशोधरा में अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से श्रुति सौन्दर्य की उत्पत्ति हुई है-

यथा- देती उन्हें विदा मैं गाकर
भार झेलती गौरव पाकर
यह नि:श्वास न उठता हा कर (पृ० ४)

और भी-

`खींचा मैंने गुण-सा तान

निकल गया वह बाणसमान

ममते तेरा मान महान

(पृ० २६)

पद लालित्य की दृष्टि से नियोजित की गई कोमल कान्त पदावली अन्य काव्यों में भी प्रस्तुत है--

इस सौंदर्य सुधा में मत विषयी वासना घोलो(रूपराशि से)

\+ \+

मंजुल मंजरियों से मंडित लतिकाओं से मिल मिल कर

नव दल से शोभित शाखाएं झूम रही हैं खिल खिल कर [१]

सिद्धार्थ में शब्दालंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । निम्नपद में वर्णों की दो बार और अनेक बार की गई आवृत्तियों द्वारा वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास का प्रयोग हुआ है-

आजन्म कोकनद कानन कामचारी

मातंग गंड मद धारण चक्रवर्ती

मन्दार-मेदुर-मरंद-रसाल-लोभी

है षट्पदोत्कर सुखी सर-मध्यवर्ती [२]

अनुप्रास की सार्थकता तभी होती है जब वह भाव अथवा रस के अनुरूप बन कर प्रयुक्त हुआ हो । मैथिलीशरण गुप्त ,जयशंकर प्रसाद, गोकुल चन्द्र शर्मा, रामकुमार वर्मा आदि अनेक कवियों द्वारा अनुप्रास का प्रयोग ऐतिहासिक काव्यों में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुआ है । श्यामनारायण पाण्डेय ने`हल्दी घाटी` और`जौहर` में ऐसे ऐसे शब्द गूंथ कर पदरचना की है जिनके

१-`नूरजहां` प्रथम सर्ग

२- सर्ग सप्तम ,पृ० ६६

द्वारा भाव नाद में प्रतिध्वनित हो उठा है । योजना में गत्यात्मकता नाद-सौन्दर्य आकर्षक है । कतिपय उद्धरणों में यह स्पष्ट हो जायगा-

उड़ उड़ गुलाब पर बैठ बैठ
करते थे मधु का पान मधुप
गुन-गुन गुन-गुन कर करते
राणा के यश का गान मधुप [1]

इन पंक्तियों में भाव नाद में प्रतिध्वनित हो उठा है साथ ही श्रुति सौंदर्य की भी उत्पत्ति हुई है । अनुप्रास द्वारा दृश्यात्मकता रूपक का समावेश निम्न पंक्तियों में हुआ है-

डग-डग-डग-डग रण के डंके
मारू के साथ भयद बाजे
टप टप टप घोड़े कूद पड़े
कट कट मतंग के रदबाजे [2]

युद्ध वर्णन तथा वातावरण के निर्माण में `हल्दी घाटी` में इस प्रकार की शब्द योजना प्रचुर मात्रा में हुई है ।`जौहर` में प्रभावपूर्ण, प्रसंगानुकूल शब्द सृष्टि में कवि-कौशल महत्वपूर्ण है । सभी शब्द अपने अपने स्थान पर मानों अपना गतिपूर्ण भाव स्पष्ट करते हुए पंक्तिबद्ध हैं-

यही आन-बान है,
राजपूती शान है।
लक्ष्य जान कर चलो
वक्ष तान कर चलो।
तुम अमर बढ़े चलो
तुम अमर बढ़े चलो

१- सर्ग अष्टम, पृ० ६८

२- सर्ग एकादश, पृ० १२१

तुम निहार बढ़े चलो
आन पर चढ़े चलो [1]

'आर्यावर्त' 'तप्तगृह' तथा 'झाँसी की रानी' आदि काव्यों में भी अनुप्रास की यह छटा उपलब्ध है। इन सभी काव्यों में निरर्थक शब्द योजना के स्थान पर प्राय: सार्थकता तथा सौन्दर्य को ध्यान में रखा गया है।

वीप्सा :- क्रोध, शोक, प्रसन्नता तथा घृणा आदि मनोवेगों के चित्रण के लिए वीप्सा अलंकार का प्रयोग किया गया है। यथा-

(१) छी । छी । फिर भी बनी अकुलता मन में आई (मौर्य विजय)
(२) वाह ! ग्रीस सी छटा यहीं पर मैंने पाई (,,)
(३) अहा ! शीघ्र सज उठी सिन्धुओं की जय भेरी (,,)
(४) हा ! हा! जलज जलगत हुआ भी तुहिन से आहत हुआ (पणवीर प्रताप)
(५) हा!हा!! हमारी श्री अनाथा हो सदा को सो रही (,,)
(६) छि: छि: ऐसे शान्ति समय को जिसने कोमल रखा हृदय (सती पद्मिनी)
(७) धन्य धन्य गौतम बुद्ध (तप्तगृह)
(८) हा विधाता हा क्यों मैंने
इतनी सुन्दरता पाई
हा मेरे लिए बनी है
सुन्दरता ही दुखदायी (जौहर)
(९) अरे अरे साकार प्रताप (हल्दीघाटी)
(१०) हाँ हाँ मेरा ही अपमान (,,)
(११) भाला धन्य धन्य परिवार (हल्दी घाटी)
(१२) बलि जाऊँ बलि जाऊँ आतकि बलि जाऊँ इस रट की (यशोधरा)

१- आठवीं चिनगारी, पृ० ८८

यमक और श्लेष अलंकार का प्रयोग भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है। एक सुन्दर शब्द श्लेष का उदाहरण 'यशोधरा' से प्रस्तुत है-

क्यों जी प्राण वल्लभ ह कहूं या तुम्हें स्वामी मैं ?
चौंक कुछ लज्जित-से, बोले हंस आर्यपुत्र—
योगेश्वर क्यों होऊं गोपेश्वर नामी मैं
किन्तु चिन्ता छोड़ो, किसी अन्य का विचार क्यं
तो हूं चार पीछे प्रिये! पहले हूं कामी मैं।'[1]

निम्न पंक्तियों में भी श्लेष के द्वारा सौन्दर्य की उत्पत्ति श्लाघनीय है-

सुवर्णवर्णा, ललिता, मनोहरा
समा हसी यों पदन्यासशालिनी।
विरंचि-सिद्धार्थ-सुता लसी गई
शरीरिणी ज्यों अपरा सरस्वती।[2]

यमक अलंकार के द्वारा एक ही शब्द से जिन दो अर्थों की उत्पत्ति हुई है वह सुन्दर है---

खिल गया मुरैठा सिर का
पुलकित रोमावलि तन की
तन गया बना केसरिया
नव अचकन फटी रतन की[3]

१- यशोधरा , पृ० २३
२- वर्द्धमान
३- सोलहवीं चिनगारी, पृ० १७६

गुरु तेगबहादुर के प्रभाव के ग्रहण कराने में मैथिलीशरण गुप्त ने पुनरुक्ति का प्रयोग किया-

तेग़ बहादुर, हां वे ही थे, गुरु पदवी के पात्र समर्थ
तेग़ बहादुर, हां वे ही थे, गुरु पदवी थी जिनके अर्थ
तेग़ बहादुर, हां वे ही थे, पंचामृत सर के अरविन्द
तेग़ बहादुर, हां वे ही थे, जिनसे जन्मे गुरु गोविन्द

(गुरुकुल

एक भी पंक्ति निरर्थक नहीं कही जा सकती । काव्य सौन्दर्य के साथ प्रभावोत्पादि द्रष्टव्य है ।

उक्ति वैचित्र्य के द्वारा काव्य सौन्दर्य की वृद्धि होती है । निम्न पंक्तियों में कवि ने सीधे से बात न कह कर जिस विचित्रता के साथ कही है वह आकर्षक है -

परन्तु जो सर्वद सर्वदा रहे,
विचरते थे वह यों निराश थे
न पीठ पाई अरि वृन्द ने कभी
न वक्ष देखा पर-नारि ने तथा ।[१]

महावीर भगवान के पिता सिद्धार्थ महाराज के चरित्र की श्रेष्ठता का प्रतिपादन उपर्युक्त पंक्तियों में हुआ है।

इसी प्रकार शब्दालंकारों के प्रयोग ने ऐतिहासिक काव्यों के सौन्दर्य में वृद्धि की है । उनके द्वारा भाषा सशक्त तथा चुटीली हुई है । परंतु इतनी बात अवश्य है कि शब्दालंकारों की भरमार नहीं है । इन अलंकारों के प्रयोग से अनेक सुन्दर शब्दों के चयन के द्वारा भाषा में रुचिपूर्ण चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति तथा शब्द-लालित्य की दृष्टि परिलक्षित होती है।

१- वर्द्धमान , पृ० ४४

अर्थालंकार :-

अर्थालंकारों में उपमा मूल भूत अलंकार है । काव्य में उपमाओं का इतना महत्वपूर्ण योग है कि साधारण से साधारण काव्य रचना में भी सौन्दर्य उत्पत्ति के लिए उपमाओं का किसी न किसी रूप में आ जाना ऐसा ही स्वाभाविक है जैसा जीवन धारण के लिए जल ग्रहण करना । यह कवि-प्रतिभा पर निर्भर है कि वह अर्थगर्भित उपमाओं के द्वारा अपने भाव तथा अर्थ को स्पष्ट कर सकता है । ऐतिहासिक काव्यों में अनेक प्रकार से उपमाओं का प्रयोग हुआ है । प्रारम्भिक ऐतिहासिक काव्यों में तो प्राय: रूढ़ उपमाओं का प्रयोग ही अधिकांशत: हुआ है किन्तु आगे चल कर छायावादी प्रभाव के कारण अनेक सौन्दर्यपूर्ण सारगर्भित उपमाओं का प्रयोग भाव प्रकाशन तथा अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए हुआ है । नखशिख वर्णन में प्राय: रूढ़िगत उपमान ही लाये गए हैं -- कतिपय उदारण प्रस्तुत हैं -

(१) पद्म मुख प्रकटित हुई ज्यों पद्मिनी ज्यों अर्धकली (रंग में भंग)

(२) तो मुख की भी सर्पाच्छादित शशि सी शोभा पाती थी(सती पद्मिनी)

(३) अलंकृता थी बाहु लतायें विकसित तरु शाखाओं सी(सती पद्मिनी)

'सिद्धार्थ' तथा 'वर्द्धमान' काव्य के रूप के वर्णन में प्राय: रूढ़िगत उपमानों का ही प्रयोग हुआ है। यथा-

धवल वारिद से तनु की प्रभा
बसन पिंगल आतप से लसे
शरद कीसुषमा अति मंजुला
बन गई उपमान कुमार का ।[१]

और भी ----

सरोज सा वक्त्र सुनेत्र मीन से
सिवार से केश सुकंठ कंबुसा
उरोज ज्यों सुनाभि भौंर सी
तरंगिता थी त्रिशला तरंगिणी।[२]

१- सर्ग , पृ० ४३

२- सर्ग प्रथम , पृ० ५५

इन रूढ़िगत उपमानों के अतिरिक्त अनेक प्रतिभाशाली कवियों की उपमाएं केवल शब्द साम्य ही नहीं दिखा कर रह गईं वरन् चित्रांकन भी करती हैं। उपमाओं को नई नई भाव भंगिमाएं प्रदानकी गई -

चित्रोपमा के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

मृग सिंहों को देख भाग उठते हैं जैसे
पीठ दिखाते हुए दृष्टि आर वे वैसे ।(मौर्य विजय)

लू समान कुछ राजपूत भी आ गए (महाराणा का महत्व)

निर्भय मृगेन्द्र जगा करता प्रवेश है
वन में ज्यों डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों
भौंर के मधुके सा प्रविष्ट हुआ सात्की
(विकट भट्ट)

वायु के थपेड़ों से
क्षुब्ध नील जल तल पर
लोटता है कन्दुक-सा
पुनम का चांद ज्यों
दोलित त्यों होता था
मुख फलक उसका (तप्तगृह,सर्ग द्वितीय)

अपनी तलवार दुधारी ले
भूखे नाहर-सा टूट पड़ा।
कल कल मच गया, अचानक दल
आश्विन के घन-सा फूट पड़ा। (हल्दी घाटी,द्वादश सर्ग)

इसी प्रकार अन्य ऐतिहासिक काव्यों में भी उपमाओं के प्रयोग में चित्रमयता का विशेष ध्यान रखा गया है । छायावादी युग के ऐतिहासिक काव्यों में उपमाएं

स्थूल उपमानों से ही नहीं की गई। भाव की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त को अमूर्त और अमूर्त को मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपमा अलंकार के अन्तर्गत ही अनेक सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति नवीन उपमानों द्वारा भी की गयी। कतिपय उद्धरण आवश्यक हैं। देह और प्राण की सुन्दर सूक्ष्म उपमाओं की योजना द्रष्टव्य है --

स्वस्थ देह सा था यह गेह
गया प्राण सा वह निस्नेह[1]

... ...

किस अनन्त को देख रही हो साधक की अभिलाषा सी
चमक रही हो किस दुलिहन की नव कल्पित मृदु आशा सी [2]

... ...

उसके रक्तिम कर-पल्लव में
कल्पना सदृश कोमलता थी
मधु मयी मृगी सी आंखों में
योगी के मन की स्थिरता थी[3]

'सप्तमृह' में अनेक भाव प्रधान नवीन उपमाओं की योजना महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए-

किन्तु प्रतिहार का
सविनय निवेदन वह
कोणक को जान पड़ा
कोमल व्यवधान के
मूक सम्मोहन सा।[4]

१- यशोधरा, पृ० २६
२- नूरजहाँ, पृ० १८
३- झांसी की रानी, पहली हुंकार,
४- सप्तमृह, द्वितीय सर्ग

और भी----

आओं से रोक दिया
धीर बिम्बसार ने
देता है रोक ज्यों
उद्भट अकूल-कूल
कूल हीन कुल्या के
आकुल कल्लोल को[1]

इन भावनात्मक उपमाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य सुन्दर उपमाएं भी अनेक ऐतिहासिक काव्यों में आई हैं। यथा-- उपमेयोपमा का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

मति रही कमला सम कोमला
नवनवा कमला मति-सी रही
तनु-समान विभा अति रम्य थी
तनु विभा सम था प्रतिरूप का ।[2]

`झांसी की रानी` में एक सुन्दर कल्पना द्रष्टव्य है- ~~जिसमें~~

इतना कह कर नाना साहब
जुट गए कला की बाजी पर
जैसे वसन्त उल्लास भरा
जुट जाता है वन राजि पर[3]

महाराज पृथ्वीराज के महल में एक सुन्दर सरोवर में हंसों के तैरने की कल्पना कवि ने निम्न प्रकार से की है--

तैरते हैं हंस सरसी के स्वच्छ जल में
जैसे तैरती हो कवि मानस में कल्पना[4]

१- तप्तगृह, सर्ग पंचम
२- सिद्धार्थ, सर्ग प्रथम
३- दूसरी हुंकार
४- आर्यावर्त, सर्ग षष्ठ

'आत्मोत्सर्ग' में सियाराम शरण गुप्त ने लुप्तोपमा का प्रयोग किया-

'जीवन जलज पत्र का जलकण'

पुष्कर वर्णन में कवि श्रीनाथ सिंह ने नवीन उपमाओं का प्रयोग किया-

टपके स्याही की बूंदों से कवि के कोरे कागज पर

दुग तारों में नहीं किसी भी मानव लिपि के अक्षर

'कुणाल' काव्य में कुणाल के रूप वर्णन में सोहनलाल द्विवेदी ने भी सुन्दर उपमाएं गुम्फ़ण की है -

तर्क सी अलकें लहराती

+ +

पारदर्शी से मुकुर से थे मनोरम अंग

+ +

आर्य श्रेष्ठ कुणाल थे ज्यों शुभ भविष्य महान

'गुरुकुल' में कवि ने गोविन्द सिंह के परिवार के बलिदान होने के पश्चात् उनके एकाकीपन का चित्र प्रस्तुत किया है। भाव अनुरूप उपमा का प्रयोग द्रष्टव्य है-

कुटुम्बियों के बिना अकेले

सहने लगे आज वे शोक

प्रातः काल बिना तारों का

ओषधीय ज्यों इन्दु अशोक (पृ० २०४)

रूपक :- ऐतिहासिक काव्यों में रूपक अलंकार का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। सांग निरंग तथा परम्परित रूपकों का अधिक प्रयोग हुआ है --।यशोधरा में एक सुन्दर रूपक की योजना कवि कल्पना ने की है। पृथ्वी के रत्नाकर का गगन में जाकर उलट जाना, जलराशि का ओस रूप में टपक पड़ना तथा आकाश के श्याम वक्षःस्थल पर तारकों की मणिमाला का चमकना---

''उलट पड़ा यह दिव-रत्नाकर

पानी नीचे ढलक बहा

तारक रत्नहार सजि उनके
खुले हृदय पर फलक रंग` (पृ० ६३)

महाकवि `प्रसाद` के `महाराणा के महत्व` में संध्या सुन्दरी के लिए आकर्षक रूपक की योजना हुई है । रूपक द्वारा प्रकृति का कैसा अलंकृत चित्र प्रस्तुत किया है ---

तारा-हीरक पहन कर चन्द्र मुख
दिखलाती उतरी आती थी चाँदनी
शाही महलों के सुन्दर मीनार से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से (पृ० १८)

`नूरजहाँ के कवि ने अनेक रूपकों का प्रयोग किया है । निम्नांकित अनारकली की वेदना का चित्र एक रूपक द्वारा खींचा है --

गहन विपिन में भूली भूली आई एक सरिता के तीर।
सहस करों से खींच रहा है दिननायक जिसका वर चीर।।
है पानी होने के भय से कृष्णा-कृष्णा चिल्लाती है ।
मीन-व्याज तड़पी जाती है लहर-व्याज बल खाती है ।।
अकल बने गिरि निरख रही है पत्थर की करके छाती
पानी ही पानी-पानी हो तरुणी है रोती जाती।[1]

सरिता के रूपक द्वारा अनारकली की अवस्था का चित्रण आकर्षक है । इसी प्रकार मेहर के यौवन के उभार में कवि ने जिस रूपक की योजना की है उससे उसकी रसिकता भी ध्वनित हो रही है ---

दो शिविर-शृंग हैं खड़े हुए मैदान आज है भरा हुआ
है मार-मार की धूम उठा जीवित हो जो था मरा हुआ
दो मीन-केतु हैं फहराते, दोनों दल मिलते जाते हैं ।
सैनिक आँखों में अंजन दे आयुध पर सान चढ़ाते हैं ।[2]

१- सर्ग पंचम, पृ० ३६
२- सर्ग छठाँ, पृ० ४६

'सिद्धार्थ' में रूप वर्णन तथा प्रेम चित्रण में अनेक रूपकों की योजना हुई है । यथा-

> कहीं जिलाती वह कंज-कामिनी
> विशुद्ध वासन्तिकता-शरीरिणी
> विनम्र होके अध-भार-भार से
> पुनः पुनः थीं लखतीं कलाइयां ।[1]

सौन्दर्य वर्णन में एक और उद्धरण प्रस्तुत है -

> उसके मुख-मंडल में कुछ कुछ थी रवि की आभा आई[2]

उत्प्रेक्षा :- ऐतिहासिक काव्यों में उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग इतना अधिक हुआ है कि किसी किसी काव्य के तो प्रत्येक पृष्ठ पर उत्प्रेक्षाओं ~~की प्रयोग~~ झड़ी लगी है । 'आर्यावर्त' इसी श्रेणी में आता है । उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग द्वारा कवि चित्रात्मक वर्णन करने में सफल हुआ है क्योंकि बिना चित्र-कल्पना किए उत्प्रेक्षा प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती । कतिपय उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा । सौन्दर्य वर्णन में श्री नाथ सिंह ने 'सती पद्मिनी' में उत्प्रेक्षा की सुन्दर कल्पनाएं की हैं ---

> गोरे गोरे कपोलों में दौड़ी थी लाली झलकी सी
> मानों कोई अरुण प्रभा की शशि के उर पर छलकी सी
> उन पर नव प्रवाल से अधरों की ऐसी छवि छाई थी
> रूपराशि पर मनसिज ने मानों निज मुहर लगाई थी ।।[3]
>
> \+ \+
>
> शोभा थीं ग्रीवा में ऐसी रत्नों की कुछ मालाएं
> डाल पकड़ ज्यों कल्पवृक्ष की लटकी हों सुरबालाएं[4]

१- सर्ग छः , पृ० ८५

२- सती पद्मिनी, सर्ग प्रथम

३- सर्ग प्रथम

४- वही

` मौर्य विजय` में प्रतीकात्मक उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग हुए हैं --

`थे मानों प्रत्यक्ष इन्द्र के अवनीतल पे`

`चित्तौड़ की चिता` में कुछ उत्प्रेक्षाएं दर्शनीय हैं -

आ गई नभ में तारक माल
खिल गए मानों सुन्दर फूल
गया है शशि उनमें पथ भूल
अभी तो है वह भोला बाल [1]

देव मन्दिर में जाती हुई वीरांगनाओं की शोभा का वर्णन निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है---

उछाले जाते नभ सित फूल
मनोरम शोभा थी उस काल
प्रात में मानों तारे बाल
आ गए थे नभ में पथ भूल [2]

[redacted]

१- द्वितीय सर्ग
२- द्वादश सर्ग
[redacted]

'हल्दी घाटी' की सटीक और स्वाभाविक उत्प्रेक्षाओं का सौंदर्य भी दर्शनीय है--

इस तरह वीर झपटे उन पर
मानों हरि मृग पर टूट पड़े[1]
इस तरह चमकता राणा था
मानों सर्पों में गरुड़ पड़ा ।[2]

+ +

वह हाथी दल पर टूट पड़ा
मानों उस पर पवि छूट पड़ा
कट गई वेग से भू, ऐसा
शोणित का नाला फूट पड़ा ।[3]

'जौहर' में भी कवि ने सरल किन्तु स्वाभाविक उत्प्रेक्षाएं प्रयोग की है ।गोरा शत्रु समूह से घिर गया-

गौरैयों में बाज पड़ा था
विहगों में खगराज पड़ा था ।
मानों घनतम के घेरों में
प्राची का दिनराज पड़ा था ।।[4]

एक हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण भी प्रस्तुत है --

गिरि की चोटी पर चढ़ कर
किरणें निहारतीं लाशें ।
उनमें कुछ तो मुरदे थे
कुछ की चलती थीं सांसें ।।

१- सर्ग ग्यारह, पृ० १२३
२- सर्ग द्वादश, पृ० १४२
३- सर्ग बारह , पृ० १३७
४- दसवीं चिनगारी, पृ० ११२

वे देख देख कर उनको
मुरझाती जातीं प्रतिपल।
होता था स्वर्णिम नभ पर
पक्षी क्रन्दन का कल-कल ।[1]

'तप्तगृह' की सूक्ष्म भावगत उत्प्रेक्षाएं ---

और लिपट राजा के
चरणों में रो पड़ी
मानों हो रो रही
व्यथा विश्व भर की[2]

कारागार में सोए हुए बिम्बसार के मुख की क्रान्ति के चित्रण में उत्प्रेक्षा-

मानों वार्द्धक्य के
गौरव का दीपपुंज
जलता हो मंद मंद[3]

'विक्रमादित्य' में सोती हुई ध्रुवदेवी की भंगिमा उत्प्रेक्षा द्वारा प्रस्तुत हुई है-

सोई है सैकत में मानों मानस सरसी की सरित विमल (पृ० ७६)

'झांसी की रानी' में मेघ मालाओं से स्पर्श करते हुए भवनों की ऊंचाई का सुन्दर चित्र देखिए-

मेघ-मालाओं का कर स्पर्श
धवल प्रासादों का कलकण्ठ
जान पड़ता था ऐसा दिव्य
शम्भु तन पर हो नीला कण्ठ[4]

१- सर्ग द्वादश पृ० १४४
२- सर्ग पंचम, पृ० ६२
३- सर्ग पंचम, पृ० ५२
४- चौथी हुंकार, पृ० १०६

और भी अमरपुरी के समाधिस्थ होने की कल्पना सुन्दर है -

अमर पुर मानो करके मान
हमारे ही अभी पर ध्यान [१]

उत्प्रेक्षाओं की दृष्टि से 'आर्यावर्त' महत्वपूर्ण है । कोई पृष्ठ ऐसा नहीं है जहां उत्प्रेक्षाओं की छटा दृष्टिगोचर न होती हो । प्रथम सर्ग में आई उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग प्रस्तुत है --

(१) टूटा था शिखर मानों उत्क्षिप्त कबंध हो
(२) झांकती थीं ईंटें एक भांति मानो मग से
मागने की ताक में हों
(३) और पगडंडी भी
मिट-सी गई थी मानो उसने छिपाया हो
उन पदचिह्नों को कराल-काल-दृष्टि से
(४) आया एक वीर ओज-तेज का प्रतीक-सा
उन्नत शरीर मानो युवक गयंद हो
(५) वक्ष मानो वज्र के कपाट-सा सुदृढ़ था
(६) झिल्ली-रव बंद हुआ सहसा
मानो थहराया घोर हृदय विपिन का
(७) नग्न संग उनका प्रतिध्वनि के रूप में
मानो हंसी कालिका, कराल्का, कपालिनी।
(८) मानों शांत-रस और शौर्य एक साथ ही
आये मगमाता के चरण में प्रकाश हो ।
(९) आ गयी समय शशि-संभवा विभा वहां
(१०) अंधकार पीछे हटा मानो शैवाल हो
जटिल सरोवर का

१-चौथी हुंकार, पृ० १०८

(११) बोला जयचन्द घोर धीर वीर वाणी से
गूंज उठा मंडप ज्यों नभ मेघ मंद्र से
ये उत्प्रेक्षाएं केवल प्रथम सर्ग से ही ली गयी हैं ।

इसी प्रकार सम्पूर्ण काव्य में शैली चित्रात्मक है । ऐतिहासिक काव्यों के इन सभी उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वस्तु तथा भाव का चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग बहुलता से किया है ।

सन्देहालंकार का प्रयोग भी यत्र तत्र हुआ है । इसके लिए कतिपय उदाहरण देने पर्याप्त होंगे । यशोधरा के रूप वर्णन में कवि असमंजस्य में पड़ गया है । वह निर्णय नहीं कर पाता कि--

कमल थे मृग थे कि सुनेत्र थे
बिल्व थे शिव थे कि उरोज थे

मुकुर था विधु था कि मुखाब्ज था
तड़ित थी रवि थी कि यशोधरा ।[१]

प्रभात के समय बिखरी ओस के सौन्दर्य ने कवि को सन्देह में डाल दिया है--

गूंथ दिये किसी ने मोती
तम की उलझी अलकों में
या आंसू के कण अटके
छाया की मृदु पलकों में[२]

... ...

इसलिये टहनियों से निकले
नव कोमल किसलय डाल-डाल
या फहराती थीं माधव की
जय ध्वजा बनाली डाल-डाल ।[३]

१- सिद्धार्थ, सर्ग पांच
२- जौहर, सातवीं चिनगारी
३- झांसी की रानी, तेरहवीं हुंकार

उल्लेख अलंकार :- `फांसी की रानी` काव्य के दूसरी हुंकार में मनुबाई के वर्णनों में उल्लेखों का अच्छा प्रयोग हुआ है । भारत के गौरव का उल्लेख विभिन्न प्रकार से हुआ । यथा-

कमला का पावन धाम वही
जन-जन में रमता राम वही
ब्रज का ब्रज मण्डल अभी वही
वृन्दावन -सुन्दर धाम वही[1]

अतीत गौरव के वर्णन में प्राय: कवियों ने इसी अलंकार का प्रयोग प्रचुरता से किया है ।

अपह्नुति अलंकार का प्रयोग भी यत्र तत्र ही प्राप्त होता है--

खिलती पंखुरी पंकज वन की
खुल रही आंख रजनीपति की
दुख का निर्ममता निरख कुसुम - रस के मिस जो भर आई थी
(लहर से)

`जौहर` में ओसों के मिस रोती हुई रजनी का चित्र-

रानी के दुख से रजनी
ओसों के मिस रोती थी
वन गन्धे के पत्तों को
आंसू जल से धोती थी[2]

इस अलंकार का प्रयोग अधिक नहीं किया गया ।

१- हुंकार दूसरी, पृ० ६८

२- ग्यारहवीं चिनगारी, पृ० १२४

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि केवल इतिहास का वर्णनकर देना ही कवि उद्देश्य नहीं रहा है वरन् सौन्दर्य पूर्ण आलंकारिक रीति से इतिहास के विभिन्न तथ्य तथा घटनाएं प्रस्तुत हुई हैं । स्वाभाविक सहज तथा सौसाम्य भाषा में टंके हुए इन मुक्ता-कणों ने कथा-काव्यों की प्रभविष्णुता में वृद्धि की है । ऐसे उदाहरण अपवाद ही हैं जिनके द्वारा भाव सौन्दर्य नष्ट हुआ हो । वस्तुत: भावाभिव्यंजना तथा काव्यात्मक सौंदर्य के उत्कर्ष के साधन बन कर ही ये अलंकार काव्य में प्रस्तुत हुए हैं ।

(ग) छन्दगत सौन्दर्य :-

छन्द का अर्थ गति से है, गति से लय उत्पन्न होती है, लय से संगीत की उत्पत्ति होती है और क्योंकि काव्य की गति ही छन्द प्रवाह है अत: काव्य तथा संगीत का संयोग स्वत: ही हो जाता है । यद्यपि दोनों का अस्तित्व भिन्न है तथापि साहित्य माधुरी के साथ यदि संगीत लहरी भी आ मिलती है तो काव्य का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है । तात्पर्य यह है कि कविता में छन्दों की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । विशिष्ट प्रकार के भावों को कवि विशिष्ट प्रकार के छन्दों में अभिव्यक्त करता है । अर्थ तथा भाव की लय अपनी अनुकूल गति में ही अधिक उपयुक्तता के साथ प्रकट होती है। उदाहरण के लिए मध्ययुगीन कवियों ने वीर रस के वर्णन के लिए कवित्त तथा छप्पय का ही अधिक प्रयोग किया है । आत्मगत् अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए गेयपद और उपदेश के लिए दोहा छन्द की पणालीको अपनाया है । इस प्रकार विविध भावों की अभिव्यक्ति के लिए कवि प्रतिभाओं ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है । हिन्दी में छन्दों के वैविध्य की दृष्टि से तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' देखा जा सकता है । दोहा,चौपाई,सोरठा आदि भाव परिवर्तन के साथ साथ प्रयोग किए गए हैं । यह सत्य है कि कविता के कोमल कान्त कलेवर को छन्दबन्धन में जकड़ कर नहीं रखा जा सकता । सम्भवत: इसी के परिणाम-स्वरूप आलोच्य कालीन प्रगतिवादी कवियों ने छन्द विहीन काव्य की रचना की है । गद्य काव्य भी लिखा जा रहा है किन्तु इतना निश्चित है कि छन्दों की नितान्त अवहेलना किसी भी युग में नहीं की जा सकेगी । आज का नया कवि क्रान्ति और परिवर्तन के मोहवश रूढ़ छन्द बन्धन को भले ही स्वीकार न करे किन्तु एक गति अथवा लय इन कविताओं में भी लक्षित होती है ।

जिस प्रकार भाव तथा भाषा की दृष्टि से द्विवेदी युग परिवर्तन का युग है उसी प्रकार छन्द प्रयोगमें भी इस युग में अनेक परिवर्तन हुए । रीतिकाल के कवि तथा उन्नीसवीं शताब्दी के ब्रज भाषा के कवि— दोहा,कवित्त और सवैया, इन विशेष छन्दों का ही अधिकांशत: प्रयोग करते थे । इस मोह के प्रति

प्रतिक्रिया हुई संस्कृत वर्णवृत्तों के अतिरिक्त हिन्दी के विविध मात्रिक छंद--गीतिका,हरिगीतिका,बरवै,सोरठा,छप्पय,ताटंक,सार राधिका,रूपमाला तथा चौपई और चौपाई आदि का प्रयोग बढ़ने लगा । द्रुतविलम्बित,शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित ,इंद्रवज्रा,उपेन्द्रवज्रा,मालिनी त्रोटक आदि सभी वर्णिक छंद प्रयुक्त हुए । संस्कृत के इन प्राचीन छन्दों के प्रयोग के साथ-साथ द्विवेदी जी ने उर्दू के नवीन छन्दों के प्रयोग का भी आदेश दिया । यहां हम ऐतिहासिक काव्यों में प्रयुक्त छन्दों के प्रयोग तथा उनसे उत्पन्न सौन्दर्य पर विचार करेंगे । भारतीय काव्य-शास्त्रीय परम्परा रही है कि विशिष्ट रस की निष्पत्ति के लिए विशिष्ट छन्द का प्रयोग आवश्यक समझा गया था । भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कवियों के द्वारा ऐसे छन्दों का प्रयोग होता था जो भावों को ध्वनित कर सकें या उनका बिम्ब रूप उपस्थित कर सकें । उदाहरण के लिए वीर रस के लिए भुजंगप्रयात या चामर छन्द,श्रृंगार रस के लिए शार्दूलविक्रीडित या वसन्ततिलका,करुण रस के लिए मन्दाक्रान्ता या मालिनी,शान्त रस के लिए वंशस्थ या शिखरिणी,अद्भुत के लिए स्रग्धरा या द्रुतविलम्बित छन्दों की रचना होती थी । यही परम्परा हिन्दी के ऐतिहासिक काव्यों में भी स्पष्ट रूप से लक्षित हुई । सिद्धार्थ महाकाव्य तो वर्णवृत्त छन्दों में इसी दृष्टि से लिखा गया, जहां वर्णवृत्त छन्दों का प्रयोग संभव नहीं हो सका, वहां मात्रिक छन्दों के स्वतंत्र रूप या मिश्रित रूपों का प्रयोग किया गया । कोमल भावों के लिए गीतों का अन्त्यानुप्रास युक्त वृत्तों का भी प्रयोग देखा जा सकता है ।

खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में द्विवेदी युग के संस्कृत के वर्णिक और हिन्दी के मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है । पहले हम वर्णिक वृत्तों के प्रयोग की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्यों को देखें । मैथिलीशरण गुप्त ने 'पत्रावली' में अन्त्यानुप्रासयुक्त वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया है ।कतिपय उद्धरण प्रस्तुत है ।

संग्राम में जो तुम काम आते,
सुरलोक में निश्चल नाम पाते।

मैं भी रहती होकर धन्य होती,
न दासिका होकर आज रोती ।[१]

इसमें पांच और छः वर्णों पर यति है और प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण हैं ।

शिखरिणी छन्द का प्रयोग भी पत्रावली में हुआ है । यह छन्द शृंगार वीर और शान्त आदि विभिन्न रसों में प्रयुक्त हुआ है । उदाहरण ---

यही आकांक्षा है अब तक रहूं देश रण में,
किसी भी बाधा से विचलित न होऊं विपथ में ।
जिसे आत्मा चाहे सतत उसका साधन करूं,
उसी की चिन्ता में रत रह कर सदा चिन्तित मरूं ।[२]

वीर, रौद्र तथा अन्य उदात्त भावों के लिए रूपघनाक्षरी अर्थात् अक्षरों का छन्द अधिक अनुकूल माना गया । गुप्त जी ने इसका प्रयोग किया है-

स्वस्ति श्री स्वाभिमानी कुल कमल तथा हिन्दुआ सूर्य सिद्ध,
शूरों में सिंह शूरों शुचि सुकृति श्री प्रताप प्रसिद्ध ।
लज्जाधारी हमारे कुशल कुल रहें आप सद्धर्म धाम
श्री पृथ्वीराज को हो विदित विनय से प्रेम पूर्ण प्रणाम ।[३]

अतुकांत वार्णिक छन्दों का प्रयोग भी इनकी ऐतिहासिक रचनाओं में हुआ है यद्यपि यह कम ही देखने में आता है । 'सिद्धराज' अतुकांत वर्ण वृत्तों में ही लिखा हुआ है-

श्रीयुत मदन वर्मा सदन सुकर्मों का,
शौर्य में भी वीर्य में भी छन्द है महोबे का।
संगर-विनोद राग-रंगमोद दोनों में
एक सा कुशल है मूर्ती को गुण-गौरव ।[४]

१- मैथिलीशरण गुप्त, महारानी शिरोदिनी का पत्र , पत्रावली
२- वही ,प्रतापसिंह का पत्र ,पृथ्वी भट्ट के नाम,पत्रावली
३- वही , महाराज पृथ्वीराज का पत्र, पत्रावली
४- वही ,सिद्धराज, पृ० ११७

अनूप शर्मा की रचनाओं में अतुकांत वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है । वर्धमान, सिद्धार्थ, सुनाल तथा सुमनांजलि संग्रह की ऐतिहासिक कविताओं में संस्कृत के वर्णिक वृत्तों का भी प्रयोग हुआ है । वर्धमान तथा सिद्धार्थ में द्रुत विलम्बित शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा,[1] भुजंगप्रयात,[2] शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता मालिनी, वंशस्थ आदि प्रायः संस्कृत के सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है । घनाक्षरी का प्रयोग अधिकांशतः गोपालशरण सिंह, अनूपशर्मा, मैथिलीशरण गुप्त तथा रामधारी सिंह 'दिनकर' ने किया है । अनूप शर्मा तो घनाक्षरी सिद्ध कवि माने गए हैं क्योंकि खड़ी बोली में घनाक्षरी लिखने वाले प्रथम कवि होने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है[3] । घनाक्षरी के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं । 'सुनाल' काव्य में सवैया वर्ग के छन्दों का प्रयोग किया है । नीचे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

<u>वंशस्थ</u>- इस छंद का सर्वाधिक प्रयोग 'वर्धमान' काव्य में हुआ है । यह शान्त रस के अधिक अनुकूल है । अतः सिद्धार्थ और वर्धमान में इसका प्रयोग रसानुकूल है --

निदाघ का पूर्व-पदी प्रभात था
अनुष्णता थी दुबला समीर में,
हुई समालोक मयी वसुन्धरा
बना पिशंगा प्रभा दिशा सभी ।[4]

१- इसका प्रयोग सिद्धार्थ में केवल एक बार हुआ है । पृ० ३२

२- इसका प्रयोग केवल सिद्धार्थ के सुर्तीय सर्ग के उन्मेष में गीतों में हुआ है। खड़ी बोली में इन्द्रवज्रा के समान ही यह छंद भी विशेष प्रसिद्ध नहीं हुआ है इसका मात्रिक रूप ही प्रसिद्ध है ।

३- वर्तमान भूषण यहीं अपने चरम विकास पर है और खड़ी बोली में पहली बार इसी कविता (चित्तौड़ दर्शन) में घनाक्षरी हुई थी ।
डा० पुत्तूलाल गुप्त, अनूप साहित्य (निबन्ध)
अनूप शर्मा : कृतियां और कला, पृ० ३६

४- अनूप शर्मा, सिद्धार्थ, सर्ग ४

भुजंगप्रयात छन्द में वीर अथवा रौद्र रस की आकर्षक अभिव्यंजना होती है क्योंकि उन्मीषा के होरों में इस छन्द का सफल प्रयोग नहीं हो सका है । सवैया छन्द के अनेक भेद हैं जिनमें दुर्मिल विशेष प्रसिद्ध है । एक उदाहरण प्रस्तुत है इसमें वर्णसंख्या २४ होती है ---

अति उज्ज्वल चांदनी सी सिहरी, घन में न छबि पर दामिनी सी ।
नवयौवन की रस रंग भरी हुई रात सोहाग की यामिनी सी ।
सुषमा अति उज्ज्वल मंजु महा, तरुणी अति सुन्दर कामिनी सी।
कमनीय सी, श्रीवास सी, फूल सी, दुग्ध सी, रंग सुन्दर कामिनी सी।[1]

यह छंद मुक्तक कविता के अधिक अनुकूल है पर अनूप शर्मा ने इसका सुन्दर प्रयोग इस प्रबन्ध काव्य में किया है ।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य में द्विवेदी युग और उसके पश्चात् भी वर्णिक छन्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है । किन्तु यह भी सत्य है कि द्विवेदी युग के पश्चात् ऐतिहासिक काव्य में वर्णिक छन्द अनूप शर्मा ने ही अधिकांशत: अपनाए हैं अन्यथा आलोच्यकाल के ऐतिहासिक काव्य में, खड़ी बोली के इतर काव्य की भांति, मात्रिक छन्दों का ही प्राधान्य है । हिन्दी के जो मात्रिक छन्द आलोच्यकालीन काव्य में जिस रूप में अपनाए गए वैसा प्रयोग हिन्दी साहित्य के गत युगों में नहीं हुआ था । वीरगाथा काल में मात्रिक छन्दों की प्रधानता थी किन्तु रीतिकाल में वर्णिक छन्दों की ही प्रचुरता रही । आधुनिक युग में ये छन्द खड़ी बोली के अधिक अनुकूल सिद्ध हुए हैं। इस युग में प्राचीन मात्रिक छन्दों को भी नवीन रूप दिया गया । परिवर्तन और परिवर्द्धन करके उन छन्दों को रुचि तथा भाव के अनुकूल ग्रहण किया । अन्त्ययुक्त मात्रिक छन्दों के साथ ही अतुकांत मात्रिक छन्दों का प्रयोग भी हुआ। प्राचीन परिपाटी के भक्तों को कविता में अतुकान्त का प्रयोग रुचिकर नहीं लगा । कामताप्रसाद गुरु[2] तथा रामचरित उपाध्याय[3] आदि ने इस प्रवृत्ति का

१- सुनाल , पृ० ६७
२- हिन्दी कविता में तुकान्त, सरस्वती, नवम्बर १९१६
३- सरस्वती, जनवरी १९१७

विरोध भी किया किन्तु नये वर्ग के स्वच्छन्दतावादी कवियों में इनका प्रयोग बराबर प्रचलित होता गया। गुप्त जी यद्यपि अन्त्यानुप्रास के पक्ष के तथापि उन्होंने हिन्दी में अतुकांत छन्दों का जोरदार समर्थन किया तथा 'सिद्धराज' प्रबन्ध काव्य आद्योपान्त अतुकान्त छन्द में ही लिखा। 'यशोधरा' में भी इस शैली के (स्थान स्थान में) दर्शन होते हैं। इस प्रकार खड़ी बोली काव्य में मात्रिक छन्दों को विविध रूप में अपनाया गया है। ऐतिहासिक काव्यों में मात्रिक छन्द सभी रूपों में प्रयुक्त किए गए हैं। प्रबन्ध काव्य के लिए यद्यपि मात्रिक छंदों में सर्वाधिक प्रसिद्ध चौपाई छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ तथापि आलोच्य काल के आरम्भिक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में अन्य मात्रिक छन्दों का भी बहुल प्रयोग हुआ है। इस युग का सर्वाधिक प्रिय छन्द गीतिका और हरिगीतिका था। इन दोनों छन्दों में, रंग में भंग, वीरांगना वीरा, प्रणवीर प्रताप, गांधी गौरव आदि प्रबन्ध काव्यों का निर्माण हुआ। नीचे गीतिका तथा हरिगीतिका के दो उद्धरण प्रस्तुत हैं -

तोड़ने दूं क्या इसे नकली किला मैं मान के ?
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु, मूर्ति को जड़ मान के ?
भ्रान्तजन उसको भले ही जड़ कहें अज्ञान से,
देखते भगवान को धी मान उसमें ध्यान से।[१]

२६ मात्रा के इस गीतिका छन्द में १४और १२ पर यति है। मैथिलीशरण गुप्त का हरिगीतिका प्रिय छन्द था। भारत भारती में इसका विशेष प्रयोग हुआ है। यह छन्द वीर रस, शृंगार रस, करुण रस और शान्तरस के अनुकूल है।

२८ मात्रा के हरिगीतिका छन्द का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

कर कुछ से भी अमित वीरों को धराशायी किया,
जो पास आया रुण्डमुण्ड विभिन्न दिखलाई दिया।

१- मैथिलीशरण गुप्त, रंग में भंग

उस काल एक अनेक - सम वे चतुर्दिक् लड़ने लगे
निज शत्रु को जिस ओर देखे दृष्टि वे पड़ने लगे ।[1]

गीतिका के अतिरिक्त द्विवेदीयुगीन ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में ताटंक, वीर प्रकुवल्य, अथवा पौराणिक आदि अनेक मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ । 'गुरुकुल' आद्योपान्त १६ मात्रा के वीरछंद में लिखा गया है । 'चित्तौड़ की चिता' में १६ मात्रा का प्रकुवल्य छन्द प्रयुक्त हुआ है ।

'रानी पद्मिनी' में ३० मात्रा का ताटंक छन्द प्रयुक्त हुआ । उदाहरण के लिए-

घोर निशा की विषम व्यथाएं, सह न सकी जब कमल-कली
उसका क्रन्दन करुणा देख कर, स्वयं खिल उठा वायु बली ।
तब तो निद्रा का भी मुकुट है, दृढ़ सिंहासन डोला ।
अन्धकार में आग लगा कर, निकला सूरज का गोला ।

इसमें १६ और १४ पर यति है ।

अरिल्ल छन्द का प्रयोग जयशंकर प्रसाद ने 'महाराणा का महत्त्व' में किया । अरिल्ल छन्द अपने प्रवाह के लिए प्रसिद्ध है ।[2] द्विवेदी युग के ऐतिहासिक काव्यों में मिश्र छन्द का प्रयोग भी हुआ है । सियाराम शरण गुप्त ने 'मौर्य विजय' में छप्पय का प्रयोग किया जिसमें रोला छन्द के साथ १५ और १३ के द्वितीय उल्लाला का योग है । उदाहरण के लिए -

भारत भूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी
शासन उनका प्रजा वर्ग को था सुखकारी ।
थे वे सद्गुण शील और बल-विक्रम वाले,
पद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने थे कर डाले ।

१- गोकुलचन्द्र शर्मा, प्रणवीर प्रताप, पृ० ३३

२-'अरिल्ल छन्द निर्झरिणी की तरह कल कल छल छल करता हुआ बहता है ।'
-सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, प्रवेश से

उनकी सु-राजधानी विदित पाटलि पुत्र मनोज्ञ थी,
जिसकी उपमा के अर्थ बस अमर पुरी ही योग्य थी ।[१]

'मौर्य विजय' का यह छन्द विशेष प्रवाहयुक्त नहीं है । गुप्तजी ने यशोधरा में भी छप्पय का भी प्रयोग किया है ।[२] संस्कृत और हिन्दी के छन्दों के अतिरिक्त उर्दू बेहरों का प्रयोग लाला भगवान दीन ने किया । इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक काव्य में इस छन्द का प्रयोग नहीं हुआ । इस प्रकार द्विवेदी युग के ऐतिहासिक काव्य में मात्रिक छन्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । अन्त्ययुक्त और अन्त्य मुक्त दोनों प्रकार के छन्द अपनाए गए । इस युग के ऐतिहासिक काव्यों में एक विशेष बात दर्शनीय है वह यह कि अधिकांश प्रबन्ध-काव्य एक ही छन्द में आद्योपान्त लिखे गए हैं । एक ही प्रकार के छन्द में विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति हुई जैसे 'मौर्य विजय' में छप्पय, 'गुरुकुल' में वीर तथा 'सती पद्मिनी' में ताटंक आदि ।

छायावाद तथा छायावादोत्तर ऐतिहासिक काव्यों में विविध भावों के लिए विविध मात्रिक छन्द अपनाने की योजना हुई, द्विवेदीयुगीन छन्दों का विकास हुआ एवं अनेक नवीन छन्दों का भी निर्माण हुआ । छन्दों के वैविध्य की दृष्टि से यशोधरा 'नूरजहां', 'हल्दीघाटी' 'जौहर' 'झांसी की रानी' आदि काव्य उल्लेखनीय हैं । इन काव्यों में मात्रिक तथा वर्णिक छन्दों के विविध रूप मिलते हैं । 'जौहर' में समानिका, हाकलि, चौपाई ताटंक मधुमालती आदि विविध छन्दों का प्रयोग भाव परिवर्तन के साथ साथ हुआ है ।[३] अन्य काव्यों के विषय में भी यही कहा जासकता है । 'नूरजहां' में ताटंक आदि के अतिरिक्त

१- प्रथम सर्ग, पृ० ५

२- मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ०४७

३- कवि ने ऐसे शब्दों को छांटा है और उन छंदों में ऐसे शब्द गुंथ गूंथ कर बिठाए हैं कि उन्हें पढ़ने मात्र से जान पड़ता है, मानो वे स्वयं युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़े जा रहे हैं । उनकी प्रबल वेगवती धारा में ऐसा जोश, उत्साह उल्लास और प्रवाह है कि दुर्बल मानव हृदय उसमें खड़ा नहीं रह सकता, वह भी बह पड़ता है। इन छंदों में सामरिक कोलाहल और संगीत का अद्भुत मिश्रण है।"-सीताराम चतुर्वेदी, विशाल भारत, नवम्बर, १९३९ (साहित्यसेवी और साहित्य चर्चा)

मानवीय छंद का भी प्रयोग हुआ है । यह छन्द मानव छंद की दो आवृत्तियों से बनता है तथा लयप्रवाही है ।उदाहरणतया-

बालों में श्याम घटाएं मानों में बिजली चमकी ।
है शोभा अजब निराली शैशव यौवन संगम की ।
गालों पर ऊषा आ आ लज्जा सी छिप-छिप जाती।
बालापन छूट चला है नहिं आता बहुत बुलाती[1] ।

`हल्दी घाटी` और `जौहर` तथा `झांसी की रानी` में राम, अद्भुत, विक्रम और विषम मात्रिक छंदों का प्रचुर प्रयोग हुआ है ।आधुनिक छायावादी कवियों के भाव इतने मिश्रित हो गए हैं कि कितने ही विरोधी रस एक ही साथ अभि-व्यक्ति चाहने लगे।ऐसी स्थिति में कवि ने भावों और रसों को एक ही उपयुक्त छंद में प्रस्तुत करने के लिए `मुक्तछंद` का निर्माण किया । निराला ने `जुही की कली` में सबसे पहले मुक्तछंद का प्रयोग किया था । इनकी `महाराज शिवाजी का पत्र`ऐतिहासिक कविता भी इसी छंद में लिखी हुई है । ऐतिहासिक काव्य में सियाराम शरण गुप्त ,जयशंकर प्रसाद, अनूप शर्मा,सोहनलाल द्विवेदी,मोहनलाल महतो वियोगी आदि कवियों ने मुक्त छंद के वर्णिक और मात्रिक दोनों रूपों का आकर्षक प्रयोग किया । सियाराम शरण गुप्त ने`बापू` में २३ वर्णों का वर्णिक मुक्त छंद प्रयुक्त किया ।उदाहरण के लिए-

सुप्त नगरी के प्रान्त भाग में,
उत्सुक खड़ी थी बड़ी जनता,
सारी रात निद्रा के विराग में,
जागृत किये थी अनुराग की मगनता।
छूट कर, काल निशा कारा से
मेघ जाल भेद कर प्रात रश्मि निकरी
श्यामोज्ज्वल शान्त दीप्तधारा से
श्यामल धरित्रि बना ! निखरी ।[2]

१- नूरजहां, सर्ग छठा

२- बापू,पृ० १३

`प्रसाद` की `पेशोला की प्रतिध्वनि` ,शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण, `प्रलय की छाया` मुक्त छंद में ही लिखी गयी है । मोहनलाल महतो `वियोगी` ने `आर्यावर्त` की रचना मुक्त छंद में की है । ठाकुर प्रसाद सिंह ने `महामानव` की रचना इसी प्रकार के बराबर बदलते हुए छंदों में की है । अन्त्यतुकान्त और अन्त्यतुकान्त दोनों प्रकार के मुक्त छंदों का प्रयोग इसमें भी हुआ है । अनूप शर्मा की `विराट संगम` सोहनलाल द्विवेदी की `महाभिनिष्क्रमण`[1] आदि कविताएं इसी छंद में निर्मित हैं ।

गीत-विन्यास ऐतिहासिकपात्रों की भावदशाओं का चित्रण करने वाले तथा वीरोल्लास सम्बन्धी गीत ऐतिहासिक गीतों की श्रेणी में परिगणित किए गये हैं ।[2] ये गीत भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखे गए । खड़ी बोली में तीन शैलियों में गीत प्राप्त होते हैं - पद गीत, ग़ज़ल गीत और प्रगीत ।

`कुणाल गीत` पद-गीत की शैली में लिखा हुआ है । पदगीतों में प्रथम चरण `स्थायी` होता है । इसके पश्चात् आने वाले अन्तरा के चरण स्थायी के अन्त्यानुप्रास पर भी होते हैं अथवा परस्पर सतुक होने चाहिए । `कुणाल गीत` से एक उद्धरण प्रस्तुत है जिसमें अन्तरा का अन्त्यानुप्रास भिन्न है । यथा-

सोच न कर तू मेरा
और , और क्या कहूं अभी । मैं,
अविरत अपलक देख रहा मैं
यह अरविन्दु-इन्दु-अभिनन्दित शील-भरा मुख तेरा।
सोच न कर तू मेरा ।[3]

ये गीत भिन्न भिन्न छन्दों में लिखे गए हैं ।

१- वासवदत्ता संग्रह से

२- ऐतिहासिक गीतों के सम्बन्ध में इस शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में उल्लेख किया गया है ।

३- गीत संख्या ३८

गज़ल गीत - उर्दू के प्रभाव से यह शैली हिन्दी साहित्य में प्रविष्ट हुई । खड़ी बोली में जयशंकर प्रसाद, बदरीनाथ भट्ट, श्रीधर पाठक आदि कवियों ने गज़ल गीत की शैली में अनेक गीतों की रचना की। ऐतिहासिक काव्य में लाला भगवानदीन ने 'वीर पंचरत्न' गज़ल गीत की शैली में ही लिखा है । इसमें उन्होंने गज़ल की लय का छन्द लिया है और उसमें लावनी में लिखे लोकगीतों की शैली का संयोग करके नवीनता उत्पन्न की है । लावनी में स्थायी के अनन्तर अन्तरा की चार पंक्तियाँ भिन्न तुकान्त होती हैं । पांचवीं पंक्ति स्थायी की स-तुकांत होती है और स्थायी की पूरी पंक्ति या उसके अंश का आवर्तन होता है ।'वीरपंचरत्न' से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

अकबर को उधर फिक्र थी इस बात की हरदम
'परताप' को किस भांति बना लीजिए हमदम
बेटी व बहिन ब्याह के रुत्बा न करे कम
इतना ही फक़त कह दे कि मातहत हुए हम
इस छोटे से सरदार को वश कर न सके शाह ।
धब्बा सा मेरी शान में लगाती है यह अफवाह ।[१]

'झांसी की रानी' रचना इसी शैली में लिखी गयी ।

छन्दों की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्य का विश्लेषण करने पर निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि छन्द-वैविध्य के साथ साथ ऐतिहासिक काव्यों में रसानुकूल छन्द प्रयोग की दृष्टि अपनाई गई। छन्दों की रसानुकूलता के कारण भाषाशैली में ओज तथा प्रवाह का समावेश हुआ । छायावादी तथा छायावादोत्तर ऐतिहासिक काव्य में तो छन्दों के द्वारा भावाभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ ।

१- वीर प्रताप, पृ० २३

(घ) भाषा :-

बीसवीं शताब्दी का प्रारंभिक काल काव्य के क्षेत्र में भाषा की दृष्टि से क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन का युग था । काव्य की भाषा के संबंध में पर्याप्त वाद-विवाद के उपरान्त ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गई थी । काव्योद्यान में अंकुरित हुए खड़ी-बोली के इस शिशु पादप का पालन-पोषण महावीर प्रसाद द्विवेदी के हाथों में आते ही काव्य की अभिव्यक्ति के इस माध्यम को एक नया रूप प्राप्त हुआ था । द्विवेदी जी ने इस नन्हे बिरवे का सिंचन करके इसे पोषित करने एवं सौन्दर्य प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किए । युग के चेतना-पूर्ण जागरूक कलाकारों ने उनके संकल्प का अभिनन्दन और स्वागत करते हुए अपनी वाणी को खड़ी बोली में मुखरित किया । ऐतिहासिक काव्य में इस नवीन माध्यम के सौन्दर्य का अवलोकन करना आवश्यक है ।

द्विवेदी युग इतिवृत्तात्मकता पूर्ण वर्णन प्रधान युग था । आख्यानक काव्य की धारा इस युग में विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई तथा उसमें भी ऐतिहासिक काव्य रचनाएं अधिक हैं[१] । `शिवाजी`, `रंग में भंग`, `मौर्य विजय` `महाराणा का महत्व`, प्रणवीर प्रताप`, विकटभट` `सती पद्मिनी`, आत्मार्पण,` गांधी गौरव`; वीरपंचरत्न` तथा `वीरहम्मीर` आदि काव्यग्रन्थों में एक ही समय में भाषा-विकास के विविध रूप उपलब्ध होते हैं । द्विवेदी जी के निर्देशन में प्रसाद गुण-सम्पन्न शुद्ध तथा सुबोध भाषा का प्रयोग हो रहा था अत: इस युग के कतिपय काव्य भाषा की दृष्टि से सुबोध सरल तथा शुद्ध खड़ी बोली में लिखे गये हैं । `रंग में भंग` `मौर्य विजय` आदि इसी कोटि में आएंगे । यद्यपि

१- द्वितीय उत्थान के आरम्भिक वर्षों की कविता वर्णनात्मक तथा आख्यानात्मक दोनों ही है । आख्यानात्मक कविता के अधिकांश विषय इतिहास से चुने गए हैं ।

-डा० केसरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, पृ०११९, १२०

भाषा का सरल रूप ही विकसित था तथापि प्रसाद जी की इस युग की आख्यानक कविताओं में माधुर्य तथा लालित्य दोनों का समावेश हो रहा था। इसी युग में रचित `महाराणा का महत्व` का भाषा सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। `कानन कुसुम` की ऐतिहासिक रचनाओं (शिल्प सौंदर्य भरत) की भाषा में सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति भी दर्शनीय है। द्विवेदी युग के ऐतिहासिक काव्यों में वस्तुत: भाषा की दो समानान्तर धाराएं प्राप्त होती हैं। पहली में भाषा का शुद्ध,सुबोध,भावानुकूल,व्याकरणसम्मत रूप दृष्टिगोचर होता है। दूसरी में शिथिलता भी है तथा ब्रजभाषा एवं उर्दू का रंग भी घुला हुआ है।[1] पहली में भाषा विन्यास के साथ ही विविध भाव सौन्दर्य की क्षमता भी विद्यमान थी (मौर्य विजय,महाराणा का महत्व`आदि) दूसरी में केवल भाषा विन्यास की दृष्टि ही प्रमुख थी।[2] (`वीरपंचरत्न`तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय,कामता प्रसाद गुरु आदि की ऐतिहासिक रचनाएं)। पहली धारा में मैथिलीशरण गुप्त ,सियाराम शरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद ,गोपाल शरण ठाकुर गोकुलचन्द्र शर्मा,रामचरित उपाध्याय आदि कवियों की ऐतिहासिक रचनाएं उल्लेखनीय हैं तथा दूसरी धारा में कामताप्रसाद गुरु ,लोचन प्रसाद पाण्डेय, लाला भगवान दीन ,सत्यनारायण कविरत्न आदि की ऐतिहासिक रचनाएं परिगणित की जायेंगी। ऐतिहासिक काव्य में भाषा के विकास के दर्शन मैथिली-शरण गुप्त ,सियाराम शरण गुप्त, रामकुमार वर्मा,आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव,

---

१- द्वितीय उत्थान के आरम्भिक वर्षों की खड़ी-बोली बहुत अव्यवस्थित है काव्यों में शिथिलता और ब्रजभाषा के रूप भी मिले जुले हैं।

-डा०केसरीनारायण शुक्ल,आधुनिक हिन्दी काव्यधारा,पृ० १४६

२- इस युग की हिन्दी कविता कला की दृष्टि से प्रयोगात्मक ही कही जा सकेगी कतिपय छोटे आख्यानों का कविता में वर्णन कर देना अथवा कोई उत्साहवर्द्धक गीत दे देना ही इस समय के काव्य का आरम्भिक रूप था। कविता कथात्मक या निबंधात्मक आकार में ही व्यक्त हो सकी।

-नन्ददुलारे वाजपेयी :आधुनिक साहित्य,पृ० १९

गुरुभक्त सिंह 'भक्त' आदि कवियों की शैली में होते हैं । छायावाद तथा छायावादोत्तर काल में आख्यान प्रधान ऐतिहासिक रचनाओं में खड़ी बोली सांकेतिकता, सूक्ष्म भावाभिव्यंजना तथा व्यंग्य आदि गुणों से पूर्ण होकर अपने सम्पूर्ण सौष्ठव के साथ प्रस्तुत हुई है । व्यंग्य प्रधान भाषा की दृष्टि से सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचना 'महाराज शिवाजी का पत्र' विशेष उल्लेखनीय है । यशोधरा के कवि के समक्ष तो मानों भाषा की कोई अड़चन ही नहीं है । वह मानिनी के वियोगपूर्ण हृदय में जिस किसी भाव को ग्रहण कराना चाहता है खड़ी बोली अपने सम्पूर्ण सौष्ठव सहित प्रस्तुत हुई है । द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी कवियों की शैली में अभिव्यंजना की दृष्टि से भाषा में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए थे ऐतिहासिक काव्यों में भी वह अपने सर्वोच्च रूप में उपलब्ध होते हैं । सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है छायावाद युग से पूर्व महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से भाषा का वह रूप भी स्थिर हो चुका था जिसमें 'मौर्य विजय' 'महाराणा का महत्व' जैसी उत्कृष्ट ऐतिहासिक कविताओं का निर्माण हो रहा था और वह रूप भी चल रहा था जिसमें उर्दू मिश्रित 'वीरपंचरत्न' आदि का निर्माण हो रहा था । [illegible] भाषा सौन्दर्य के विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों का विश्लेषण करना आवश्यक है ।

खड़ी बोली की प्रथम ऐतिहासिक कविताओं में अभिधापूर्ण अलंकारशून्य वर्णन शैली के ही दर्शन होते हैं । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यद्यपि यह शैली प्रभावपूर्ण नहीं समझी जाती तथापि ओज इस भाषा में भी दर्शनीय है ----

जीती जाती हुई जिन्होंने भारतबाजी
निज बल से मल मेट विधर्मी मुगल कुराजी
जिनके आगे ठहर सके जंगी न अराजी
जग में वही प्रसिद्ध छत्रपति भूप शिवाजी ।[1]

१-कामताप्रसाद गुरु, शिवाजी, सरस्वती, अक्टूबर १९०७

`चांद बीबी` में कवि युद्ध के वेष में रंजित चांद बीबी का चित्रण कर रहा है । भाषा में प्रवाह तथा गति है ।

तब कर में तलवार लिये बिजली-सी नंगी
पहने पूरा फिलम साज सब साजे जंगी ।
घूंघट डारे घटा-रूप सुलताना धायी,
गोलों की बरसात भीत में से मनबारी।[१]

`बिजली सी नंगी` और `घटा रूप` में कांति दर्शनीय है ।
`वीरपंचरत्न` की भाषा में वर्णन और प्रवाह एक साथ उपलब्ध हैं । `वीरप्रताप` के शब्दों में ओज स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत हुआ है । राणा प्रताप युद्ध के मैदान में अपने साथियों को उत्साहित करते हैं -

पैदा हुआ संसार में इक रोज़ मरेगा
मरना तो मुकद्दम है न टारे से टरेगा
फिर इससे भला मौक़ा भलो कौन पड़ेगा,
रजपूती की क्या गोट का पो रोज़ पड़ेगा ?
पांसे करो तलवार तकदीर है यारो !
रण-खेल मरद का है मरद शत्रु को मारो ।

इसी प्रकार लोचन प्रसाद पाण्डेय की खड़ी बोली की कविताओं में भी ब्रजभाषा के अनेक रूपों का प्रयोग हुआ है[२] । इन रचनाओं में ब्रजभाषा तथा उर्दू का मिश्रण स्पष्ट है । क्रियापद अधिकांशत: ब्रजभाषा के अपनाए गए हैं । `दीन` जी की भाषा में उर्दू शैली का पर्याप्त मिश्रण हुआ है । धायी, घूंघट धारे, आदि ब्रज भाषा के और मुकद्दम, मौका, रोज़, यारो, मरद आदि अनेक उर्दू के शब्दों का प्रयोग हुआ है । किन्तु भाषा में प्रवाह स्वाभाविकता तथा ओज इन रचनाओं की विशेषता है । कवि मैथिलीशरण गुप्त की परिष्कृत, सुबोध तथा स्पष्ट भाषा अनेक ऐतिहासिक काव्यकारों की भाषा का आदर्श हुई । उर्दू और ब्रजभाषा ।

१- सरस्वती, १६१२, अक्टूबर
२-पद्य पुष्पाञ्जलि संग्रह

मिश्रित खड़ी बोली के इसी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'रंग में भंग' प्रथम ऐतिहासिक खण्ड काव्य में निम्न भाषा का प्रयोग किया--

तोड़ने हूं क्या इसे नक़ली क़िला मैं मान के ?
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु मूर्ति को जड़ जान के ?
भ्रान्त जन उसको भले ही जड़ कहें अज्ञान से
देखते भगवान को धीमान उसमें ध्यान से
है न कुछ चित्तौर यह बूंदी इसे अब मानिए
मातृभूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिए ।

शब्दों में प्रभविष्णुता तथा ओज दर्शनीय है ।संस्कृतनिष्टता का आभास भी इनकी रचनाओं में मिलता है - यथा :

निदाघ ज्वाला से विचलित हुआ चातक अभी
भुलाने जाता था निज विमल वंश व्रत सभी
दिया पत्र द्वारा नव बल मुझे आज तुमने
सुसाक्षी है मेरे विदित कुलदेव ग्रहपति ।[१]

किन्तु भाषा कहीं भी दुर्बोध अथवा कठिन नहीं होने पाई है । 'मौर्य विजय' में इसी शैली का अनुकरण है ।

पूर्ण चन्द्र है उदित सुनील नभोमंडल में
चारु चन्द्रिका छिटक रही है वसुधातल में
विहग-गणों का बन्द हुआ है आना जाना
नहीं रुका है किन्तु पिकों का मधु बरसाना

सुबोधता तथा प्रसादता स्पष्ट है । ओज पूर्ण भाषा का एक और चित्र प्रस्तुत है ---

वीरों, सच्चा युद्ध वैरियों को दिखला दो,
आर्यों का बल वीर्य आज जग को दिखला दो ।
अपनी कीर्ति ध्वजा आज सब ओर उड़ा दो
मातृभूमि को विपज्जाल से शीघ्र छुड़ा दो ।[२]

१-'पृथ्वीराज का पत्र' सरस्वती, मार्च १९१२

२-'मौर्य विजय'

`प्रणवीर प्रताप` `गांधी गौरव` में गोकुलचन्द्र शर्मा ने भाषा का यही आदर्श अपनाया है । अलंकारों का अधिक प्रयोग नहीं है । कहीं-कहीं प्रतीकों तथा उत्प्रेक्षाओं द्वारा अर्थ और भाव ग्रहण कराया गया है ।[1] द्वारकाप्रसाद गुप्त के `आत्मार्पण` की भाषा उल्लेखनीय है । `आत्मार्पण` में चित्रमयता उपलब्ध होती है । चूड़ावन्त के निम्न शब्दों में युद्ध का चित्र प्रस्तुत हुआ है-

संभल ! मृत्यु तेरे समीप है !
विषयी बार हमारा रोक
देखा कल बादशाह के
सम्मुख की भाले की नोक।

`सती पद्मिनी` में पद्मिनी के सौन्दर्य वर्णन में कवि श्रीनाथ सिंह ने अलंकृत शैली का प्रयोग किया है । सम्पूर्ण काव्य में चित्रात्मकता है । प्रत्येक दृश्य मानो सजीव-सा हो उठा है । उपमा और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी लगी है —

मेघ घटा सी बढ़ती आती डोली की लख दिव्य छटा
खिलजी के उर में बिजली सी चमक उठी तम तोम हटा
हो प्रसन्न अपनी सीमा पर झट स्वागत करने आया
दृष्टि पद्मिनी के डोले पर सबने उसकी दृढ़ पाया

`झट स्वागत करने आया` में खिलजी की आतुरता दर्शनीय है ।

भाषा में गत्यात्मकता और प्रवाह भी सब है । युद्ध करते हुए गोरा बादल के बिजली से नाचने और भूखे सिंह की तरह टूटने में दृश्यात्मकता का चित्रण हुआ है यथा-

लगे नाचने बिजली से रण में दोनों गोरा बादल
जिन्हें देख क्षत्रिय वीरों का दूना बढ़ा धैर्य औ बल
भूखे सिंह की तरह वे सब तुर्कों के दल पर टूटे
हलचल चारों ओर मच गई यवनों के छक्के छूटे ।।

अभिधापूर्ण तथा प्रसाद गुण सम्पन्न इस भाषा के अतिरिक्त प्रसाद की रचनाओं

में लक्षणा व्यंजनापूर्ण शैलीमें प्रयुक्त हुई । `महाराणा का महत्व` उल्लेखनीय है। `महाराणा का महत्व` में एक मध्ययुगीन घटना का चित्रण हुआ है जिसमें वर्णन शैली के साथ-साथ सांकेतिकता तथा चित्रात्मक शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

तारा हीरक हार पहन कर चन्द्र मुख
दिखलाती, उतरी आती थी चांदनी
शाही महलों के सुन्दर मीनार से
जैसे कोई पूर्ण सुन्दरी प्रेमिका
मन्थर गति से उतर रही हो सौध से

कानन कुसुम की ऐतिहासिक कविताओं में भी प्रसाद जी की इसी शैली के दर्शन होते हैं । इस भाषा शैली ने द्विवेदी युगीन ऐतिहासिक काव्यों की शैली से भिन्न एक पृथक् दिशा का निर्माण किया था । आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव की `झंकार` और `शंखनाद` की ऐतिहासिक रचनाओं में भाषा का सौन्दर्य दर्शनीय है । भाषा सरल सुबोध है । कहीं-कहीं गूढ़ चिन्तन भी सरल भाषा में व्यक्त हुआ है । `चाणक्य और चन्द्रगुप्त` इस दृष्टि से उल्लेखनीय है । `नूरजहां` कविता की भाषा शैली में भाव प्रवणता तथा भावानुकूलता एक साथ मिलती है । सरल शब्दों में मनोभाव ग्रहण कराने कासौन्दर्य निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है ---

किन्तु सफलता थी वह मेरे हृदय की
मुझमें भी पति भक्ति नहीं कम आज भी
मन में उनकी स्मृति ज्वलन्त है अग्नि सी

\+ \+

वीर श्रेष्ठ थे वे , मुझको भी वीरता
धारण कर जीवित रहना था जगत में ।

शंखनाद संग्रह की `हमीर का हठ` कविता में भी ओज और प्रवाह पर्याप्त है ।

सन् १९२० के पश्चात् १९३५ तक `यशोधरा` `गुरुकुल` `वीर हमीर` `चित्तौड़ की चिता` `सिद्धराज` `कुणाल` `गीत` `तक्षशिला` तथा `नूरजहां` आदि ऐतिहासिक काव्य मुख्य हैं । `रंग में भंग` काव्य में जो शैली अपनाई गई है `अनघ` तथा `गुरुकुल` में लगभग उसी शैली की छाया स्पष्ट है किन्तु `यशोधरा` तथा `सिद्धराज` की भाषा

लक्षणा व्यंजनापूर्ण है । यशोधरा के गीतों और कुणाल के गीतों में विभिन्न मानवीय मनोवेगों का जो चित्रण उर्दू शैली में प्रस्तुत हुआ है वह भाषा शैली के विकास का सूचक है । संवेदना मानों भाषा में साकार हो गई है । पत्नी का प्रेम कुणाल के जीवन का आधार है यह भाव सरल किन्तु अलंकृत शैली में व्यक्त हुआ है --

सोच न कर तू मेरा
औरऔर क्या कहूं अहा ! मैं
अविरत अपलक देख रहा मैं -
यह अरविन्द इन्दु-अभिनन्दित शील भरा मुख तेरा ।

रामकुमार वर्मा की `वीर हमीर` और `चित्तौड़ की चिता` में भाषा के दो रूप उपलब्ध हैं । `वीर हमीर` अभिधात्मक इतिवृत्तात्मक वर्णन से पूर्ण है । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से `चित्तौड़ की चिता` महत्वपूर्ण है । भाषा में ध्वन्यात्मकता कष्ट तथा चित्रात्मकता एक साथ प्रस्तुत है --

काल की जीभों के सम लपक
लपट उठती थी चारों ओर
वायु जब देता था झकझोर
शब्द धू धू कर जाती धधक

किन्तु `यशोधरा` की भाषा में अर्थ सौष्ठव ,भावसम्पन्नता, चित्रात्मकता और भावों की तीव्रता सर्वत्र विद्यमान है । गुप्त जी की भाषा अलंकारों के बोझ से दबी नहीं रहती ।आवश्यकता अनुसार स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग होता है । `यशोधरा` की स्मृति में पूर्व संयोग का एक चित्र उभर रहा है । सिद्धार्थ और यशोधरा के निम्न वार्तालाप में शब्द श्लेष द्वारा अर्थ सौन्दर्य द्रष्टव्य है--

क्यों जी प्राण वल्लभ कहूं या तुम्हें स्वामी मैं
चौंक कुछ लज्जित से बोले हंस आर्य पुत्र
योगेश्वर क्यों न होऊं गोपेश्वर नामी मैं
किन्तु चिन्ता छोड़ो किसी अन्य का विचार करो
तो हूं चार पीछे, प्रिये पहले हं कामी ही मैं

उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' में संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है । इसी कारण कहीं-कहीं अर्थग्रहण में कठिनता भी होती है । भाव सौन्दर्य लुप्त-सा हो जाता है । सब मिलाकर समासपूर्ण शैली का अधिक आग्रह है । भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से गुरुभक्त सिंह का 'नूरजहां' विशेष उल्लेखनीय है ।[1] मैहर सी रही है सूर्य की किरणें उसके अंगों से अठखेलियां कर रही हैं। निम्न पंक्तियों में सुन्दर शब्द चित्र की योजना हुई है -

एक किरण उड़ते अंचल से आंख मिचौनी खेली
खुले हुए अंगों से उसके फिर करती अठखेली
एक ज़रा धीरे हां धीरे छू कर बदन जगाती
करवट के लेते ही छिप कर बालों में छिप जाती .
(पृ० ५६)

एक अन्य प्रसंग में भाषा की दृश्यात्मकता और गत्यात्मकता और कवि कल्पना एक साथ चित्रित हुई-- यथा :

एड़ी डूबी पिंडली डूबी घुटने डूबे जब पैर बढ़ा
फिर उसके भरे नितम्बों पर धीरेही धीरे सलिल चढ़ा
कटि से लहरों के किंकिण में बुदबुद के घुंघरू लटक गये
जल भंवरों के कितने ही दल यह कमल देख कर अटक गये
(पृ० ३६)

१-'मगर शुरू से अन्त तक नूरजहां हिन्दी में लिखी गई है । उसके वर्णन, उसकी कल्पना, उसकी भाषा, उसके चित्र बिल्कुल हिन्दुस्तानी हैं । ..... नूरजहां की भाषा सीधी है सरल है मुहावरेदार है और चोट करने वाली है । उसमें प्रवाह है ।'

-हजारीप्रसाद द्विवेदी, जनवरी १९३६, विशालभारत ।

`नूरजहां` काव्य में सर्वत्र इसी प्रकार की भाषा शैली का प्रयोग हुआ है ।[1] प्रकृति वर्णन तो शब्द चित्रों और गति चित्रों से भरपूर है । `फाड़ी से खरगोश निकल कर टुंग टुंग है तृण चरता` में भाषाकी ध्वन्यात्मकता स्पष्ट है । पद पद पर मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।पानी में आग लगाना ,नाच नचाना`आदि अनेक मुहावरों से भाव स्पष्ट होते हैं तथा वर्णन में संदिप्तता उत्पन्नहुई है । `नूरजहां` के विपरीत`विक्रमादित्य` की भाषा कुछ शिथिल है। प्रकृति और मानवीय राग विरागों के सूक्ष्म शब्दचित्र, ध्वन्यात्मकता, प्रवाहपूर्णता तथा दृश्यात्मकता की दृष्टि से`नूरजहां` का कवि `विक्रमादित्य` के कवि की अपेक्षा कहीं अधिक सफल है । विक्रमादित्य में कहीं-कहीं शब्द योजना और मुहावरों का प्रयोग अशोभनीय हो गया है ।पांचवें खण्ड में ध्रुवदेवी द्वारा प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति किसी चल चित्र की `साइड क्रियेशन` से अधिक प्रभाव उत्पन्न नहीं करती । आंख लड़ती रहे,नयन बाण चलते रहे आदि वाक्य एक साम्राज्ञी की गौरवगरिमा के उपयुक्त प्रतीत नहीं होते । इनकाव्य रचनाओं के उपरान्त सन् उन्नीस सौ पैंतीस से ऐतिहासिक काव्य क्षेत्र में प्रबन्ध काव्यों का एक युग आरम्भ होता है । १९३५ ई० से उन्नीस सौ साठ तक अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्यों तथा प्रबन्ध काव्यों की रचनाएं हुई ।`सिद्धार्थ`,हल्दी-घाटी`,`आर्यावर्त` और``महामानव``विक्रमादित्य`जननायक`,वर्द्धमान,` `तप्तगृह`,`झांसी की रानी`।इस बीच कतिपय खंडकाव्यों की भी रचनाएं हुई । `बापू` दुर्गावती(रामेश्वर शुक्ल)`कुणाल``बापू``कदम कदम बढ़ाए जा`ऐतिहासिक कथानक लेकर लिखे गये ।इन सभी ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों में भाषा शैली के अनेक स्तर मिलते हैं ।भाषा के विकास तथा सौन्दर्य की दृष्टि से प्रसाद की

१- हिन्दी भाषा के सच्चे और नैसर्गिक विकास के दर्शन`नेपाली` और गुरुभक्तसिंह`भक्त` की शैली में होते हैं इनकी रचनाओं में खड़ी बोली के मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।----- भाषा में प्रवाह ,प्रभाव और ओज है । --डा० केसरीनारायण शुक्ल,आधुनिक काव्यधारा,पृ०२५८

'लहर' संग्रह की आख्यानक कविताएं विशेष उल्लेखनीय हैं[१]। कल्पना, चित्रमयता तथा भावोत्कर्ष इस शैली के विशेष गुण हैं। प्रलय की छाया, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि आदि ऐतिहासिक कविताओं की व्यंजनापूर्ण भाषा शैली में जिस काव्यात्मक सौन्दर्य की उपलब्धि हुई है वह अनुपम है। 'प्रलय की छाया' में महारानी कमला के जिस अन्तर्द्वन्द्व का चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है उसमें उसकी कला का विकास सर्वोत्तम है।

थके हुए जीवन का एक सांकेतिक चित्र और फिर रूपगर्विता का एक व्यंजनापूर्ण चित्र निम्न पंक्तियों में दर्शनीय है ---

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में
और उस दिन तो, ...
निर्जन जलधि वेला राग मयी संध्या से--
सीखती थी सौरभ से- भरी रंग-रेलियां।
दूरागत वंशी रव --
गूंजता था धीवरों की छोटी छोटी नावों से
मेरे उस यौवन के मालती मुकुल में
रन्ध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को- हंसाने को।
पश्चिम जलधि में
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानों चूमने को मुझको
और सांस लेता था समीर मुझे छू कर।[२]

१- कल्पना, कला, मूर्तिमत्ता और भाषा का जैसा ऐश्वर्य इन कविताओं में दिखाई पड़ता है वह 'प्रसाद' के काव्य में भी अन्यत्र दुर्लभ है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' तो मुक्त छंद में लिखे गीत जान पड़ते हैं।
-डा० रामरतन भटनागर, प्रसाद का जीवन और साहित्य, पृ०६६

२- लहर, पृ० ६५

`शेरसिंह का शस्त्र समर्पण``पेशोला की प्रतिध्वनि`आदि में ऐसी ही सशक्त शैली प्रयुक्त हुई है ।अनूप शर्मा के`सिद्धार्थ` तथा`वर्द्धमान` में संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली उपलब्ध होती है ।शृंगार वर्णन में माधुर्य तथा लालित्यपूर्ण शब्दावली है तो गृहत्याग के समय ओज और करुणा का एक साथ संयोग हुआ है ।

माधुर्य   आ ही गया अधर पै मन श्वास हो के
                 हो ही गये सरस लोचन कामिनी के   (सर्ग सात, पृ०१०३)

माषा में ओज तथा मार्मिकता :-

ओज   दिगन्त कांपे हिल वायु भी उठा
                 कपोल डोला दहली वसुंधरा   (सर्ग १२,पृ०१८३)

और सिद्धार्थ की दोनों आंखों के बह चलने में ओज के तुरन्त उपरान्त करुणा-पूर्ण माषा शैली द्रष्टव्य है-

करुणापूर्ण   चला ज्यों ही ऐसा धक धक हुआ वक्ष उनका
                 बहीं दोनों आंखें बह चरण भी कंपित हुए ।
                                                  (सर्ग १२,पृ० १४३)

कहीं-कहीं क्लिष्टता के कारण भाव सौन्दर्य को आघात भी पहुंचा है ।अन्धकार पूर्ण रात्रि के समाप्त होने तथा सूर्य के उदित होने का चित्रण निम्न पंक्तियों में केवल पाण्डित्य प्रदर्शन का परिचायक है -

मुहूर्त में ही अरुणाग्रगामी चला
          समुल्ल -बन्धूक-प्रभा विदारता,
उठा महा रक्तिम कीर तुंड-सा
          सु दिग्वधु-कंकण सा तमिस्रहा ।
                              (सर्ग ४,पृ०५५)

कहीं-कहीं कुमार सिद्धार्थ की गरिमा तथा व्यक्तित्व के विरुद्ध असंगत शब्द चयन हुआ है --   इस प्रकार की भगवान भी
                 उचकते मचकते बकते हुए (सर्ग ४,पृ० ११०)

`वर्द्धमान` की भाषा `सिद्धार्थ` की भाषा की तुलना में किसी भी दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है । अलंकार प्रदर्शन उक्ति वैचित्र्य तथा चमत्कार, अधिक है । अनेक अप्रचलित शब्दों का प्रयोग कवि ने किया है । `त्रिशला` के सौंदर्य वर्णन में ललित शब्दावली प्रयुक्त हुई है किन्तु यहां भी कवि चमत्कारी ही अधिक है[1]। चमत्कारप्रियता के कारण ही भाषा की स्वाभाविकता प्राय: नष्ट हो गई है ।

ठाकुरप्रसाद सिंह के `महामानव` में व्यंजनापूर्ण, प्रवाहपूर्ण प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है । भूमिका में कवि ने स्वयं अपनी शैली को स्पष्ट करते हुए लिखा है.....

`मेरे कण्ठ में पिछला छाया युग, प्रगति युग सभी बोल सके हैं और मेरे विचार से आज के प्रबन्ध काव्य के लिये यही आवश्यक है ।..... मधुरता और करुणा के स्थल पर छायायुग के आंसू सिक्त आलम्बन और उत्कर्ष की जगह प्रगति युग का ओज स्पष्ट है । भरसक वातावरण उपस्थित कर देने का प्रयत्न मैं करता हूं, जिसके लिये सर्वांगपूर्ण चित्रों और ध्वनियों का होना आवश्यक है ।`

रघुवीरशरण मित्र के `जननायक` की भाषा द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मक शैली की कड़ियों में दीर्घ समय के पश्चात् एक अन्य कड़ी जोड़ती हुई प्रतीत होती है । अभिधापूर्ण निरलंकृत भाषा है किन्तु भावात्मक स्थलों पर भाषा करुणापूर्ण तथा उत्साहपूर्ण स्थलों पर ओजमय हो गयी है । गोपालशरण सिंह के `जगदालोक` तथा बापू सम्बन्धी अन्य काव्यों की भाषा सरल एवं सुबोध है । श्यामनारायण पाण्डेयके `हल्दी घाटी` और `जौहर` भाषा की

१- अनूप शर्मा इस चमत्कार वादी परम्परा को नहीं छोड़ सके... वर्द्धमान चमत्कार प्रधान हो गया.... इस काव्य में `कोश भाषा` का प्रयोग अधिकहुआहै ।

- डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, वर्द्धमान और द्विवेदीयुगीन काव्य परम्परा, अनूप शर्मा की कृतियां और कला से

दृष्टि से कुछ भिन्न से प्रतीत होते हैं। सरल तथा सुबोध भाषा में वर्णन और चित्रण की ऐसी सक्षमता कम ऐतिहासिक काव्यों में प्राप्त होती है। प्रसंगानुकूल शब्द-योजना ऐसी हुई है कि उस प्रवाह से अछूता रह जाना सम्भव नहीं।[1] ग्रीष्मकाल का एक शब्द चित्र प्रस्तुत है --

हर ओर नाचती दुपहरिया
मृग इधर उधर से डोल रहे
जन भिगो भिगो पट ओढ़ ओढ़
खग पी पी पंछे हाँफ रहे १

क्या यह भाषा हल्कापन और कृत्रिमता लिए हुए है?[2] इस प्रकार के शब्द चित्र एक नहीं, अनेक हैं। युद्ध वर्णन में ओजपूर्ण शैली की तुलना में कम काव्य 'जौहर' तथा 'हल्दी घाटी' की समता कर सकेंगे। 'जौहर' के करुण प्रसंगों में भाषा के द्वारा सूक्ष्म भाव ग्रहण की अपूर्वता निम्न पदों में उल्लेखनीय है.. 'जौहर' व्रत के लिए चिता तैयार है। इसके पूर्व महारावल रत्न सिंह तथा रानी पद्मिनी के क्षणिक मिलन के प्रसंग में मनोवेगों का सुन्दर भावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत हुआ है --

क्षण मुख निहारती पति का
क्षण मौन सोचती रानी
आँचल से पति के आँसू
क्षण मौन पोंछती रानी

क्षण भर नारीत्व जगा कर
पति के चरणों से भेंटा

१- सर्ग ६, पृ० १०४

२-'हल्दी घाटी' में एक हल्कापन है और कृत्रिम शैली का आधिक्य है। हल्दी घाटी में जो नाद सौंदर्य और प्रसाद गुण है वे कवि सम्मेलनों के श्रोताओं को क्षण भर को उद्दीप्त करने में सफल हैं पर वे बातों की राह मन में उतर कर ओज पैदा नहीं कर पाते वे श्रव्यानन्द के अधिक उपयुक्त हैं पाठ्यानन्द के कम' --डा० श्यामनन्दन किशोर, आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० १६८

दाण भर उन मृदुल पदों को
कानों में कुछ कहता[1]

एक ओर ऐसा उदात्तपूर्ण मार्मिक चित्रण है तो दूसरी ओर ओजपूर्ण भाषा भी दर्शनीय है -

गढ़ के पाषाणों में भी
गा जैसे कि एक सम्बल है।
फिर क्यों न भिनक्ता हुआ भी
बापा रावल का दल है

धिक्कार तुम्हारे दल को।
धिक्कार जवानी को है
और गरज रहा मौके पर
धिक्कार जवानी को है[2]

एक ही छन्द में एक ही शब्द को दो बार साथ-साथ प्रस्तुत करने से भाषा में बल उत्पन्न होता है साथ ही प्रवाह पूर्णता भी आई है। इस प्रकार से अनेक शब्द युग्मों की योजना हुई है --

सर-सर सन-सन शिरक-शिरक सनसना
झनझना ताजे ताजे कण-कण उलझ-उलझ
फुर फुर छुर छुर।

काव्य केप्रत्येक पृष्ठ पर इस प्रकार के शब्द युग्मों की योजना देखी जा सकती है। सम्पूर्ण काव्य में तुक का विशेष ध्यान रखा गया है। कहीं पहली और तीसरी पंक्ति तथा दूसरी और चौथी पंक्ति में तुकान्त है। कहीं-कहीं पहली और तीसरी पंक्ति में तुक नहीं आ पाया है किन्तु दूसरी और चौथी पंक्ति में बराबर तुकान्त है। यथा-

---

१- सोलहवीं चिनगारी, पृ०१६८
२- सातवीं चिनगारी, पृ० ६५

रण के छिन छिन हुंकारों से
भीषण धनु टंकारों से
कोलाहल मच गया भयंकर
पैदलों - असवारों से [1]

इसी प्रकार—घोर विपिन में पहुंच गये
बालकता के बन्धन तोड़े।
सिंहक जावों के पाले
अपने अपने घोड़े छोड़े [2]

कहीं पूरा छन्द तुकान्त है , जैसे--

इधर देश का अत्याचार
सुन कर जन की करुण-पुकार
रोक शत्रु के आक्रमण-वार
बैठक पर भी सिंह सवार [3]

दूसरी और चौथी पंक्ति में तुकान्त का निर्वाह सर्वाधिक हुआ है।

शब्द युग्म के अतिरिक्त एक ही शब्द एक ही अर्थ में एक छन्द में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है -

केसर सी निर्भय हुए लाल
फूले पलास के फूल लाल
शुभ मां बैरी-सिर काट काट
कर दी शोणित से भूमि लाल

१- हल्दी घाटी, सर्ग प्रथम
२- वही , सर्ग प्रथम
३- वही ,सर्ग तृतीय

भावानुसार शैली, छन्द, तथा तुक आदि सभी का परिवर्तन हुआ है और यही कारण है कि शैलीगत सौन्दर्य काव्य के प्रत्येक पृष्ठ पर ध्यान आकर्षित करता है ।

'जौहर' तथा श्यामनारायण पाण्डेय की 'झाँसी की रानी' काव्य का निर्माण 'हल्दीघाटी' की शैली पर ही हुआ है । शैली और छन्द की दृष्टि से 'हल्दीघाटी' की जिन विशिष्टताओं का उल्लेख ऊपर हुआ है वे 'झाँसी की रानी' 'जौहर' में भी उपलब्ध हैं । 'प्रभात' का 'तप्तगृह' शैली की दृष्टि से अपने ढंग का अनूठा काव्य है । सम्पूर्ण काव्य मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । मानवीय मनोविकारों का सुबोध तथा प्रतीकात्मक सांकेतिक भाषा में ऐसा सुन्दर चित्रण कदाचित् ही काव्य की सम्पत्ति है। मोहनलाल महतो 'वियोगी' के 'आर्यावर्त' में भी राष्ट्रीय भावना के अनुकूल ओजपूर्ण सशक्त चित्रात्मक भाषा प्रयुक्त हुई है । चन्दबरदाई पृथ्वीराज तथा भारतेश्वरी संयोगिता के कथनों में ओज के दर्शन होते हैं । भाषा शैली के प्रभाव से अन्त तक राष्ट्र प्रेम पूर्ण भावना का एक उत्तेजित वातावरण व्याप्त रहता है । अर्थ ग्रहण कराने और भाव समझाने के लिए कवि ने अनेक उत्प्रेक्षाओं और उपमाओं का प्रयोग किया है[1] । स्वातन्त्र्यकालीन ऐतिहासिक काव्यों के भाषागत सौन्दर्य को देखने के पश्चात् सामान्य रूप से कुछ बातें स्पष्ट होती हैं --- प्रथम तो अधिकांश काव्यों की भाषा ओजपूर्ण तथा चित्रात्मक है । युद्ध के वर्णनों में जहां एक ओर कठोर शब्दों की योजना हुई है वहां प्रेम तथा करुणापूर्ण स्थलों पर माधुर्य गुण से ओत प्रोत ललित पदावली दर्शनीय है । द्विवेदी युग में प्रायः अभिधा पूर्ण शैली में आख्यान को पद्यबद्ध करने का भाव ही प्रमुख है किन्तु ऐतिहासिक काव्यों की भाषा का प्रधान गुण ओज इन रचनाओं में भी उपलब्ध होता है । उन्नीस सौ बीस

१- उत्प्रेक्षाओं के सौन्दर्य का चित्रण अलंकारगत सौन्दर्य भाग में किया जा चुका है ।

के उपरान्त की ऐतिहासिक रचनाओं के वर्णन प्रसंगों में जहां अभिधा-पूर्ण भाषा विशेष उल्लेखनीय है वहां छायावाद की लक्षणा-व्यंजना प्रधान शैली का सफल प्रयोग भी मिलता है ।

उन्नीस सौ बीस के पश्चात् ऐतिहासिक काव्यों में शैली कीदृष्टि से उत्तरोत्तर प्रौढ़ता प्राप्त होती है ।`यशोधरा` `सिद्धार्थ` `आर्यावर्त` `महामानव` `नन्दागुरु`और `जगदालोक` आदि काव्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । छायावादी युग में तथा प्रगति और प्रयोग के आवेशपूर्ण क्रान्ति - कारी युग में एक संतुलित शैली और साथ ही युगशैलियों की छाया भी लेकर चलने वाले ऐतिहासिक काव्यों का भाषागत सौन्दर्य है ।

छायावाद की अभिव्यंजनापूर्ण शैली के सौन्दर्य के साथ ही प्रगति तथा प्रयोग की आवेशपूर्ण क्रान्तिकारी भाषा शैली की अपेक्षा इस युग के ऐतिहासिक काव्यों में एक सन्तुलित भाषा के प्रयोग की दृष्टि अतुल्य है । इस प्रकार ऐतिहासिक काव्य भाषा के विकास तथा सौन्दर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं

इस प्रकार कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से ऐतिहासिक सन्दर्भ गत रचनाओं का मूल्य किसी भी दृष्टि से कम नहीं है । सरस,सुन्दर भाषाशैली में निर्मित ये रचनाएं रस,अलंकार तथा छन्दों के विविध प्रयोग की दृष्टि से खड़ी बोली के काव्य में महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारी है ।



अष्टम अध्याय

ऐतिहासिक सन्दर्भों का सांस्कृतिक मूल्यांकन

(क) संस्कृति से तात्पर्य (मूलतत्व)

'संस्कृति' शब्द का अर्थ तथा भारतीय संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त ही व्यापक है। संस्कृति की व्यापकता के सम्बन्ध में अनेक विद्वान् लेखकों एवं विचारकों की विभिन्न दृष्टियां रही हैं। सभी ने अपने अपने दृष्टिकोणों का प्रतिपादन करते हुए वैदिक संस्कृति की विचारधारा के आलोक में ही भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों को देखा तथा विशद व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। यद्यपि भारतीय संस्कृति सदैव गतिशील एवं विकासोन्मुख रही है तथापि कुछ मूल तत्व ऐसे भी हैं जो शाश्वत् हैं तथा जिनके आधार पर ही भारतीय सांस्कृतिक जीवन की सम्पूर्ण विशेषताओं की धारणा होती आई है। आधुनिक युग तक भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिकता तथा भौतिकता के सम्बन्ध में जो व्याख्याएं प्रस्तुत हुईं उन सभी धारणाओं में वैदिक संस्कृति के ही मूल तत्वों की प्रतिष्ठा हुई है। किसी ने धर्म, दर्शन, तथा साहित्य आदि को संस्कृति के व्यापक क्षेत्र में समाविष्ट किया है तथा कुछ धार्मिक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए धार्मिक संप्रदायों को ही भारतीय संस्कृति का स्वरूप समझते हैं। कहीं मानव-व्यक्तित्व को आधार मान कर संस्कृति के अन्तर्गत मुख्यत: उसबोध,उन संवेदनाओं एवं नैतिक मनोवैज्ञानिक प्रेरणाओं का समावेश हुआ है जो व्यक्तित्व के गुणात्मक स्तर और उसकी क्रियाओं का निर्धारण करती है।[१] कहीं जीवन के उच्च आदर्श संस्कृति के प्रधान अंग माने गए हैं। वस्तुत: भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में एक शब्द अथवा एक वाक्य में कुछ भी कह सकना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। भारतीय संस्कृति विष्णु भगवान् के उस विराट् रूप की भांति है जो अपने अनेक रूपों में भी एक रूप है तथा उसी एक रूप में वे अनेक रूप समाविष्ट हैं। किसी देश की सांस्कृतिक धारा को समझने के लिए केवल उस देश के धर्म सम्प्रदायों अथवा साहित्य शास्त्रों का अवलोकन करना ही पर्याप्त नहीं होता वरन् उस देश के जीवन की सम्पूर्णता की अभिव्यंजना करने वाले उन मूल तत्वों से परिचित होना भी आवश्यक है, जो धर्म ,दर्शन, आध्यात्म, साहित्य,इतिहास कला आदि अनेक धाराओं में अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री के द्वारा की गई व्याख्या से

१- डा० देवराज ,भारतीय संस्कृति, पृ० १६२

सहमत होते हुए उन्हीं के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि-

'किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्व् आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए। समस्त सामाजिक जीवन का परमोत्कर्ष संस्कृति में ही होता है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति द्वारा ही मापा जाता है। उसके द्वारा ही समाज को सुसंघटित किया जाता है। इसीलिए संस्कृति के आधार पर भी विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है।[१]'

कतिपय तत्व ऐसे हैं जो भारतीय संस्कृति की इस व्यापक भावना के मूल में सदैव कार्य करते रहे हैं। विश्व के निर्माण में भौतिक तत्वों का हाथ रहता है किन्तु भारत के प्राचीन तत्व वेत्ताओं ने जीवन की अखण्ड साधना तथा तपस्या के आधार पर ऐसे तत्वों के दर्शन किए थे जिन पर यह भौतिक विश्व आधारित है। इन्हीं तत्वों के आधार पर उन ऋषि मुनियों ने भारतीय जीवन के भव्य भवन को खड़ा किया था। वे तत्व हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। ये पाँचों तत्व आत्मा के विकास के सोपान हैं। भावी युगों में इनका विकास होता गया तथा सारगर्भित व्याख्याएं की गयीं।

मनुष्य के जीवन में करुणा, दया, उपकार आदि जितने भी कोमल एवं आदर्श भाव हैं उन सब का मूल आधार अहिंसा है। हम जीवित रहें, दूसरों को भी जीवित रहने दें तथा आवश्यकता पड़ने पर दूसरों के जीवन के लिए कष्ट भी सहन करने पड़े तो सहें - यह अहिंसा है, किन्तु अहिंसा का अर्थ केवल हत्या से दूर रहना ही नहीं है वरन् मानव जीवन के लिए अनेक कल्याणकारी भावनाओं में इसका विकास हुआ है।

सत्य आत्म तत्व का ही शुद्ध रूप है। आत्मतत्व को जितनी निकटता से देखा जाता है अहंकार उतना ही मनुष्य से दूर हटता हुआ प्रतीत होता है। अहंकार नष्ट होने पर मनुष्य परस्पर प्रेम भाव से रहना सीखता है और यह पार-

---

१- भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० ४

स्परिक प्रेमभाव की विकसित होकर विश्वबन्धुत्व की भावना को जन्म देता है । इसी प्रकार दार्शनिकों ने भी मनुष्य के जीवन के प्रेरक जो भी नैतिक आदर्श हैं उन सब का आधार सत्य को माना है ।

विश्व का आधार मूल तत्व स्तेय नहीं, अस्तेय है । अस्तेय की व्याख्या भी अत्यन्त विस्तृत रूप में प्राप्त होती है । अपने शाब्दिक अर्थ में स्तेय अथवा अस्तेय अपने महत्व की जो घोषणा करते हैं, मानव जीवन के लिए वह महत्व अधिक विस्तृत रूप में स्वीकार किया गया है ।

`छुद्र से महान् होने के लिए, विषयों के छोटे-छोटे रूपों में से निकल कर, आत्म तत्व के विराट् रूप में अपने को अनुभव करने के लिए चल पड़ना 'ब्रह्मचर्य' है ।`[१]

'भोग' और 'त्याग' के समन्वय से पूर्ण भारतीय संस्कृति की यह घोषणा है कि विश्व के समस्त सुख ऐश्वर्य अर्थात् भोग त्यागने के लिए हैं । यदि जन्म और भोग यथार्थ हैं तो यह भी निश्चित है कि एक दिन इस जन्म को तथा संसार के समस्त ऐश्वर्य को भी छोड़ना पड़ेगा । अत: निर्लिप्त होकर संसार के सुख भोगने से मनुष्य की आत्मा का विकास होता है, इसी का दूसरा नाम अपरिग्रह है ।

संक्षेप में यहां भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि केवल यही पांच तत्व भारतीय संस्कृति की सीमा निर्धारित करते हों ऐसी बात नहीं वरन् इन मूल तत्वों से ही मानव जीवन की अनेक उदात्त भावनाओं का विकास हुआ है । यह सत्य है कि नींव ही भवन नहीं है किन्तु यह भी सत्य है कि नींव के ही ऊपर विशालकाय भवन का निर्माण होता है । यही बात संस्कृति के इन पांच मूल सिद्धान्तों के विषय में भी कही जा सकती है । दया, ममता, करुणा, परोपकार, जनकल्याण, उदारता, दान, आत्मविश्वास, समष्टि-

---

१- सत्यव्रतसिद्धान्तालंकार, आर्य संस्कृति के मूल तत्व, पृ० २३४

गत सहिष्णुता, विश्व कल्याण, विश्वबन्धुत्व आदि मानवीय उदात्त प्रवृत्तियाँ के मूल में भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त ही प्रेरक रूप में कार्य करते हैं। इन सिद्धान्तों के आधार पर ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों का सांस्कृतिक मूल्यांकन करने से पूर्व आधुनिक भारत की सांस्कृतिक पीठिका पर विचार करना आवश्यक है।

(ख) सांस्कृतिक पीठिका (प्राचीन समय से आधुनिक युग तक)

इतिहास साक्षी है कि भारत में अनेक विदेशी जातियों का आगमन हुआ। यूनानी, शक, हूण, कुशान, पठान मुगल पुर्तगाली फ्रान्सीसी तथा अंग्रेज आदि। इनमें से अनेक जातियों ने हमारी संस्कृति को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया तथा अनेक जातियां बस कर भारतीय संस्कृति में ही घुल मिल गई। इस्लाम से पूर्व हमारे सांस्कृतिक जीवन को किसी जाति ने ध्वंसात्मक रूप में प्रभावित नहीं किया था। आक्रमणकारियों का उद्देश्य केवल लूट-पाट तक ही सीमित रहता था। सामाजिक जीवन की किसी भी धारा में कोई विशेष अन्तर नहीं आता था। अकबर से पूर्व भारतीय संस्कृति के बाह्य रूप ने विदेशी संस्कृतियों से प्रभावित हो कर अपनी रूप सज्जा में वृद्धि ही की, परन्तु अकबर भारतीय संस्कृति के अन्तरंग को भी जाने अनजाने प्रभावित कर रहा था। वह एक महान् कूट नीतिज्ञ था। हिन्दू राजाओं को विजित करने के साथ ही वह उनके धर्म, कर्म तथा सांस्कृतिक जीवन को भी बदलना चाहता था। उसने दीन-इलाही पंथ की जो स्थापना की वह भारतीय जन-जीवन के लिए कल्याणकारी नहीं थी। किन्तु उसके आतंक से भयभीत न होने वाले, भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक महाराणा प्रताप के रहते हुए अकबर का वह सजीला स्वप्न साकार न हो सका। औरंगजेब के समय में भी भारतीय संस्कृति पर अनेक कुठाराघात हुए। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो हिन्दू जाति का सर्वनाश ही हो जाएगा परन्तु इस युग में भी दक्षिण में महाराज शिवाजी तथा पंजाब में सिक्ख गुरु भारतीय जन-जीवन को संबल प्रदान करते रहे। अनेक मुसलमान संत कवियों ने भारतीय संस्कृति का ही गुनगान किया। कबीर, रहीम, रसखान आदि तो हिन्दी भाषा और हिन्दुओं के ही संत बन कर हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार अंग्रेजों के आगमन से पूर्व तक समन्वयात्मक असाम्प्रदायिक

तथा प्रगतिशील भारतीय संस्कृति, कुछ देती और कुछ लेती, अपना अस्तित्व बनाए हुए थी किन्तु अंग्रेजों का शासन काल भारतीय संस्कृति के लिए एक गहरा आघात सिद्ध हुआ । यद्यपि इन्हीं के शासन काल में भारत में आधुनिक वैज्ञानिक जीवन का सूत्रपात हुआ, आधुनिक जीवन की अनेक सुविधाएं उपलब्ध हुई, आधुनिक प्रगति का पदार्पण भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हुआ, पाश्चात्य प्रभाव के ही कारण हमारी विस्मृत चेतना गतिशील हुई तथापि उनका प्रवेश भारतीय जन-जीवन में केवल भौतिकवादी प्रगति तक ही सीमित नहीं रहा । राजनीतिक रूप में गुलाम बनाने के पश्चात् उन्होंने मानसिक दासता के विष का संचरण करना भी आरम्भ किया। अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय जन-मन में भारतीय संस्कृति के प्रति उपेक्षा के भाव उत्पन्न करके विदेशी शासक भारत को इंग्लैंड बनाने का स्वप्न देखने लगे । हिन्दू धर्म के रूढ़िगत पक्षों की आलोचनाएं करके बुद्धि तथा वैभव के बल पर उन्होंने भारतीय जनता को ईसाइयत के रंग में रंगने का पूर्ण प्रयत्न किया। यह सत्य है कि आरम्भ में उनका यह प्रभाव अंग्रेजी पढ़े लिखे उच्च वर्ग तक ही सीमित रहा था और वह भी विशेषतया बंगाल में, परन्तु उनकी कूटनीति का विष सम्पूर्ण भारतीय जन-जीवन तक फैलते हुए देर न लगती यदि इस ओर भारत का जागृत वर्ग ठोस कदम न उठाता । जहां एक ओर पाश्चात्य प्रभाव अनिष्टकारी सिद्ध हो रहा था वहां भारतीय नवयुवकों के समक्ष इसी के प्रभाव से स्वाभिमान, आत्मविश्वास, जाति, समाज, राष्ट्र तथा देश प्रेम आदि की नव-चेतना कुछ अधिक स्पष्ट रूप में उभरने लगी थी[1] । यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि परोक्ष रूप में जाने या अनजाने स्वयं अंग्रेज जाति ही हमें हमारे विस्मृत रूप से परिचित कराकर अतीत गौरव की ओर प्रेरित कर रही थी । ऐसे ही समय

---

1. .... So education grew slowly and, though it was a a limited and perverted education, it opened the doors and windows of the mind to new ideas and dynamic thoughts.
Jawahar Lal Nehru, The Discovery of India
Page - 313.

में भारत के कुछ जागृत नवयुवक अपनी संस्कृति की रक्षा में प्राण प्रण से लग गए तथा राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द,स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरूषों ने सांस्कृतिक जागरण के प्रतिनिधि बन कर समाज में प्रवेश किया । इस प्रकार भारतीय संस्कृति,विशेषत: उसके धर्म एवं दर्शन के पुनर्जागरण का काल आरम्भ हुआ । गुजरात तथा बंगाल में अंग्रेजों का प्रभाव सर्वाधिक था अत: इन्हीं प्रान्तों में पहले पहल धार्मिक -सांस्कृतिक आन्दोलनों का रूप दृष्टिगोचर हुआ ।

(ग) आलोच्यकाल तथा उससे पूर्व के सांस्कृतिक -धार्मिक आन्दोलन :-

(१) राजाराममोहन राय - सन् १८२८ में राजा राममोहन राय ने कलकत्ते में ब्रह्म-समाज की स्थापना की । इनकी शिक्षा इंगलैंड में हुई थी अत: पाश्चात्य प्रभावों से प्रेरित होकर इन्होंने समाज सुधार के साथ-साथ भारतीय धर्म को अन्धविश्वासों से मुक्त करने का प्रयत्न किया । हिन्दू धर्म को नया बौद्धिक तथा आध्यात्मिक परिवेश दिया,किन्तु मूल प्रेरणा इन्होंने वेदान्त एवं उपनिषदों से ही ग्रहण की थी । ये समाज-सुधार के अग्रदूत बने ।[१] जाति भेद, छुआछूत , बहु-विवाह, सती-प्रथा,मूर्ति पूजा, पशुबलि आदि आदि अन्धविश्वासों एवं मिथ्याचारों का विरोध करके सामाजिक जागरूकता की ओर ठोस कदम उठाए गये । बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना द्वारा वस्तुत: एक नवीन युग का ही शिलान्यास हुआ । यह कहना अनुचित न होगा कि भविष्य में इसी ब्रह्म समाज ने बंगाल को ईसाई धर्म का ग्रास होने से बचाया । महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर पर ब्रह्म समाज

---

1. He was more than a scholar and an investigator; he was a reformer above all. Influenced in his early days by Islam and later, to some extent, by Christianity, he struck nevertheless to the foundations of his own faith. But he tried to reform that faith and rid it of abuses and the evil practices that had become associated with it. It was largely because of his agitation for the abolition of Sutee that the British Government prohibited it.
Jawahar Lal Nehru, Discovery of India - Page - 315, 316.

का बड़ा गहरा प्रभाव हुआ। परोक्ष रूप में इनकी रचनाएं भी ब्रह्म समाज की चिन्ता-धारा से प्रभावित हुई हैं।

(२) स्वामी दयानन्द — सन् १८७५ में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। राजा राममोहन राय का प्रभाव अधिकांशत: बंग प्रदेश तक ही सीमित रहा था तथा उससे समाज का उच्च वर्ग ही चेतना शील हो सका था परन्तु स्वामी दयानन्द ने सम्पूर्ण उत्तरापथ को प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति तथा वेदों का गहन अध्ययन कर लेने पर इन्होंने वैदिक धर्म को पुन: जीवित करने का बीड़ा उठाया। वेद इनकी मूल प्रेरणा थे। पुराणों तथा स्मृतियों आदि ने वैदिक धर्म के मूल तत्वों को विकृत कर दिया था। स्वामी दयानन्द ने पुन: उनके सत्य अर्थ को ग्रहण करते हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की। आर्य समाज के द्वारा सामाजिक अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों का उन्मूलन करने का प्रयत्न किया गया। महत्वपूर्ण बात यह है कि सर्व प्रथम आधुनिक युग में स्वामी दयानन्द ने ही जातीयता की भावना का उद्बोधन किया। स्वराज्य, स्वदेश, तथा स्वदेश-भक्ति की भावना की ओर प्रेरित किया[१]। हिन्दू धर्म संकुचित प्रवृत्ति के गहरे गर्त में गिरता जा रहा था। असंख्य हिन्दू नित्य मुसलमान तथा ईसाई बन रहे थे। स्वामी दयानन्द ने हिन्दुत्व की रक्षा की तथा हिन्दू समाज के एक बहुत बड़े अंश को मुसलमान तथा ईसाई होने से बचाया। सम्भवत: इसलाम का विरोधी होने के कारण ही नेहरू जी

१- कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।

-स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश ।

ने इसे इस्लाम के विरोध में प्रतिक्रिया माना है[1]। स्वामी दयानन्द ने भारतीय संस्कृति के प्रति भारतीय जनता को जागरूक करके एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

(3) स्वामी विवेकानन्द - उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति के वेदान्त दर्शन की नव प्रतिष्ठा करके भारतीय समाज के नवयुवक वर्ग को और अधिक जाग्रत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वेदान्त के अद्वैत दर्शन को व्यावहारिक जीवन के लिए उपयुक्त बतला कर उसका प्रचार और प्रसार भारत में ही नहीं, विदेशों में भी किया। यही प्रथम भारतीय नवयुवक साधु थे जिन्होंने पाश्चात्य देशों में हिन्दू धर्म के महत्व की घोषणा करते हुए भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। विदेशियों को हिन्दू धर्म के महत्व से अवगत कराया। भारत के विचारशील बुद्धिवादी वर्ग पर सर्वाधिक प्रभाव स्वामी विवेकानन्द का हुआ। हिन्दू धर्म से निराश तथा विमुख होते हुए भारतीयों के हृदयों में अपने धर्म के प्रति विश्वास तथा आदर का भाव उत्पन्न किया।

(4) महात्मा गांधी - राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक एवं धार्मिक प्रवर्तक थे। बीसवीं शताब्दी में भारतीय रंगमंच पर महात्मा गांधी के रूप में एक ऐसे महापुरुष का

---

1. The Arya Samaj was a reaction to the influence of Islam and Christianity, more especially the former. It was a crusading and reforming movement from within, as well as a defensive organization for protection against external attacks. .. It is significant that it spread chiefly among the middle-class Hindus of the Punjab and the United Provinces.
Jawahar Lal Nehru, The Discovery of India - Page - 337.

आगमन हुआ जिसका जन्म राजनीति में हुआ था किन्तु जिसने धर्म और राजनीति को एक नई दिशा देकर भारत को ही नहीं, विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया । हजारों वर्षों उपरान्त बुद्ध के पश्चात् एक बार पुन: भारतीय संस्कृति के शाश्वत् सिद्धान्तों को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करके उनमें प्राण प्रतिष्ठा की । इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोच्यकाल में देश में सांस्कृतिक जागरण की एक ऐसी लहर चल रही थी जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा था । समाज में सांस्कृतिक चेतना के अभ्युदय का जो कार्य राजा राममोहन राय ,स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द ने किया था एवं महात्मा गांधी जिस जागरण के लिए प्राणप्रण से लगे थे, साहित्य में वही कार्य खड़ी बोली के कविवर्ग ने किया ।कवि कलाकार है । उसके उपदेश,उसकी दार्शनिक विचारधारा, जीवन के प्रति उच्चादर्शों की उसकी मान्यताएं, उसकी कला के द्वारा व्यंजित होती हैं । अत: आधुनिक खड़ी बोली के ऐतिहासिक काव्य प्रणेताओं ने ऐतिहासिक काव्य में भारतीय संस्कृति के उन उच्च आदर्शों की स्थापना की, जिनकी अभिव्यक्ति इतिहास के अनेक संदर्भों द्वारा हुई ।

(घ) खड़ी बोली के ऐतिहासिक ~~काव्य~~ संदर्भ- सांस्कृतिक मूल्य :-

यह एक शाश्वत सत्य है कि समय-समय पर प्रत्येक देश एवं प्रत्येक जाति में ऐसे व्यक्ति प्रकट होते रहते हैं जिनका जीवन उस देश के उच्च सांस्कृतिक जीवन का प्रतीक होता है । जिनके जीवन की आधार शिला देश की संस्कृति से निर्मित होती है । वे अपने महान् कार्यों द्वारा अपनी जाति के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करते हैं अपनी संस्कृति को संबल प्रदान करते हैं । भारत में भी समय-समय पर ऐसे अनेक ऐतिहासिक व्यक्ति हुए जिनके जीवन को भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों ने अत्यन्त प्रभावित किया । भारतीय इतिहास में हिन्दू जाति के उत्कर्ष एवं अपकर्ष के अनेक दिन आए । जाति के इतिहास में गम्भीर उथल पुथल हुई । ऐसा समय भी आया जब हम इतिहास के पन्नों में मिटते से दिखाई दिए किन्तु हमारी संस्कृति राख में दबी चिनगारी की भांति अपना अस्तित्व बनाए रही तथा उन महान् आत्माओं के द्वारा उसे स्पन्दन प्राप्त होता रहा । जाति इनके जीवन से प्रभावित

होती रही । बौद्ध काल से लेकर आधुनिक युग में आलोच्यकाल तक अनेक महान् आत्माओं ने भारत का सांस्कृतिक जीवन पुष्ट किया ।

पांचवीं-छठीं शताब्दी ई०पू० भारत के सांस्कृतिक जीवन के उच्च आदर्शों से विमुख भारतीयों को पुन: सत्पथ पर लाने वाले भगवान बुद्ध हैं । भगवान बुद्ध के समय में वैदिक धर्म कर्मकाण्ड तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों से पूर्ण हो गया था । अहिंसा और सत्य के मूल मंत्रों को विस्मृत करके तत्कालीन हिन्दू राजा पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष में लिप्त थे । यज्ञों के विधान में सैकड़ों निरीह पशुओं की हत्या नित्य प्रति की जाती थी । ऐसे पतनोन्मुख समाज में भगवान बुद्ध अवतरित हुए । साधना-पूर्ण तपस्वी जीवन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बौद्ध धर्म की स्थापना की । 'सिद्धार्थ' काव्य में चित्रित गौतम के जीवनादर्शों में भारतीय संस्कृति की मूल प्रेरणा है । बुद्ध के अहिंसा[1], मानव प्रेम, करुणा, दया, क्षमा आदि के विचारों द्वारा भारतीय संस्कृति का सुन्दर पोषण हुआ । वस्तुत: बुद्ध के सिद्धान्त कोई नितान्त नवीन सिद्धान्त नहीं थे[2] । वस्तुत: नवीन था उनका साधनापूर्ण अपूर्व जीवन ।

१- न वध्य है आजक मूक यज्ञ में,
न यज्ञ है पार्थिव कामनामयी,
न कामना योग्य अनिष्ट-भावना,
न भावना हिंसक-भाव-वर्तिनी ।।
– सिद्धार्थ, सर्ग पंचदश , पृ० २४१

२- बुद्ध का उपदेश भी भारत की साधना अर्जित भूमि में कोई आकस्मिक उपद्रव नहीं है । अगर ऐसा होता तो सर्व जगत् के धर्म तत्वज्ञ उसे सत्य कह कर उसे स्वीकार न कर सकते । उपनिषद् में जो कुछ है उसका स्वाभाविक फल ही बुद्ध देव का उपदेश और वाणी है ।

--- संस्कृति संगम

मानवीय जीवन के अपूर्व आदर्श सत्य और साधना मौखिक रूप में चले आ रहे थे। व्यावहारिक जीवन में उनका महत्व घट चुका था। वे सिद्धान्तों की गहन गरिमा तक ही सीमित थे। भगवान् बुद्ध ने उन्हें अपने जीवन में प्रकाशित किया। बुद्ध ने वैदिक धर्म का विरोध नहीं किया। उन्होंने विरोध किया उन मिथ्याडंबरों का, उन रूढ़ियों का, जो शीशे पर जमी धूल की परतों की भांति वैदिक धर्म पर जमती चली जा रही थीं। महाराजा बिम्बसार के यहां यज्ञ में बलि देने के अवसर पर स्वयं पहुंच कर भगवान ने कर्मों के भोग को आवश्यक बतलाया।[1] बलि देने से वे कर्म कभी नष्ट नहीं होंगे। मनुष्य को अपने कर्म का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दया तथा करुणा के द्वारा समस्त सिद्धियों की प्राप्ति का उपदेश दिया।[2] उन्होंने शूद्र के हाथों से दुग्ध लेकर पान किया। समस्त भू-मंडल में एक मानव-जाति की महत्ता की स्थापना करके तथागत ने मानव प्रेम की स्थापना की थी।[3] उनका निर्वाण

१- स्वधर्म में है मरना न मारना
स्व-कर्म आवश्यक भोग्य-वस्तु है,
मनुष्य-भावी-दुख की विभावना
न बैठती है उस छाग-शीश पै।
-सिद्धार्थ, सर्ग पंचदश, पृ० २४१

२- दया विराजे यदि, भूप चित्त में
तुरन्त निःश्रेयस-सिद्धि प्राप्त हो,
कहा गया ईश्वर विश्व में वही
महादयासागर नामधेय जो।
-सिद्धार्थ, सर्ग पंचदश, पृ० २४०

३- न रक्त में वर्ण-विभेद है, सखे,
न अंग होते बहु जाति-पांति के,
समस्त भू-मंडल में विलोक तू
समान भू मानव जाति एक है।

शेष--

भारतीय संस्कृति के 'मोक्ष' का ही पर्याय है । उनके युद्ध विरोधी अहिंसात्मक विचार भारतीय दर्शन के प्रतिनिधि हैं । विश्व कल्याण की अपूर्व भावना से महाराज बिम्बसार को परिचित कराते हुए भगवान ने कहा था-

" न भोग है त्याज्य, न कर्म हेय है,
विधेय निःश्रेयस है न घात है,
न जीव है वध्य, न मृत्यु श्रेय है,
न प्रेय हिंसा, न विधेय पाप है ।[१]

महात्मा बुद्ध ने सामाजिक जीवन में अहिंसा का आदर्श प्रस्तुत किया था, सम्राट् अशोक ने अपने जीवन के उत्तरार्ध में उस सन्देश को राजनीतिक जीवन का शृंगार बना कर मानों एक शाश्वत मल्य की स्थापना की थी ।तलवार की शक्ति से नहीं मानव प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व की शक्ति के द्वारा किये गये साम्राज्य विस्तार का ही परिणाम है कि आज भी लंका, चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, आदि देशों की गलियों में 'बुद्धं शरणं गच्छामि', संघं शरणं गच्छामि' की गूंज सुनाई देती है । इसका कारण है अशोक का अहिंसात्मक व्यक्तित्व, जो कलिंग विजय से पूर्व दो किनारों के सीमित दायरे में बहती हुई नदी के समान था किन्तु अहिंसा का मार्ग ग्रहण करते ही वह व्यक्तित्व सागर के विशाल हृदय की भांति असीमित हो उठा[२] ।

शेष- अतः मुझे संप्रति शूद्र मान तू
निकृष्ट हूं मैं तव जाति -बन्धु-सा
वयस्य, दे दे द्रुत दुग्ध-पात्र तू,
पिपासु को इष्ट पय:प्रपान है । ---सिद्धार्थ, सर्ग चतुर्दश, पृ०२०८

१- सिद्धार्थ, सर्ग पन्द्रह, पृ० २४०

२- हीन बन्ध को तोड़ हो गए पर, अशोक त्रिभुवन के
दो कूलों के बीच सिमट कर सरिताएं बहती हैं
सागर कहते उसे दीखता जिसका नहीं किनारा
कल्पने ! यह संदेश हमारा ।
-रामधारी सिंह 'दिनकर', मगध महिमा

भगवान् बुद्ध भारतीय संस्कृति के पुजारी थे[१]। क्षमा, दया, परोपकार, शरणागत् वत्सलता आदि उदात्त वृत्तियां भारतीय धर्म का अंगभूत हैं। ऐतिहासिक वीरों ने अपने राजनीतिक जीवन में इनका पालन करके इनकी व्यावहारिकता को सजीव रूप प्रदान किया। सम्राट् चन्द्रगुप्त विजेता हैं, वीर हैं योद्धा हैं उन्होंने सिल्यूकस पर विजय प्राप्त की है। भारत भूमि की स्वतंत्रता के हरण की अभिलाषा करने वाले को वे कोई भी दण्ड दे सकते हैं किन्तु भारतीय आदर्श नरेश पराजित शत्रु का अपमान करने की अपेक्षा उससे मित्रवत् व्यवहार करता है[२]। युद्ध भूमि में ही शत्रु, शत्रु है, अन्यथा वह मनुष्य है और मनुष्य का मनुष्य के साथ सद्व्यवहार करना मानव धर्म है। सम्राट् चन्द्रगुप्त ने सिल्यूकस को केवल क्षमा ही नहीं किया था प्रत्युत राजनीतिक कटुता को मधुर सम्बन्ध में परिणत करके सुन्दर राजनीतिक आदर्श भी प्रस्तुत किया था।

भारतीय शरणागत् वत्सल हैं। आदर्श पुरुष भगवान् राम ने शरण में आए हुए शत्रु के भाई विभीषण को शरण में लेकर शरणागत् वत्सलता का आदर्श प्रस्तुत किया था। वह हजारों वर्ष पूर्व की बात है किन्तु यह सत्य है कि शरण में आया हुआ शत्रु हो अथवा मित्र, उसकी रक्षा करना भारतीय धर्म है। धर्म की विशाल एवं उदात्त भावना का प्रत्यक्ष एवं मूर्तिमान रूप महाराणा हम्मीरदेव का जीवन है। अलाउद्दीन राजपूतों का घोर शत्रु था। उससे शत्रुता करने का अर्थ था मृत्यु को निमंत्रण देना। फिर भी अलाउद्दीन द्वारा प्रताड़ित, शरण में आए हुए मुसलमान को महाराणा ने सौंपने से इन्कार कर दिया[३] और एक घोर युद्ध

१-...... किन्तु बुद्ध भारतीय विचारधारा के बहुत बड़े प्रतिनिधि हैं। उनका भारतीय चिन्तन पर प्रभाव है। भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि होने के कारण ही वे विष्णु के नवम अवतार माने जाते हैं।

-रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिकता और भारत धर्म, धर्मयुग, १३मार्च१९६६

२- बन्दी हैं सम्राट आप इस समय हमारे,
क्षमा किए पर दोष आपके हमने सारे

\+ \+

का सामना किया । बौद्धिक दृष्टि से महाराणा के इस कार्य को भले ही राजपूती हठवादिता कह कर अवहेलना कर दी जाय परन्तु इस धर्मनिष्ठता के द्वारा भारतीय संस्कृति के जिस उच्चादर्श की रक्षा हम्मीर द्वारा हुई उसके महत्व की उपेक्षा किसी भी युग में नहीं की जा सकेगी ।

मध्ययुग में ही एक अन्य राजपूत वीर भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी थे, महाराणा प्रताप । मुगल शासन में बादशाह अकबर सर्वाधिक प्रभावशाली सम्राट हुआ । उसकी उदारता ,धर्म सहिष्णुता विशाल हृदयता उसके ऐसे चारित्रिक गुण हैं जो भारतीय इतिहास में श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं— किन्तु उसके ये सभी गुण भारतीय संस्कृति के घातक थे । वह महान् कूटनीतिज्ञ था तथा अपनी कूटनीति से वह उस कार्य को करना चाहता था जो उसके पूर्वज करने में असफल सिद्ध हुए थे । हिन्दुओं को सुख सुविधाएं देकर वह बदले में उनका धर्म, उनकी निष्ठा, उनका चरित्र,उनका स्वाभिमान सभी कुछ छीन रहा था । अनेक हिन्दू राजा उसके प्रलोभनों का ग्रास बने । महाराणा प्रताप चाहते तो वे भी अपने वंश की पुत्री उसे देकर एक प्रतिष्ठित पद प्राप्त करके सुखी जीवन व्यतीत कर सकते थे किन्तु उस घोर संकट के काल में भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों की तथा हिन्दू धर्म की रक्षा किसके द्वारा होती ? महाराणा प्रताप ही उस समय एक मात्र वीर थे जिन्होंने धर्म और जाति की रक्षा की तथा हिन्दू [illegible] धर्म को स्पन्दनहीन होने से बचा लिया[१] । क्षात्र धर्म की -

----

शेष- तेजस्वी हैं आप वीर भी हैं निश्चय ही

करते हैं हम मुक्त आपको इसी समय ही

भारतवासी होते नहीं औरों जैसे क्रूर हैं

सम्मान पराजित शत्रु का करते हम भरपूर हैं ।--मौर्यविजय

२- सत्य पर बलिदान होना ही हमारा कर्म है

दीन दुखियों को बचाना ही हमारा धर्म है

दुख नहीं शरणागतों के हेतु यदि तन भी कटे

है मुझे धिक्कार ! यदि पग तनिक भी पीछे हटे।- वीरहम्मीर

--------------- ---------------

१- वह केवल वीर और रणकुशल ही नहीं किन्तु धर्म को समझने वाला सच्चा क्षत्रिय था.... प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं और सरदारों को सेवक बनाने वाली अकबर की कूटनीति का यदि कोई उत्तर देने वाला था तो महाराणा प्रताप ही।--श्रीयुत गौरीशंकर हीराचन्द ओझा,उदयपुर राज्य का इतिहास,तीसरी जिल्द,पृ०७८५

उच्चता के अतिरिक्त महाराणा प्रताप के जीवन के आदर्श भी महान् थे । राजनीति में सभी कुछ साम्य है । साम,दाम,दण्ड,भेद किसी भी नीति से शत्रु को वश में किया जा सकता है किन्तु महाराणा प्रताप को यह सत्य मान्य नहीं था । उनके राजनीतिक जीवन में मानवीय जीवन के उच्चादर्शों का समावेश हुआ था और जब राजनीति में भी जीवन के उच्च आदर्शों का समावेश हो जाता है तो वह सर्वजनीन सत्य से अनुप्राणित हो उठती है । हल्दीघाटी के मैदान में भयंकर युद्ध होने में कुछ ही दिन शेष थे । इसी बीच भील शिकार खेलते हुए मानसिंह को एक दिन भील पकड़ कर महाराणा के सम्मुख ले आए । महाराणा चाहते तो राजनीति का आश्रय ग्रहण करके जातिद्रोही शत्रु को संसार से विदा कर सकते थे किन्तु धोखे के लिए उनके जीवन में स्थान नहीं था ।[1]

'मातृवत् परदारेषु' का भाव भारतीय नैतिक आचरण का एक महत्वपूर्ण अंग है । महाराणा प्रताप तथा महाराज शिवाजी के जीवन में इस आचरण का व्यावहारिक रूप शत्रु-पक्ष की पत्नियों को सम्मान पूर्वक लौटाने में लक्षित होता है । दोनों शूरवीर इन अवसरों से लाभ उठा कर शत्रु को नीचा दिखा सकते थे किन्तु उनके शत्रु यवन हैं यवनीगण नहीं[2] । त्याग एवं क्षमा का पालन सहज कार्य नहीं । कष्ट सहन करके भी यदि इन अपूर्व वृत्तियों का पालन जीवन में हो सके तो वह जीवन अनुकरणीय है । अशोक पुत्र कुणाल के जीवन में यह अपूर्वता

१- मेवाड़ देश के भीलो
यह मानव धर्म नहीं है ।
जननी सपूत रण कोविद
योधा का कर्म नहीं है ।
वीर को भी धोखा देना
शूरों की रीति नहीं है ।
छल से उनको वश करना
यह मेरी नीति नहीं है । --हल्दीघाटी,दशम सर्ग

२- शत्रु हमारे यवन--उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है। -- महाराणा का महत्व

प्रस्तुत हुई है । आज का आधुनिक बुद्धिवादी वर्ग यह कहेगा कि तिष्यरक्षिता द्वारा भेजे हुए पत्र की सत्यता को कुणाल ने प्रमाणित क्यों नहीं कराया ? पितृ भक्ति के निर्मूल आदर्श की झोंक में सम्पूर्ण जीवन का सुख अर्पित कर दिया किन्तु मुद्रित पत्र की आज्ञा शिरोधार्य करके जिस त्यागपूर्ण क्षमाशील प्रवृत्ति के द्वारा एक कपटपूर्ण पापी हृदय का पाप आत्मग्लानि की भट्टी में जल कर राख हो गया, सैकड़ों क्रोध अथवा प्रतिशोध मिल कर भी उस पाप को नहीं धो सकते थे[1] । मानो राम का आदर्श एक बार फिर कुणाल के जीवन में मूर्त हो उठा ।

आधुनिक युग में आलोच्यकाल के राष्ट्रवीरों ने जिन आदर्शों की प्रतिष्ठा की, मानव जाति के इतिहास में वे स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं । समस्त सुख-सुविधाएं तिलांजलि देकर, शोषित पीड़ितमानव के लिए प्राण न्यौछावर कर देना सरल तथा सहज कार्य नहीं है । गणेश शंकर `विद्यार्थी` ने इसी मानव प्रेम की रक्षा में अपने प्राण होम कर दिए । वह कर्मयोगी हिन्दू और मुसलमानों में बन्धुत्व भावना की ज्योति जगाते-जगाते[2] स्वयं उन्हीं के हाथों अखण्ड समाधि बन गया । स्वार्थ रहित सेवा और जन-कल्याण की यह भावना अपनी महानता में अपूर्व है ।

महात्मा गांधी के जीवन में तो मानों भारतीय संस्कृति अपने विराट् रूप में साकार हो उठी है । सत्य, अहिंसा, करुणा, विश्वबन्धुत्व, विश्वकल्याण, विश्वशान्ति समष्टिगत सहिष्णुता आदि मानव जीवन की उदात्त भावनाओं को उन्होंने जिस प्रणाली द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में घटाया वह केवल भारत के

१- मैंने जो यह मार्ग लिया है
  माँ को सदय सुयोग दिया है,
   करके वे अनुताप शुद्ध हों बहे पाप बन पानी ।
      -कुणाल गीत, मैथिलीशरण गुप्त

२- सदियों तक आपस में लड़ कर
    करते रहे बराबर वार,
  एक बार तो बैर छोड़ कर
    भाई, कर देखो तुम प्यार ।
      -आत्मोत्सर्ग, सियारामशरण गुप्त

लिए ही नहीं समस्त विश्व के लिए एक नवीन तथा आश्चर्यजनक वस्तु है। आत्मतत्व गांधी में मूर्तिमान हो उठा। समस्त विश्व को आत्मवत् देखने की विचार धारा[1] ने सच्चे रूप में गांधी में अभिव्यक्ति प्राप्त की। अंग्रेजों से घृणा करने की अपेक्षा उन्होंने उनकी बुराई से घृणा की। उनका कहना था मनुष्य से प्रेम करते हुए भी उसकी बुराई से लड़ा जा सकता है अत: गांधी जी ने बुराई से ही घृणा की। सम्भवत: यही कारण है कि अंग्रेजों और भारतीयों में इतने बड़े संघर्ष के पश्चात् भी दोनों जातियों के सामान्य व्यवहार में कटुता नहीं आने पाई। गांधी से पूर्व विश्व ने हिंसा का उत्तर हिंसा से दिया था किन्तु यह सत्य सर्वविदित है कि हिंसा को दबाने के लिए हिंसात्मक प्रवृत्ति उन्मत्त हिंसा को जन्म देती है और यह भी सत्य है कि क्रोध पर शान्ति से और असाधुता पर साधुता से ही विजय प्राप्त की जा सकती है-' अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्।' परन्तु इस आदर्श वाक्य के सम्मुख रहते हुए भी विश्व ने सदैव इसकी अवहेलना की। गांधी ने 'असहयोग अहिंसा' के द्वारा विश्व इतिहास में एक नवीन अध्याय लिखा। भौतिकवादी विश्व की सभी मान्यताएं मानो चकनाचूर हो गईं। इसी प्रकार 'सत्यमेव जयते नानृतं' का घोषा करने वाले ऋषियों ने किसी ज्वलन्त अनुभव के आधार पर ही इस ज्वलन्त सत्य की प्रतिष्ठा की होगी। गांधी जी ने 'सत्याग्रह' के अमोघ अस्त्र द्वारा मानो इस सिद्धान्त ' वाक्य में प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने भारतीय जन मन को आत्मबल से परिचित कराया।[2] तलवार के बल पर ही नहीं आत्म शक्ति के द्वारा भी क्रूरता पर विजय प्राप्त की जा सकती है किन्तु इसके लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता है।

१- मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।यजुर्वेद,३६।१८

२- किन्तु लिए आशा की मलयज
विश्वासों का सम्बल
उठा रहे तुम गिरी जाति का
ढहता हुआ मनोबल। --ठाकुर प्रसाद अग्रदूत, महामानव, द्वितीय सर्ग

जीवन में आत्मविश्वास की भावना का अभाव किसी भी व्यक्ति जाति अथवा राष्ट्र के लिए मरण का सूचक एवं सर्वनाश का कारण है महात्मा गांधी ने भारतीयों में आत्म-विश्वास पूर्ण आत्म शक्ति का संचार करके उन्हें विजय पथ पर ला खड़ा किया[१]। अंग्रेजों की मशीन गनों, तोपों तथा अन्य विध्वंसकारी शक्तियों ने खुल कर भारतीयों के आत्म विश्वास से फूले हुए सीनों पर नाच किया[२]। किन्तु अन्त में बापू के अहिंसा, सत्य और आत्मबल की विजय हुई। लौह शक्ति को झुकना पड़ा। बर्बरता आत्म शक्ति के सम्मुख लज्जित हो उठी।[३]

इसी प्रकार जाति-पांति, छुआछूत, वैर-द्वेष सभी का तो विरोध गांधी जी की वाणी में हुआ। राजनीति तथा धर्म का समन्वय करने वाले गांधी भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी थे। वे सम्पूर्ण मानवता के प्रतीक थे। अनेक युग उनमें साकार हो उठे हैं। यह कोई चमत्कार नहीं था कम से कम, बीसवीं शताब्दी के व्यक्ति के लिए तो यह पूर्ण यथार्थ है, सच्चाई है। आने वाले युगों में भले ही यह चमत्कार बन जाय।

१- साहस दृढ़ता आत्म-शक्ति
का अर्थ- सफलता जीत
बढ़ो बस एक ही राह बची
मर मिटें न हों भयभीत। -- महामानव, द्वितीय सर्ग

२- तोपों के मुंह पर
बांधे जनता ने आकुल प्राण
मिट्टी में सो गया पुत्र
मिट्टी का छाती तान --- वही, पंचम सर्ग

३- एक बार फिर जागा दुनिया का जन बल
झुक गया सामने इठलाता पशु का दल
फट रहा गगन रोके न सका सत्ता के
ढह गए गर्व के द्वार अचल सत्ता के।

-- महामानव, तृतीय सर्ग

आधुनिक युग में पंचशील की घोषणा करने वाले श्री जवाहरलाल नेहरू ने पुनः प्राचीन भारतीय विचारधारा[1] की प्रतिष्ठा की थी । राष्ट्रों के लिए कल्याणकारी इस मंत्र को क्रियात्मक रूप देना चाहा था किन्तु भौतिकवादी विश्व के गले के नीचे सम्भवत: यह सत्य अभी नहीं उतर सका है । इसी प्रकार गुरुकुल ,यशोधरा,सिद्धराज ,आर्यावर्त ,जौहर आदि अनेक ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में जीवन के उच्च आदर्शों की अत्यन्त प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । नारी-जाति के लिए उसका सतीत्व-धर्म उसके अस्तित्व काल से ही उसके आदर्श पूर्ण जीवन की एक सशक्त कड़ी रही है राजस्थान का सम्पूर्ण नारी इतिहास इसी गौरव तथा आदर्श की रोमांचकारी घटनाओं से ओतप्रोत है ।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के ऐतिहासिक सन्दर्भों में भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा तथा आदर्शों के प्रति जो निष्ठा एवं चरित्रगत आस्था के अनेकानेक चित्र मिलते हैं उनसे इतिहास के महान चरित्रों का सांस्कृतिक मूल्य मानवता के इतिहास में चिरस्मरणीय है ।



१- द्यौ: शांतिरन्तरिक्ष शान्ति: पृथ्वी
शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति:
वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा शान्ति....
--यजुर्वेद ३६।१७

नवम अध्याय

ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धियां(उपसंहार)

ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धियां—निष्कर्ष :-

खड़ी बोली हिन्दी काव्य में ऐतिहासिक काव्य-निर्माण उस समय आरम्भ हुआ जब काव्य-भाषा सम्बन्धी विवाद प्राय: समाप्त हो गये थे तथा खड़ी बोली काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी । सन् १६०३ में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के सम्पादन का कार्यभार ग्रहण किया तथा इसी वर्ष उमाशंकर द्विवेदी ने 'सरस्वती' में महाराणा प्रताप तथा शिवाजी के प्रति अपने भाव सुमन अर्पित करके मानो खड़ी बोली में ऐतिहासिक काव्य का सूत्रपात किया । इसके उपरान्त जैसा कि आलोच्यकालीन काव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है , खड़ी बोली में ऐतिहासिक काव्य की एक सुदृढ़ एवं सुदीर्घ परम्परा प्रारम्भ हुई है ।

आलोच्यकाल में खड़ी बोली हिन्दी के काव्यकारों ने इतिहास के अनेकानेक मार्मिक, करुण एवं प्रेरणास्पद सन्दर्भों से प्रभावित होकर काव्य रचनाएं की हैं । अपनी कल्पना-तूलिका के द्वारा इतिहास के रेखा चित्रों में रंग भर कर उन्हें एक ऐसा आकर्षण तथा संवेदनशील रूप प्रदान किया है जो इतिहास के पन्नों में उपेक्षित पड़ा हुआ था । इतिहास से प्रेरणा ग्रहण करते समय कवि की कल्पना विषय-निरूपण की दृष्टि से किसी एक सीमा में बंध कर नहीं चली । उसने इतिहास के संक्षिप्त से संक्षिप्त तथा विशद से विशद भाव ग्रहण करके अपने विषय को महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक,गीत,चम्पू आदि सभी काव्य रूपों में प्रस्तुत किया । भाव-प्रकाशन की दृष्टि से इन काव्य-रूपों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि काव्य के किन्हीं मार्मिक स्थलों पर, वह भाव प्रधान हो उठा है । परिणामस्वरूप उसके चिन्तन एवं भाव के मिश्रण से अनेक ऐतिहासिकसन्दर्भ कला के माध्यम से जीवनगत सत्य की अभिव्यक्ति करते हुए प्रतीत होते हैं, तथा कहीं सरल सुबोध शैली में किसी ऐतिहासिक कथा का वर्णन मात्र करके ही कवि ने कथानक रख दिया है । आलोच्य कालीन ऐतिहासिक काव्य का अनुशीलन करने पर यह भी स्पष्ट हुआ है कि

सम्पूर्ण ऐतिहासिकता एक बार ही प्रस्तुत नहीं की गई है । कहीं प्रसंगों के द्वारा स्वर्णिम तथा गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण हुआ है , कहीं ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन के उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति हुई है तो कहीं युग की सामयिक राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर ऐतिहासिक युगों की राष्ट्रभावना का युग सापेक्ष चित्रण हुआ है । परिणामस्वरूप देश प्रेम एवं आत्मबलिदान के अनेकानेक ज्वलन्त उदाहरण साकार हुए हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ देश-भक्तिपूर्ण ऐतिहासिक कविताओं में राष्ट्रवीरों के प्रति कवि की श्रद्धा और पूजा के रूप में प्रस्फुटित हुई जिसके कारण अतीत और वर्तमान के वीरों की पूजा में उसने अनेकानेक भाव सुमन अर्पित किए । इस प्रकार विचार एवं भाव की दृष्टि से ऐतिहासिक सन्दर्भों ने एक विशाल रूपाकार प्राप्त किया।

ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों में चरित्र चित्रण की दृष्टि से कवि ने सर्वथा एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया है । वीरगाथाओं की गुण-कथन प्रधान प्राचीन परिपाटी का त्याग करके ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन के विविध पार्श्वों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है तथा उनकी आन्तरिक भाव धाराओं को समझने का प्रयास भी किया है ।नाटकीय तत्वों के समावेश से प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने की दृष्टि भी परिलक्षित होती है । वस्तुत: अतीत की ये महान् विभूतियां कवि प्रतिभा के आश्रय में वर्तमान की भाव-भूमि पर उतर कर अपने कर्मठ जीवन की झांकी द्वारा जनमानस को प्रेरणा देती हुई प्रतीत होती हैं ।

ऐतिहासिक काव्यकारोंने अपनी अनुभूति द्वारा ऐतिहासिक सत्यों को विविध प्रकार से रसात्मक एवं कलात्मक रूप दिया है । काव्य के कलात्मक रूप में भाषा, रस, छन्द, एवं अलंकार आदि का विशेष सहयोग है । ऐतिहासिक काव्यकारों ने रसोत्पत्ति के लिए इन सभी उपकरणों का प्रयोग यथास्थान किया है । इनकाव्यों में भाषा शैली के विकास के अनेक स्तर प्राप्त होते हैं । द्विवेदी युगीन काव्यों की भाषा शैली जहां एक ओर सरल,सुबोध एवं अभिधात्मक है वहां छायावाद तथा छायावादोत्तर ऐतिहासिक काव्यों की शैली लक्षणा व्यंजना पूर्ण है । उसमें काव्योचित गरिमा एवं काव्य सौष्ठव अपने चरम रूप में भी

दृष्टिगत होते हैं साथ ही द्विवेदी युगीन सरलता एवं इतिवृत्तात्मकता भी देखी जा सकती है । भाषा की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्य ग्रन्थों में जो विशेषता उपलब्ध है वह यह कि भाषा चित्रात्मक ,भावानुकूल,ओजमय तथा प्रवाहपूर्ण है ।

कोई भी भाव एक विशेष गति एवं लय में ही अधिक उपयुक्तता के साथ अभिव्यक्त होता है । इस दृष्टि से काव्य में छंद विशेष महत्वपूर्ण हो जाते हैं । ऐतिहासिक काव्यों में छंदों की विविधता उल्लेखनीय है ।भावा-भिव्यंजनाके लिए जहां एक ओर वर्ण वृत्त तथा मात्रिक छंदों का रसानुकूल प्रयोग हुआ है वहां दूसरी ओर कुछ कवियों द्वारा(विशेषत:`निराला` सियारामशरण गुप्त,मोहनलाल महतो वियोगी) अमित्राक्षर एवं मुक्त वृत्तों का प्रयोग भी श्लाघ-नीय शैली में हुआ है । ऐतिहासिक काव्यों में जहां भावों का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है वहां तो कवियों द्वारा आवेशपूर्ण वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। किन्तु जहां उदात्त चरित्रों का अथवा स्मरणीय घटनाओं का निरूपण किया गया है वहां कवियों ने प्रतीकात्मक शैली में काव्य रचना कर उसे विश्वजनीनता प्रदान करने की चेष्टा की है ।

खड़ी बोली हिन्दी के ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में कतिपय नवीनताएं :-

(क) कथानक :- द्विवेदी युग के अधिकांश ऐतिहासिक काव्यों में केवल कथानक रस प्राप्त होता है । इतिहास के किसी भी आदर्शमय एवं वीररसपूर्ण प्रसंग को काव्य बद्ध कर देने की प्रवृत्ति इस युग के अधिकांश कवियों में दृष्टिगत होती है किन्तु लगभग सन् १६२५ के बाद के ऐतिहासिक काव्यों में वर्णन प्रसंगों की भरमार न करके मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के समावेश की दृष्टि अपनाई गई है । सन् १६४० के पश्चात् कथावस्तु के नियोजन में भी नवीनता के दर्शन होते हैं । इतिहास-सामग्री को, युग-सन्दर्भ में समसामयिकता के काल-व्यापी प्रभाव के रूप में ग्रहण करके,`आर्यावर्त`काव्य के निर्माण ने विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों का मार्ग दर्शन किया है ।

(ख) चरित्र-चित्रण :- चरित्र चित्रण की दृष्टि से यथार्थ एवं आदर्श का सामंजस्य आधुनिक बौद्धिक विचारधारा के अनुकूल हुआ है । ऐसे सन्दर्भों में ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्रों में कतिपय ऐसे नवीन परिवेश जोड़ दिए गए हैं जिनसे उनके चरित्रों की विवृति मानव स्वभाव की एक विशिष्ट परिणति भी गई है । दूसरे शब्दों में इसे चरित्रों का पुनर्मूल्यांकन कहा जा सकता है जो चरित्र परम्परागत दृष्टि से एक विशिष्ट सन्दर्भ से सम्बद्ध हैं, वे चरित्र अपना सन्दर्भ बदल कर एक नए परिवेश में अपनी मन:स्थिति उपस्थित करते हैं । यह कहा जा सकता है कि इस सन्दर्भ-परिवर्तन से ऐतिहासिकता को आघात पहुँचा है किन्तु कवियों की दृष्टि ऐसे सन्दर्भों के प्रयोग में इतिहास सम्मत न होकर इतिहास-रस सम्मत हो गई है और ऐसा ज्ञात होता है कि वे मानव स्वभाव की एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में अपने चरित्रों का नई भाव भूमि पर प्रक्षेपन करते हैं । अपनी प्राचीनता में जो पात्र प्रागैतिहासिक युग के हो चुके हैं कवि ने केवल उन्हीं को नहीं अपनाया वरन् आधुनिक युग के अनेक राष्ट्रवीरों एवं समसामयिक महापुरुषों को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करके यह प्रमाणित किया है कि मनुष्य की महत्ता उसके वंश-गौरव के साथ साथ उसके जीवन की कर्मशीलता एवं कर्मवीरता में भी है । इस प्रसंग में नारी पात्रों का प्रस्तुतीकरण विशेष महत्व रखता है । श्रद्धा और इड़ा से लेकर रानी लक्ष्मीबाई तक ऐसे अनेक नारी पात्र हैं जिन्होंने धर्म,राष्ट्रीयता एवं आत्म-सम्मान की बलिवेदी पर आत्मोत्सर्ग तथा जीवन-होम किया । नायिका भेद की परम्परा में भले ही नूरजहां और मुमताज़ महल के रागात्मक परिप्रेक्ष में विलासिता के काव्य पुष्प समर्पित किए गए हैं परन्तु उनमें भी नारीत्व के गौरव की अनेक झांकियां मिलती हैं । इस भांति चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में आधुनिक कवियों ने नारी को सदैव ही एक उदात्त भूमिका में प्रस्तुत किया है ।यदि यह कहा जाय कि पुरुषों की अपेक्षा नारियों ने कवियों की काव्य-प्रतिमा पर अधिक अधिकार प्राप्त किया है तो अनुचित न होगा ।

(ग) रस निरूपण :- रस-निरूपण की दृष्टि से भी ऐतिहासिक काव्यों में नवीनता दृष्टिगत हुई है । प्राचीन परिपाटी के काव्यों में रस के उपकरण जुटाने की प्रवृत्ति

रही है परन्तु खड़ी बोली के अधिकांश ऐतिहासिक काव्यों में रस के उपकरण न जुटा कर संवेदनाजन्य भावों को एकत्रित करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। स्थायी भाव के साथ साथ संचारी भावों पर अधिक बल दिया गया है और उन्हीं के आश्रय से उद्दीपन अथवा अनुभाव की व्यंजना की गई है। ये अनुभाव अधिकतर मनोवैज्ञानिक उतार चढ़ाव के कारण कहीं लक्षणा के रूप में कहीं व्यंजना के माध्यम से उपस्थित कर दिए गए हैं। इस प्रकार आधुनिक ऐतिहासिक काव्यों में रस-निरूपण की दृष्टि अपने मूल केन्द्र से मनोवैज्ञानिकता का आधार लेकर कुछ स्थानान्तरित हुई प्रतीत होती है।

(घ) ऐतिहासिक यथार्थता :- अनेक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों के अनुशीलन से एक सत्य उद्घाटित हुआ है कि ऐतिहासिक काव्यकारों ने ऐतिहासिक यथार्थता की सुरक्षा की है। ऐतिहासिक यथार्थता को काव्य सत्य के रूप में विकृत होने से बचाया है।

कल्पना का आश्रय पात्रों के चरित्र चित्रण में उनके गुणों को उत्कर्षता प्रदान करने में अथवा ऐतिहासिक यथार्थता को काव्य-सत्य के रूप में अधिक प्रखर बनाने के रूप में ग्रहण किया गया है। जिन घटनाओं के विषय में स्वयं इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है उन घटनाओं को कवि ने काव्य-कथा के उत्कर्ष तथा सौन्दर्योत्पत्ति की दृष्टि से ही अपनाया है।

रस, भाव तथा कला की दृष्टि से इन नवीनताओं के अतिरिक्त मानव-जीवन से सम्बन्धित ऐतिहासिक काव्य की उपलब्धियाँ भी विशेष महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक साहित्य के तत्वदर्शियों ने कला को जीवन सापेक्ष मानते हुए उसमें सत्यं शिवं सुन्दरं की समन्वयात्मक दृष्टि को महत्व प्रदान किया है[१]।

१- जो साहित्य अपने-आप के लिए लिखा जाता है, उसकी क्या कीमत है, मैं नहीं कह सकता, परन्तु जो साहित्य मनुष्य समाज को रोग-शोक, दारिद्र्य-अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय-निधि है। उसी महत्वपूर्ण साहित्य को

--(शेष

ऐतिहासिक काव्यों में यह समन्वयात्मक दृष्टि सशक्त रूप में परिलक्षित होती है । अनेक ऐतिहासिक चरित-काव्यों में (आर्यावर्त, महामानव, जगदालोक, झांसी की रानी आदि) युग की राष्ट्रीयता के स्वर की गूंज के साथ ही पात्रों के जीवनादर्शों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधित्व हुआ है। वास्तव में वर्तमान के संघर्षपूर्ण जीवन में सांस्कृतिक दृष्टि से उच्चादर्शों की परिपालना नितान्त अनिवार्य होती जा रही है । भौतिक स्थलगत विक्षेप के कारण यद्यपि आज मनुष्य एक दूसरे के बहुत समीप आ गया है तथापि हृदय से वह एक दूसरे से उतना ही दूर होता जा रहा है जितना कि भौतिक दृष्टि से उसने समीपता ग्रहण की है । द्वेष और हिंसा की सीमाएं नहीं रह गई हैं, मनुष्य मनुष्य के निकट सिंह से भी अधिक हिंसक हो उठा है । ऐसा प्रतीत होता है मानो संपूर्ण सभ्यता विध्वंसकी की ओर अग्रसर हो रही है ।आणविक शक्तियों ने आज एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के प्रति सशंकित और भयभीत कर दिया है । पारस्परिक प्रेमपूर्ण सद्भावना की अपेक्षा शक्ति की सत्ता पर साम्राज्यों की प्रतिष्ठा आधारित हो रही है । मनुष्य के सामान्य जीवन में भी एक विशृंखलता नित्य प्रति प्रवेश पाती जा रही है । उसके जीवन में गतिशीलता तो है परन्तु उस गतिशीलता में अशान्ति के चिह्न पग-पग पर लक्षित होते हैं । वैभव और शक्ति के अर्जन की होड़ में जीवन की अमूल्य मान्यताओं की नींव दोलित हो उठी है । प्रगतिशीलता की इस दौड़ में भौतिक युग का बुद्धिवाद आज 'आदर्श' जैसे रूढ़ शब्द के विरोध में मानो उठ खड़ा हुआ है । महात्मा बुद्ध, महाराणा प्रताप, शिवा आदि ने जो जीवन जिया, उनके जीवन द्वारा जिन आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई, क्या आवश्यकता है कि आज का मनुष्य उन्हीं रूढ़िगत रेखाओं पर अपना पथ निर्धारित करे ? वह किसी नवीन मार्ग की खोज करेगा । वर्तमान की भावभूमि पर जो जीवन अधिक उपयुक्तता के साथ जिया जा सके वही उसके अनुकूल सिद्ध

शेष---

हम अपनी भाषा में ले आना चाहते हैं ।

-डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० १७१

होगा, फिर चाहे उसमें जीवनगत आदर्शों की अवहेलना हो अथवा हत्या, ऐसा उसका विश्वास है। परन्तु इतिहास ने मानव जीवन के संघर्षों की जो कहानी कही है उससे यह सिद्ध होता है कि मात्र भौतिक वाद को आधार मान कर मानव कभी सुखी नहीं हो सकता। हां, यह सम्भव है कि आज के कोणार्क ('तप्तगृह') का हृदय परिवर्तन एक हत्या के स्थान पर अनेकों हत्याओं द्वारा हो और आज का राजनीतिक सिद्धान्त-परिवर्तन एक कलिंग-युद्ध के स्थान पर अनेक कलिंग-युद्धों के पश्चात् हो। परन्तु सम्पूर्ण मानवजाति को जन-कल्याण एवं विश्व बन्धुत्व की भावना द्वारा अग्रसर होकर एक न एक दिन शिवं का मार्ग ग्रहण करना ही होगा। आलोच्य-कालीन ऐतिहासिक काव्य का यही दृष्टिकोण रहा है। आलोच्यकाल के पश्चात् भी ऐतिहासिक काव्यों के प्रणयन की धारा अक्षुण्ण है। सम्भव है आधुनिक युग के सांस्कृतिक जीवन की सम्पूर्णता आने वाले समय में ऐतिहासिक सन्दर्भ के माध्यम से ही और अधिक श्रेष्ठतम रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त कर सके।

***

परिशिष्ट

०

सहायक पुस्तक-सूची

(अ) आलोच्यकालीन ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ

(१) अनामिका , सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
(२) अनघ , मैथिलीशरण गुप्त, विक्रमाब्द १६०४, प्रथम संस्करण
(३) अणिमा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(४) आत्मार्पण, कालिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', १६१६
(५) आत्मोत्सर्ग, सियाराम शरण गुप्त, १६३१
(६) आधुनिक वीर काव्य(संग्रह)सम्पादक-भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा सुब्रह्मण्यम, १६४४, प्रथम संस्करण
(७) आर्यावर्त , पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी', १६६३, प्र०सं०

(८) इतिहास के आंसू, रामधारी सिंह 'दिनकर', १६५१, प्र०सं०

(९) एकान्तवासी योगी, श्रीधर पाठक,(छटा संस्करण)

(१०) कदम कदम बढ़ाए जा, गोपाल प्रसाद व्यास, १६५४, प्र०सं०
(११) कानन कुसुम , जयशंकर प्रसाद , प्र०सं०
(१२) काबा और कर्बला, मैथिलीशरण गुप्त
(१३) कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी, १६४३
(१४) कुणाल गीत(संग्रह) मैथिलीशरण गुप्त

(१५) गांधी गौरव, गोकुलचन्द्र शर्मा, १६१६
(१६) गुरुकुल, मैथिलीशरण गुप्त, १६२६

(१७) चित्तौड़ की चिता, रामकुमार वर्मा, १६२७

(१८) जननायक, रघुवीरशरण 'मित्र'

(१९) जयहिन्द (संग्रह) सम्पादक- सम्पूर्णानन्द श्रीवास्तव, १९४९, प्रथम संस्करण
(२०) जागृत भारत, पं० माधव शुक्ल
(२१) जौहर, श्यामनारायण पाण्डेय, १९[illegible] प्र०सं०

(२२) झांसी की रानी, श्यामनारायण प्रसाद, १९५५, प्र०सं०
(२३) झांकी, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, प्र०सं०

(२४) तक्षशिला, उदयशंकर भट्ट, १९३१, प्र०सं०
(२५) तप्तगृह, केदारनाथ मिश्र प्रभात, १९५८, प्र०सं०

(२६) दुर्गावती, राजशेखर गुरु, १९४०

(२७) नीराजना (संग्रह) शम्भुप्रसाद श्रीवास्तव
(२८) नूरजहां, गुरुभक्तसिंह भक्त, छठा संस्करण
(२९) नोआखाली, सियारामशरण गुप्त, १९४६

(३०) पल्लव, सुमित्रानन्दन पन्त
(३१) पद्य-पयोनिधि, विद्याभूषण `विभु`
(३२) परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`
(३३) पद्यपुष्पांजलि (संग्रह) लोचनप्रसाद पाण्डेय, १९१५, प्र०सं०
(३४) पत्रावली (संग्रह) मैथिलीशरण गुप्त, वि०सं० १९८०
(३५) प्रणवीर प्रताप, गोकुलचन्द्र शर्मा, १९१[illegible]
(३६) प्रभाती (संग्रह) सोहनलाल द्विवेदी
(३७) प्राणार्पण, बालकृष्ण शर्मा `नवीन`
(३८) पुष्करिणी (संग्रह) सम्पादक-सच्चिदानन्द वात्स्यायन, वि०सं०२०१६, प्र०सं०

(३९) फुलझड़ियां, धर्मपाल साहू

(४०) बंगाल का काल, हरिवंशराय बच्चन ,

(४१) बापू , रामधारी सिंह 'दिनकर', १९४७, प्र०सं०

(४२) बापू , सियाराम शरण गुप्त, १९३८, प्र०सं०

(४३) बुद्धचरित , रामचन्द्र शुक्ल, वि०सं० १९७९
(ब्रजभाषा)

वि०सं० १९९९
(४४) भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, बीसवाँ संस्करण

(४५) महाराणा का महत्त्व, जयशंकर प्रसाद, वि०सं० २०११ , पंचम सं०

(४६) महामानव, ठाकुरप्रसाद सिंह 'अग्रदूत'

(४७) मुकुल (संग्रह) सुभद्राकुमारी चौहान

(४८) मेवाड़ गाथा, लोचनप्रसाद पाण्डेय

(४९) मेरे बापू (संग्रह) तन्मय बुखारिया, १९५१, प्र०सं०

(५०) मौर्य विजय, सियाराम शरण गुप्त, १९१४

(५१) यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, वि०सं० २०११

(५२) रंग में भंग, मैथिलीशरण गुप्त, १९०९

(५३) राष्ट्रीय वीणा, (द्वितीय भाग), पं० वागीश्वर विद्यालंकार

(५४) रूपराशि (संग्रह) रामकुमार वर्मा, १९३३ (प्रथम संस्करण)

(५५) लहर (संग्रह) जयशंकर प्रसाद , वि० सं० २००४ , तृ०सं०

(५६) वर्धमान, अनूप शर्मा, १९५१ , प्र०सं०

(५७) वासवदत्ता, सोहनलाल द्विवेदी

(५८) विराट् संग्राम, अनूप शर्मा, १९४८

(५९) विकटभट , मैथिलीशरण गुप्त, १९१८

(६०) विक्रमादित्य , गुरुभक्तसिंह भक्त, १९४९, प्र०सं०

(६१) विरामचिह्न, अंचल, (संग्रह) १९५७, प्र०सं०

(६२) वीर हमीर, रामकुमार वर्मा, १९२२

(६३) वीरपंचरत्न(संग्रह)लाला भगवानदीन,१९२०

(६४) वीरांगना वीरा,ठाकुर भगवत सिंह विशारद,प्र०सं०

(६५)वीणा(संग्रह)सुमित्रानन्दन पन्त

(६६) सती पद्मिनी, श्रीनाथ सिंह, १९१५

(६७) सती सारन्धा, द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र',१९१०

(६८) सारन्धा,राजेन्द्रदेव सिंह,वि०सं० २००३

(६९) सिद्धराज,मैथिलीशरण गुप्त,१९३६,प्र०सं०

(७०) सिद्धार्थ, अनूपशर्मा, १९३७,प्र०सं०

(७१) सुमनांजलि(संग्रह) अनूपशर्मा, १९३६

(७२) सुनाल, अनूप शर्मा, १९२९

(७३) सूत की माला(संग्रह) हरिवंशराय बच्चन, १९४८,प्र०सं०

(७४) शंखनाद (संग्रह) आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव,१९२६,प्र०सं०

(७५) हल्दीघाटी,श्यामनारायण पाण्डेय, सन् १९३९

(७६) हरिश्चन्द्र कला(ब्रजभाषा),भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ,सन् १८८८

(७७) हिमकिरीटिनी,माखनलाल चतुर्वेदी

(आ) आलोचनात्मक ग्रन्थ

(हिन्दी)

(७८) अनूपशर्मा– कृतियां और कला, ~~अनूप शर्मा~~,सम्पादक- डा० प्रेमनारायण टंडन,१९६१,प्र०सं०

(७९) अनुशीलन ,डा० रामकुमार वर्मा, १९५७,प्र०सं०

(८०) आर्य संस्कृति के मूल तत्व, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार,१९५३,प्र०सं०

(८१) आधुनिक साहित्य, नन्ददुलारे वाजपेयी,वि०सं० २००७, प्र०सं०

(८२) आधुनिक कवि, महादेवी वर्मा, आठवाँ संस्करण

(८३) आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रथम संस्करण १९५२

(८४) आधुनिक हिन्दी काव्य, सम्पादक-डा० रामकुमार वर्मा तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा, तृ०सं०

(८५) आधुनिक वीर काव्य, मोहनलाल द्विवेदी

(८६) आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान, डा० श्यामनन्दन किशोर, सन् १९६३, प्र०सं०

(८७) आधुनिक हिन्दी काव्यों में नारी भावना, शैलकुमारी, १९५१, प्र०सं०

(८८) आधुनिक काव्यधारा, डा० केसरीनारायण शुक्ल, वि०सं० २०००, प्र०सं०

(८९) आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, डा० श्रीकृष्ण लाल, वि०सं०१९९९

(९०) कला, कल्पना और साहित्य, डा० सत्येन्द्र

(९१) कविता कौमुदी, रामनरेश त्रिपाठी, वि.सं० १९७४

(९२) काव्य के रूप, गुलाबराय एम०ए० १९५८, चतुर्थ सं०

(९३) काव्यधारा, डा० रामकुमार वर्मा, १९५५

(९४) काव्यधारा, सम्पादक : शिवदान सिंह चौहान, सन् १९५५ तथा गोपालकृष्ण कौल

(९५) काव्यशास्त्र, शम्भुनाथ पाण्डेय, १९५४, प्र०सं०

(९६) काव्याधार, राजनारायण मिश्र, एम०ए०, १९६१, प्र०सं०

(९७) काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक अध्ययन, सम्पादक-डा० शम्भुनाथ पाण्डेय, प्र०सं०

(९८) काव्यप्रकाश, व्याख्याकार : डा० सत्यव्रत सिंह, वि०सं० २०१९ द्वि०सं०

(९९) खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, ब्रजरत्नदास बी०ए०, वि०सं०१९९८, प्र०सं०

(१००) गुप्तजी और उनकी यशोधरा, केसरीकुमार रघुवंशलाल, १९४२, प्र०सं०

(१०१) चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(१०२) पृथ्वीराज रासउ, डा० माताप्रसाद गुप्त, वि०सं० २०२०, प्र०सं०

(१०३) पद्मावत, जायसी

(१०४) प्रसाद का जीवन और साहित्य, डा० रामरतन भटनागर

(१०५) ब्रजभाषा और खड़ीबोली का तुलनात्मक अध्ययन, डा० कैलाशचन्द्र भाटिया, १९६२, प्र०सं०

(१०६) ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका, डा० कपिलदेव सिंह, १९५९, प्र०सं०

(१०७) भारतीय संस्कृति, डा० देवराज, प्रथम संस्करण

(१०८) भारतीय संस्कृति का विकास, डा० [illegible], [illegible]

(१०९) भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, डा० [illegible]नारायण [illegible] प्र०सं०
[illegible]

(११०) भारतीय संस्कृति, पं० कृष्णानन्द विद्यालंकार

(१११) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, १९[illegible]८

(११२) महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग, डा० उदयभानु सिंह, वि०सं० [illegible], प्र०सं०

(११३) मनोविज्ञान के स्रोत, श्री [illegible]

(११४) मराठों का नवीन इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई

(११५) मेवाड़ का इतिहास, [illegible]

(११६) यजुर्वेद संहिता (शुक्ल तथा कृष्ण)

(११७) ,, ,, (शुक्ल तथा यजुर्वेदीय)

(११८) रसमीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वि०सं० २००६

(११९) वीर काव्य, डा० उदयनारायण तिवारी, वि०सं० २००५, प्र०सं०

(१२०) श्रीमद्भागवत पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् २०[illegible], द्वि०सं०

(१२१) सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द 'सरस्वती'

(१२२) संस्कृति संगम, आचार्य क्षितिमोहन सेन, १९५१, प्र०सं०

(१२३) संस्कृत साहित्य की परीक्षा, पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा डा० नानूराम व्यास

(१२४) संस्कृत साहित्य का इतिहास, ए० बी० कीथ

(१२५) साहित्यावलोकन, डा० विनयमोहन शर्मा, १९५२, प्र०सं०

(१२६) सान्ध्यगीत की भूमिका, महादेवी वर्मा

(१२७) हिन्दी कविता में युगान्तर, प्रो० सुधीन्द्र, १९५०, प्र०सं०

(१२८) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डा० गणपतिचन्द्र गुप्त

(१२९) हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, १९६५

(१३०) हिन्दी भाषा का विकास, डा० धीरेन्द्र वर्मा, १९६६, तृतीय सं०

(१३१) हिन्दी साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास

~~(१३२) हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० धीरेन्द्र वर्मा~~

(१३३) हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना, प्रो० राजाराम रस्तोगी

(१३४) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(१३५) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, सन् १९५२, प्र.स.

(१३६) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, १९५४, प्र०सं०

(१३७) हिन्दी साहित्य— एक अध्ययन, रामरतन भटनागर, १९४८, प्र०सं०

(१३८) (अंग्रेजी)

(१३८) Aristotle's Theory of Poetry and Fine Art
S.H. Butcher. 4th edition 1953

(१३९) A History of Classical Greek Literature,
T. A. Sinklair.

(१४०) Human Nature : Herbert & Casson.

(१४१) Emerson's Essays : Ralph Waldo Emerson, 1955.

(१४२)

(ङ) इतिहास-ग्रन्थ

(हिन्दी)

(१४३) उदयपुर राज्य का इतिहास(दोसरा खंड)गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

(१४४) ,, ,, (पहली जिल्द) ,, ,, १६८५

(१४५) कांग्रेस का इतिहास, डा० बी०पट्टाभिसीतारामय्या,१६५८,प्र०सं०

(१४६) बुंदेलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल बुन्देला,डा० भगवानदास गुप्त,१६५८ प्र०सं०

(१४७) जहांगीर का आत्मचरित्र(जहांगीरनामा),अनुवादकार-ब्रजरत्नदास,सं०२०१४ प्र०सं०

(१४८) पंजाब का इतिहास, धर्मवीर एम०ए०,१६५०, प्र०सं०

(१४६) भारत का इतिहास(भाग २) डा० ईश्वरीप्रसाद,१६५५

(१५०) मराठों का नवीन इतिहास(प्रथम भाग)गोविन्दराम सखाराम सरदेसाई, १६५६,प्र०सं०

(१५१) राजपुताने का इतिहास, डा० जगदीश सिंह गहलोत, प्र०सं०

(१५२) राजपुताना का इतिहास,गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

(१५३) सिपाही विद्रोह या सन् सत्तावन का गदर,सम्पादक-ईश्वरीप्रसाद शर्मा, वि०सं० १६८६,द्वि०सं०

अंग्रेजी

(१५४) An Advanced History of India : R.C. Majumdar, H.C. Raychoudhuri & K. Datta, IInd Edition, 1956.

(१५५) Ancient India : T.L. Shah, Vol. II, Ist Edition,1939.

(१५६) Age of the Nandas & Moryas : Edited by Nilkant Shastri Ist Edition, 1952

(१५७) Discovery of India : Jawahar Lal Nehru, 4th Edition, 1956.

(१५८) History of the Punjab : K... Narang & ... Gupta 3rd Edition.

(१५६) History & Culture of the Indian People : Edited by R.C. Majumdar & A.D. Pastulkar.

(१६०) Rajasthan - Tod, Col.

(१६१) Story of [illegible] : Rogers, [illegible], Brown, 1953.

पत्र-पत्रिकाएं :-

१- सरस्वती (१९००-१९६० तक की प्रतियाँ)

२- विशाल भारत (१९०१-१९५० ,, ,,)

३- सरस्वती हीरक जयन्ती संग्रह (१९००-१९५९)

४- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक।

आलोच्यकालीन प्रमुख ऐतिहासिक सन्दर्भों की सूची

संदर्भों का सापेक्ष्य रेखा-चित्र

१ १

२ ३(ब)

३

६ ४

३(अ)

४ ५ २

६ ७ ८

अतीत के ऐतिहासिक सन्दर्भ

(१) ऐतिहासिक स्थान तथा स्थापत्य कला २५

(२) महाराणा प्रताप १२

(३) महात्मा बुद्ध १२

(४) शिवाजी ६

(५) जौहर ५

(६) सम्राट् अशोक ४

(७) कुणाल ४

(८) नूरजहां ३

(९) अन्य सन्दर्भ १२

वर्तमान के ऐतिहासिक सन्दर्भ

(१) गांधी जी ३२

(२) १८५७ की क्रान्ति के नेता ५

(३) अन्य आधुनिक राष्ट्रवीर १४

(अ) लोकमान्य तिलक तथा गोखले, गोपालकृष्ण

(ब) गणेशशंकर विद्यार्थी, लाजपत राय, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू आदि ।

(४) अन्य ऐतिहासिक सन्दर्भ १०

अतीत के ऐतिहासिक सन्दर्भ

ऐतिहासिक स्थान तथा स्थापत्यकला :-

इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों में	:	मोहनसिंह सेंगर
कुतुब मीनार	:	गिरिजाशंकर मिश्र, विशाल भारत, फरवरी, १६३८
खंडहर	:	श्रीदुर्गा गौरव, सरस्वती, मई १६३६
ताज	:	सुमित्रानन्दन पन्त, पुष्करिणी संग्रह से
ताज महल	:	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सरस्वती, मई १६१८
ताज ,,	:	लोचनप्रसाद पाण्डेय
ताज ,,	:	अनूप शर्मा, सुमनांजलि
ताज ,,	:	सोहनलाल द्विवेदी, सरस्वती, दिसम्बर १६५३
ताज ,,	:	शान्तिप्रिय द्विवेदी
ताज ,,	:	रामकुमार वर्मा, शुजा में प्रसंग रूप में
ताज ,,	:	ठाकुर गोपालशरण सिंह, माधवी संग्रह से
ताज ,,	:	लाला भगवानदीन, नवीन बीन संग्रह
दिल्ली	:	रामधारी सिंह `दिनकर`, काव्य
दिल्ली	:	सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, सरस्वती, अप्रैल, १६२४
नूरजहां की कब्र पर	:	भगवतीचरण वर्मा, विशाल भारत, मई, १६३३
नूरजहां का मकबरा	:	फारवर हरियानवी, विशाल भारत, मई १६३३
नालन्दा के खंडहर में	:	श्री केसरी , विशाल भारत, दिसम्बर १६३३
फतहपुर सीकरी	:	विश्वम्भरनाथ, विशालभारत, जुलाई १६३७
रे पाटली के कंकाल बोल	:	अरविन्द बी.ए., विशाल भारत, अप्रैल १६३६
वैभव की समाधि पर	:	रामधारी सिंह `दिनकर` विशाल भारत, मई १६३३
सीकरी	:	मुंशी अजमेरी, विशाल भारत, मई १६३२
सारनाथ के खंडहरों से	:	श्री सुरेन्द्र , विशाल भारत, जनवरी १६३४

हिमालय के प्रति	:	रामधारी सिंह `दिनकर`
हिमालय के प्रति	:	गोपाल शरण सिंह
हिमाद्रि[1]	:	सुमित्रानन्दन पन्त

महाराणा प्रताप

अतिथि सत्कार	:	श्री सुरेशचन्द्र ,सरस्वती,मार्च १९५८
प्रताप प्रतिज्ञा	:	रामचरित उपाध्याय,सरस्वती,नवम्बर १९३२
पृथ्वी भट्ट का पत्र	:	सोहनलाल द्विवेदी,प्रभाती संग्रह
प्रणवीर प्रताप	:	गोकुल चन्द्र शर्मा, काव्य
पेशोला की प्रतिध्वनि	:	जयशंकर प्रसाद,`लहर`
महाराणा प्रताप और स्वतंत्रता	:	शम्भुदयाल श्रीवास्तव,नीराजना संग्रह
महाराणा प्रताप के प्रति	:	पं०वागीश्वर विद्यालंकार,राष्ट्रीय वीणा संग्रह
महाराणा प्रताप सिंह का पत्र	:	मैथिलीशरण गुप्त,सरस्वती,नवम्बर १९१३
महाराणा प्रताप	:	लाला भगवानदीन ,वीरपंचरत्न संग्रह
राणा के प्रति	:	सोहनलाल द्विवेदी,आधुनिक वीरकाव्य संग्रह
हल्दीघाटी के प्रति	:	सोहनलाल द्विवेदी,विशाल भारत,दिसम्बर १९३०
हल्दीघाटी	:	श्यामनारायण पाण्डेय

महात्मा बुद्ध

गौतमी	:	सोहनलाल द्विवेदी,सरस्वती,जनवरी १९५५
गूंजे अमर वाणी	:	गिरिजाकुमार माथुर, सरस्वती,जून १९५६
जागो बुद्ध भगवान	:	सोहनलाल द्विवेदी,`प्रभाती` संग्रह से
बुद्ध और गृहत्याग	:	धर्मपाल साहू,`फुलझड़ियां`संग्रह से
बुद्धदेव के प्रति	:	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, विशाल भारत,जुलाई १९२०

१- हिमालय सम्बन्धी अनेक रचनाओं का संग्रह महादेवी द्वारा सम्पादित`हिमालय` काव्य ग्रन्थ में हुआ है।

बुद्ध और नाचघर	:	हरिवंश राय बच्चन, `बुद्ध और नाचघर` संग्रह से
बुद्ध आवाहन	:	रामधारी सिंह दिनकर, विशाल भारत, जुलाई १६३४
बुद्ध जन्म	:	पारसनाथ सिंह, सरस्वती, अक्टूबर १६२०
बौद्ध पतन	:	श्यामबिहारी मिश्र
		शुकदेव बिहारी मिश्र
भगवान बुद्ध के प्रति	:	सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला`, `अणिमा` संग्रह से
यशोधरा	:	मैथिलीशरण गुप्त, विशाल भारत, १६३३
सिद्धार्थ	:	अनूप शर्मा

शिवाजी

छत्रपति शिवाजी का मनोमहत्व: लोचनप्रसाद पाण्डेय, पद्य पुष्पांजलि

छत्रपति शिवाजी के उत्साह वाक्य: ,, ,, ,,

जयसिंह के प्रति शिवाजी का पत्र : विद्या भूषण विभु `पद्य पयोनिधि`

महाराज शिवाजी का पत्र : : `निराला`, `परिमल` से

वीररत्न बाजी प्रभु देशपाण्डे : मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती का `हीरकजयंती` संग्रह

शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी : आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, `झांकी` से

जौहर

चित्तौड़ की चिता	:	रामकुमार वर्मा,
जौहर	:	सुधीन्द्र
जौहर	:	श्यामनारायण पाण्डेय
सती पद्मिनी	:	श्रीनाथ सिंह
चित्तौड़ दर्शन	:	अनूप शर्मा, `सुमनांजलि` संग्रह

अशोक

अशोक की चिन्ता	:	जयशंकर प्रसाद , `लहर` से
अशोक की हिंसा से विरक्ति	:	सोहनलाल द्विवेदी, विशाल भारत,जून १६४२
कलिंग विजय	:	रामधारी सिंह`दिनकर`;इतिहास के आंसू`
मगध महिमा(पद्य नाटिका)	:	रामधारी सिंह`दिनकर`
कुणाल गीत	:	मैथिलीशरण गुप्त
कुणाल	:	सोहनलाल द्विवेदी
कुणाल की स्मृतियां	:	,,
कुनाल	:	अनूप शर्मा

नूरजहां

नूरजहां	:	आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव,सरस्वती,नवम्बर१६२७
नूरजहां	:	रामकुमार वर्मा,`रूपराशि`
नूरजहां	:	गुरुभक्त सिंह`भक्त`

अन्य सन्दर्भ :-

अविश्वास	:	सियारामशरण गुप्त,सरस्वती,अप्रैल १६२०
आत्मार्पण	:	द्वारिकाप्रसाद गुप्त,`रसिकेन्द्र`,
आल्हा ऊदल	:	लाला भगवानदीन
चाणक्य और चन्द्रगुप्त	:	आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव`झांकी`संग्रह
तप्तगृह	:	केदारनाथ मिश्र `प्रभात`

दुर्गावती	:	राजेश्वर गुरु
प्रलय की छाया	:	जयशंकर प्रसाद
भारत भारती	:	मैथिलीशरण गुप्त
मौर्य विजय	:	सियाराम शरण गुप्त
प्रलय की छाया	:	जयशंकर प्रसाद, `लहर`
शिल्प सौन्दर्य	:	जयशंकर प्रसाद `कानन कुसुम`
शेर सिंह का शस्त्र-समर्पण	:	,, ,, `लहर`

आदि आदि

गांधी जी

अभिवादन	:	सुमित्रानन्दन पन्त,सरस्वती,फरवरी १९५५
अमर प्रकाश	:	श्री युगल,सरस्वती,मार्च,१९४८
अन्तिम प्रणाम	:	भगवतीचरण वर्मा,सरस्वती,मार्च १९४८
अस्थि विसर्जन	:	सुमित्रानन्दन पन्त, सरस्वती,मार्च,१९४८
गांधी जी की आर्ते	:	श्री अनूप शर्मा,
गांधी जी की पैंसिल स्कैच	:	सोहनलाल द्विवेदी,विशाल भारत,फरवरी,१९३८
गांधी महाराज	:	रवीन्द्र ठाकुर ,सरस्वती,मार्च,१९४८
गुरुदेव गांधी	:	बालकृष्ण शर्मा नवीन,विशाल भारत,अक्टूबर,१९३६
गांधी गौरव	:	गोकुल चन्द शर्मा, १९१९
गांधी मन्दिर	:	प्रभाती से
गांधी गौरव	:	गोकुल चन्द शर्मा,१९१९
इण्डिया मेरे में	:	कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह,सरस्वती,जून,१९४०
तपस्या	:	रामधारी सिंह`दिनकर`,विशाल भारत,जून,१९३३
दण्डी प्रयाण	:	श्री अनूप शर्मा,सरस्वती,जनवरी १९३३
बापू के प्रति	:	सुमित्रानन्दन पन्त,सरस्वती,मार्च १९४०
बापू	:	,, ,,विशाल भारत,जुलाई १९३८
बापू के प्रति	:	चन्द्र कुड़ एम.ए.,सरस्वती,कु०० मार्च,१९४८
बापू	:	रामधारी सिंह`दिनकर`
महात्मा जी के प्रति	:	सुमित्रानन्दन पन्त,सरस्वती,मार्च,१९४०
मेरे बापू `संग्रह`	:	हुकुम चन्द्र बुखारिया
महामानव	:	ठाकुर प्रसाद सिंह
मेरे बापू	:	तन्मय बुखारिया , १९५१
महामानव	:	ठाकुर प्रसाद सिंह त्रिशूल
संस्मरण,श्रद्धांजलि(बापू को)	:	सोहनलाल द्विवेदी,सरस्वती,फरवरी,१९५२
सेवाग्राम	:	सोहनलाल द्विवेदी
शान्तिदूत	:	आशुतोष,सरस्वती,मार्च,१९५२
युगपुरुष	:	सुखदेव सिंह सौरभ

युगाधार : सोहनलाल द्विवेदी,
हे महात्मन : रामानुज लाल श्रीवास्तव,सरस्वती,मार्च,१९४८
श्रद्धांजलि (बापू को) : ठाकुर गोपाल शरण सिंह,सरस्वती,मार्च,१९४८
खादी के फूल : हरिवंश राय बच्चन
सूत की माला[1] : हरिवंश राय बच्चन

१८५७ की क्रान्ति के नेता

`झांसी की रानी` : सुभद्राकुमारी चौहान `मुकुल`संग्रह
`झांसी की रानी की समाधि पर : सुभद्राकुमारी चौहान`त्रिधारा`संग्रह
`झांसी की रानी` : श्यामनारायण प्रसाद ,(प्रबन्ध काव्य)
`झांसी की रानी` : आनन्द मिश्र (प्रबन्ध काव्य`)
तात्या टोपे : लक्ष्मीनारायण कुशवाहा(प्रबन्ध काव्य)

अन्य आधुनिक राष्ट्रवीर

लोकमान्य तिलक

` श्री लोकमान्य तिलक वंदना` : पंडित माधव शुक्ल , जागृत भारत`संग्रह`
,, महानुभावता: ,, ,,
,, सम्मान : ,, ,,
,, स्मृति : ,, ,,
`तिलक हा!भाल तिलक` : सुमित्रानन्दन पंत ,`वीणा` संग्रह

गोखले , गोपाल कृष्ण

गोखले गुनाष्टक : श्रीधर पाठक
गोखले प्रशस्ति : ,,

१- गांधी जी से सम्बन्धित अन्य अनेक रचनाएं काव्य संग्रहों में संग्रहीत हैं ।

जैसे- पर आंखें नहीं भरीं,डा० शिवमंगल सिंह सुमन
रक्त चन्दन, नरेन्द्र शर्मा
विराम चिह्न , अंचल
हिमालय के आंसू , आनन्द मिश्र
आदि आदि -

गणेशशंकर विद्यार्थी

आत्मोत्सर्ग : सियाराम शरण गुप्त

प्राणार्पण : बालकृष्ण शर्मा नवीन

विचित्र बलिदान : मुंशी अजमेरी जी, विशाल भारत, जून १९३१

लाला लाजपत राय

`लाजपत राय` : आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव , सरस्वती, जनवरी १९२९

सुभाषचन्द्र बोस[१]

सरदार पटेल

सरदार पटेल के प्रति : महेन्द्रकुमार बख्शी, `कमल`, सरस्वती , अप्रैल १९५४

जवाहरलाल नेहरू[२]

अन्य ऐतिहासिक सन्दर्भ

सम्राट् स्वागत : लोचन प्रसाद पाण्डेय
(कवि पंचम)

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति : `निराला` , सरस्वती , जनवरी १९३७

वीर बोनापार्ट के अन्तिम दिन : पं० मन्मथ द्विवेदी गजपुरी, सरस्वती जून १९१३

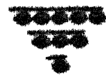
दीनबन्धु एन्ड्रूज की स्मृति में : ठाकुर गोपालशरण सिंह, विशाल भारत, मई १९४०

१- सुभाषचन्द्र बोस सम्बन्धी अनेक रचनाएं `जयहिन्द` संग्रह में संकलित हैं।
-सम्पादक :सम्पूर्णानन्द श्रीवास्तव

२- नेहरू जी से सम्बन्धित अनेक रचनाएं `शान्तिदूत` संग्रह में संकलित हैं ।

जलियांवाला बाग में वसन्त	: सुभद्राकुमारी चौहान, `मुकुल` संग्रह
हिरोशिमा	: `अज्ञेय`, `अरी ओ करुणा प्रभामय` संग्रह
पाकिस्तान	: श्रीयुत सनेही, सरस्वती , जून १९४०
विराट संग्राम (द्वितीय महायुद्ध)	: अनूप शर्मा
बंगाल का अकाल	: हरिवंश राय बच्चन
बुभुक्षित बंगाल[१]	: सोहनलाल द्विवेदी, प्रभाती` संग्रह

आदि आदि



टिप्पणी: इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाएँ भी उपर्युक्त सन्दर्भों पर ही विभिन्न संग्रहों में प्राप्त होती हैं परन्तु सन्दर्भगत सापेक्ष्य-महत्व को देखने के लिए उपर्युक्त रचनाएँ देखी जा सकती हैं। अन्य रचनाओं की संख्या जोड़ने से सापेक्ष्य-चित्र में कोई विशेष परिवर्तन आने की संभावना प्रतीत नहीं होती।